क्षमता का अभाव नहीं है क्योंकि 'पूर्वराग' एवं 'मान' के वर्णन में वह अपने चरम विकास पर दिखाई देती है।

गुणश्रवणजन्य पूर्वानुराग का मनोरम चित्र देखिये—

अगणितगुणेन सुन्दर कृत्वा चारित्रमप्युदासीनम्।
भवतानन्यगतिः सा विहितावर्तन तरणिरिव ॥ ४७ ॥'

दर्शनजन्य वैराग—

'यस्यां दिशि यस्य तरोर्यामेत्य शिखां यथोन्नतग्रीवम्।
दृष्टा सुधांशुलेखा निशां चकोरस्तथा नयति ॥ ४८५ ॥'

प्रणयमान—पराङ्गनासक्ति रूप अपराध के कारण नहीं, केवल प्रिय के परिहास को दुर्वचन मानकर नायिका रूठ गई, सखी द्वारा उसका समाधान जिस वचन कौशल से कवि ने कराया है, वह स्तुत्य है—

'अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः।
इतरेन्धनजन्यो यो धूमः सोऽगुरुभवो धूपः ॥ १३ ॥'

ईर्ष्यामान—अन्य नायिका की दी गई माला को शिरोभूषण के रूप मे धारण किये नायक को देखकर 'जिसकी दी गई माला तेरा शिरोभूषण हो रही है' हे शठ! वही तेरे पास जाय, ऐसा कहती हुई नायक के सिर पर चरण-ताडन किया—

'यन्निहितां शेखरयसि मालां सा यातु शठ भवन्तमिति।
प्रहरन्तीं शिरसि पदा स्मरामि तां गर्वगुरुकोपाम् ॥ ४७२ ॥

जैसा पहिले कहा जा चुका है कि प्रवास विप्रलम्भ में कवि की वृत्ति अधिक नहीं रम सकी है। प्रियतम के विदेश-गमन के समय नायिका के उद्वेग आदि तथा लौटने पर नायिका के औत्सुक्य आदि का तो सम्यक् चित्रण मिलता है किन्तु प्रवासकालीन सन्ताप का वर्णन अत्यन्त कम मिलता है, जो मिलता भी है उसमें वह तीव्रता नही है। प्रवासी नायक, नायिका के संयोगकालीन सुखों अथवा अवस्था आदि तथा प्रस्थानकालीन उसके उद्वेग का स्मरण करके ही रह जाता है। कहीं-कहीं नायिका की वियोग-जन्य दशा की प्रभावहीन सूचना भर नायक को दी जाती है।

नायक प्रातः परदेश जाने वाला है। रात में नायिका, नायक जितने दिनों के लिए जा रहा है, गिनकर उतने चुम्बन, आलिङ्गन करती रही और अधिक रात शेष न रह जाने के कारण उतनी ही संख्या मे सुरत सम्पादन न कर सकी—इसका पछतावा उसे रह गया—

'मयि यास्यति कृत्वावधिदिनसंख्यं चुम्बनं तथाश्लेपम्।
प्रिययानुशोचिता सा तावत्सुरतात्क्षमा रजनी ॥ ४३४ ॥'

प्रातः प्रिय परदेश को चल पडा। भारतीय परम्परा के अनुसार नायिका प्रिय को सरोवर तक भेजकर जब लौटने को हुई, तो प्रिय के बार-बार कहने पर भी वह लौट नहीं पा रही है और 'हे कान्त! जाओ'—ऐसा नायिका के बार-बार कहने पर भी नायक जा नहीं पाता। इसी प्रकार एक दूसरे को कहते-कहते पूरा दिन सरोवर के तट पर ही बीत गया। कवि ने इस स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है—

'बाष्पाकुलं प्रलपतोर्गृहिणि निवर्तस्व कान्त गच्छेति।
यातं दंपत्योर्दिनमनुगमनावधि सरस्तीरे ॥ ४०९ ॥'

परदेश में एकाकी प्रिय को प्रियतमा का तथा संयोग के सुखों का स्मरण होना स्वाभाविक है। कभी वह अपनी प्रस्थान-वेला के समय प्रिया की दयनीय अवस्था का भी स्मरण करता रहता है—

'शतशो गतिरावृत्तिः शतशः कण्ठावलम्बनं शतशः।
शतशो यामीति वचः स्मरामि तस्याः प्रवासदिने ॥ ५१६ ॥

'निविडघटितोरुयुगलां श्वासोत्तब्धस्तनार्पितव्यजनाम्।
तां स्निग्धकुपितदृष्टिं स्मरामि रतनिःसहां सुतनुम् ॥ ३२० ॥'

विरहजन्य दशा-वर्णन—प्रवासी नायक को किसी से यह समाचार मिलता है कि विरह में नींद न आने के कारण नायिका को रात लम्बी मालूम पड़ती है, उद्दीपक होने के कारण चन्द्रमा और चन्दन नहीं भाते हैं। इस प्रकार वह विरहिणी विना अग्नि के ही जली जा रही है जैसे माघ मास में कमलिनी—

'तव विरहे विस्तारितरजनी जनितेन्दुचन्दनद्वेषे।
बिसिनीव माघमासे विना हुताशेन सा दग्धा ॥ २५५ ॥'

दूसरा समाचार मिला कि तेरे विरह-विपत्ति में वह पीली तन्वङ्गी ज्योत्स्ना में हंसी की भाँति छाया (कान्ति) से ही पहिचानी जाती है। तीसरे व्यक्ति ने समाचार दिया कि उसकी अस्त-व्यस्त अलकें मुख की ओर लटकी नेत्र-प्रान्त को आच्छादित किये रहती हैं और अलकों के मोती सी आँसू की बूँदें गिरती रहती हैं—

'व्यालम्बिचूर्णकुन्तलचुम्बितनयनाञ्चलैर्मुखे तस्याः।
बाष्पजलबिन्दवोऽलकमुक्ता इव पान्थ निपतन्ति ॥ ५१४ ॥'

इस प्रकार एक तो प्रेयसी का मधुर स्मरण, दूसरे उसके विरहजन्य सन्तापदायिनी अवस्था का बार-बार प्राप्त समाचार से नायक परदेश में अधिक दिन ठहरने में असमर्थ हो जाता है और शत-शत मनोरथ करता घर के मार्ग पर चल पड़ता है—

'प्राङ्गण एव कदा मां श्लिष्यन्ती मन्युकम्पिकुचकलशा।
अंसनिषण्णमुखी सा स्नपयति बाष्पेण मम पृष्ठम् ॥ ३९४ ॥'

वह कुछ इस प्रकार प्रिया के ध्यान में मग्न रहा कि मार्ग में पड़े ग्राम-नदियों का भी परिचय नहीं जान सका। घर पहुँचने पर अपने अन्य साथियों से उनका परिचय प्राप्त कर सका—

'सखि शृणु मम प्रियोऽयं गेहं येनैव वर्त्मनायातः।
तन्नगरग्रामनदीः पृच्छति सममागतानन्यान् ॥ ५९५ ॥

इधर विरहिणी को भी फड़कती वाम बाहु ने भावी प्रियसङ्गम की सूचना दे दी। हर्ष के आवेग में वह उसे प्रणाम करती है, सादर देखती है, चूमती है और पुलकित अङ्गों से आलिङ्गन करती है—

'प्रणमति पश्यति चुम्बति संश्लिष्यति पुलकमुकुलितैरङ्गैः।
प्रियसङ्गाय स्फुरितां वियोगिनी वामबाहुलताम् ॥ ३४७ ॥'

प्रिय घर के निकट पहुँचा तो नलिनी के नवीन पत्तों को देखकर सोचने लगा कि हो न हो, मेरी प्रिया मेरे वियोग में प्राणपरित्याग कर चुकी क्योंकि उसने पुराने पत्तों को तो विरह के उपचार के लिए तोड़ डाला होगा। तदनन्तर ये नवीन पत्ते निकले। यदि वह

जीवित होती तो ये पत्ते भी उपचार के लिए तोड लिये गए होते—ऐसा सोचकर 'हा गृहिणि' कहकर मूर्च्छित गिर पडा—

'स्वसदननिकटे नलिनीमभिनवजातच्छदां निरीक्ष्यैव ।
हा गृहिणीति प्रलपंश्चिरागतः सखि पतिः पतितः ॥ ६७९ ॥'

इधर विरहिणी, अन्य पथिकों से पहिले ही प्रिय के घर पहुँच जाने पर, गर्व एव प्रसन्नता से फूली नही समाई—

'प्रिय आयातो दूरादिति या प्रीतिर्बभूव गेहिन्याः ।
पथिकेभ्यः पूर्वागत इति गर्वात्सापि शतशिखरा ॥ ३८९ ॥'

प्रिय को चिरकालीन वियोग के बाद पाकर एक दिन तक तो पडोसियों, मित्रों और बन्धुओं को उसके घर आने का पता भी नहीं चलने दिया—

'प्रतिवेशिमित्रबन्धुषु दूरात्कृच्छ्रागतोऽपि गेहिन्या ।
अतिकेलिलम्पटतया दिनमेकमगोपि गेहपतिः ॥ ४०१ ॥'

इस प्रकार सिद्ध है कि विप्रलम्भ श्रृगार का वर्णन कवि ने अत्यन्त संयत सीमा मे किया है । अन्य कवियों की भाँति अतिशयोक्ति का सहारा लेकर इतना वढा चढाकर अहात्मक वर्णन नही किया है कि वह खिलवाड बनकर हास्यास्पद हो ।

अलंकार योजना

संस्कृत साहित्य के आचार्यों में अलकार और रस को लेकर परस्पर दो विरोधी दल बन गये थे । 'अलंकारसर्वस्व' मे 'अलकारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्याना मतम्' कह कर अलंकार को प्रधानता दी गयी । 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में 'काव्य ग्राह्यमलकारात् । सौन्दर्यमलङ्कारः ।'—का उल्लेख कर अलकार को काव्य का सौन्दर्य कहा गया । 'चन्द्रालोक' में काव्य और अलकार का अग्नि और उष्णता का-सा सम्बन्ध बताया गया—

'अङ्गीकरोति यः काव्य शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ॥'

इधर रसवादियों का कहना था—

'काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते' (काव्यादर्श २, १)

अलकार काव्य की शोभा करने वाले धर्ममात्र हैं । शोभा को बढाने वाले, रस, भाव आदि के उपकारक, शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म बाजूबन्द आदि आभूषणों की तरह अलङ्कार कहलाते है (साहित्यदर्पण १०।१) जो धर्म अर्थों (शब्द और अर्थ) के द्वारा कभी कभी उपस्थित रहने वाले (प्रधान) रस का उपकार करते हैं वे धर्म हार आदि के समान अलङ्कार कहलाते हैं (काव्य प्रकाश ८।६७) इस प्रकार अलकार काव्य के बाह्य तत्त्व है, उसके अस्थिर धर्म है । यह आवश्यक नही कि जब कोई उक्ति शब्दालंकार या अर्थालङ्कार से युक्त हो तभी उसे काव्य कहा जाय । अलङ्कार-विहीन होने पर भी रस-युक्त उक्ति को काव्य कहा जायगा । 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' (साहित्य-दर्पण) के अनुसार रस ही काव्य की आत्मा है ।

उक्त दोनों दलों की अतिवादिता से काव्य की बडी दुर्दशा हुई । अलकारवादियों की अतिवादिता के कारण अलकारो की अनुचित एव अनावश्यक योजना से कविताकामिनी

उद्धत हो चली। साधन (अलंकार) को ही साध्य मानकर काव्य के साथ जो खिलवाड़ किया गया उससे काव्य का काव्यत्व नष्ट हो चला। उधर रसवादी अपनी अतिवादिता में यह भूल बैठे कि अलंकार भावों को व्यक्त करने की एक शैली है। काव्य के कलापक्ष में सदा से उसका व्यवहार होता आया है और कलापक्ष काव्य के लिए यदि अनिवार्य नहीं, तो आवश्यक तो है ही। इसके परिणामस्वरूप काव्यभाव प्रधान होते हुए भी अलकाररूप मनोज्ञशैली के अभाव से अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल नहीं सिद्ध हो रहा था।

गोवर्धनाचार्य ने इस उभयात्मक परिस्थिति में मध्यममार्ग अपना कर दोनों दलों की अतिवादिता से बचते हुए काव्य में समन्वय-भावना उत्पन्न करने की चेष्टा की है। ग्रन्थारम्भव्रज्या के ५४ वें पद्य—

'रतरीतिवीतवसना प्रियेव शुद्धापि वाङ्‌मुदे सरसा।
अरसा सालंकृतिरपि न रोचते शालभञ्जीव ॥'

उन्होंने 'शुद्धापि' (अलंकार-विहीन) भी सरस वाणी को मुदावहा तथा अलंकारयुक्त रसहीन वाणी को अरुचिकारिका कहकर काव्य में रस की प्रधानता स्वीकार की किन्तु 'शुद्धापि' में 'अपि' (भी) का प्रयोग कर उन्होंने साथ-ही-साथ यह भी ध्वनित किया कि सरस वाणी यदि अलंकारों से युक्त हो तो फिर क्या कहना।

ग्रन्थारम्भव्रज्या के ४७ वें पद्य—

'अकलितशब्दालंकृतिरनुकूला स्खलितपदनिवेशापि।
अभिसारिकेव रमयति सूक्तिः सोत्कर्षशृंगारा ॥'

में 'सूक्ति' पद को 'अकलितशब्दालंकृति' विशेषण ने विशिष्ट बनाकर उन्होंने यह ध्वनित किया कि अर्थालंकारों के विषय में कुछ नहीं कहना है। शब्दालंकृतिशून्य सदोष-पदविन्यासशालिनी भी उत्कृष्ट शृङ्गारमयी उक्ति मनोरम होती है। यहाँ भी 'अपि' पद का प्रयोग होने से यही ध्वनित होता है कि वह सरस उक्ति शब्दालंकृतियुक्त हो तो फिर क्या कहना! किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गोवर्धनाचार्य शब्दालकार के मनमाने, अनुचित एवम् अनावश्यक प्रयोग के हिमायती हैं। उन्होंने अगले ही ४८ वें श्लोक में शब्दालङ्कार के प्रयोग पर कठोर नियन्त्रण का विधान किया है—

अध्वनि पदग्रहपरं मदयति हृदयं न वा न वा श्रवणम्।
काव्यमभिज्ञसभायां मञ्जीरं केलिवेलायाम् ॥

जो पद व्यङ्ग्यार्थशून्य है (भाव और रस के सहायक नहीं हैं) ऐसे पदों का अनुप्रासमात्र के आग्रह से काव्य मे सन्निवेश कर देने से काव्य हृदय को रस-निमग्न नहीं कर पाता है अतः शब्दालंकारों के प्रयोग में भी यह ध्यान रखना चाहिए कि जो व्यङ्ग्यार्थयुक्त और भावाभिव्यक्ति में उपकारक हों ऐसे ही पदों को विन्यस्त करे केवल अनुप्रासादि के आग्रह से निष्प्रयोजन उन्हें भर्ती कर लेना समीचीन नहीं।

इस प्रकार गोवर्धनाचार्य जहाँ रस की प्रधानता के पक्षपाती हैं वहाँ अलंकारों के सुनियन्त्रित प्रयोग को भी समीचीन मानते हैं, अतः उनकी सप्तशती में उनके निजी दृष्टिकोण पर ध्यान रखते हुए उनकी अलंकार-योजना पर विचार करना उपयुक्त होगा।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि इस सप्तशती में केवल चमत्कार-विधान के लिए अलकारों की स्वतन्त्ररूपात्मक योजना ढूंढने पर भी नहीं मिलेगी। व्यङ्ग्यार्थ-युक्त पदों के विन्यास में स्वतः आगत अनुप्रास मिल भी सकता है किन्तु समग्र सप्तशती में

'यमक' अलङ्कार का उदाहरण दो-एक भी कठिनाई ही से मिल सकेगा। हाँ, श्लेष अलंकार का समुचित प्रयोग बहुत मिलता है क्योंकि 'मुक्तक' में एक 'आर्या' ऐसे छोटे छन्द में शब्दों और अर्थों की कसावट और संक्षिप्तता की दृष्टि से श्लेष अलंकार बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। इनके इस अलंकार के समुचित प्रयोग का दो-एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

अतिपूजिततारेयं दृष्टिः श्रुतिलङ्घनक्षमा सतनु।
जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना कं न मोहयति॥ २१॥

प्रस्तुत (दृष्टि) और अप्रस्तुत (जिनसिद्धान्तस्थिति) दोनों के पक्ष में 'तारा' (१–कनीनिका, २–ताराख्या देवता) 'श्रुति' (१–कर्ण, २–वेद) 'वासना' (१–संस्कार, २–कुबुद्धि) आदि शब्दों को श्लिष्ट रूप में सन्निविष्ट कर कवि ने अपनी मुक्तक-काव्य-कला का सुन्दर प्रदर्शन किया है। श्लिष्ट अर्थों को निकालने में तनिक भी व्यर्थ आयास नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार—

अगणितगुणेन सन्त्यज्य कृत्वा चारित्रमप्यदासीनम्।
भवता ऽनन्यगतिः सा विहितावर्तेन तरणिरिव॥

इस पद्य में प्रस्तुत (नायिका) अप्रस्तुत (तरणि—नौका) दोनों के पक्ष में तथा प्रस्तुत (नायक) अप्रस्तुत (आवर्त) इन दोनों के पक्ष में प्रयुक्त श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग का कौशल अत्यन्त श्लाघ्य है। श्लेष-विधान से छन्द में अर्थ की कितनी गुरुता भर दी गयी है—इसे कला-पारखी ही समझ सकता है।

चारित्रमपि (नायिकापक्ष में पातिव्रत्य, नौकापक्ष में च + अरित्रम्—नाव का डाँड) अगणितगुणेन (नायकपक्ष में जिसमें अगणितगुण हैं, आवर्तपक्ष में, जिसने गुण = बन्धनरज्जु को अनादृत कर दिया) विशेष व्याख्याभाग में देखिये।

इस प्रकार श्लेष का कलापूर्ण प्रयोग जहाँ हो प्रस्तुत और अप्रस्तुत का साहचर्य है सर्वत्र देखने को मिलता है।

अनुप्रास के विषय मे कवि ने अपने उक्त सिद्धान्त का पालन किया है। व्यंजक शब्दों मे ही अनुप्रास निहित है, रस अथवा भाव की व्यंजना एवं वस्तुबोध में अनुपकारक शब्दों का शोभामात्र के लिए विन्यास नहीं किया गया है। कहीं-कहीं तो शब्दों से भावव्यंजना का कार्य लिया ही गया है, तदन्तर्गत अनुप्रास से भी माधुर्य तथा सौन्दर्य का सम्पादन ही नहीं, वर्ण्य वस्तु एवम् उसके व्यापार और चेष्टा का आभास भी कराके दोहरा लाभ उठाया गया है—

आन्दोललोलकेशीं चलकाञ्चीकिङ्किणीगणक्वणिताम्।
स्मरसि पुरुषायितां तां स्मरचामरचिह्नयष्टिमिव॥ ८५॥

इस पद्य में कवि विपरीतरति में रत नायिका के रूप-चित्रण में चञ्चल केशों और उसकी चञ्चल काञ्ची की किङ्किणियों की झङ्कार आदि का वर्णन कर उसके स्वरूप का सम्यक् बोध कराना चाहता है। कवि के इस उद्देश्य में उसके प्रयुक्त शब्दों ने अपनी व्यजना से स्वरूप-बोध करा के जितनी सहायता की है, तदन्तर्गत 'आन्दोललोलकेशीम्' के अनुप्रास ने केशों की चञ्चलता का, तथा 'चलकाञ्चीत्यादि' के सानुनासिक वर्णों के अनुप्रास ने किङ्किणी की झङ्कार का, अपने नाद-सौन्दर्य से आभास करा कर उससे कम सहायता नही की है।

अपि च—

आनयति पथिकतरुणं हरिण इह प्रापयन्निवात्मानम्।
उपकलमगोपि कोमलकलमावलिकवलनोत्तरलः॥ १०१॥

इस पद्य में उत्तरार्ध का 'कोमलकलमावलिकवलनोत्तरलः' पद जहाँ हरिण की कोमल कलमों के भक्षणार्थ उत्कण्ठा आतुरता व्यक्त कर रहा है वहीं तदन्तर्गत अनुप्रास भी (तनिक उच्चारण करके अनुभव कीजिए) खेत में जल्दी-जल्दी चरते हुए पशु की चरने की आतुरता अपने वर्णों के उचित क्रम के कारण आभासित करा कवि के कार्य को सरल बना रहा है। कवि की इस कुशलता पर कौन सहृदय मुग्ध नहीं होगा ?

अर्थालङ्कारों की योजना पर दृष्टि डालने से पहिले इतना सोच लिया जाय कि यह कवि चमत्कारवादी नहीं है। मुक्तककाव्य के प्रत्येक पद्य का अपना-अपना एक स्वतन्त्र-लक्ष्य होता है, किसी में भाव की अभिव्यक्ति, किसी में वस्तु-व्यंजना, किसी में दशा-वर्णन किसी में तथ्य-निरूपण तो किसी में मुद्रा का चित्रण आदि। कवि, जिस पद्य का जो स्वतन्त्र लक्ष्य है उसी की सम्यक् पूर्ति में दत्तचित्त रहता है। उसका पूरा ध्यान साध्य की सिद्धि पर रहता है। तदनुकूल उपयुक्त साधनों को व्यवहार में लाता है। गोवर्धनाचार्य ने भी पद्य-गत लक्ष्य को ध्यान में रखकर जिस अलङ्कार की योजना से उसकी सम्यक् पूर्ति हो सकती थी, उसका उपयोग किया है। बलात् विभिन्न अलङ्कारों को बे-मौके प्रयुक्त करना अथवा उनके प्रयोग के लिए पद्य में लक्ष्य-विरुद्ध बलात् मौका निकालने की कोशिश करना—यह अलङ्कारप्रिय चमत्कारवादी कवि ही कर सकता है, इन—जैसा रसवादी कवि नहीं। अतः इनकी रचना में अर्थालङ्कारों की पूरी सेना नहीं दिखायी पड़ेगी कि आप चाहें तो प्रत्येक अलङ्कार का क्रमशः उदाहरण एकत्र कर एक लक्षण-ग्रन्थ तैयार कर लें। इनकी विशेषता इसमें है कि समग्र सप्तशती के विभिन्न वर्ण्य विषयों के लिए कुछ इने-गिने अत्यन्त प्रचलित, सूक्ष्म-भेद-रहित, सर्व-साधारण के जाने-माने अलङ्कारों का ही इन्होंने प्रयोग किया है। यथाः—साम्यमूलक अर्थालङ्कार—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्मरण, भ्रान्तिमान्, सन्देह, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति (कहीं-कहीं), तुल्ययोगिता, अर्थान्तरन्यास, अन्योक्ति, विरोधमूलक अलङ्कारों में विरोधाभास (कहीं-कहीं)।

इनके उपमा अलङ्कार के प्रयोग के विषय में अधिक क्या कहा जाय! यह अलंकार साम्यमूलक सभी अलंकारों का मूल है। कवियों ने इसका अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग किया। कालिदास को तो इसी अलकार के समुचित प्रयोग ने विश्व-विख्यात बना दिया। संस्कृत के कवि पूर्णोपमा (उपमेय, उपमान, धर्म, वाचकयुक्त) को ही अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि भावों को हृदयंगम कराने में कवि की सफलता प्रस्तुत (उपमेय) और अप्रस्तुत (उपमान) के सादृश्य और साधर्म्य दोनों पर निर्भर है। अतः अप्रस्तुत-योजना में साम्यमूलक अलकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का अधिक प्रयोग वाञ्छनीय होता है। अप्रस्तुत विधान की उत्कृष्टता रूप-ग्रहण और रमणीयता में सहायक होने पर ही है, चमत्कारमात्र के लिए किया गया अप्रस्तुत विधान निकृष्ट समझा जाता है। गोवर्धनाचार्य ने अप्रस्तुत विधान करते समय इस बात पर पूर्ण ध्यान रक्खा है।

उपमा-द्वारा—उपमा में अप्रस्तुत वस्तु का विधान करते हुए कवि ने अनुरूपता, सरसता, अपूर्वता, रमणीयता, यथार्थता आदि पर विशेष ध्यान दिया है। उसकी विविध उपमाओं से बहुश्रुतता और दृष्टि की व्यापकता स्पष्ट लक्षित होती है—

अकरुण कातरमनसो दर्शितनीरा निरन्तरालेयम्।
त्वामनुधावति विमुखं गङ्गेव भगीरथं दृष्टिः ॥ ३४ ॥

नायक, नायिका से रूठकर, उसकी ओर से मुँह फेरकर जा रहा है। नायिका की अश्रु-पूर्ण दृष्टि उसी ओर लगी हुई है। इस दृश्य का चित्रण करते समय, इसी के अनुरूप, स्वाभाविक एवं प्रसङ्ग के अनुकूल ही, कवि ने अपने पौराणिक ज्ञान के सहारे भगीरथ के पीछे-पीछे चलती गङ्गा की अवतारणा कर प्रकृत को सहज-गम्य बना दिया। नायिका की दृष्टि और गङ्गा, दोनों के लिए 'दर्शितनीरा' और 'निरन्तराला' विशेषण रखकर उनके सादृश्य को अधिक स्पष्ट कर दिया—

अविरलपतिताश्रु वपुः पाण्डु स्निग्धं तवोपनीतमिदम्।
शतधौतमाज्यमिव मे स्मरशर-दाहव्यथां हरति॥ ७१॥

नायिका का अविरलपतिताश्रुशाली, पाण्डु, स्निग्ध शरीर, नायक के शरीर का स्पर्श कर उसकी मदनदाह-व्यथा को उसी प्रकार हरता है जैसे सौ बार जल मे धोया घृत जीर्ण-ज्वरादि को। नायिका के शरीर की उपमा शतधौत आज्य से दी गयी है। उपमा कितनी सटीक और विषय को हृदयंगम कराने में कितनी समर्थ है—अलङ्काराभ्यासी ही समझ सकता है। शरीर का प्रत्येक विशेषण उपमान की भी विशेषता प्रकट करता हुआ दोनों के सादृश्य और साधर्म्य को अधिक स्पष्ट करके उपमा को प्रभावशाली बना रहा है।

उत्प्रेक्षा-द्वारा—कवि ने अप्रस्तुत वस्तु की अथवा व्यापार-विशेष की, उत्प्रेक्षा में योजना करते समय इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि यथासम्भव वे कवि-कल्पित नवीन न हों, बल्कि संभाव्य हों। कवि-कल्पित नवीन उत्प्रेक्षा में पाठक को भी समझने के लिए कल्पना से काम लेना पडता है और संभाव्य उत्प्रेक्षा अपेक्षाकृत सरलता से ग्राह्य होती है। संभाव्य उत्प्रेक्षा मे भी लोकप्रसिद्धि का विशेषरूप से आदर किया गया है—

जयति प्रियापदान्ते गरलग्रैवेयकः स्मरारातिः।
विषमविशिखे विशन्निव शरणं गलबद्धकरवालः॥

स्मराराति, गरलकण्ठभूषण शिव जी प्रिया के चरणों के समीप सर्वोत्कृष्ट हैं—जो मानों (कण्ठस्थ विष के कारण) गले में खड्ग बाँधकर कामदेव की शरण में प्रवेश कर रहे हैं। यह संभाव्य उत्प्रेक्षा पाठकों को जहाँ पूरे दृश्य का बोध कराने में समर्थ है, वहाँ लोक-प्रसिद्धि के कारण सरलता से ग्राह्य भी है। लोक मे सभी जानते हैं कि पराजित व्यक्ति विजयी शत्रु की शरण मे गले में शस्त्र बाँध कर जाता है।

इसी प्रकार—

श्रीकरपिहितं चक्षुः सुखयतु वः पुण्डरीकनयनस्य।
जघनमिवेक्षितुमानतमब्जनिभं नाभिसुषिरेण॥

इस पद्य में लक्ष्मी के कर से आच्छादित विष्णु का नेत्र नाभिरन्ध्र से मानों जघनदर्शन की लालसा से अब्जसदृश आ गया ऐसी उत्प्रेक्षा से जहाँ लक्ष्मी के जघन का आधिक्य तथा विष्णु-नेत्र की श्रीजघन-सौन्दर्य-दर्शनविषयक सुखलम्पटता ध्वनित हो रहा है वहाँ पाठक उत्प्रेक्षाजन्य अलौकिक आनन्द की अनुभूति के साथ उत्प्रेक्षा की लोक-प्रसिद्ध पृष्ठभूमि पर भी मुग्ध हो जाता है। लोक में ऐसा प्रायः देखा जाता है कि अत्यन्त लम्पट व्यक्ति, रूप बदल कर निभृत मार्ग से जाकर अपना कार्य सिद्ध करता है।

केवल दो उदाहरण देकर ही उत्प्रेक्षा के विषय से विराम ले रहा हूँ। कवि की उत्प्रेक्षा सर्वत्र लोक-प्रसिद्धि पर आधारित ही मिलेगी

प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त एवम् अर्थान्तरन्यास की योजना कवि के व्यावहारिक ज्ञान के कारण बड़ी मार्मिक है—

'जीर्यति कर्णे ममतां दुर्वादो नाल्पमपि विशति ।'

'रुधिरादानादधिकं दुनोति कर्णे क्वणन्मशकः ।'

'क्व परिचयः प्रकृतिकठिनानाम् ।'

'कः प्रकृतिमतिशेते ।'—इत्यादि ।

अन्योक्ति अलङ्कार में अप्रस्तुत-विधान करते समय कवि ने अपनी सूक्ष्म-बुद्धि से काम लिया है। नायिका के असदृश आचरण के कारण दुःखी नायक, नायिका की भर्त्सना करता है—इस प्रसंग को लेकर अप्रस्तुत तटस्थ वृक्ष तथा नदी की योजना प्रायः कवि किया करते है। इन्होंने भी ऐसी योजना की है किन्तु भाव में तीव्रता, अन्योक्ति में दृढता उत्पन्न करने के लिए, इस प्रसंग पर एक नदी-विशेष का निर्वाचन किया और वृक्ष-रूप में उसके तट पर उत्पन्न होने वाले 'निचुल' तीर-वृक्ष को लिया। वह नदी-विशेष 'कावेरी' है। अन्योक्ति के भाव का सम्पूर्ण सार इस 'कावेरी' शब्द में निहित है और तीरवृक्ष उसे 'कावेरि' सम्बोधिन कर अपना सारा गुबार निकाल कर स्वस्थ हो जाता है क्योंकि कावेरी के दो अर्थ दोनों पक्ष में अत्यन्त संगत हो जाते हैं। कावेरी-नदी पक्ष में—क जल वेरं शरीरमस्याः इति कावेरी। नायिकापक्ष में—कुत्सितं वेरं शरीरमस्याः इति कावेरी (वेश्या)। बस, इसी अर्थ ने पूरे श्लोक का भाव मानों व्यक्त कर दिया—

अयि कूलनिचुलमूलोच्छेदनदुःशीलवीचिवाचाले।

त्वकविघसपङ्कसारा न चिरात् कावेरि भवितासि ॥

इसी प्रकार कवि निकटवर्ती उपजीवियों को दुःखित करने वाली प्रस्तुत नायिका के स्थान पर अप्रस्तुत नदीसामान्य का विधान न कर नदीविशेष 'गोदावरी' का विधान करता है, जिससे 'गां ददाति' इस व्युत्पत्ति के बल से अन्योक्ति में दृढ़ता आ गयी—

मूलानि च निचुलानां हृदयानि च कुलवसतिकुलटानाम्।

मदिरमदिराप्रमत्ता गोदावरि किं विदारयसि ॥

भला गोदावरी (गोदान करने वाली, पुण्यकर्तव्यपरायणा) को ऐसा अकार्य शोभा देगा ? कवि की सूझ अप्रस्तुत-विधान में कितनी सफल है—अकथनीय है।

इसी प्रकार अत्यन्त प्रेम प्रकट करने वाली किन्तु एक में आसक्ति न रखने वाली नायिका के लिए त्रिमार्गगा (गङ्गा) का तथा नायक को प्रसन्न करने वाली सद्वंश में उत्पन्न नायिका के लिए नर्मदा (क्रीडा—केलि देने वाली) नदी का विधान कर कवि ने अपना नैपुण्य प्रकट किया है।

अधिक गहराई में न जाकर मै इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूं कि कवि ने चमत्कार के लिए नहीं, काव्य के भाव, वस्तु के रूप, गुण आदि की अभिव्यक्ति और अनुभूति के लिए ही अलङ्कार–योजना तथा अप्रस्तुत विधान किया है और उसमें उसे सफलता मिली है।

सप्तशती की परम्परा बताते समय कहा जा चुका है कि हालकृत प्राकृत गाथासप्तशती के अनुकरण पर गोवर्धनाचार्य ने आर्यासप्तशती की रचना की है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आर्यासप्तशती, गाथासप्तशती की अन्धानुकृति है। विषय अथवा भाव के साम्य पर आर्यासप्तशती के पद्यों को गाथासप्तशती अथवा पूर्वकृत किसी भी भाषा के मुक्तक-काव्य का अनुकरण सिद्ध करने का प्रयत्न करना अदूरदर्शिता है। मै गाथासप्तशती और आर्यास-

सप्तशती का तुलनात्मक विवेचन नहीं कर रहा हूँ, यह तो एक विस्तृत विषय अलग एक ग्रन्थ की अपेक्षा रखता है। मेरा अभिप्राय इतना ही है कि परवर्ती सभी कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों का अध्ययन करते हैं, अनुपलब्ध कृतियों के महत्त्वपूर्ण पद्य जन-श्रुति से उसे सुनने को मिलते रहते हैं अतः ये पद्यगतभाव कवि के मानस पटल पर अङ्कित हो जाते हैं और अनुकूल मनःस्थिति में रचना-वेला में वे कवि की वाणी द्वारा साकार होने को आतुर हो जाते हैं किन्तु इतने दिनों तक मानस में सँजोकर रखे जाने के कारण कवि को उन भावों से ऐसा मोह हो जाता है कि वह उन्हें ज्यों का त्यों मानस से निकालने में असन्तोष का अनुभव करता है। वे भाव कितने भी निर्मल हों, कवि की अन्तर्दृष्टि इतने दिनों में उनकी कमी अथवा कमजोरी का पता लगा ही लेती है, अतः कवि उन्हें परिष्कृत कर, सशक्त एवं स्वच्छतर बनाकर जगत के समक्ष प्रस्तुत करता है। कवि अपने कौशल से उन्हें नवीन रूप दे देता है और अन्य बड़े-बड़े पारखी भी उन्हें पहिचानने में असमर्थ रह जाते हैं और वे भाव उसी कवि के मौलिक रूप में ही जाते हैं फिर उन्हें अपहृत बताना दोष नहीं तो क्या है?

गाथा-सप्तशती के दो-एक भावों का उदाहरण देकर सिद्ध किया जा सकता है कि आर्यासप्तशती के कवि ने इन्हें अवश्य अपनाया, और क्यों न अपनाता? सुन्दर वस्तु पाने पर कौन फेंक देता है? उसे अपनाकर सुन्दरतर, सुन्दरतम बना देता है।

गाथासप्तशती में प्रथम छन्द शिवविषयक नमस्कारात्मक मङ्गल-परक है। आर्यासप्तशती के कवि ने भी चाहे इसी अनुकरण पर अथवा अन्य कारण-विशेष से शिवविषयक मङ्गल श्लोक प्रस्तुत किया है किन्तु परवर्ती होने के कारण इस कवि ने भाव का परिष्कारकर शिव को परिष्कृत, मङ्गलप्रदस्थिति में अवस्थित चित्रित कर अपनी विश्लेषणात्मक बुद्धि का परिचय दिया है।

गाथासप्तशती का मङ्गल श्लोक इस प्रकार है—

पसुवइणो रोसारुणपडिमासंकंतगोरिमुहअन्दं।
गहिअग्घपंकअं विअ संझासलिलंजलिं णमह॥
[पशुपते रोपारुणप्रतिमासंक्रान्तगौरीमुखचन्द्रम्।
गृहीतार्घपङ्कजमिव संध्यासलिलाञ्जलिं नमत॥] १॥

इस पद्य का भाव चिरकाल तक गोवर्धनाचार्य के मानस में पड़ा रहा होगा और कभी शिव की सलिलाञ्जलि के विषय में लिखने की स्थिति में कवि को पाकर उससे साकार रूप पाने के लिए मचल पड़ा होगा तो सर्वप्रथम कवि की दृष्टि उसके इस रूप पर गयी होगी कि क्या इस छन्द में शिव जी मङ्गलप्रद अवस्था में हैं? क्या उन्हें अपने घर के बखेड़े से अवकाश है कि प्रार्थी के मङ्गल की ओर शीघ्र ध्यान दे सकें? उसने सोचा होगा जिनकी सन्ध्या-सलिलाञ्जलि में चण्डी का रोषारुण मुखचन्द्र प्रत्यक्ष सङ्क्रान्त हो रहा है और उस रोषारुण मुखचन्द्र के प्रतिबिम्ब को जो देख रहा है वह इस समय स्वयम् ऐसी अवस्थिति में है कि संभवतः हमारी प्रणति की स्वीकृति भी न करे, मङ्गल के लिए प्रयत्नशील होना तो दूर रहा। भामिनी के रोषारुणमुख को देखकर उसके रोष को दूर करने की चिन्ता तत्काल उत्पन्न होना मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक है तो फिर क्या पशुपति को यह चिन्ता ग्रस्त न किये होगी? उसने मङ्गल श्लोक के स्थान पर इसे ज्यों-का-त्यों रखने में अपने विचार से

अनुपयुक्तता का अनुभव किया होगा और उसने शिव-शिवा का अनुकूल प्रफुल्ल जीवन कल्पित कर उनकी मङ्गलप्रद अवस्थिति का चित्रण कर मङ्गलश्लोक प्रस्तुत किया—

पाणिग्रहे पुलकितं वपुरैशं भूतिभूषितं जयति ।
अङ्कुरित इव मनोभूर्यस्मिन् भस्मावशेषोऽपि ॥ १ ॥

इसमें शिव जी का भूतिभूषित शरीर (मानवती नहीं, परमानुरक्त) प्रिया के पाणिग्रह-स्पर्श-जन्य सुख से पुलकित दिखाया गया है जिसमें भस्मावशेष भी कामदेव मानों अङ्कुरित हो उठा है । स्पष्ट है—इस मङ्गलमय अवस्थिति में अवस्थित शिव में मङ्गलविधायिनी स्फूर्ति वर्तमान होने के कारण उक्त श्लोक मङ्गल-स्थान के लिए नितान्त उपयुक्त है ।

आगे चलकर कवि ने गाथासप्तशती के उक्त प्रथम मङ्गलश्लोकगत सन्ध्यासलिलाञ्जलि को अपनी कल्पना से नवीन संशोधित रूप में दो श्लोकों में चित्रित किया है जिसमें पार्वती के रोषारुणमुख की योजना हटा दी गयी है, उसके स्थान पर नवीन सृष्टि की गयी है । कवि ने सोचा कि शिवा की उपस्थिति में शिव का ध्यान सन्ध्यादेवी के चिन्तन में लगा रहे, अतएव शिवा का मुख रोष से अरुण हो जाय—ऐसा चित्रण जो गाथासप्तशती के प्रथम मङ्गल श्लोक मे किया गया है, उसमें परिस्थिति को देखते हुए मानना पड़ेगा कि पार्वती जी के सौभाग्य का ह्रास, पार्वती में शिव की आसक्ति का अभाव स्पष्ट निवेदित किया गया है । प्रिया की सन्निधि में प्रिया का ध्यान उससे हटकर अलग कहीं लग सके तो प्रिया की हीनता ही द्योतित होगी अतः गोवर्धनाचार्य ने अपनी कल्पना से उसमें नवीन रंग भर एक विपरीत किन्तु मनोमोहक एवम् पार्वती की गौरववर्द्धिनी परिस्थिति चित्रित कर दिया—

(१) शिव जी सन्ध्या-वन्दन में तत्पर हुए, किन्तु उनका मन गौरी के मुख की शोभा में ही लगा हुआ है । उधर कङ्कणरूपफणी सन्ध्यासलिलाञ्जलि को पी डाल रहा है किन्तु गौरीमुखावलोकनमग्न शिव को इसका पता नहीं, अतएव प्रियाविषयक शिव की इस आसक्ति को देखकर विजया (गौरी की सखी) शिव का परिहास कर रही है ।

(२) शिव की सलिलाञ्जलि में प्रिया का मुख प्रतिविम्बित हो रहा है, उसे देखने से शिव को सात्त्विक उत्कम्प हो गया जिससे शिथिल कर से सारा जल गिरजाने के कारण अञ्जलि रिक्त हो गयी किन्तु तत्काल ही उनके सात्त्विकभावरूप स्वेद से अकस्मात् पुनः पूर्ण हो उठी—

सन्ध्यासलिलाञ्जलिमपि कङ्कणफणि-पीयमानमविजानन् ।
गौरीमुखार्पितमना विजयाहसितः शिवो जयति ॥ ६ ॥
प्रतिविम्बितगौरीमुख-विलोकनोत्कम्पशिथिलकरगलितः ।
स्वेदभरपूर्यमाणः शंभोः सलिलाञ्जलिर्जयति ॥ ७ ॥

गाथासप्तशती की सन्ध्यासलिलाञ्जलि और आर्यासप्तशती की इस सन्ध्यासलिलाञ्जलि के रूप में कितना अन्तर है, किसमें कितनी उत्कृष्टता है,—इसका निर्णय पाठक स्वयं करें ।

इस प्रकार सकेतित उदाहरणों को देखकर इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि आर्यासप्तशती में गोवर्धनाचार्य की मौलिकता सर्वत्र विद्यमान है ।

विषय-सूची



॥ श्रीः ॥

आर्यासप्तशती

'विभा' हिन्दीव्याख्योपेता

ग्रन्थारम्भवज्या

पाणिग्रहे पुलकितं वपुरैशं भूतिभूषितं जयति ।
अङ्कुरित इव मनोभूर्यस्मिन्भस्मावशेषोऽपि ॥ १ ॥

कृपया यस्य मनीषिका विहता भवति न जातु ।
शिवसूनुर्वरदायकः सततं शं विदधातु ॥
रघुकुलकुमुदसितांशवे स्वजनसततसुखदाय ।
नमो जानकीजानये रावणकरिसिंहाय ॥
आर्यासप्तशतीमहं विभयान्वितां करोमि ।
सुकविश्रीगोवर्धनं भूयो भूयो नौमि ॥

ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति तथा व्याख्याता एवं श्रोताओं के कल्याण की कामना से कवि मङ्गलाचरणरूप प्रस्तुत पद्य में भगवान् शिव की सर्वोत्कृष्टता कारण सहित अभिव्यक्त कर रहा है, इसमें कवि की प्रणति स्वतःपरिलक्षित हो रही है।

पदार्थ—भूतिभूषितम् = भूत्या भूषितम् । भस्म से अलङ्कृत । पाणिग्रहे = पाणिग्रहण करने पर । पुलकितम् = रोमाञ्चित । यस्मिन् = जिसमें । भस्मावशेषः = भस्म एव अवशेषः यस्य सः । भस्ममात्र जिसका (चिह्न) अवशेष रह गया है । अपि = भी । मनोभूः = मनसि भवति इति मनोभूः । कामदेव । अङ्कुरितः इव = अङ्कुर युक्त सा । ऐशम् = ईशस्य इदम् इति । शिवजी का । वपुः = शरीरम् । शरीर । जयति = सर्वोत्कर्षेण वर्तते । सर्वोत्कृष्ट है ।

सरलार्थ—भस्म से अलङ्कृत तथा (अत्यन्त अनुरक्त देवी पार्वती जी के) पाणिग्रहण से पुलकित, शिव जी का शरीर सर्वोत्कृष्ट है, जिसमें कामदेव भस्म-मात्र अवशेष होते हुए भी अङ्कुरित सा हो उठा—पुनर्जीवन सा पा गया ॥

(भस्मसंसर्गि रोमाञ्च में अङ्कुर की उत्प्रेक्षा की जाने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। ग्रन्थ के सभी पद्य आर्या छन्द में हैं। इसका लक्षण—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या॥

आर्या छन्द में प्रथम और तृतीय चरण में बारह-बारह मात्रायें, द्वितीय में अठारह तथा चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्रायें होती हैं।

मङ्गलाचरण रूप पद्यों का श्रृंगारपरक होना ही इस बात का द्योतक है कि यह ग्रन्थ आद्योपान्त श्रृंगाररसप्रधान है।

कवि का शब्द-कौशल नितान्त अपूर्व है। स्थाने प्रयुक्त प्रत्येक पद अत्यन्त उपयोगी है। देवी पार्वती जी का पाणि-पल्लव स्पर्शमात्र से शिव जी के 'भूति-भूषित' शरीर को भी सर्वोत्कृष्ट बना देने की क्षमता रखता है। उसमें अश्रुतपूर्व अमृत निहित है जो पीने पर नहीं, अपने स्पर्शमात्र से भस्मीभूत कामदेव को पुनरुज्जीवन प्रदान करता है)॥ १॥

कवि शिवविषयक द्वितीय मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

मा वम संवृणु विषमिदमिति सातङ्कं पितामहेनोक्तः।
प्रातर्जयति सलज्जः कज्जलमलिनाधरः शम्भुः॥ २॥

पदार्थ—इदं विषम्=इस विष को। मा वम=(मुख से) बाहर मत निकालो। संवृणु=(मुख के भीतर) रोक लो, छिपालो। इति=ऐसा। सातङ्कम्=घबराहट के साथ। पितामहेन=ब्रह्मा जी से। प्रातः उक्तः=सवेरे-सवेरे कहे गये। सलज्जः=लज्जया सह वर्तते इति। लज्जायुक्त। कज्जलमलिनाधरः=कज्जलेन मलिनः अधरः यस्य सः। जिनका अधर कज्जल से मलिन है। शंभुः=शिवः। शिव जी। जयति=सर्वोत्कृष्ट हैं।

सरलार्थ—"अरे! इस (जगद्विनाशक) विष को (मुख से) बाहर मत निकालो, (शीघ्र मुख के) भीतर कर लो।" (कज्जल को भ्रमवश विष समझ) इस प्रकार ब्रह्मा जी के द्वारा सवेरे-सवेरे कहे गये (अत एव) लज्जित (रात में देवी जी के नेत्रों को चूमते समय लगे) कज्जल से मलिन अधर वाले, [पितामह को संत्रस्त करने वाले (कज्जल) विष को निगलने से अथवा अत्यन्तानुरक्त कामिनी के रतिचिह्नों से सुशोभित होने से] शिवजी सर्वोत्कृष्ट हैं।

(कज्जल और विष के रंग की समानता के कारण कज्जल को विष समझने का कथन होने से भ्रान्तिमान् अलङ्कार है)॥ २॥

कवि शिवविषयक तृतीय मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

जयति प्रियापदान्ते गरलग्रैवेयकः स्मराराति: ।
विषमविशिखे विशन्निव शरणं गलबद्धकरवालः ॥ ३ ॥

पदार्थ—गरलग्रैवेयकः = गरलं ग्रैवेयकम् (कण्ठभूषणम्) यस्य सः । गरल जिनका कण्ठभूषण है । स्मराराति: = स्मरः (कामदेवः) अरातिः (पीडाकारकः शत्रुः) यस्य सः (शिवः) कामदेव जिनका शत्रु है । प्रियापदान्ते = प्रियायाः पदयोः अन्ते (प्रियाचरणसमीपे) । प्रिया पार्वती के चरणो के समीप । गलबद्धकरवालः = गले बद्धः करवालः (खड्गः) येन सः । गले में जिसने खड्ग बाँध रक्खा है । विषमविशिखे = विषमः (पीडाकारकः, असह्यः) विशिखः (बाणः) यस्य तस्मिन् (कामदेवे) । जिसका बाण अत्यन्त पीडाकारक है अर्थात् कामदेव । शरणं विशन् इव = शरणागत होता हुआ सा । जयति= सर्वोत्कृष्ट हैं ।

सरलार्थ—कामारि (अतएव कहीं सुख से न रह पाने वाले), गले में भूषण के रूप में विषधारण किये (अतएव जीवन-निरपेक्ष), प्रिया पार्वती के चरणों में (मनाने के लिये) अवस्थित, मानों गले में (विष-रूप) खड्ग बाँधे, कामदेव की शरण में प्रवेश करते;-शंकर जी सर्वोत्कृष्ट है ।

(पार्वती जी के पदों के समीप शंकर जी की अवस्थिति में, कामदेव की शरण में प्रवेश की उत्प्रेक्षा की गई है अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । इस स्थल की उत्प्रेक्षा बहुत दृढ बन पड़ी है । लोक में भी विवश एवम् पराजित का गले में शस्त्र बाँध कर प्रबल शत्रु की शरण में जाना प्रसिद्ध है) ॥ ३ ॥

कवि शिवविषयक चतुर्थ मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

जयति ललाटकटाक्षः शशिमौलेः पक्ष्मलः प्रियाप्रणतौ ।
धनुषि स्मरेण निहितः सकण्टकः केतकेषुरिव ॥ ४ ॥

पदार्थ—शशिमौलेः = शशी मौलौ यस्य तस्य (शिवस्य) । जिनके सिर पर चन्द्रमा है । पक्ष्मलः = सुन्दर बरौनियों वाला । ललाटकटाक्षः=ललाटस्थ-तृतीयवक्रनेत्रम् । ललाट के नेत्रकी तिरछी चितवन । प्रियाप्रणतौ = प्रिया के चरणो पर झुकने के समय । स्मरेण = कामदेवेन । कामदेव के द्वारा । सकण्टकः=कण्टकैः सह वर्तते इति । कण्टकयुतः । काँटों समेत । धनुषि निहितः = धनुष पर चढाया हुआ । केतकेषुः = केतकरूपः इषुः (बाणः) । केतक (केवड़ा) पुष्प का बाण । इव=सा । जयति = सर्वोत्कृष्ट है ।

सरलार्थ—(चाटुवचनादि उपायों से मानापनोदन न हो सकने पर) प्रिया पार्वती के चरणों में नतमस्तक शंकर जी का पक्ष्मल ललाटनेत्र, कामदेव द्वारा धनुष पर चढाये गये काँटेदार (चुभकर फिर न निकल सकने वाला) केतक पुष्प का अस्त्र-सा [प्रिया का मान अविलम्ब भङ्ग करने में समर्थ होने के कारण] सर्वोत्कृष्ट है।

(शंकर जी के ललाटकटाक्ष में केतक-पुष्पास्त्र की उत्प्रेक्षा होने से उत्प्रेक्षा-लङ्कार है) ॥ ४ ॥

कवि शिवविषयक पञ्चम मङ्गलश्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

जयति जटाकिंजल्कं गङ्गामधु मुण्डवलयवीजमयम् ।
गलगरलपङ्कसम्भवमम्भोरुहमाननं शम्भोः ॥ ५ ॥

पदार्थ—जटाकिंजल्कम्=जटाः एव किंजल्कानि यत्र तत् । जिसमें जटा ही केसर है। गङ्गामधु=गङ्गा एव मधु यत्र तत् । जिसमें गङ्गा ही मकरन्द है। मुण्डवलयवीजमयम् = मुण्डवलयमेव वीजानि, तेषां प्राचुर्यं यत्र तत् । मुण्ड-मालरूप बीजमातृका (कमलगट्टा) है जिसमें । गलगरलपङ्कसंभवम् = गलस्य गरलमेव पङ्कम्; तदेव संभवः (उपत्तिकारणम्) यस्य तत् । गले का गरल रूप पङ्क ही जिसका उत्पत्तिकारण है। शम्भोः = शिवस्य । शिव का । अम्भोरुहम् आननम्=मुखरूप कमल । जयति=सर्वोत्कृष्ट है।

सरलार्थ—शंकर जी का मुखकमल सर्वोत्कृष्ट है; जिसमें जटा ही केसर, गङ्गा ही मधु (मकरन्द), मुण्डमाल ही बीजमातृका (कमलगट्टा) तथा कण्ठस्थ विषरूप पङ्क ही जिसका उत्पत्ति-कारण अथवा उत्पत्तिस्थान है। साङ्गरूपक अलङ्कार ॥ ५ ॥

कवि शिवविषयक छठाँ मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

सन्ध्यासलिलाञ्जलिमपि कङ्कणफणिपीयमानमविजानन् ।
गौरीमुखार्पितमना विजयाहसितः शिवो जयति ॥ ६ ॥

पदार्थ—कङ्कणफणिपीयमानम्=कङ्कणफणिना पीयमानम् । कङ्कणरूप बाँधे गये सर्पद्वारा पिये जाते हुये (जल को) । अपि=भी । सन्ध्यासलिलाञ्जलिम्= सन्ध्यायाः अञ्जलेः सलिलम् इति । सन्ध्योपासन की जलाञ्जलि । अविजानन्= न जान पाते हुए । विजयाहसितः=विजया तन्नाम्नी गौरीसखी, तया हसितः । विजया नाम्नी गौरी की सखी द्वारा हँसे गये । शिवः जयति = शिव जी सर्वोत्कृष्ट हैं ॥

सरलार्थ—[परम सुन्दरी प्रिया] गौरी के मुख की शोभा देखने में दत्त-चित्त होने के कारण सन्ध्योपासन के समय [आँखों के सामने ही] कंकणरूप बाँधे गये सर्पद्वारा पिये जाते हुये भी अञ्जलिस्थ जल को न जान पाने वाले (अतः) विजया (गौरीसखी) द्वारा हँसे गये शिव जी सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ६ ॥

कवि शिवविषयक सप्तम मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

प्रतिबिम्बितगौरीमुखविलोकनोत्कम्पशिथिलकरगलितः ।
स्वेदभरपूर्यमाणः शम्भोः सलिलाञ्जलिर्जयति ॥ ७ ॥

पदार्थ—प्रतिबिम्बितगौरीमुखविलोकनोत्कम्पशिथिलकरगलितः = प्रतिबिम्बितस्य, गौर्याः मुखस्य विलोकनेन उत्कम्पात् शिथिलेन करेण गलितः प्रतिबिम्बित, गौरी के मुख को देखने से संजात कम्पन के कारण हाथो के शिथिल हो जाने से गिर गया । स्वेदभरपूर्यमाणः = स्वेदभरेण (स्वेदाधिक्येन) पूर्यमाणः । स्वेद की बूँदो से पूर्ण होता हुआ । शंभोः = शिवस्य । शिव का । सलिलाञ्जलिः = जल से पूर्ण अञ्जलि । जयति = सर्वोत्कृष्ट है ।

सरलार्थ—शंकर जी की सलिलाञ्जलि सर्वोत्कृष्ट है; जिसमें प्रतिबिम्बित गौरी का मुख देखने से संजात कम्पनरूप सात्त्विकभाव के कारण हाथ शिथिल हो गये और सारा जल गिर गया (परन्तु तत्काल ही) स्वेदरूप सात्त्विक भाव के आधिक्य से अञ्जलि पुनः (जल से) सम्पन्न भी हो गयी ॥ ७ ॥

कवि शिवविषयक आठवाँ मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

प्रणयकुपितप्रियापदलाक्षासन्ध्यानुबन्धमधुरेन्दुः ।
तद्वलयकनकनिकषग्रावग्रीवः शिवो जयति ॥ ८ ॥

पदार्थ—प्रणयकुपितप्रियापदलाक्षासन्ध्यानुबन्धमधुरेन्दुः = प्रणयेन कुपितायाः प्रियायाः पदयोः लाक्षा एव सन्ध्या; तस्याः अनुबन्धेन (सङ्गेन) मधुरः (सुन्दरः) इन्दुः यस्य सः । प्रणय से कुपित प्रिया पार्वती के पदो की लाक्षा (महावर, पैरो मे लगाया जाने वाला लाल रंग) रूप सन्ध्या के सङ्ग से जिनका चन्द्रमा सुन्दर हो गया । तद्वलयकनकनिकषग्रावग्रीवः = तस्याः (पार्वत्याः) वलयकनकस्य निकषग्रावा ग्रीवा यस्य सः । जिसका कण्ठ पार्वती के कङ्कणसुवर्ण का कसौटी पत्थर है । शिवः जयति = शिव जी सर्वोत्कृष्ट हैं ।

सरलार्थ—प्रणय से (सचमुच नहीं) कुपित प्रिया के (मानापनोदनार्थ चरणों में मस्तक रख देने से) चरणों की लाक्षारूप सन्ध्या के सङ्ग से जिनका (भालस्थ) चन्द्रमा सुशोभित हो उठा और (इस प्रकार मान दूर कर प्रसन्न

पार्वती जी द्वारा कण्ठपुरःसर आलिङ्गन किये जाने पर) जिनकी ग्रीवा पार्वती जी के कंकण सुवर्ण की कसौटी (पत्थर) रूप सुशोभित हो उठी; ऐसे शङ्कर जी सर्वोत्कृष्ट हैं ॥

(प्रियापदलाक्षा में सन्ध्या का, तथा ग्रीवा में निकषग्रावा का आरोप होने से रूपक अलंकार है) ॥ ८ ॥

कवि शिवविषयक नवम मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

पूर्णनखेन्दुर्द्विगुणितमञ्जीरा प्रेमशृङ्खला जयति ।
हरशशिलेखा गौरीचरणाङ्गुलिमध्यगुल्फेषु ॥ ९ ॥

पदार्थ—गौरीचरणाङ्गुलिमध्यगुल्फेषु=पार्वती जी के चरणो की अँगुलियो, (चरणो के) मध्यभाग और गुल्फ (एड़ी के ऊपर की गाँठ, टखना) में । पूर्णनखेन्दुः = पूर्णः नखेन्दुः यया सा । जिससे नखचन्द्र (जो अर्ध था) पूर्ण हो गया । द्विगुणितमञ्जीरा=द्विगुणितम् (सूत्रद्वयेन संयुक्तम्) मञ्जीरं यया सा । जिससे नूपुर दोसूत्रो से युक्त हो गया । प्रेमशृङ्खला=प्रेम्णः शृङ्खला । प्रेम को बाँध रखने की वेड़ी । हरशशिलेखा=हरस्य शशिलेखा । शिव की चन्द्र रेखा । जयति=सर्वोत्कृष्ट है ।

सरलार्थ—(मानिनी पार्वती जी का मान दूर करने के उद्देश्य से) चरणो पर (रक्खे गये) शिव जी के मस्तक की चन्द्ररेखा सर्वोत्कृष्ट है । क्योकि इसने (सर्वप्रथम चरणों के अग्रभाग पर पहुँच कर) अंगुलियों के नखचन्द्र (जो अर्धचन्द्राकार थे) को पूर्ण (चन्द्र) बना दिया । (क्रमशः और आगे बढ़ने पर) चरणों के मध्यभाग में नूपुर को (जो अब तक एक सूत्र का था) द्विगुणित (दो सूत्रों से युक्त) कर दिया । (और आगे बढ़ने पर) गुल्फ प्रदेश (टखनों) में (अपने प्रभाव से मान को सदा के लिये दूर कर प्रेम की स्थिति को सुदृढ़ बनाकर) प्रेम की (वह अब भाग न सके, पार्वती में ही स्थिर रहे) वेड़ी बन गयी ॥ ९ ॥

कवि विष्णुविषयक आशीर्वादात्मक मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

श्रीकरपिहितं चक्षुः सुखयतु वः पुण्डरीकनयनस्य ।
जघनमिवेक्षितुमागतमञ्जनिभं नाभिसुषिरेण ॥ १० ॥

पदार्थ—श्रीकरपिहितम्—श्रियः (लक्ष्म्याः) करेण पिहितम् (आच्छादितम्) लक्ष्मी जी के हाथ से ढका हुआ । नाभिसुषिरेण = नाभिच्छिद्रेण नाभि के छिद्रसे । जघनम्—जघनप्रदेश को । ईक्षितुम् इव = द्रष्टुमिव—मानो

देखने को। आगतम्—आया हुआ। पुण्डरीकनयनस्य=पुण्डरीके (कमले) इव नयने यस्य तस्य (विष्णोः) जिनके नेत्र कमल के समान हैं अर्थात् विष्णु का। चक्षुः-नेत्रम् वः=युष्मान् तुम लोगो को। सुखयतु=सुखिनः करोतु, सुख प्रदान करे॥

सरलार्थ—(रति के समय वसन-विहीन होने के कारण लज्जा-वश) लक्ष्मी जी के हाथ से ढक लिया गया, (परन्तु उसके बाद ही) नाभिरन्ध्र के निभृतमार्ग से (लक्ष्मी जी के) जघनदर्शन की लालसा से मानो आया हुआ, कमलसदृश, विष्णु भगवान् का नेत्र तुम लोगो को सुख प्रदान करे (जो नाभिकमल की भ्रान्ति से, श्रीकर द्वारा पुनः पिहित नहीं हुआ और निर्बाध लक्ष्मी जी के जघन-दर्शन का सुख प्राप्त कर सका वह दूसरों को भी अवश्य सुख प्रदान कर सकेगा)।

("जघनमीक्षितुमागतमिव" मे उत्प्रेक्षा अलंकार है)॥ १०॥

कवि विष्णुविषयक द्वितीय मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

श्यामं श्रीकुचकुङ्कुमपिञ्जरितमुरो मुरद्विपो जयति।
दिनमुखनभ इव कौस्तुभविभाकरो यद्विभूषयति॥ ११॥

पदार्थ—श्यामम्—श्यामवर्ण। श्रीकुचकुङ्कुमपिञ्जरितम्—श्रियः (लक्ष्म्याः) कुचयोः स्तनयोः—दोनो स्तनो के-कुङ्कुमेन, अङ्गरागविशेषेण-अङ्गरागविशेष कुङ्कुम से, पिञ्जरितम्-भूरे वर्ण का। मुरद्विपः=मुरारेः विष्णोः-मुरारि विष्णु का। उरः जयति—वक्षःस्थल सर्वोत्कृष्ट है। यत्—जिसको। कौस्तुभविभाकरः—(१) कौस्तुभरूप सूर्य (२) कौस्तुभ के समान सूर्य। दिनमुखनभः इव—प्रातःकालीन आकाश को जैसे। विभूषयति—विभूषित कर रहा है।

सरलार्थ—(वास्तव में) श्याम वर्ण (परन्तु) लक्ष्मी जी के (दृढालिंगन से) कुचो पर लिप्त कुंकुम के लग जाने से भूरे वर्ण का, विष्णु भगवान् का वक्षःस्थल सर्वोत्कृष्ट है जिसे कौस्तुभमणिरूप सूर्य प्रातःकालीन आकाश जैसा सुशोभित कर रहा है। ("कौस्तुभः एव विभाकरः" में रूपक तथा "विभाकरः दिनमुखनभः इव" में उपमा अलंकार है)॥ ११॥

कवि विष्णुविषयक तृतीयमंगलश्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

प्रतिबिम्बितप्रियातनु सकौस्तुभं जयति मधुभिदो वक्षः।
पुरुषायितमभ्यस्यति लक्ष्मीर्यद्वीक्ष्य मुकुरमिव॥ १२॥

पदार्थ—सकौस्तुभम्—कौस्तुभेन सह वर्तते-कौस्तुभमणि से युक्त प्रतिबिम्बित-

प्रियातनु-प्रतिबिम्बिता प्रियायाः (लक्ष्म्याः) तनुः यत्र तत्—प्रिया लक्ष्मी का शरीर जिसमें प्रतिबिम्बित हो रहा है । मधुभिदः—मधुनामक दैत्य को मारने वाले (विष्णु) का । वक्षः जयति–सर्वोत्कृष्ट है। यत्–जिसको । मुकुरम् इव–दर्पण सा । वीक्ष्य–देख कर । पुरुषायितम् अभ्यस्यति–विपरीत रति का अभ्यास कर रही हैं ।

सरलार्थ—भगवान् विष्णु का कौस्तुभमणियुक्त वह वक्षःस्थल सर्वोत्कृष्ट है, जिसमें प्रिया लक्ष्मी का शरीर प्रतिबिम्बित होता है और जिसे दर्पण के समान मानो देख-देख कर लक्ष्मी जी विपरीत रति का अभ्यास करती हैं ।

(वक्षःस्थल में प्रिया के शरीर के प्रतिबिम्बित होने से दर्पण देख कर विपरीतरति के अभ्यास करने की उत्प्रेक्षा की गई है अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है) ॥ १२ ॥

कवि विष्णु विषयक चतुर्थ मंगल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

केलिचलाङ्गुलिलम्भितलक्ष्मीनाभिर्मुरद्विषश्चरणः ।
स जयति येन कृता श्रीरनुरूपा पद्मनाभस्य ॥ १३ ॥

पदार्थ—केलिचलाङ्गुलिलम्भितलक्ष्मीनाभिः–केल्या (कौतुकेन) चलाङ्गुलिभिः–चंचल अँगुलियों से, लम्भिता, प्राप्ता, स्पृष्टा वा, लक्ष्म्याः नाभिः येन सः—जिसने कौतुकवश चंचल अँगुलियो से लक्ष्मी की नाभि को स्पर्श कर दिया । येन–जिससे । श्रीः । पद्मनाभस्य–पद्मं नाभौ यस्य तस्य (विष्णोः)—जिनकी नाभि में कमल है उस (विष्णु) के । अनुरूपा कृता—अनुरूप बना दी गई । सः । मुरद्विषः—मुरारेः विष्णोः–मुरारि विष्णु का । चरणः जयति ॥

सरलार्थ—(भगवान् विष्णु के चरणो की सेवा करते समय) कौतुकवश चरण की चंचल अँगुलियो से लक्ष्मी जी की नाभि का स्पर्श हो जाने से (नाभि में चरणरूप पद्म का अस्तित्व हो जाने से) लक्ष्मी भी पद्मनाभ भगवान् विष्णु के अनुरूप हो गई । (अब पति-पत्नी दोनों पद्मनाभ रूप में समान लक्षणोपेत परस्पर उपयुक्त हो गये) । ऐसा (असाध्य कार्य करने वाला) भगवान् विष्णु का चरण सर्वोत्कृष्ट है ॥ १३ ॥

कवि विष्णुविषयक आशीर्वादात्मक पञ्चम मंगलश्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

रोमावली मुरारेः श्रीवत्सनिषेविताग्रभागा वः ।
उन्नालनाभिनलिनच्छायेवोत्तापमपहरतु ॥ १४ ॥

पदार्थ—श्रीवत्सनिषेविताग्रभागा—श्रीवत्सेन निषेवितः अग्रभागः यस्याः सा—जिसका अग्रभाग श्रीवत्स (भृगु का चरण-चिह्न) से युक्त है । मुरारेः

विष्णोः—विष्णु की। रोमावली—रोमों की पंक्ति जो पेट के बीचो-बीच नाभि से ऊपर की ओर जाती है। उन्नालनाभिनलिनच्छाया इव—ऊर्ध्वं नालं यस्य तस्य नाभिनलिनस्य छाया इव—जिसकी डंडी ऊपर को है उस नाभिकमल की छाया सी। वः—युष्माकम्—तुम सब का। उत्तापम्—महासन्ताप को। अपहरतु—दूर करे॥

सरलार्थ—भगवान् विष्णु की रोमावली, जिसका अग्रभाग भृगु के चरण-चिह्न से युक्त है अतएव ऊर्ध्वनालनाभिकमल की मानो छाया है, (नाल की छाया रोमावली और नलिन की छाया श्रीवत्स) आप सब के महासन्ताप को दूर करे॥

(रोमावली में नालच्छाया और श्रीवत्स में नलिनच्छाया की उत्प्रेक्षा होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है)॥ १४॥

कवि भगवान् हयग्रीवविषयक मंगल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

आदाय सप्ततन्त्रीचितां विपञ्चीमिव त्रयीं गायन्।
मधुरं तुरङ्गवदनोचितं हरिर्जयति हयमूर्धा॥ १५॥

पदार्थ—सप्ततन्त्रीचिताम् (१) सप्तानां तन्त्राणां समाहारः सप्ततन्त्री, तया चिताम् (व्याप्ताम्, प्रतिपादनपराम्)। अग्निष्टोमादि सात यागों का प्रतिपादन करने वाली। (२) सप्तभिः तन्त्रीभिः चिताम्—सात तारों से युक्त। त्रयीम्—ऋक्, यजुः और साम, इन तीनों वेदों के समूह को। विपञ्चीम् इव—वीणा की भाँति। आदाय—लेकर। मधुरम्। तुरंगवदनोचितम्—तुरगवदनानां (गन्धर्वाणाम्) उचितम्—गन्धर्वों के योग्य। गायन्—गाते हुये। हयमूर्धा—हयस्य (अश्वस्य) मूर्धा इव मूर्धा यस्य सः (हयग्रीवः) जिसका सिर घोड़े का सा है। हरिः जयति॥

सरलार्थ—सप्तयज्ञ का प्रतिपादन करने वाली वेदत्रयी को सात तारों वाली वीणा के समान लेकर गन्धर्वों की भाँति मधुर गाते हुए हयग्रीव हरि सर्वोत्कृष्ट है। (सप्ततन्त्रीचिताम् में श्लेष अलंकार है)॥ १५॥

कवि भगवान् महावराहविषयक मंगल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

स जयति महावराहो जलनिधिजठरे चिरं निमग्नापि।
येनान्त्रैरिव सह फणिगणैर्बलादुद्धृता धरणी॥ १६॥

पदार्थ—येन—जिसके द्वारा। जलनिधिजठरे—समुद्राभ्यन्तरे—समुद्र के उदर में। चिरम्—बहुत समय तक। निमग्ना अपि—डूबी हुई भी। अन्त्रैः

इव फणिगणैः सह—सर्पों का समूह जो समुद्र के पेट की आँत—से हैं, तत्समेत। बलात्—बलपूर्वक। धरणी उद्धृता—पृथ्वी ऊपर निकाली गयी। सः महावराहः जयति—वे महावराह सर्वोत्कृष्ट हैं॥

सरलार्थ—जिन्होंने समुद्र के उदर में दीर्घकाल तक निमग्न भी (अतएव जिसे जल्दी निकाल लेना असंभव था) पृथ्वी को आँतरूप सर्प-समूह-सहित बल-पूर्वक समुद्र से बाहर निकाला समुद्र के पेट से पृथ्वी को निकालते समय वेगवशात् उसकी आँतें—(सर्पसमूह) भी साथ ही बाहर निकल आयीं (ऐसा महा असाध्य कार्य करने वाले) वे महावराह भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं॥१६॥

कवि भगवान् शेषविषयक मंगलश्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

ब्रह्माण्डकुम्भकारं भुजगाकारं जनार्दनं नौमि।
स्फारे यत्फणचक्रे धरा शरावश्रियं वहति॥ १७॥

पदार्थ—ब्रह्माण्डकुम्भकारम्—ब्रह्माण्डमेव कुम्भः तं करोति इति तम्, ब्रह्माण्डरूप कुम्भ के रचने वाले। भुजगाकारम्—भुजगस्य आकारः इव आकारः यस्य तम्—शेषनाग के रूप में सर्पाकार। जनार्दनम्—हरिम्—हरि को। नौमि—स्तुति करता हूँ। स्फारे—विस्तृते। यत्फणचक्रे—यस्य फणा समूहे—जिसके फण-समूह पर। धरा—पृथ्वी। शरावश्रियं वहति—शराव (मिट्टी का लघुपात्र विशेष) की शोभा को प्राप्त करती है॥

सरलार्थ—(मैं गोवर्धनाचार्य) ब्रह्माण्डरूप कुम्भ के रचने वाले जनार्दन शेष नाग भगवान् की स्तुति करता हूँ जिनके विशाल एवं विस्तृत फणसमूह पर पृथ्वी शराव की भाँति (छोटी) दिखाई पड़ती है॥

(ब्रह्माण्ड में कुम्भ का आरोप होने से रूपक अलंकार है)॥ १७॥

कवि भगवती चण्डीविषयक मंगल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

चण्डीजङ्घाकाण्डः शिरसा चरणस्पृशि प्रिये जयति।
शङ्करपर्यन्तजितो विजयस्तम्भः स्मरस्येव॥ १८॥

पदार्थ—प्रिये-शंकरे। शिरसा। चरणस्पृशि—चरणौ स्पृशति इति तस्मिन्—प्रणतिकारिणि सति—शंकर जी जब सिर से चरण स्पर्श करते हैं। शंकरपर्यन्तजितः—शंकर भगवान् तक को जीतने वाले। स्मरस्य—कामदेवस्य—कामदेव का। विजयस्तम्भः इव—विजय के स्तम्भ-सा। चण्डीजङ्घाकाण्डः—चण्डी का जङ्घाभाग। जयति—सर्वोत्कृष्ट है॥

सरलार्थ—(प्रणय-कोप को दूर करने के लिये) शंकर भी चरण-स्पर्श

करते है। इस प्रकार भगवान् शंकर तक को जीतने वाले कामदेव का विजय—स्तम्भ-सा चण्डी का जङ्घाकाण्ड सर्वोत्कृष्ट है ॥ १८ ॥

कवि पार्वतीविषयक मंगलश्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

उन्नालनाभिपङ्केरुह इव येनावभाति शम्भुरपि ।
जयति पुरुषायितायास्तदाननं शैलकन्यायाः ॥ १९ ॥

पदार्थ—येन—जिससे। शम्भुः अपि—शंकर जी भी। उन्नालनाभिपङ्केरुहः इव–उन्नालं नाभौ पङ्केरुहं यस्य सः, पद्मनाभ–सा। अवभाति–शोभित होते हैं। पुरुषायितायाः-विपरीत रति करती। शैलकन्यायाः—पार्वत्याः—पार्वती का। आननम् जयति—मुख सर्वोत्कृष्ट है ॥

सरलार्थ–(पार्वती जी का शरीर कमलनाल तथा मुख उसके अग्रभाग पर स्थित कमल-पुष्प के समान है) अतएव, विपरीतरति में संलग्न पार्वती के जिस मुख से शंकर जी भी पद्मनाभ–सा शोभित (विष्णुभगवान् के अनुरूप) होने लगते हैं; वह मुख (इस प्रकार असंभव कार्य करने के कारण) सर्वोत्कृष्ट है ॥ १९ ॥

कवि पार्वती विषयक अन्य मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

अङ्कनिलीनगजाननशङ्काकुलबाहुलेयहृतवसनौ ।
सस्मितहरकरकलितौ हिमगिरितनयास्तनौ जयतः ॥ २० ॥

पदार्थ—अङ्कनिलीन गजाननशङ्काकुलबाहुलेयहृतवसनौ—अङ्के निलीनस्य गजाननस्य शङ्कया आकुलेन बाहुलेयेन (कार्तिकेयेन) हृतम् (दूरे कृतम्) वसनं याभ्याम् तौ–जिस पर से, गणेश गोद में छिपा है–इस शङ्का से आतुर कार्तिकेय ने अञ्चल हटा दिया। सस्मितहरकलितौ—स्मितेन सह वर्तते सस्मितः हरः तेन कलितौ (गृहीतौ)—मुस्कराते शंकर जी द्वारा गृहीत। हिमगिरितनयास्तनौ—हिमगिरेः=हिमालयस्य तनया पार्वती, तस्याः स्तनौ—पार्वती के दोनो स्तन। जयतः=सर्वोत्कृष्ट हैं ॥

सरलार्थ—(कार्तिकेय जी आँख मिचौनी खेल में गणेश जी को ढूँढते, माता के पास पहुँचे और गजकुम्भस्थल के समान होने से स्तनों को) अक में छिपे हुये गणेश का सन्देह कर जल्दी से कार्तिकेय ने अंचल हटा दिया (परन्तु गणेश को न पाकर उन्हें अन्यत्र ढूँढने चले गये और इधर उपयुक्त अवसर देखकर) मुस्कराते हुए शंकर जी, पार्वती जी के (शीतल एवं कठोर) स्तनो का हाथ से आकलन कर आनन्द लेने लगे। इस प्रकार (शंकर जी को सुखी बनाने वाले) पार्वती के स्तन सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ २० ॥

कवि चण्डीविषयक अन्य मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

कण्ठोचितोऽपि हुंकृतिमात्रनिरस्तः पदान्तिके पतितः ।
यस्याश्चन्द्रशिखः स्मरमल्लनिभो जयति सा चण्डी ॥ २१ ॥

पदार्थ—कण्ठोचितः =(१) आलिंगन योग्य (२) कण्ठ में बिंधने योग्य । हुंकृतिमात्रनिरस्तः=(१) हुंकृतिमात्रेण (२) बाणादिना, निरस्तः । हुंकृतिमात्र से निरस्त किया हुआ । स्मरमल्लनिभः=स्मरशरसदृशः । चन्द्रशिखः—चन्द्रः शिखायाम् यस्य सः (शिवः)—चन्द्र जिनके मस्तक में है (२) जिनके अग्रभाग में अर्धचन्द्राकार लौह-निर्मित फल लगा है । यस्याः–पार्वत्याः—पार्वती के । पदान्तिके–चरणसमीपे । पतितः (१) प्रणत (२) गिरा । सा चण्डी जयति ॥

सरलार्थ—कण्ठोचित (१—आलिंगन योग्य, २–कण्ठ में बिंधने योग्य) तथा हुंकृतिमात्र से निरस्त, (मस्तक में अर्धचन्द्र होने के कारण) कामदेव के शर—सदृश शंकर जी (१–मान दूर करने के लिये प्रणामार्थ २–वेगवशात्) जिसके चरणो पर पड़े वे चण्डी सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ २१ ॥

कवि लक्ष्मीविषयक मंगल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

देवेऽर्पितवरणस्रजि बहुमाये वहति कैटभीरूपम् ।
जयति सुरासुरहसिता लज्जाजिह्मेक्षणा लक्ष्मीः ॥ २२ ॥

पदार्थ—अर्पितवरणस्रजि–अर्पिता वरणस्रक् यस्मै तस्मिन्—वरणमाला जिन्हें अर्पित की गई । बहुमाये—बह्वी माया यस्य तस्मिन् मायाविनि—देवे—विष्णौ । कैटभीरूपं वहति—मोहनीरूप धारण करने पर । सुरासुरहसिता–सुरैः असुरैश्च हसिता—देवों और राक्षसो द्वारा हँसी गई । लज्जाजिह्मेक्षणा—लज्जया जिह्मे (कुटिले) नेत्रे यस्याः सा—लज्जा से जिसके नेत्र कुटिल हैं । लक्ष्मीः जयति ।

सरलार्थ—जब लक्ष्मी जी विष्णु को वरणमाला अर्पित कर चुकी तदनन्तर (समुद्र से निकले अमृत से दैत्यो को वञ्चित करने के लिए) मायावी देव विष्णु ने मोहनी रूप धारण किया तब सभी देवों और असुरो ने लक्ष्मी का बड़ा उपहास किया; अतएव (पुरुष के भ्रम से क्या मैने स्त्री का वरण कर लिया) इस लज्जा के कारण उनके नेत्र कुटिल हो रहे थे (तथापि विचलित न होने के कारण) लक्ष्मी जी सर्वोत्कृष्ट है ॥ २२ ॥

कवि, सर्वदा समीचीन वस्तुओं के ग्राहक होने के कारण असुरों की, तथा कपटाकर दैत्यों के वञ्चनार्थ कपटरूपधारण करने के कारण हरि की वन्दना एक साथ कर रहा है—

तानसुरानपि हरिमपि तं वन्दे कपटकैटभीरूपम् ।
यैर्यद्बिम्बाधरमधुलुब्धैः पीयूषमपि मुमुचे ॥ २३ ॥

पदार्थ—तान् असुरान् अपि—उन (कपट में निपुण) असुरों की भी। तं कपटकैटभीरूपं हरिम् अपि—(कपटशून्य प्रसिद्ध) मोहनी कपटरूपवाले हरि की भी। वन्दे—वन्दना करता हूँ। यैः असुरैः—जिन असुरों ने। यद्बिम्बाधर-मधुलुब्धैः—जिस मोहनी रूप के लाल अधर मधु से लुब्ध। पीयूषम्—अमृतम् अपि—अमृत को भी। मुमुचे—त्याग दिया ॥

सरलार्थ—मैं (गोवर्धनाचार्य) कपट करने में प्रसिद्ध असुरों की भी, तथा कपटरहित प्रसिद्ध होने पर भी कपटकैटभीरूप धारण करने वाले हरि की भी वन्दना करता हूँ। असुरों ने कैटभी के बिम्बाफल के समान लाल अधर के मधुमें लुब्ध होकर अमृत से स्वादिष्ट समझ, अमृत को त्याग दिया अतः वे अपनी इस गुणग्राहकता के कारण वन्दनीय है। पीयूष से भी बढ़ कर कैटभी के अधरामृत मे दैत्यो के लुब्ध हो जाने पर, उनसे परित्यक्त अमृत देवो को प्राप्त हो सका अतः भगवान् का कपट-पूर्ण भी कैटभीरूप स्तुत्य है ॥ २३ ॥

कवि लक्ष्मीविषयक अन्य मंगल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

तल्पीकृताहिरगणितगरुडो हाराभिहतविधिर्जयति ।
फणशतपीतश्वासो रागान्धायाः श्रियः केलिः ॥ २४ ॥

पदार्थ—तल्पीकृताहिः—तल्पीकृतः (शय्यारूपेण प्रयुक्तः) अहिः (शेषनागः) यत्र सः—जिसमें शेषनाग शय्या के रूप में प्रयुक्त है। अगणित-गरुडः = न गणितः यत्र सः—जिसमें गरुड़ की उपेक्षा की गई, उनके अस्तित्व से किसी प्रकार की शंका नहीं की गई। हाराभिहतविधिः—हारेण अभिहतः (प्रताडितः विधिः (ब्रह्मा) यत्र सः—(गले के हार के नाभि तक लटकने से) हार से जिसमें ब्रह्मा प्रताडित हुये। फणशतपीतश्वासः—फणशतेन पीताः श्वासाः यत्र सः-(शेष के) सैकड़ो फणो से जिसमें श्वास पिये जा रहे है। रागान्धायाः—रागेण अन्धायाः—रति की भावना से विवेकशून्य। श्रियः—लक्ष्म्याः। केलिः जयति ॥

सरलार्थ—रागान्ध (अतएव विवेकशून्य) लक्ष्मी की रति-क्रीडा सर्वो-

त्कृष्ट है; जिसमें सर्पकी शय्या है (रागाधिक्य के कारण सर्प से भी भय नहीं)। गरुड की उपस्थिति की भी चिन्ता नहीं। (विष्णु के नाभिकमल पर स्थित) ब्रह्मा (लक्ष्मी के) हार से प्रताडित हो रहे हैं (परन्तु लक्ष्मी को रागाधिक्य में चिन्ता नहीं कि प्रताडित ब्रह्मा कहीं मेरी केलिविषयक चर्चा न कर बैठें)। शेषनाग के सैकड़ों फण श्वास का पान कर रहे हैं (किन्तु मृत्यु का भी भय नहीं) ॥ २४ ॥

कवि विष्णु भगवान् द्वारा धारण किये गये कैटभीरूप के विषय में मंगल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

स्मेराननेन हरिणा सस्पृहसाकारवेदिनाकलितम् ।
जयति पुरुषायितायाः कमलायाः कैटभीध्यानम् ॥ २५ ॥

पदार्थ—स्मेराननेन (१) (लक्ष्म्याः) स्मेरेण सस्मितेन आननेन—लक्ष्मी के प्रसन्न मुख से। (२) स्मेरम् आननं यस्य तेन (हरिणा)—प्रसन्न मुख वाले (हरि) ने। आकारवेदिना—आकारेण वेत्तुं शीलमस्येति आकारवेदी तेन—स्वरूप, चेष्टा आदि से सब कुछ जान लेने वाले। हरिणा। आकलितम्—अनुमितम्। पुरुषायितायाः—विपरीतरतिसंलग्नायाः—विपरीत रति में संलग्न। कमलायाः—लक्ष्म्याः—लक्ष्मीद्वारा किया गया। कैटभीध्यानम् जयति ॥

सरलार्थ—लक्ष्मी के (मुख-विशेष के कारण) मुख को प्रसन्न देख कर, स्वरूप, चेष्टा आदि से सब कुछ जान लेने वाले हरि ने प्रसन्न वदन हो जिसे जान लिया; विपरीत रति में संलग्न लक्ष्मी द्वारा, (अनिर्वचनीय रूपशालिनी होने के कारण) बड़ी स्पृहा से किया गया कैटभी (मोहनीरूप) का ध्यान सर्वोत्कृष्ट है ॥ २५ ॥

कवि ब्रह्मा के विषय में मङ्गल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

कृतकान्तकेलिकुतुकश्रीशीतश्वाससेकनिद्राणः ।
घोरितविततालिरुतो नाभिसरोजे विधिर्जयति ॥ २६ ॥

पदार्थ—कृतकान्तकेलिकुतुकश्रीशीतश्वाससेकनिद्राणः—कृतं कान्तं (मनोज्ञं) केलिकुतुकं यया तस्याः श्रियः शीतानां श्वासानां सेकेन निद्राणः (शयानः)—मनोज्ञ केलि कुतुक करने वाली लक्ष्मी के शीतल श्वासों से सोते हुये। घोरितविततालिरुतः—घोरितम् विततम् अलीनाम् रुतम् एव यस्य सः—भौंरों की विस्तृत ध्वनि ही जिसके सोने के समय की खुरखुराहट है—घोरितम्—घुर + क्त (भावे)—सोने के समय खर्राटे की ध्वनि। नाभिसरोजे—नाभिकमल पर। विधिः जयति ॥

सरलार्थ—सुरत क्रीडा करने वाली लक्ष्मी के (मदनानलसंताप मिट जाने से) शीतल श्वासो से नाभिकमल में निद्रा-मग्न, भ्रमरध्वनिरूप खर्राटा मारते हुए ब्रह्मा जी सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ (अलिरुत में घोरित (खर्राटा) का आरोप होने से रूपक अलंकार है) ॥ २६ ॥

कवि गणेशविषयक मंगलश्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

एकरद द्वैमातुर निस्त्रिगुण चतुर्भुजापि पञ्चकर ।
जय षण्मुखनुत सप्तच्छदगन्धिमदाष्टतनुतनय ॥ २७ ॥

पदार्थ—एकरद—एकः रदः यस्य तत्सम्बुद्धिः—एक दाँत है जिसके अर्थात् गणेश (सभी पद सम्बोधन में है)। द्वैमातुर—द्वयोः मात्रोरपत्यम्—दो माताओं वाला। निस्त्रिगुण—निर्गताः त्रयः गुणाः यस्मात् तत्सम्बुद्धिः—तीनों गुणों से परे। चतुर्भुज—चत्वारः भुजाः यस्य तत्सम्बुद्धिः—जिसके चार भुज हैं। अपि—विरोधाभासार्थकः। तथापि। पञ्चकर—पञ्च कराः यस्य तत्-सम्बुद्धिः—जिसके पाँच कर हैं—(सूँड समेत पाँच कर) हाथी के सूँड को 'कर' कहा जाता है। षण्मुखनुत—षण्मुखः—कार्तिकेयः तेन नुतः स्तुतः। कार्तिकेय द्वारा पूजित। सप्तच्छदगन्धिमद—सप्तच्छदगन्धिः मदः यस्य—जिसका मद (कपोल-स्थली से चूने वाला मद) सप्तच्छद (छतिवन नामक वृक्ष विशेष) की गन्ध—के समान गन्ध वाला है। अष्टतनुतनय—अष्टतनुः शिवः तस्य तनय—शिव जी के पुत्र। शिव जी को पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और ऋत्विज—इन आठ मूर्तियों वाला कहा जाता है। जय—तुम सर्वोत्कृष्ट रहो।

सरलार्थ—एक दाँत वाले, दो माताओ (पार्वती तथा गङ्गा) वाले, तीनों गुणों से परे, चार भुजावाले तथापि (सूँडसमेत) पाँच कर वाले, (ज्येष्ठ होने के कारण) षडानन (कार्तिकेय) द्वारा पूजित, सप्तच्छद (छतिवन) के समान सुगन्धित मद वाले, अष्टतनु (शिवजी) के पुत्र गणेश जी ! तुम्हारी जय हो ॥ (श्लोक में संख्या का क्रम द्रष्टव्य है) ॥ २७ ॥

कवि गणेशविषयक मंगल श्लोक (द्वितीय) प्रस्तुत कर रहा है—

मङ्गलकलशद्वयमयकुम्भमदम्भेन भजत गजवदनम् ।
यद्दानतोयतरलैस्तिलतुलनालम्बि रोलम्बैः ॥ २८ ॥

पदार्थ—मङ्गलकलशद्वयमयकुम्भम्—मङ्गलकलशद्वयरूपौ कुम्भौ यस्य तम्—जिसके दोनो कुम्भस्थल दो मङ्गलकलशरूप हैं। गजवदनम्—गजस्य वदनमिव वदनं यस्य तम्—जिसका मुख गज का-सा है। अदम्भेन—दम्भं परित्यज्य—विना दम्भ के। भजत=तुम सब भजो। यद्दानतोयतरलैः—यस्य दानतोयाय (मदजलाय) तरलैः। जिसके मद जल के लिए चंचल। रोलम्बैः—भ्रमरैः—भौंरों ने। तिलतुलना—तिलसाम्यम्—तिल की समता। आलम्बि—प्राप्ता। प्राप्त की॥

सरलार्थ—दो मंगलकलशरूप कुम्भस्थल वाले, गजवदन श्रीगणेश जी का कपट, पाखण्ड आदि छोड़ कर भजन करोः जिनके (सुगन्धित) मदजल के लिए भौंरे (विशाल कुम्भस्थल पर) तिल के समान दिखाई पड़ते हैं॥ २८॥

कवि कामिनी—काम—विषयक मंगल श्लोक प्रस्तुत कर उनकी वन्दनीयता सिद्ध कर रहा है—

याभिरनङ्गः साङ्गीकृतः स्त्रियोऽस्त्रीकृताश्च ता येन।
वामाचरणप्रवणौ प्रणमत तौ कामिनीकामौ॥ २९॥

पदार्थ—याभिः—जिन स्त्रियोंने। अनङ्गः—अङ्गरहित कामदेव को। साङ्गीकृतः—साङ्ग बना दिया। येन—कामदेवेन—जिस कामदेव ने। ताः स्त्रियः उन स्त्रियों को। अस्त्रीकृताः=अस्त्र बनाया। वामाचरणप्रवणौ—(१) वामे (सुन्दरे, समीचीने वा) आचरणे प्रवणौ (तत्परौ)—सुन्दर एवं समीचीन आचरण में तत्पर। (२) वामे (विपरीते)—विपरीत आचरण में तत्पर। तौ कामिनी कामौ—उन कामिनी और काम को। प्रणमत—तुम सब प्रणाम करो॥

सरलार्थ—जिन कामिनियो ने अनङ्ग (कामदेव) को सांग (साकार) बना दिया और जिस (कामदेव) ने उन कामिनियो को (अपनी विजय का साधनरूप) अस्त्र बनाया; (इस प्रकार परस्पर क्रमशः अनंग को साग और स्त्रियो को अस्त्ररूपता देकर, नायकों पर प्रभुता रखने वाली बना कर) समीचीन आचरण (परोपकार) मे तत्पर अथवा (परस्पर अनंग को सांगता, स्त्रियों को स्त्रीभिन्नता प्रदान कर) विपरीत आचरण मे तत्पर; (उपकार प्रवणता के कारण श्रद्धावश अथवा विपरीताचरण प्रवणता के कारण भयवश) कामिनी और काम को तुम सब प्रणाम करो॥

(अनंगः सांगीकृतः; स्त्रियः अस्त्रीकृताः में विरोधाभास द्रष्टव्य है)॥२९॥

कवि वाल्मीकि के विषय में स्तुतिपरक मंगल श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

विहितघनालङ्कारं विचित्रवर्णावलीमयस्फुरणम् ।
शक्रायुधमिव वक्रं वल्मीकभुवं कविं नौमि ॥ ३० ॥

पदार्थ—शक्रायुधम् इव—शक्रस्य इन्द्रस्य आयुधम् इव—इन्द्रधनुष के समान । विहितघनालंकारम्—(१) विहिताः कृताः घनाः, उपमादयः अलंकाराः येन तम्—जिन्होंने बहुत से उपमा आदि अलंकार किये । (२) विहितः कृतः घनानाम् अलङ्कारः येन तम्—जिसने मेघों का अलङ्कार किया । विचित्रवर्णावलीमय स्फुरणम्—(१) विचित्राणां वर्णानाम् अक्षराणां या अवली तत् प्रचुरं स्फुरणम् स्फूर्तिः यस्य तम्—विचित्राक्षरमयी स्फूर्तिवाला । (२) विचित्राणाम् वर्णानां नीलपीतादीनां अवली पंक्तिः तस्याः विकार स्फुरणम् उत्पत्तिः यस्य तम्—नीलपीतादिभिः सप्तविधैः वर्णैः दीप्तम् इति यावत् । नीलपीतादि सात रंगो से दीप्त । वक्रम् (१) वक्रोक्ति कुशल (२) टेढा । वल्मीकभुवम्—वल्मीकोत्पन्नम् , वल्मीक से प्रकट होने वाला । इन्द्रधनुष की भी उत्पत्ति वल्मीक से ही है—ऐसा लोक में प्रसिद्ध है । कविं नौमि—कवि की स्तुति करता हूँ ।

सरलार्थ—मैं (गोवर्धनाचार्य) मेघो को अलङ्कृत करने वाले, नीलपीतादि सात रंगो से दीप्त, वक्र तथा वल्मीक से उत्पन्न इन्द्रधनुष के समान उपमा आदि अलंकारो के विधायक, विचित्राक्षरमयी स्फूर्ति वाले, वक्रोक्तिकुशल वल्मीक प्रभव (वाल्मीकि) कवि की स्तुति करता हूँ । (श्लिष्ट पदों का प्रयोग द्रष्टव्य है) ॥ ३० ॥

कवि (महा) भारत (महाकाव्य) की उत्कृष्टता प्रतिपादित करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से व्यास जी की स्तुति कर रहा है—

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे ।
भूषणतयैव संज्ञां यदङ्कितां भारती वहति ॥ ३१ ॥

पदार्थ—व्यासगिरां निर्यासम्—व्यास के वचनों का तत्त्व । विश्वस्य सारम्—संसार का सार । भारतम् वन्दे—महाभारत की वन्दना करता हूँ । यदङ्किताम्—येन अङ्किताम्—जिससे अङ्कित । संज्ञाम्—नाम को । भूषणतया एव– भूषणरूप से ही । भारती–सरस्वती । वहति—धारण करती है ।

सरलार्थ—मैं (गोवर्धनाचार्य) व्यास के वचनो के तत्त्व तथा जगत् के सार रूप (महा) भारत (महाकाव्य) की वन्दना करता हूँ; सरस्वती जी

जिसके 'भारत' नाम से अङ्कित 'भारती' संज्ञा को भूषण रूप में अपनाती हैं ('भारती' नाम से प्रसिद्ध हैं) ॥ ३१ ॥

कवि रामायण की उत्कृष्टता प्रतिपादित करते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से वाल्मीकि की स्तुति कर रहा है—

सति काकुत्स्थकुलोन्नतिकारिणि रामायणे किमन्येन ।
रोहति कुल्या गङ्गापूरे किं बहुरसे वहति ॥ ३२ ॥

पदार्थ—काकुत्स्थ कुलोन्नति कारिणि—ककुत्स्थस्य इदम् इति काकुत्स्थं कुलम् तस्य उन्नतिकारिणि—राजा ककुत्स्थ के कुल को उन्नत बनाने वाले। बहुरसे—बहवः शृंगारादयः रसाः यत्र तस्मिन्—जिसमें शृंगारादि अनेक रस हैं (२) बहुत जल है जिसमें। रामायणे सति—रामायण के होते हुए। अन्येन किम्—अन्य काव्य से क्या फल। गङ्गापूरे—गंगा प्रवाहे। वहति सति—गंगा प्रवाह के बहते रहने पर। किम्—क्या। कुल्या—कृत्रिम छोटी नदी, नहर आदि। रोहति—रोचते—रुचती है।

सरलार्थ—काकुत्स्थवंश को उन्नत बनाने वाले तथा प्रभूत शृंगारादिरस शाली रामायण के होते हुये अन्य काव्य से क्या फल ? (उसके सामने अन्य काव्य नीरस एवं निरर्थक लगते हैं)। अपार गङ्गा के जल-प्रवाह के सामने कुल्या कहीं मन को भाती है ॥ ३२ ॥

कवि बृहत् कथाकर्ता गुणाढ्य की महत्ता की अभिव्यक्ति कर रहा है—

अतिदीर्घजीविदोषाद्व्यासेन यशोऽपहारितं हन्त ।
कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हन्त—खेदसूचक अव्यय है। अतिदीर्घजीवि दोषात्—अतिदीर्घ-जीवी रूप दोष से। व्यासेन—व्यास ने। यशः अपहारितम्—यश गँवा दिया। सः एव—वही। जन्मान्तरापन्नः = अन्यत् जन्म इति जन्मान्तरम् आपन्नः—अन्य जन्म को प्राप्त कर। गुणाढ्यः। कैः = कौन लोग। न उच्येत—न कहते।

सरलार्थ—(व्यास की विवेकहीनता पर) खेद है (जो) व्यास ने (जन्मान्तर की स्पृहा न कर) चिरकालजीवी होना पसन्द किया और इस दोष से वे (एक बहुत बड़ा) यश गँवा बैठे; अन्यथा कौन लोग न कहते (संसार कहता) कि व्यास ने ही गुणाढ्य के रूप में पुनर्जन्म ग्रहण किया है ॥ ३३ ॥

कवि वाल्मीकि, व्यास तथा गुणाढ्य को प्रणाम करते हुए उनकी महत्ता प्रकट कर रहा है—

श्रीरामायणभारतबृहत्कथानां कवीन्नमस्कुर्मः ।
त्रिस्रोता इव सरसा सरस्वती स्फुरति यैर्भिन्ना ॥ ३४ ॥

पदार्थ—श्रीरामायण भारत बृहत् कथानां—श्रीरामायण, भारत और बृहत् कथा के। कवीन्—कवियों को। नमस्कुर्मः—(हम) प्रणाम करते हैं। यैः—जिनके द्वारा। भिन्ना—फूटी हुई सरसा—(१) शृंगारादिमती (२) सजला। सरस्वती—वाणी। त्रिस्रोताः त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा, तीन धाराओं वाली गङ्गा जी। इव—समान। स्फुरति—स्फुरित हो रही है।

सरलार्थ—हम श्रीरामायण, श्रीमहाभारत, और श्रीबृहत्कथा के कवियों श्री वाल्मीकि, श्री व्यास और श्री गुणाढ्य को प्रणाम करते हैं जिनसे सरस (शृंगारादिमयी) वाणी तीन समान धाराओं में सरस (सजला) गङ्गा की भाँति प्रवाहित हो रही है ॥ ३४ ॥

कवि कालिदास विषयक प्रशंसापरक श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीलाकालिदासोक्ती ॥ ३५ ॥

पदार्थ—साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये—साकूतम् साभिप्रायम् मधुरम् कोमलम् यत् विलासिन्याः कण्ठकूजितम् , तत् प्राये— (१) विलासिनी के साभिप्राय, मधुर एवम् कोमलकण्ठध्वनिबहुल। (२) कण्ठ ध्वनि सदृश। रतलीला·कालिदासोक्ती। शिक्षासमयेऽपि। मुदे—हर्षाय। आनन्दाय।

सरलार्थ—रतलीला जिसमें विलासिनी के साभिप्राय मधुर एवं कोमल कण्ठ-ध्वनि का बाहुल्य होता है; और कालिदासोक्ति जो विलासिनी के साभिप्राय मधुर एवं कण्ठ-ध्वनि के समान है; ये दोनों शिक्षा के समय में भी हर्ष और आनन्द देती हैं; अर्थात् दोनों समान हैं ॥ ३५ ॥

कवि, भवभूति नामक कवि के विषय में प्रशंसापरक श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

भवभूतेः सम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥ ३६ ॥

पदार्थ—भवभूतेः—भवस्य (शिवस्य) भूतिः (ऐश्वर्यम्) यस्मिन् तस्य।

जिसमें शिव का ऐश्वर्य है। सम्बन्धात्—(१) कविविशेष (२) शिवैश्वर्यवान् के सम्बन्ध के कारण। भूधरभूः (१) भूधरस्य भूः इति पर्वतभूमि। (२) भूधरात् भवति इति भूधर से उत्पन्न होने वाली पार्वती। एव। भारती—सरस्वती। भाति—प्रतीयते—मालूम होती है। अन्यथा। एतत्कृतकारुण्ये—एतेन कृते कारुण्ये करुणरसप्रधानकाव्ये—इसके बनाये गये करुणरसप्रधान काव्य उत्तररामचरित नाटक में। ग्रावा—प्रस्तरः—पत्थर। किम्—क्यों। रोदिति—रोता।

सरलार्थ—कवि भवभूति के (शाब्दिक अर्थ के अनुसार) शिवैश्वर्यवान् होने के नाते कवि मे पार्वती स्वयम् सरस्वतीरूप से अवस्थित हैं, अथवा भवभूति कवि के नाते सरस्वती स्वयम् पर्वत भूमि के रूप में अवस्थित है, नहीं तो (लोगो ने अनेक करुणरस प्रधान काव्य लिखे हैं किन्तु किसी मे पाषाण रोदन नही है) इनके काव्य में शैल रोदन क्यों और कैसे होता? (मालूम होता है कि शिवैश्वर्यवान् भवभूति के जामाता होने के कारण शैल रोता है अथवा कवि के नाते (वह भवभूति—संसार का ऐश्वर्य है) उसका असाधारणता को अङ्गीकार कर सरस्वती पर्वतभूमि का रूप धारण कर स्वयम् रोती है ॥ ३६ ॥

कवि, बाण के सम्बन्ध मे प्रशंसापरक श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥ ३७ ॥

पदार्थ—प्राक्—पूर्वम्, पहले। यथा। शिखण्डिनी—द्रुपदपुत्री। शिखण्डी—द्रुपदपुत्रः जाता। तथा। वाणी। अधिकम्। प्रागल्भ्यम् (१) वीरतां (२) वाग्मितां। आप्तुम्—प्राप्तुम्। बाणः बभूव इति अवगच्छामि—मन्ये। मानता हूँ, समझता हूँ।

सरलार्थ—पहले जैसे शिखण्डिनी वीरता प्राप्त करने के लिए शिखण्डी हो गई थी, मै समझता हूँ उसी प्रकार अधिक वाग्मिता प्राप्त करने के लिए (बकार और वकार में अभेद होने से) वाणी (सरस्वती) बाण (कादम्बरी के रचयिता) के रूप में हुई ॥ ३७ ॥

कवि अपने पिता की प्रशंसा करते हुए वन्दना करता है—

यं गणयन्ति गुरोरनु यस्यास्ते धर्मकर्म संकुचितम् ।
कविमहमुशनसमिव तं तातं नीलाम्बरं वन्दे ॥ ३८ ॥

पदार्थ—यम्। गुरोः—प्रभाकर नाम्नः विदुषः, बृहस्पतेश्च—(१) प्रभाकर नामक विद्वान्, (२) बृहस्पति के अनु—पश्चात्। गणयन्ति—गिनते है। यस्य

अस्ते—नाशे—अदर्शने च—(१) नाश होने पर (२) अदर्शन होने पर। धर्म कर्म। संकुचितम्। कविम्—काव्यकर्तारम्, कवि नामानं च। उशनसम् इव—शुक्रम् इव—शुक्र के समान। अहम्। तम् तातम्—पितरम्-पिता की। वन्दे—वन्दना करता हूँ।

सरलार्थ—गुरु (१—प्रभाकर नामक विद्वान् २—बृहस्पति) के बाद जिनकी गणना होती है, जिनके अस्त (१—नाश, अदर्शन) से धर्मकर्म (१—अन्य धर्मप्रवर्तक न रह जाने से २—शुक्रास्त में कतिपय धार्मिक कर्मों का निषेध होने से) संकुचित हो गया, उन काव्यकर्ता, 'कवि' अपरनाम वाले शुक्र की भाँति प्रसिद्ध नीलाम्बर नामक पिता की मैं (गोवर्धनाचार्य) वन्दना करता हूँ ॥ ३८ ॥

कवि अपने उपजीव्य भूपति लक्ष्मणसेन के विषय मे तत् प्रशंसापरक श्लोक प्रस्तुत कर रहा है—

सकलकलाः कल्पयितुं प्रभुः प्रबन्धस्य कुमुदबन्धोश्च।
सेनकुलतिलभूपतिरेको राकाप्रदोषश्च ॥ ३९ ॥

पदार्थ—प्रबन्धस्य। कुमुदबन्धोः—चन्द्रमसः—चन्द्रमा की। च। सकलकलाः=(१) ६४ कलाओ (२) षोडशकलाओं को। कल्पयितुम्—करने अथवा दिखाने को। सेनकुलतिलकभूपतिः—लक्ष्मणसेनः। राकाप्रदोषश्च—और पूर्णिमा का सन्ध्याकाल। एकः प्रभुः—समर्थः।

सरलार्थ—प्रबन्ध तथा चन्द्रमा की (क्रमशः चौंसठ तथा सोलह) कलाओ को करने अथवा दिखाने में सेनकुलतिलक भूपति लक्ष्मणसेन तथा पौर्णमासी का सन्ध्याकाल ही समर्थ है।

(कुछ लोग सेनकुलतिलक से सेतुबन्धकाव्यकर्ता काश्मीरमहाराज प्रवरसेन नामक राजा का तात्पर्य ग्रहण करते है, परन्तु यह युक्त नहीं है क्यो कि वे क्षत्रियवंश के थे। सेनकुल (कायस्थकुल) बंगाल में प्रसिद्ध है। सेनकुलतिलक, राजालक्ष्मणसेन थे। इन्हीं के दरबार मे गोवर्धनाचार्य रहते थे,—ऐसा विद्वानों का कथन है–'राजतरङ्गिणी' के आधार पर) ॥ ३९ ॥

कवि इस स्थल से ११ श्लोको में अपने काव्य सम्बन्धी मान्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन कर रहा है—

काव्यस्याक्षरमैत्रीभाजो न च कर्कशा न च ग्राम्याः।
शब्दा अपि पुरुषा अपि साधव एवार्थबोधाय ॥ ४० ॥

पदार्थ—अक्षरमैत्रीभाजः (षष्ठयन्त होने पर काव्य का, प्रथमा बहुवचनान्त होने पर पुरुष और शब्द का विशेषण है) १—वर्णमैत्री से युक्त २—विद्वान् ३—यथार्ह अक्षरों से युक्त । काव्यस्य अर्थबोधाय—काव्य के अर्थबोध के लिए । न च । कर्कशाः—(१—श्रुतिकटु २—क्रूरमति) । न च ग्राम्याः—(१—मूर्खों द्वारा प्रयुक्त २—ग्राममात्रवासी) । शब्दाः अपि । पुरुषाः अपि साधवः एव—(१—व्याकरण सम्मत २—निर्मलमति)

सरलार्थ—वर्णमैत्री से युक्त बन्धविशेषशाली काव्य का अर्थबोध कर्कश (१—श्रुतिकटु २—क्रूरमति) और ग्राम्य (१—मूर्खों द्वारा प्रयुक्त २—ग्राममात्रवासी) शब्दो तथा पुरुषों द्वारा नही होता किन्तु साधु (१—व्याकरण सम्मत २—निर्मल मति) तथा उचितवर्णोपेत शब्दों एवं विद्वान् पुरुषों द्वारा ही होती है ॥ ४० ॥

वंशे घुण इव न विशति दोषो रसभाविते सतां मनसि ।
रसमपि तु न प्रतीच्छति बहुदोषः सन्निपातीव ॥ ४१ ॥

पदार्थ—वंशे—बाँस में । घुणः इव—घुन की भाँति । रसभाविते—(१) श्रृंगारादि भावना वाले (२) जल में कतिपय दिनो तक पड़े हुए । सतां मनसि—सज्जनो के मन में । दोषः न विशति—दोष नहीं प्रविष्ट होता । बहुदोषः—(१) केवल दोष देखने वाला २—दाह, शीत आदि शारीरिक उपद्रवों से युक्त । संनिपाती इव—संनिपात के रोगी की भाँति । रसम्—(१) श्रृंगारादि काव्यरस (२) मृगांक आदि औषध ॥

सरलार्थ—श्रृंगारादिभावनायुक्त सज्जनो के मन मे दोष प्रवेश नहीं पाता जिस प्रकार जल में कुछ दिन तक पड़े रहे बाँस मे घुन नही लगता । किन्तु जो दोष ही ढूँढा करता है वह काव्य के श्रृंगारादिरस का अनुभव नही कर पाता जैसे दाह, शीत आदि शारीरिक उपद्रवयुक्त संनिपात का रोगी मृगांक आदि आयुर्वेदीय रसौषध नही ग्रहण करता ॥ ४१ ॥

विगुणोऽपि काव्यबन्धः साधूनामाननं गतः स्वदते ।
फूत्कारोऽपि सुवंशैरनूद्यमानः श्रुतिं हरति ॥ ४२ ॥

पदार्थ—विगुणः अपि—काव्यविषयक गुणो से शून्य भी । काव्यबन्धः । साधूनाम्—गुणवताम्—गुणीजनो के । आननम् गतः—मुख को प्राप्त । स्वदते—मधुर लगता है । सुवंशैः—सरल वेणुओ द्वारा । अनूद्यमानः—निकलता हुआ । फूत्कारः अपि—फूँक भी । श्रुतिं हरति—कान को सुख पहुँचाता है ॥

सरलार्थ—गुणों से रहित भी काव्य सज्जनों के मुख को प्राप्त हो आनन्द-दायी हो जाता है। अन्य के मुख की फूँक भी सरल वेणु द्वारा निकल कर (मधुरध्वनि के रूप में) कानों को सुख पहुँचाती है ॥ ४२ ॥

स्वयमपि भूरिच्छिद्रश्चापलमपि सर्वतोमुखं तन्वन् ।
तितउस्तुषस्य पिशुनो दोषस्य विवेचनेऽधिकृतः ॥ ४३ ॥

पदार्थ—स्वयम् । भूरिच्छिद्रः—(१—बहुत दोषों वाला २—बहुत छिद्रों वाला) । अपि । सर्वतो मुखम्—(१) सकल लोगों के सामने २—सकल दिशाओं में । चापलम् अपि—१-मुखरता २—चंचलता भी । तन्वन्—विस्तारयन्—बढ़ाता हुआ । तितउः–चलनी । तुषस्य–भूसी के । पिशुनः—दुष्ट । दोषस्य–दोष के । विवेचने—निर्णये, स्वीकारे च, अधिकृतः–(१) दोषनिर्णय करता है (२) भूसी को अपनाता है ।

सरलार्थ—बहु छिद्रों से युक्त भी चलनी सकल दिशाओं में घूम-घूम कर अपनी चंचलता विस्तृत कर (ग्राह्य सार पदार्थ को नीचे गिरा कर) भूसी ही ग्रहण करती है । इसी प्रकार दुष्ट बहुदोषयुक्त होने पर भी सकल जनों के समक्ष बढ़-बढ़ कर बातें करता है और (गुण को न ग्रहण कर) केवल दोष को ही अपनाता है-गुणों का नहीं, दोषों का ही वर्णन करता है ॥ ४३ ॥

अन्तर्गूढानर्थानव्यञ्जयतः प्रसादरहितस्य ।
सन्दर्भस्य नदस्य च न रसः प्रीत्यै रसज्ञानाम् ॥ ४४ ॥

पदार्थ—अन्तर्गूढान् अर्थान्—(१) प्रतिपाद्यविषय जो गूढ और अव्यक्त है । (२) भीतर छिपे पदार्थों को । अव्यञ्जयतः–(१) व्यंजित न करता, प्रकट न करता । प्रसादरहितस्य—(१) प्रसाद गुण से रहित (२) निर्मलता रहित । सन्दर्भस्य—काव्य का । नदस्य च—और नद का । रसः—शृंगारादि रस (२) जल । रसज्ञानां–रसज्ञजनों को । प्रीत्यै न भवति—प्रीतिकारक नहीं होता ॥

सरलार्थ—गूढ प्रतिपाद्यविषय को ठीक से व्यक्त न कर सकने वाले, प्रसाद गुणरहित काव्य का रस, और जिसके भीतर छिपे पदार्थ दिखाई न दें ऐसा निर्मलता रहित नद का जल, रसज्ञों को प्रीतिकारक नहीं होता ॥ ४४ ॥

यदसेवनीयमसतामसृतप्रायं सुवर्णविन्यासम् ।
सुरसार्थमयं काव्यं त्रिविष्टपं वा समं विद्मः ॥ ४५ ॥

पदार्थ–यत्–जो । असताम्–(१) सहृदयतारहितानाम् (२) पापात्मनाम् –सहृदयतारहित व्यक्तियों द्वारा (२) पापियों द्वारा । कर्तरि षष्ठी । असेवनी-

यम्। अमृतप्रायम्—(१) अमृततुल्य (२) अमृतबहुल। सुवर्णविन्यासम (१) शोभनवर्णानां विन्यासः यत्र—जिसमें शोभन अक्षरों का ग्रथन है। (२) सुवर्णानां विन्यासः यत्र—जिसमें सोने के पदार्थों की रचना है। सुरसार्थमयम्—(१) शोभनरस और अर्थयुक्त। २—सुर + सार्थ × मय—देवसमूह बहुल। काव्यम्। त्रिविष्टपम् स्वर्गं वा। समम् विद्मः—हम समान समझते है।

सरलार्थ—हम काव्य और स्वर्ग को समान समझते हैं; क्योंकि असज्जन इन दोनो को नहीं पा सकते—सहृदय न होने के कारण काव्य का आनन्द नहीं पा सकते और पापी होने के कारण स्वर्ग के अधिकारी नहीं हो सकते। काव्य अमृततुल्य है तो स्वर्ग अमृतबहुल है। काव्य में सुवर्ण (शोभन अक्षरों) का विन्यास (ग्रथन) है तो स्वर्ग में भी सुवर्ण (सोने के पदार्थों का) विन्यास (रचना) है। दोनो सुरसार्थमय है; एक शोभनरस और अर्थबहुल होने के कारण दूसरा सुरसमूहबहुल (सुर + सार्थ + मय) होने के कारण॥ श्लेप अलंकार॥ ४५॥

सत्कविरसनाशूर्पीनिस्तुपतरशब्दशालिपाकेन।
तृप्तो दयिताधरमपि नाद्रियते का सुधा दासी॥ ४६॥

पदार्थ—सत्कविरसनाशूर्पीनिस्तुषतरशब्दशालिपाकेन—सत्कवेः रसना एव शूर्पी (अल्पं शूर्पम्) तया निस्तुषतरः (निर्दोषः) शब्दः एव शालिः तस्य पाकेन—सत्कवि की रसनारूपशूर्पी से निर्दोष शब्दरूपशालि (धान्यविशेष) के पाकसे—अर्थात् परिणतनिर्दोषकाव्य के आस्वादन से। तृप्तः। दयिताधरमपि—दयितायाः प्रियायाः अधरम् अपि—प्रिया के अधर को भी। न आद्रियते—नहीं आदर करता है। सुधादासी का—तुच्छ सुधा की क्या गणना।

सरलार्थ—सत्कवि की रसना रूप छोटे सूप द्वारा (दोषरूप) भूसा से रहित किये गये शब्द रूप शालि (जड़हन—धान्यविशेप) के पाक अर्थात् परिणत निर्दोष काव्य का आस्वादन करने से तृप्त व्यक्ति, प्रिया के (अति स्पृहणीय एवम् अत्युत्कृष्ट) अधर का आदर नहीं करता तो दासी (बेचारी अतितुच्छ अतएव अग्राह्य) सुधा की क्या गणना॥ ४६॥

अकलितशब्दालंकृतिरनुकूला स्खलितपदनिवेशापि।
अभिसारिकेव रमयति सूक्तिः सोत्कर्षशृङ्गारा॥ ४७॥

पदार्थ—अकलित शब्दालंकृतिः (१) न कलिता (धृता) शब्दस्य अलंकृतिः यया सा—अनुप्रासादि शब्दालंकारशून्य। (२) न कलितः शब्दः यया सा

अकलितशब्दा अलंकृतिः (भूषणं) यस्याः सा । शब्द न करने वाले आभूषण धारण करने वाली अभिसारिका । अनुकूला (१) शीघ्र रस-प्रतीति कराने वाली (२) नायक के चित्तानुकूल । स्खलितपदनिवेशा—स्खलितानां पदानां निवेशः यत्र यस्याः वा सा । (१) सदोष पदों का जिसमें ग्रथन है । (२) डगमग और लड़खड़ाते पैर रखने वाली । अपि । सोत्कर्षशृंगारा—उत्कर्षेण सह—सोत्कर्षः शृंगारः यस्याः सा (१) उत्कृष्ट शृंगार रस वाली (२) परस्पर रति भाव से युक्त। सूक्तिः—काव्यम् । अभिसारिका इव मनः रमयति ।

सरलार्थ—अनुप्रासादि शब्दालंकारों से रहित, एवं सदोष पदों से युक्त भी सूक्ति (काव्य) यदि तत्काल रसप्रतीति करा देती है और उत्कृष्ट शृंगार रस-संभृत है तो वह, शब्द करने वाले भूषणों से रहित, (संकेत-स्थल तक शीघ्र पहुँचने के लिए आतुर) लड़खड़ाते पग रखती (गिरती- पड़ती—और मुश्किल से सँभलती) नायक के प्रति अनन्य रतिभाव रखने वाली कलभाषिणी अभिसारिका की भाँति मन को आनन्द देती है ।। श्लेष अलंकार तथा उपमा ।

(श्लोक गत सूक्ति शब्द भी श्लिष्ट समझना चाहिये—(१) शोभना उक्तिः सूक्तिः (काव्यम्) (२) शोभना उक्तिः यस्याः सा सूक्तिः मधुरकोमलभाषिणी अभिसारिका) ।

(श्लोक के पूर्वार्ध के द्वितीय पद में अनुकूल + अस्खलित पद—ऐसा सन्धि विच्छेद कर एतत्पदसम्बन्धी उपर्युक्त अर्थ के विपरीत अर्थ करना समीचीन नहीं लगता । एक तो उक्त पद से सम्बन्वित 'अपि' शब्द अपनी सामान्य शक्ति खो बैठेगा दूसरे सूक्ति, दोष के स्थान गुण अपना कर अपने शृंगार की सर्वोत्कृष्टता खो बैठेगी जो कवि को अभीष्ट नहीं है) ।। ४७ ।।

अध्वनि पदग्रहपरं मदयति हृदयं न वा न वा श्रवणम् ।
काव्यमभिज्ञसभायां मञ्जीरं केलिवेलायाम् ।। ४८ ।।

पदार्थ—अध्वनि—न ध्वनिः यस्मिन् तत्—(१) व्यङ्ग्यार्थशून्य (२) शिञ्जितरहित । पदग्रहपरम्—पदानां ग्रहे परम्—अनुप्रासादि शब्दालंकार मात्र के लिए ही जिसमें पदों का विन्यास हो । (२) चरण में अत्यन्त संलग्न-कसा हुआ । काव्यम् । मञ्जीरम्—नूपुर । अभिज्ञ सभायाम्-विद्वत्समाजे, केलिवेलायाम्—सुरतकाल में । हृदयं वा न, न तो हृदय को । श्रवणं न वा और न कान को । मदयति—मत्त करता है ।

सरलार्थ—व्यङ्ग्यार्थशून्य तथा केवल अनुप्रासादिशब्दालंकार के लिए ही विन्यस्त पदों वाला काव्य एवम् शिञ्जितरहित तथा केवल पैर में संलग्न, कसा

नूपुर ये दोनो क्रमशः विद्वत्सभा मे और सुरतवेला में हृदय अथवा कानों को मस्त नहीं बनाते ॥ ४८ ॥

आस्वादितदयिताधरसुधारसस्यैव सूक्तयो मधुराः ।
अकलितरसालमुकुलो न कोकिलः कलमुदञ्चयति ॥ ४९ ॥

पदार्थ—आस्वादितदयिताधरसुधारसस्य—आस्वादितः दयितायाः अधर एव सुधारसः येन तस्य । जिसने प्रिया के अधरामृत का आस्वादन किया है उसकी । एव—ही । सूक्तयः = काव्यानि । मधुराः । अकलितरसालमुकुलः = न कलितः रसालमुकुलः येन सः । जिसने आम्र मुकुल का आस्वादन नहीं किया । कोकिलः । न, कलम्—मधुरम् । उदञ्चयति—कूजति—बोलता है ।

सरलार्थ—जिस ने प्रिया के अधर-सुधारस का आस्वादन किया है उसी कवि के काव्य (अधर—सुधारस से आप्यायित हृदय से निकलने के कारण) मधुर होते हैं । जिस कोकिल ने आम की रसभरी मंजरी का आस्वादन नहीं किया है वह मधुर ध्वनि नहीं करता ॥ ४९ ॥

बालाकटाक्षसूत्रितमसतीनेत्रत्रिभागकृतभाष्यम् ।
कविमाणवका दूतीव्याख्यातमधीयते भावम् ॥ ५० ॥

पदार्थ—बालाकटाक्षसूत्रितम्—बालायाः कटाक्षेण सूत्रितं (सूचितम्) बाला के कटाक्ष से सूचित । असतीनेत्रत्रिभागकृतभाष्यम्—असत्याः नेत्रत्रिभागेन बहुल व्यापारेण कृत भाष्यं यस्य तम्–असती के नेत्र व्यापारों से जिसका भाष्य किया । दूती व्याख्यातम्—दूत्या व्याख्यातम्—दूती ने जिसे वचनों द्वारा कहा । भावम्–भाव को । कविमाणवकाः—कवयः माणवका इव—कवि बालकों के समान है । अधीयते—अध्ययन करते हैं—समझते हैं ।

सरलार्थ—(नायिका के हृदयगत भावों को समझने में कवि भी बालको की भाँति असमर्थ होते है) । जब नायिका (लज्जावश) पूर्णरूप से नहीं, केवल कटाक्ष से सूचित भर कर देती है, तदनन्तर उसकी सखी (असती) अपने नेत्र-व्यापारो से किञ्चित् प्रकट कर देती है तथा दूती-वचनों से स्पष्ट कर देती है तभी कवि जो तद्विषय मे बालको की भाँति अनभिज्ञ है, नायिका के भाव को समझ पाते है ।

[बताइये । क्रमशः नायिका, उसकी सखी और दूती द्वारा स्वेच्छा-से प्रकट किये जाने पर ही जब कवि उसके भाव को जान पाते है तो भला नायिका-विषयक शृंगाररसप्रधान काव्य करना अपेक्षाकृत कितना दुष्कर है !]

अथवा

जो कवि नायिका, उसकी सखी और दूती द्वारा प्रकट किये जाने पर ही (नायिका के) भाव समझ पाते हैं वे बालकों के समान (मूर्ख) हैं।

(सच्चे कवि अपनी ऊहा से ही नायिका के हृदयगत भावों को समझ लेते हैं। युक्त ही कहा गया है—अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः। अतः शृंगार रस वर्णन में कोई विरला ही सच्चा कवि समर्थ होता है) ॥ ५० ॥

मसृणपदरीतिगतयः सज्जनहृदयाभिसारिकाः सुरसाः।
मदनाद्वयोपनिषदो विशदा गोवर्धनस्यार्याः ॥ ५१ ॥

पदार्थ—मसृणपदरीति गतयः—मसृणाना (स्निग्धानां, कोमलानां) पदानां गौडी, वैदर्भी, पाञ्चाली इति रीतयः, तासां च गतिः प्राप्तिः यत्र ताः—जिनमें कोमल पद और तीनों रीतियाँ मिलती हैं। (२) मसृणानां पदानां रीत्या गतिः यासां ताः कोमल चरणविन्यास से मन्द-मन्द चलने वाली। सज्जनहृदयाभिसारिकाः—(१) सज्जनहृदयम् अनुसरन्ति—सहृदय व्यक्तियों के हृदय को अधिगत होने वाले अर्थों से युक्त। (२) सज्जनहृदयम् अभिसारयन्ति—सज्जनों के हृदय को अपने अधीन करने वाली। सुरसा—सुष्ठु रसः शृंगारादिः यासु ताः—उत्कृष्ट शृंगार रस से संभृत। (२) आसक्तिमयी। मदनाद्वयोपनिषदः—मदनः एव अद्वयं ब्रह्म तस्य उपनिषदः—मदनरूपब्रह्म के लिए उपनिषद् अर्थात् कामोद्दीपक (२) मदनस्य अद्वयाः उपनिषदः—कामदेव के अद्वितीय उपवेशन (समीप बैठने के स्थान) अर्थात् समीपस्थ होने के कारण परस्पर एक दूसरे के आज्ञाकारी। विशदाः—प्रसादगुण युक्त (२) उज्ज्वलवेषवाली। गोवर्धनस्य—तन्नाम्नः कवेः। आर्याः—(१) छन्दोनाम (२) श्रेष्ठस्त्रियाँ।

सरलार्थ—कवि गोवर्धन की आर्यायें (छन्दोनाम) कोमल चरणविन्यास से मन्द-मन्द चलने वाली, सज्जनों के हृदय को अपने अधीन कर लेने वाली, आसक्तिपूर्ण, कामदेव को (आज्ञाकारी रूप में) अपने समीप रखने वाली तथा विशद (उज्ज्वलवेषा) श्रेष्ठ स्त्रियों की भाँति, कोमल पदों और वैदर्भी आदि रीतियों से पूर्ण, सहृदय के हृदय को अधिगत होने वाले अर्थों से युक्त, उत्कृष्टशृंगाररस संभृत एवम् मदनरूप ब्रह्म के सम्यक् ज्ञान के लिए उपनिषद् रूप अर्थात् कामोद्दीपक हैं ॥ ५१ ॥

वाणी प्राकृतसमुचितरसा बलेनैव संस्कृतं नीता।
निम्नानुरूपनीरा कलिन्दकन्येव गगनतलम् ॥ ५२ ॥

पदार्थ—वाणी। प्राकृतसमुचितरसा–प्राकृते (काव्ये) सम्यक् उचितः रसः यस्याः सा-प्राकृत काव्य में जिसे सरसता उत्पन्न करना सरल है। (२) प्राकृतानां साधारण जनानां समुचितः (सुखावहः) रसः यस्याः—जिसका रस साधारण जनो को सुखावह है । (३) प्राकृते (साधारणजने) समुचितः (अत्यन्तः) रसः (प्रीतिः) यस्याः—जिसकी साधारणजन में अत्यन्त प्रीति है। बलेन—(१) बालात्कारेण (२) बलरामेण। एव। निम्नानुरूपनीरा—निम्नस्य अनुरूपाणि नीराणि यस्याः सा–निम्नगामिनी। कलिन्दकन्या–यमुना इव। गगनतलम्–आकाशम् (२) अत्युच्चस्थानम्। संस्कृतम्। नीता-प्रापिता। प्राप्त कराया-पहुँचाया।

सरलार्थ–जिस प्रकार निम्नगामिनी कालिन्दी को बलराम जी ने गगनतल पर पहुँचा दिया उसी प्रकार यद्यपि प्राकृत काव्य में सरसता उत्पन्न करना वाणी के लिए सरल है यथापि मैंने वाणी का बलपूर्वक संस्कृत रूप में परिणत कर संस्कृत काव्य की रचना की ।

अथवा जिसका रस साधारण जनो को सुखावह है ऐसी वाणी को (प्राकृत गाथा सप्तशती आदि की भाँति प्राकृत पथ पर न लगा कर) मैंने संस्कृतरूप मे प्रयुक्त कर संस्कृत काव्य लिखा ।

अथवा जिसका साधारणजनो में अत्यन्त रस (प्रीति) है ऐसी नीचाभिलाषिणी वाणी को संस्कृत रूप (१–साधुरूप २–सद्वृत्तरूप) प्राप्त कराया ।

[इस प्रकार सर्वथा निम्नानुगामिनी वाणी को संस्कृतरूप गगनतल (अत्युच्च स्थान) पर पहुँचा कर मैंने एक अत्यन्त दुष्कर कार्य करने की धृष्टता की है । यदि इसमें सरसता आदि गुणों का अभाव अथवा कोई अन्य त्रुटि रह गई हो तो सहृदय क्षमा करें ।]

आर्यासप्तशतीयं प्रगल्भमनसामनादृता येषाम् ।
दूतीरहिता इव ते न कामिनीमनसि निविशन्ते ॥५३॥

पदार्थ—इयम् आर्यासप्तशती—आर्याणाम् (१—आर्याछन्दसाम् २—श्रेष्ठस्त्रीणां) सप्तशती। येषां। प्रगल्भमनसाम्—प्रगल्भमनवाले पुरुषो द्वारा। कर्तरि षष्ठी। अनादृताः–सम्मानित नहीं हुई। दूतीरहितः इव ते। कामिनीमनसि —कामिनी के मन मे। न निविशन्ते–प्रवेशं न प्राप्नुवन्ति । प्रवेश नही कर पाते ।

सरलार्थ—जिन प्रगल्भ मन वाले पुरुषो ने इस आर्यासप्तशती (१–आर्याछन्दो की २–श्रेष्ठस्त्रियो की सप्तशती) का आदर नहीं किया, दूती-रहित–से वे कामिनी के मन में स्थान नहीं पा सकते ॥ ५३ ॥

रतरीतिर्वीतवसना प्रियेव शुद्धापि वाङ्मुदे सरसा ।
अरसा सालंकृतिरपि न रोचते शालभञ्जीव ॥५४॥

पदार्थ—रतरीतिवीतवसना–रतरीतौ वीतं वसनं यस्याः सा, सुरत क्रीडा में जिसका वस्त्र खिसक गया। प्रिया इव। शुद्धा अपि–अनुप्रासोपमाद्यलंकार रहिता अपि–शब्दालंकारों से रहित भी। सरसा—उत्कृष्टशृंगाररस संभृत (२) नायक के प्रति अनन्य रति भाव रखने वाली। वाक्—वाणी। मुदे—हर्षाय—हर्ष के लिये। सालंकृतिः—(१) (काव्य के) अलंकारों से युक्त (२) आभूषणों से युक्त। अपि। अरसा—(१) शृंगाररसशून्या (२) रतिभावरहिता। शालभंजी इव–पाषाण प्रतिमा सी। न रोचते–नहीं रुचती।

सरलार्थ—(रस आविर्भूत होने के कारण) सुरत-वेला में वस्त्ररहित किन्तु नायक के प्रति अनन्य रति भाव रखने वाली अतएव सुखावह प्रिया की भाँति शब्दालंकारों से रहित भी सरस वाणी आनन्द प्रदायिनी होती है और अलंकारों से युक्तभी रसशून्य वाणी अलंकारों (भूषणों) से लदी पाषाण प्रतिमा की भाँति मन को नहीं रुचती ॥ ५४ ॥

इति ग्रन्थारम्भव्रज्या व्याख्या समाप्त ॥



अकारवज्या

कोई ग्रामीण युवती प्याऊ (पौसला) पर पानी पिलाने का काम करती है। पथिकों को जल पिलाते समय स्वभावतः प्रायः अञ्चल हट जाने से उसके उन्नत कुचों को विदेश से लौटे पथिक देखते-देखते विरम जाते हैं। यह दृश्य देखकर कोई सहृदय उसके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते हुए, प्रपापालिका से कह रहा है—

अवधिदिनावधिजीवाः प्रसीद जीवन्तु पथिकजनजायाः ।
दुर्लङ्घ्यवर्त्मशैलौ स्तनौ पिधेहि प्रपापालि ॥ १ ॥

पदार्थ—प्रपापालि—पौंसले पर पथिकों को जल पिलाने वाली। सम्बोधन का रूप है। प्रसीद—तू कृपा कर। दुर्लङ्घ्य वर्त्मशैलौ—दुर्लङ्घ्यौ वर्त्मशैलौ इति—मार्ग में स्थित दुर्लङ्घ्य ऊँचे (दो) पर्वत। स्तनौ—स्तनों को। पिधेहि—ढक ले। अवधिदिनावधिजीवाः—अवधिदिनावधि जीवः जीवनं यासां ताः जिनका जीवन पतियों के आने की निश्चित अवधि तक ही है। पथिक जन जायाः—पथिक जनानां जायाः—पथिकों की पत्नियाँ। जीवन्तु—जीवित रह जायें।

सरलार्थ—हे प्रपापालि [जल (जीवन) देकर जीवन की रक्षा करने वाली सुन्दरि !] तू कृपा कर; बीच राह में स्थित ऊँचे दुर्लङ्घ्य पर्वतरूप इन अपने स्तनों को ढक ले [जिससे ये पथिक निर्बाध अपने घर पहुँच जायें] और लौटने की निश्चित घड़ी गिनते-गिनते जीती हुई पथिकों की पत्नियाँ [ठीक समय से इनके पहुँच जाने पर] जी सकें [अन्यथा इनके यहीं विरम जाने पर अवधि बीत जायगी और वे निराश हो प्राण त्याग देंगी तो तुम्हें बड़ा भारी पाप लगेगा और यह जल (जीवन) देकर अर्जित किया सारा पुण्य भी व्यर्थ हो जायगा] ॥ १ ॥

नायक के दूसरा विवाह कर लेने पर उससे घृणा करती हुई नायिका से, उसकी सखी अनुकूल आचरणों से नायक को अधीन रखने का उपदेश देते समय, समर्थन में इसी प्रकार की दूसरी नायिका के आचरण का उदाहरण प्रस्तुत कर रही है—

अतिवत्सला सुशीला सेवाचतुरा मनोऽनुकूला च ।
अजनि विनीता गृहिणी सपदि सपत्नीस्तनोद्भेदे ॥ २ ॥

पदार्थ—गृहिणी—प्रथमपत्नी। सपत्नीस्तनोद्भेदे—सपत्न्याः स्तनयोः उद्भेदे—सपत्नी के स्तनों के प्रादुर्भाव के समय। सपदि—तत्क्षणे एव—उसी समय तत्काल। अतिवत्सला—अतिस्नेहवती। सुशीला—समीचीन स्वभावा। सेवाचतुरा—सेवानिपुणा। मनोऽनुकूला—नायकमनोगत कारिणी—नायक के मन की बात करने वाली। विनीता—नम्रा। अजनि—हो गयी॥

सरलार्थ—[देखो! अमुक नायक के दूसरा विवाह कर लेने पर उसकी प्रथम पत्नी उसे घृणा किये रहती थी] सपत्नी के स्तनों के प्रादुर्भाव होते ही [विलम्ब करने से नायक हाथ से चला जायगा] तत्काल ही (उस चतुर) गृहिणी ने [अपना पहिले का रवैया छोड़कर] नायक के विषय में अत्यन्त स्नेहवती, सुशील, सेवानिपुण, मनोनुकूल और नम्र हो गई। (अतः तुम भी ऐसा ही आचरण कर सफलता प्राप्त करो)॥ २॥

भविष्य की आशा लगाये, शैशवकाल से ही बराबर स्नेह रखता चला आता हुआ पड़ोसी नायक, यौवनकाल आने पर गर्व-वश नायिका द्वारा तिरस्कृत हो अन्योक्ति द्वारा उसे शाप दे रहा है—

अयि कूलनिचुलमूलोच्छेदनदुःशीलवीचिवाचाले।
बकविघसपङ्कसारा न चिरात्कावेरि भवितासि॥ ३॥

पदार्थ—अयि। कूलनिचुलमूलोच्छेदनदुःशीलवीचिवाचाले—कूलनिचुलः (तीरवृक्षः) तस्य मूलोच्छेदने दुः शीलाः वीचयः ताभिः वाचाला तत्सम्बुद्धिः। तीर-वृक्ष का मूलोच्छेदन करने वाली लहरों द्वारा कुत्सित बहुभाषिणि! कावेरि—(१) कं जलं, वेरं शरीरमस्याः इति-जिसका शरीर जल रूप है—कावेरी नदी—सम्बोधन में प्रयुक्त हुआ है। (क वेर+अण्—ङीप्) (२) कुत्सित वेर शरीरमस्याः जिसका शरीर कुत्सित है, रंडी, वेश्या।

बकविघसपङ्कसारा—बकस्य विघसः (भोजनशेषः) यः पङ्कः स एव सारः यस्याः सा-बक के भोजन करने से बचा पङ्क ही सार है जिसका। न चिरात्-अचिरात्-शीघ्र ही। भवितासि—हो जाओगी।

सरलार्थ—तीर वृक्ष (जो तुम्हारा आरम्भ से ही सहवर्ती है और आशा लगाये था कि यौवनावस्था आने पर जल से पूर्ण हो मुझे भी अपने स्पर्श से संताप मिटा कर सुखी बनाओगी) का मूलनष्ट करने वाली लहरियों द्वारा दुर्वादिनि कावेरि! (वेश्ये) [जा, मैं तुझे शाप देता हूँ—तेरा यह यौवनोन्माद शीघ्र नष्ट हो जायगा; तू कावेरी (जलरूप शरीर वाली) है, वह जल शीघ्र सूख जायगा, मत्स्यादि को बक खा जायेंगे] तुझ में यदि कुछ सार रह जायगा तो केवल पङ्क; वह भी इस कारण से कि उसे बक भी नहीं पूछते॥

२—भविष्य में तुम से सुरत-क्रीडा का आनन्द मिलेगा—इस आशा से आरम्भ से ही स्नेह रखने वाले और सदा समीप रहने वाले मुझ ऐसे व्यक्ति का दुर्वचन आदि से तिरस्कार करने वाली, जीवन ले लेने पर तुली हुई वेश्ये (तादृश आचरण करने वाली) तेरा यह यौवन शीघ्र नष्ट हो जायगा—शरीर कंकाल मात्र रह जायगा। रसिकों को कौन कहे, अधम व्यक्ति भी तुझे नहीं पूछेगा। (इस लिए होश में आ जा, अपने इस विपरीत आचरण को त्याग कर, मनोनुकूल, सुशील, स्नेहवती तथा विनीत बन कर पुण्यभागिनी बन जा) ॥३॥

नायिका, पर पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कराने के लिए फुसलाने वाली दूती से कह रही है—

अयि विविधवचनरचने ददासि चन्द्रं करे समानीय।
व्यसनदिवसेषु दूति क्व पुनस्त्वं दर्शनीयासि ॥ ४ ॥

पदार्थ—अयि दूति। विविधवचनरचने—विविधानि वचनानि रचयति (स्त्री) विविध वचनरचना तत् सम्बुद्धिः। हे भाँति-भाँति के वचन रचने वाली। चन्द्रं समानीय—चन्द्रमा सा अति स्पृहणीय एवम् आनन्ददायक को लाकर। करे—हाथ में। ददासि—दे रही हो। व्यसन दिवसेषु—व्यसनम्—अपकीर्त्यादि—तस्य दिवसेषु—अपकीर्ति फैलने के दिनों में। क्व—कुत्र। पुनः फिर। त्वम् दर्शनीया असि—तू दिखाई पड़ेगी।

सरलार्थ—हे नाना प्रकार के वचन रचने वाली दूति! (मैं मानती हूँ) तू चन्द्रमा लाकर मेरे हाथ में दे रही है (असम्भव को भी कर के दिखा रही है और वह वास्तव में चन्द्रमा ही सा सुन्दर, आनन्ददायक और स्पृहणीय है) परन्तु [चन्द्रमा और कलंक का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है; चन्द्रमा (नायक) से मेरा सम्बन्ध हुआ नहीं कि कलंक (अपकीर्ति) लगा समझो] अपकीर्ति फैलने पर (कोई सहायता करनी तो दूर) दिखाई नहीं पड़ेगी। अथवा संयोग के बाद वियोग अवश्य होता है और वियोग के दुःख मुझे झेलना होगा, उस समय तू बात न पूछेगी ॥ ४ ॥

अपकीर्ति के भय से नायक द्वारा परित्यक्त हो जाने की शंका से, प्रेम-सम्बन्ध जोड़ने को अनुद्यत नायिका से दूती कह रही है—

अस्तु म्लानिर्लोको लाञ्छनमपदिशतु हीयतामोजः।
तदपि न मुञ्चति स त्वां वसुधाच्छायामिव सुधांशुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—म्लानिः—तेजो हीनता। अस्तु—हो। लोकः—संसार।

लाञ्छनम्—कलंकम् । अपदिशतु—कहे । ओजः—प्रसन्नता, चमक । हीयताम्—नष्ट हो जाय । तदपि—तो भी । सः—वह । सुधांशुः—चन्द्रमा । वसुधाछायाम् इव—पृथ्वी की छाया की भाँति । त्वाम् न मुञ्चति—तुझे नहीं छोड़ता है ।

सरलार्थ—देखो ! चन्द्रमा भूछाया को अपने हृदय में रखता है, उसके कारण उसका तेज घट गया, लोग उस छाया को कलंक कहते हैं, उसका ओज भी नष्ट हो गया तथापि वह उसे अपने हृदय से अलग नहीं करता, इसी सुधांशु की तरह (स्पृहणीय एवम् आह्लादकारक) वह (नायक) तुझे नहीं छोड़ेगा ; भले ही उसमें मलिनता आ जाय, लोग अपवाद कहें, ओज नष्ट हो जाय ॥ ५ ॥

नायिका की सखी, नायिका के दुर्वचनों का उलाहना देते हुए नायक को ही अपराधी सिद्ध करती कह रही है—

अतिचापलं वितन्वन्नन्तर्निविशन्निकामकाठिन्यः ।
मुखरयसि स्वयमेतां सद्वृत्तां शङ्कुरिव घण्टाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—अन्तः (१) हृदय में, (२) मध्य में । निविशन्—(१) प्रवेश करता, (२) लगता । अतिचापलम्—(१) अन्यनायिकासंभोगादि, (२) बार-बार लगना और अलग होना । वितन्वन्—बढ़ाता हुआ । निकामकाठिन्यः—निकामम् अत्यन्तं काठिन्यं यस्मिन् सः—जिसमें अत्यन्त कठोरता भरी है । स्वयम् । सद्वृत्ताम् (१) सच्चरित्र, (२) सुवर्तुलाकार । शङ्कुः—लौह-कील । घण्टाम् इव । एताम् मुखरयसि—इससे दुर्वचन कहलवाते हो ।

सरलार्थ—हृदय से अत्यन्त कठोर तुम (पहले तो सज्जनता दिखाकर) उसके हृदय में प्रवेश कर (बाद में) अन्यनायिकासंभोगादिरूप चपलता (अपराध) बढ़ाते ही जाते हो और (इस प्रकार के आचरण से) उस (बेचारी) सच्चरित्रा को दुःखी बना उससे तुम स्वयम् दुर्वचन कहलवाते हो—दुर्वचन के लिए उसे विवश कर देते हो; (तिस पर उसी का दोष देते हो) । जिस प्रकार कठोर लौह-कील सुवर्तुलाकार घण्टा के मध्य में लग-लग और हट-हट कर उसे मुखरित किया करता है ॥ ६ ॥

मदन-पीडित अतएव तत्काल संभोगाभिलाषी नायक से नायिका कह रही है—

अङ्गेषु जीर्यति परं खञ्जनयूनोर्मनोभवप्रसरः ।
न पुनरनन्तर्गर्भितनिधिनि धरामण्डले केलिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—खञ्जनयूनोः—खञ्जन-दम्पती का । मनोभवप्रसरः—मनोभवस्य

प्रसरः—कामप्रसार। अङ्गेषु—अङ्गों मे। परम्—केवल। जीर्यति—समाप्त हो जाता है। अनन्तर्गर्भितनिधिनि—न अन्तर्गर्भितः निधिः यत्र तस्मिन्—जहाँ अन्दर निधि नहीं है। धरामण्डले—भूमण्डल पर। न पुनः केलिः—सुरतक्रीडा नहीं होती।

सरलार्थ—खञ्जन-दम्पती का मदन-प्रसार अङ्गों में केवल समाप्त हो जाता है परन्तु जहाँ पृथ्वी के भीतर निधि नहीं है उस स्थान पर वे सुरत-क्रीडा नहीं करते (भलीभाँति परीक्षित गुप्त संकेतस्थल के बिना रति उचित नहीं, उसका परिणाम बुरा होता है)।

('बृहत्संहिता' (४५।१२) और 'वसन्तराजः' (१०।२५) के आधार पर यह प्रसिद्ध है कि खंजन जहाँ मैथुन करते हैं उस स्थान पर पृथ्वी के भीतर निधि होती है) ॥ ७ ॥

स्वामी के निकट रहता हुआ स्वामी का प्रीति-पात्र भी रहे—इसकी विधि बताते हुए कोई व्यक्ति किसी से कह रहा है—

अन्धत्वमन्धसमये बधिरत्वं बधिरकाल आलम्ब्य।
श्रीकेशवयोः प्रणयी प्रजापतिर्नाभिवास्तव्यः॥ ८॥

पदार्थ—अन्धसमये—सुरतसमये। अन्धत्वम्—अन्धभावम्। बधिरकाले—क्रीडाकालीनव्रीडाकरवाक्यकाले—क्रीडा के समय व्रीडाकर वचनों के समय। बधिरत्वम्—बधिरभावम्। आलम्ब्य—अपना कर। प्रजापतिः—प्रजानां पतिः—ब्रह्मा। नाभिवास्तव्यः—नाभौ सविधे वास्तव्यं यस्य—नाभि पर अर्थात् अत्यन्त निकट रहने वाला। श्रीकेशवयोः—लक्ष्मी और विष्णु दोनों के। प्रणयी—प्रीतिमान्।

सरलार्थ—विष्णु की नाभि पर अर्थात् अत्यन्त निकट रहने वाले ब्रह्मा जी सुरत समय में भी श्री और विष्णु के मध्यवर्ती रहते हैं और (अपनी कुशल नीति के कारण) सुरत काल मे अन्धभाव और व्रीडाकारक वचनों के समय बधिरभाव अपना कर प्रत्येक दशा में लक्ष्मी और विष्णु के प्रीतिपात्र बने हुए हैं॥ ८॥

गँवारो के सामने अपने गुण-प्रदर्शन की निष्फलता से खिन्न गुणी को कोई समझा रहा है—

अयि कोपकार कुरुषे वनेचराणां पुरो गुणोद्गारम्।
यन्न विदार्य विचारितजठरस्त्वं स खलु ते लाभः॥ ९॥

पदार्थ—अयि कोषकार—हे रेशम के कीट ! वने चरन्तीति वनेचराः तेषां वनेचराणाम्—वनेचरों, विवेकशून्यजनों के । पुरः—अग्रे,सामने । गुणोद्गारम्—गुणानाम् (तन्तूनाम्) उद्गारम् (उद्गिरणम्)। मुख से बाहर निकालना। कुरुषे, यत्—जो । विदार्य—चीर कर । न । विचारित जठरः—विचारितम् (सम्यक् अवलोकितम्) जठरम् (उदरं) यस्य सः—जिसका उदर भली भाँति देखा गया । त्वम् । सः । खलु । ते लाभः—तुम्हारा लाभ ।

सरलार्थ—हे कोषकार ! वनेचरों (विवेकशून्य जनों) के आगे तुम गुणों (१–तन्तुओं, २–पाण्डित्य आदि) को प्रकट कर रहे हो तो तुम अपना यही बड़ा लाभ समझो कि ये लोग [ये गुण (तन्तु, पाण्डित्य आदि) कहाँ से निकल रहे हैं—इस कौतूहल से] तुम्हारा पेट चीर कर परीक्षण नहीं कर रहे हैं ।

(इस प्रकार मूर्खों के आगे गुण-प्रकाशन अलाभकर ही नहीं अनर्थकारी भी होता है) ॥ ९ ॥

दूती, नायक को आकृष्ट करने के लिए नायिका के तद्विषयक प्रेमातिशय का वर्णन कर रही है—

अगणितमहिमा लङ्घितगुरुरधनेहः स्तनंधयविरोधी ।
इष्टाकीर्तिस्तस्यास्त्वयि रागः प्राणनिरपेक्षः ॥ १० ॥

पदार्थ—अगणितमहिमा—न गणितः महिमा येन सः—जिसने कुल प्रतिष्ठादिरूप महिमा को कुछ नहीं माना। लङ्घितः गुरुः (श्वशुरादिः)येन सः—जिसने ससुर आदि को (आज्ञा न मान कर) तिरस्कृत कर दिया । अधनेहः—न धनस्य ईहा (इच्छा) यस्य सः—जिसे धन की इच्छा नहीं है । स्तनंधय-विरोधी—स्तनं धयति (पिबति) स्तनन्धयः (अत्यन्तबालः) तस्य विरोधी—स्तन पीने वाले अर्थात् अत्यन्त छोटे बच्चे के विरुद्ध कार्य करने वाला । प्रसव के बाद जल्दी संभोग से स्तनो में दूध घट जाता है जो बच्चे के विरुद्ध है। इष्टाकीर्तिः—इष्टा अकीर्तिः यस्य सः—जिसे अपकीर्ति इष्ट है । तस्याः । त्वयि—तुझ में । रागः—आसक्तिः । प्राणनिरपेक्षः—प्राणाः निरपेक्षाः यस्य सः—जिसे प्राणो की भी अपेक्षा नहीं है ।

सरलार्थ—तुम्हारे प्रति नायिका का राग कुल-प्रतिष्ठा आदि का ध्यान नहीं रखता, गुरुजन का (निषेध न मान कर) तिरस्कार कर चुका, (नन्हें बच्चे के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले संभोगजन्य दुष्प्रभाव पर ध्यान न देकर) शिशु का विरोधी बन बैठा; (संसार कुछ भी कहे) उसे अपकीर्ति ही इष्ट है ।

(कहाँ तक कहूँ, वह इस सीमा तक पहुँच चुका है ।) उसे प्राणों (के चले जाने) की भी परवाह नहीं है ॥ १० ॥

अन्य रमणी के साथ संभोग का भेद खुल जाने पर नायिका के समाधान के लिए मिथ्या एवं कपटपूर्ण वचन कहते हुए नायक से नायिका कह रही है—

अपराधादधिकं मां व्यथयति तव कपटवचनरचनेयम् ।
शस्त्राघातो न तथा सूचीव्यधवेदना यादृक् ॥ ११ ॥

पदार्थ—अपराधात्—अन्यरमणीसंभोगरूपात्—अन्यरमणीसंभोगरूप अपराध से । अधिकम् । तव इयम्—तुम्हारी यह । कपटवचनरचना—कपटवचनानां रचना—कपटपूर्ण बातें बनाना । माम्—मुझे । व्यथयति—व्यथा देता है । शस्त्राघातः—शस्त्राणाम् आघातः—शस्त्रों का आघात । न तथा—वैसा नहीं । यादृक्—जैसा । सूचीव्यधवेदना—सूच्याः व्यधेन (छेदनेन) वेदना—सुई चुभाने की वेदना ।

सरलार्थ—[देखिये—मुझे सारा रहस्य ज्ञात हो चुका है । सच-सच बता देने पर तुम्हारा अपराध क्षम्य हो सकता था किन्तु उसे छिपाने के लिए तुम्हारा कपट-पूर्ण वचन अपराध को और गुरुतर बनाता जा रहा है ।] तुम्हारे अपराध से उतनी व्यथा मुझे नहीं हो रही है जितनी तुम्हारी इस कपट-पूर्ण वचन-रचना से । (सचमुच) शस्त्र का आघात उतना पीडाकारक नहीं होता जितना सुई के चुभने की वेदना ॥ ११ ॥

किसी असती के कटाक्ष से देखे जाने पर, यह मुझमें अनुरक्त है—ऐसा सोच कर प्रसन्न होने वाले व्यक्ति से एक अनुभवशील व्यक्ति कह रहा है—

असतीलोचनमुकुरे किमपि प्रतिफलति यन्मनोवर्ति ।
सारस्वतमपि चक्षुः सतिमिरमिव तन्न लक्षयति ॥ १२ ॥

पदार्थ—असतीलोचनमुकुरे—असत्याः लोचनमेव मुकुरः तस्मिन्—असती के लोचनरूप दर्पण में । किमपि—अनिर्वचनीय । मनोवर्ति—मनोगतम्—मन में वर्तमान । यत् प्रतिफलति—जो प्रतिबिम्बित होता है । तत्—उसे । सारस्वतम् अपि—सरस्वत्याः इदम्—सरस्वती का भी । चक्षुः—नेत्र । सतिमिरम् इव—तिमिरेण (अन्धभावेन) सह वर्तते—सतिमिरम्—अन्धेपन के रोग से मानों युक्त । न लक्षयति—नहीं देख पाता ।

सरलार्थ—[मानता हूँ कि नेत्र से मनोगत (रागादि भाव) प्रकट जाना जा सकता है किन्तु यद्यपि सब का मन सामान्यतः अस्थिर होता है तथापि असती का मन तो अत्यन्त अस्थिर होता है ;उसमें कोई वृत्ति क्षण भर भी नहीं

ठहरती। उसके मन में रागादि कोई भाव उत्पन्न हुआ और वह नेत्र-व्यापार से व्यक्त भी हो गया तो यह न समझो कि वह मुझ में अनुरक्त है क्योंकि मन की चंचलता के कारण उसमें दूसरे ही क्षण उसके विपरीत भाव पैदा हो जाता है और उसके तत्कालीन इंगित और एतत्कालीन भाव में अनुरूपता नहीं रह जाती अतः नेत्र-व्यापार से असती के मनोगत भाव को समझना असंभव है] असती के लोचनरूप दर्पण मे अनिर्वचनीय भाव जो प्रतिफलित होता है उसे (तुम्हारे नेत्र क्या) सरस्वती के भी नेत्र अन्धे-से (तिमिररोगग्रस्त-से) नहीं देख पाते (क्योंकि नेत्र से व्यक्त भाव और मनोवर्ति परिवर्तित भाव में अनुरूपता नहीं रहती)।

[इसी ढंग का दोहा महाकवि विहारी ने भी कहा है जिसमें नायिका का सौन्दर्य प्रत्येक क्षण विकसित होते रहने के कारण बड़े-बड़े चित्रकार उसका वास्तविक चित्र नहीं बना पाते—

लिखन वैठि जाकी सबी, गहि-गहि गरव गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥

अन्तर केवल इतना है कि विहारी ने रमणी के रूप की परिवर्तनशीलता दिखायी है तो गोवर्धनाचार्य ने क्षण-क्षण बदलते मन के भावों की] ॥ १२ ॥

नायक के दुर्वचन से प्रकुपित नायिका को उसकी सखी समझा रही है—

अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः सोऽगुरुभवो धूपः ॥ १३ ॥

पदार्थ—अन्यमुखे—अन्यस्य (अप्रियस्य) मुखे—अन्य (अप्रिय) के मुख में। यः दुर्वादः— दुर्वचनम्—गाली आदि। सः एव—दुर्वाद ही। प्रियवदने—प्रियस्य वदने—प्रिय के मुख में। परिहासः—(निन्दायुक्त होते हुये भी) रञ्जक। इतरेन्धनजन्मा—इतरेभ्यः इन्धनेभ्यः जन्म यस्य सः— जो अगुरु से भिन्न इन्धनों से उत्पन्न होता है। यः धूमः—जो धुआँ। स एव—वही। अगुरुभवः—अगर से उत्पन्न। धूपः।

सरलार्थ—दूसरे के मुख से (दुष्टतावश) निकला वचन जो दुर्वाद समझा जाता है वही प्रिय के मुख से (कौतुकवश) निकलने पर परिहास (रञ्जक वचन) बन जाता है। अन्य इन्धन से उत्पन्न होने के कारण जो धुआँ समझा जाता है वही अगुरु से उत्पन्न होने पर धूप कहलाता है॥ १३ ॥

दुराचारी नायक से नायिका की सखी कह रही है—

अयि सुभग कुतुकतरला विचरन्ती सौरभानुसारेण।
त्वयि मोहाय वराकी पतिता मधुपीव विषकुसुमे ॥ १४ ॥

पदार्थ—अयि सुभग—अरे सौभाग्यशालिन् ! कुतुकतरला—कुतुकेन तरला (चंचला)—कौतुकवश तरल, चंचल। सौरभानुसारेण—सौरभम् (१) कीर्तिः, (२) सौगन्ध्यम्, तस्य अनुसारेण—(१) अधिकगुणवान् हो। इस कीर्ति का अनुसरण करने से, (२) सुगन्ध का अनुसरण करने से। विचरन्ती—विचरती। विषकुसुमे—विषैले फूल पर। मधुपी इव—भ्रमरी के समान। त्वयि—तुझ पर। वराकी—वेचारी। मोहाय—(१) दुःखाय, (२) मूर्च्छायै—(१) दुःख के लिए, (२) मूर्च्छा के लिए। विषकुसुम का रसपान करने से मधुपी को मूर्च्छा आ जाती है। पतिता—(१) आसक्ता, (२) स्थिता।

सरलार्थ—(ऐसी नायिका तुझ में आसक्त हो गई अतः) हे सोभाग्य-शालिन् ! वह कौतुकवश चंचल हो, (तू संभवतः बड़ा गुणवान् होगा अतः तेरे संगम से लोक उसे सौभाग्यशालिनी समझेगा) कीर्ति की कामना से, सुगन्ध की स्पृहा से विषकुसुम पर भ्रमरी की भाँति परिणाम में केवल मोह (१—दुःख, २—वैचित्य) के लिए बिना सोचे-समझे तुझ में आसक्त हो गई (किन्तु उसके प्रति तुम्हारा आचरण बड़े दुःख का विषय है) ॥ १४ ॥

नायिका अपेक्षाकृत अधिकैश्वर्यशाली नायक के प्रति आकृष्ट है—ऐसी शंकामात्र से नायिका के विषय में उदासीन नायक से उसका अनुभवशील सखा कह रहा है—

अयि मुग्धगन्धसिन्धुरशङ्कामात्रेण दन्तिनो दलिताः ।
उपभुञ्जते करेणूः केवलमिह मत्कुणाः करिणः ॥ १५ ॥

पदार्थ—अयि । इह—लोके । मुग्धगन्धसिन्धुरशंकामात्रेण—मुग्धः (सुन्दरः) गन्धसिन्धुरः (गन्धगजः) तस्य शङ्कामात्रेण—सुन्दर गन्धगज की केवल शङ्का से (जिसके गन्धमात्र से गज दूर भाग जाते हैं उस गज को गन्धगज कहते हैं)। दन्तिनः—दन्तयुक्ताः गजाः—दाँत वाले (बड़ी जाति के) गज। दलिताः—पलायिताः—भाग गए। केवलम्। मत्कुणाः—विना दाँत वाले (ये हाथी छोटी जाति के होते है, इनका डील-डौल छोटा होता है, दाँत मुख से बाहर नही निकला रहता है, लोक मे इन्हे मकुना हाथी कहा जाता है)। करिणः—गजाः। करेणूः—हस्तिनीः, उपभुञ्जते—हथिनियो का उपभोग करते हैं।

सरलार्थ—[नायिका के पास तरुण ऐश्वर्यशाली की गमनशंका से ही तुम्हें उसके पास जाने में हिचकना नहीं चाहिए अन्यथा अन्य कोई अधम पुरुष उसका उपभोग करेगा क्योकि लोक मे ऐसा देखा जाता है] मतवाले

गन्धगज की शङ्का मात्र से तरुण दन्ती गजों के भाग जाने पर विना दाँत वाले छोटी जाति के मकुना हाथी (खुल कर, निर्बाधरूप से) हथिनियों का उपभोग करते हैं ॥ १५ ॥

एक स्त्री दूसरी से किसी वधू के विषय में 'यह ऊपर से लज्जाशील वनती है, वास्तव में बड़ी दुराचारिणी है' ऐसा कह रही है—

अतिविनयवामनतनुर्विलङ्घते गेहदेहलीं न वधूः ।
अस्याः पुनरारभटीं कुसुम्भवाटी विजानाति ॥ १६ ॥

पदार्थ—अतिविनयवामनतनुः—अतिविनयेन वामनस्य इव तनुः यस्याः सा—अतिविनय से जिसका शरीर वामन का-सा है । वधूः । गेहदेहलीम्—गेहस्य देहलीम्—घर की चौखट को । न विलङ्घते—(लज्जातिशय के कारण) नहीं लाँघती । अस्याः पुनः—इसकी । आरभटीम्—साहस विशेष को । कुसुम्भवाटी—कुसुम्भानां वाटी—केसर की क्यारी । विजानाति—भली भाँति जानती है ।

सरलार्थ—(यो तो देखने में यह अत्यन्त लज्जाशील वनती है) इसका शरीर (लज्जा से झुका) वामन का-सा (छोटा) दिखाई देता है और (वैसा ही अभिनय कर, दिन में) घर की चौखट नहीं लाँघती; किन्तु (रात में) इसके साहस-विशेष को (यह) केसर की क्यारी खूब जानती है (जहाँ पर-पुरुषों के साथ खुल कर निर्भय सुरत-क्रीडा किया करती है) ॥ १६ ॥

गुण प्रकट करने में सङ्कोच करने वाले व्यक्ति से कोई अनुभवशील व्यक्ति कहता है—

अन्तर्गतैर्गुणैः किं द्वित्रा अपि यत्र साक्षिणो विरलाः ।
स गुणो गीतेर्यदसौ वनेचरं हरिणमपि हरति ॥ १७ ॥

पदार्थ—यत्र—जिसके विषय में । द्वित्राः अपि—दो-तीन भी । विरलाः साक्षिणः—विरले साक्षी । अन्तर्गतैः—उन अन्तर्गत (रञ्जन में असमर्थ) । गुणैः किम्—गुणों से क्या फल । गीतेः सः गुणः—गीति का गुण, गुण है । यत्—जो । असौ—वह । वनेचरम्—वन में विचरने वाले । हरिणम् अपि—मृग को भी । हरति—रञ्जयति—रञ्जन करता है ।

सरलार्थ—(मुश्किल से) जिनके दो-तीन विरले साक्षी हो, उन भीतर छिपे (अरंजक) गुणों से क्या ? (सर्वथा निष्फल हैं) । गुण (वास्तव में) गीत का (प्रशंसनीय) है जो वनेचर (ग्राम-सम्बन्ध-रहित होने के कारण स्वर-माधुर्य से अनभिज्ञ) हरिण को भी मुग्ध कर देता है ॥ १७ ॥

नायिका की सखी, सपत्नी की सखी से, नायिका के उत्कर्ष का वर्णन कर रही है—

अलुलितसकलविभूषां प्रातर्बालां विलोक्य मुदितं प्राक् ।
प्रियशिरसि वीक्ष्य यावकमथ निःश्वसितं सपत्नीभिः ॥१८॥

पदार्थ—अलुलितसकलविभूषाम्—न लुलिताः (व्यस्ताः) सकलाः विभूषाः यस्याः ताम्—जिसके भूषण व्यस्त नहीं हैं । बालाम्—यौवनशालिनीम्—बाला को । प्रातः । विलोक्य–देख कर । सपत्नीभिः प्राक् मुदितम्—सपत्नियाँ पहिले प्रसन्न हुईं । अथ—अनन्तरम् । प्रियशिरसि—प्रियस्य शिरसि—प्रिय के मस्तक पर । यावकम्—अलक्तकम्—महावर को । वीक्ष्य—दृष्ट्वा—देखकर । निःश्वसितम्—दुःखी हुईं ॥

सरलार्थ—प्रातः बाला के आभूषणों को अस्त-व्यस्त न देख कर (संभोग नहीं हुआ, ऐसा सोच कर) सपत्नियाँ पहले तो प्रसन्न हुईं परन्तु उसके बाद ही प्रिय के मस्तक पर (मान-निरसन के लिए बाला के पैरों पर पड़ने के कारण लगी) महावर देख कर (उसके सौभाग्योत्कर्ष से) दुःखी हो उठीं ॥ १८ ॥

ऊपर से लज्जाशील किन्तु अवसर पर नायक के साथ निर्भर सुरत क्रीडा करके थकी पड़ी नायिका से उसकी सखी कह रही है—

अयि लज्जावति निर्भरनिशीथरतनिःसहाङ्गि सुखसुप्ते ।
लोचनकोकनदच्छदमुन्मीलय सुप्रभातं ते ॥ १९ ॥

पदार्थ—अयि लज्जावति—लज्जाशून्ये (यहाँ विपरीतलक्षणा है) । निर्भरनिशीथरतनिःसहाङ्गि—निर्भरम् अत्यन्तम् निशीथे मध्यरात्रे रतेन निःसहानि शिथिलानि अङ्गानि यस्याः तत्सम्बुद्धिः—हे आधीरात में अत्यन्त सुरत-क्रीडा करने से थके अङ्गोवाली ! सुखसुप्ते-सुखेन सुप्ता तत्सम्बुद्धिः—हे सुख से सोयी हुई ! लोचनकोकनदच्छदम्—लोचने एव कोकनदे (रक्तकमले) तयोः छदम्—नेत्रकमल की पलकों को । उन्मीलय—खोल । ते सुप्रभातम् (भवतु)—तुम्हारा प्रभात मङ्गलकारक हो ।

सरलार्थ—हे लज्जावति ! (तू रति सदन में जाने के समय बड़ी लज्जाशील बनती थी और प्रातः अभी तक निर्लज्ज-सी पड़ी हुई है) । अर्धरात्र में रति करने से, हे थके अङ्गोवाली ! (अतएव शेष रात भर) सुख से सोई हुई (अब तो उठ) । (अपने) रक्तकमल नेत्रों की पलकें तो खोल । (रात की भाँति ही) प्रभात तुम्हारे लिए सुख कर हो (ईश्वर करे, रात की ही भाँति तुम्हारा दिन भी गुजरे) ॥ १९ ॥

अपराधी नायक, नायिका का मान दूर करने में प्राप्त अर्धसफलता का वर्णन अपने सखा से कर रहा है—

अमिलितवदनमपीडितवक्षोरुहमतिविदूरजघनोरु ।
शपथशतेन भुजाभ्यां केवलमालिङ्गितोऽस्मि तया ॥ २० ॥

पदार्थ—अमिलितवदनम्—न मिलितं वदनम् यस्मिन् तत्—मुख से मुख न मिला जिसमें। अपीडितवक्षोरुहम्—न पीडितौ वक्षोरुहौ (स्तनौ) यत्र तत्—जिसमे स्तन कस कर दवे नहीं। अतिविदूरजघनोरु—अतिविदूरः जघनोरुप्रदेशः यत्र—जिसमें जघन और जङ्घाये दूर ही रक्खी गईं। (उक्त तीन पद क्रिया विशेषण है) तया—उससे। केवलम्। शपथशतेन—सैकड़ों शपथ लेने पर। भुजाभ्याम्—भुजाओ से। आलिङ्गितः अस्मि—आलिङ्गित हुआ।

सरलार्थ—(अन्य उपायो से अपनी अपराधहीनता का विश्वास न दिला सका) केवल (मेरे) सैकड़ों शपथ लेने पर (किसी तरह विश्वास कर, पूर्णरूप से मान न छोड़कर) उसने मुख से मुख विना मिलाये, स्तनो को भली भाँति मेरे हृदय में विना लगाये, जघन और ऊरुप्रदेश को अत्यन्त दूर किये, भुजाओ से मेरा (अधूरा) आलिङ्गन किया ॥ २० ॥

नायिका की सखी, नायिका से उसकी दृष्टि के उत्कर्ष का वर्णन कर रही है—

अतिपूजिततारेयं दृष्टिः श्रुतिलङ्घनक्षमा सुतनु ।
जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना कं न मोहयति ॥२१॥

पदार्थ—सुतनु—शोभना तनूः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—हे सुन्दर शरीर वाली! अतिपूजिततारा—(१) अतिपूजिता तारा यस्याः सा—जिसकी पुतली श्रेष्ठ है, (२) अतिपूजिता तारा (देवता) यत्र सा—जिसमें तारा नामक देवता की पूजा होती है। श्रुतिलङ्घनक्षमा—(१) श्रुतेः कर्णस्य लङ्घने क्षमा—(विस्तार मे) कान को लाँघने मे समर्थ अर्थात् कर्णपर्यन्त विस्तृत। (२) श्रुतेः—वेदस्य—वेदोक्त सकल अनुष्ठानो का उल्लङ्घन करने वाली। सवासना—वासनया (१—अभिप्रायविशेषेण, २—मिथ्याविचारेण) सह वर्तमाना।

सरलार्थ—हे सुतनु! सुन्दर पुतली वाली, कानो को लाँघने में समर्थ (कर्णपर्यन्त विस्तृत), विशेष अभिप्राय वाली अथवा सवासना—कज्जलादि संस्कारवती तेरी आँखें; जिसमें तारा नामक देवता की पूजा होती है, जो वेदोक्त सकल अनुष्ठानों का उल्लङ्घन करती है और जो मिथ्या-विचारों से युक्त है

उस जिनसिद्धान्त की स्थिति की भाँति किस पुरुष को मोहित नहीं करतीं अर्थात् सब को मोहित कर लेती है ॥ २१ ॥

रति की लज्जा से युक्त नवोढा को धृष्ट बनाने के लिए उसकी सखी उससे अन्य नवोढा का वृत्तान्त कह रही है—

अलमविषयभयलज्जावञ्चितमात्मानमियमियत्समयम् ।
नवपरिचितदयितगुणा शोचति नालपति शयनसखीः ॥२२॥

पदार्थ—नवपरिचितदयितगुणा—नवपरिचितः दयितस्य गुणः यया सा—प्रिय के रतिसुख का जिसने नूतन परिचय प्राप्त किया। इयम्—यह—तुम्हारी पड़ोसिन। इयत् समयम्—इतने समय तक। अविषयभयलज्जावञ्चितम्—अविषये अस्थाने भयलज्जाभ्यां वञ्चितम्—अनुपयुक्त भय और लज्जा से वञ्चित। आत्मानम्—अपने को। अलम्—अत्यन्तम्। शोचति—पश्चात्ताप करती है—पछताती है। शयनसखीः—एक सेज पर साथ सोने वाली (अभिन्नहृदय) सखियो से। न आलपति—बात नहीं करती।

सरलार्थ—तुम्हारी यह पड़ोसिन, प्रिय के साथ रति के सुख का पहिले-पहल अनुभव कर इतने समय तक अनुपयुक्त और व्यर्थ भय और लज्जा के कारण (रति-सुख से) वञ्चित अपने को बहुत पछताती है और (इन सहेलियो ने पहले ही क्यो नहीं बताया इसलिए) अभिन्न सखियो से (रूठ कर) बोलती तक नहीं। (अतः मेरे कहने से तुम भी व्यर्थ भय और लज्जा त्याग कर प्रिय के पास जाया करो) ॥ २२ ॥

सखी नायक से नायिका के वियोगजन्य दुःख का वर्णन कर रही है—

अनुरागवर्तिना तव विरहेणोग्रेण सा गृहीताङ्गी ।
त्रिपुररिपुणेव गौरी वरतनुरर्धावशिष्टैव ॥ २३ ॥

पदार्थ—अनुरागवर्तिना—(१) अनुरागाधीन, (२) सानुराग। उग्रेण—(१) प्रचण्डेन, (२) शिवेन, (१) प्रचण्ड (विरह) से (२) महादेव जी से। महादेव का नाम 'उग्र' भी है। तव विरहेण—तुम्हारे विरह से। गृहीताङ्गी—गृहीतानि अङ्गानि यस्याः सा—(१) विरह से जिसके अङ्ग व्याप्त हैं, (२) जिसका शरीर अपने रूप में मिला लिया। त्रिपुररिपुणा—त्रयाणां पुराणां रिपुणा—(१) महादेवेन, (२) तीनों लोको के वैरी विरह ने। गौरी इव। वरतनुः—नायिका। अर्धावशिष्टा—अर्धभागः एव अवशिष्टः यस्याः सा—(१) विरहक्षीणता से आधी हो गई, (२) अर्धनारीश्वर के होने से आधा शरीर रह गया।

सरलार्थ—जिस प्रकार अनुरागवर्ती (सानुराग) उग्रनामा त्रिपुररिपु शंकर जी के द्वारा अङ्गों को अपने स्वरूप में मिला लेने से, (अर्धनारीश्वर के नाते) गौरी का शरीर आधा ही रह गया; उसी प्रकार अनुरागाधीन उग्र (प्रचण्ड) त्रिपुररिपु (तीनों लोकों के शत्रु) विरह से सकल शरीर व्याप्त होने के कारण वह सुन्दर शरीर वाली नायिका (विरह में क्षीण होने से) आधी हो गयी है ॥ २३ ॥

नायिका, अपने प्रति आकृष्ट नायक को विरक्त करने की चेष्टा करने वाली अन्य नायिकाओं का उपहास कर रही है—

अन्यप्रवणे प्रेयसि विपरीते स्रोतसीव विहितास्थाः ।
तद्गतिमिच्छन्त्यः सखि भवन्ति विफलश्रमा हास्याः ॥२४॥

पदार्थ—सखि ! विपरीते—निम्नानुगामिनि । स्रोतसि इव—प्रवाहे इव—जैसे नीचे की ओर बहने वाले प्रवाह मे । अन्यप्रवणे प्रेयसि—अन्यस्याम् आसक्ते नायके—अन्याङ्गना में आसक्त नायक के विषय में । विहितास्थाः—विहिता कृता आस्था याभिः ताः—जिन्होंने आस्था (आसक्ति) की । तद्गतिम्—तस्य गतिम्—(१) अपने मे उसकी गति (आसक्ति) को, (२) ताम् गतिम्—उस विपरीत गमन को । इच्छन्त्यः—चाहती हुई । विफलश्रमाः—विफलः श्रमः यासां ताः—जिनका श्रम निष्फल है । हास्याः—(१) निन्दायोग्य, (२) उपहासयोग्य ।

सरलार्थ—हे सखि ! अन्य नायिका में आसक्त नायक तथा निम्नानुगामी जल-प्रवाह को चाह कर उलटे अपनी ओर घुमाने की चेष्टा करने वाली स्त्रियाँ असफल प्रयत्न होकर व्यर्थ में उपहासास्पद होती हैं ॥२४॥

सखी नायक से नायिका के विरहातिशय का वर्णन कर रही है—

अधिकः सर्वेभ्यो यः प्रियः प्रियेभ्यो हृदि स्थितः सततम् ।
स लुठति विरहे जीवः कण्ठेऽस्यास्त्वमिव संभोगे ॥ २५ ॥

पदार्थ—सर्वेभ्यः प्रियेभ्यः अधिकः प्रियः—(१) सब रूपादि विषयों से, (२) सब सुहृज्जनो से, अधिक प्रिय । सततम्—निरन्तरम् । हृदि स्थितः—(१) (उसका वही स्थान होने के कारण) हृदय में स्थित, (२) (सर्वदा चिन्तन करने से) हृदय में स्थित । संभोगे—संभोग के समय । त्वम् इव—तुम्हारी तरह । विरहे—तुम्हारे विरह में । जीवः । अस्याः कण्ठे—इसके कण्ठ मे । लुठति—(१) निकलने के लिए छटपटा रहा है, (२) लिपटता है, लोटता है ।

सरलार्थ—सब प्रियों से अधिक प्रिय, निरन्तर (इसके) हृदय में स्थित तुम जिस प्रकार संभोग के समय इसके कण्ठ में लिपटते, आलिङ्गन करते, लोटते हो उसी प्रकार सकल प्रिय (रूपादि) विषयों से अधिक प्रिय, निरन्तर हृदय में रहने वाला जीव, तुम्हारे विरह में इसके कण्ठ में लोटता है—निकलने के लिए छटपटाता है ॥ २५ ॥

अन्य रमणी मे आसक्त भी प्रिय का अवमान न करो, अन्यथा दुःखी हो विदेश चला जायगा तो तुम और पछताओगी—इस प्रकार समझाती सखी से नायिका कह रही है—

अनयनपथे प्रिये न व्यथा यथा दृश्य एव दुष्प्रापे ।
म्लानैव केवलं निशि तपनशिला वासरे ज्वलति ॥ २६ ॥

पदार्थ—प्रिये—कान्ते । अनयनपथे—न नयनस्य पथः तस्मिन्—विदेशस्थे इत्यर्थः—विदेश में रहने पर । तथा—उतनी । न—नहीं । यथा—जितनी । दृश्ये एव दुष्प्रापे—दिखलाई ही दे, मिल न सके, ऐसी स्थिति में । व्यथा । तपनशिला—सूर्यकान्तमणिः । निशि—रात मे, केवलम् । म्लाना एव—मलिन ही । वासरे—दिन में । ज्वलति—जलने लगती है ।

सरलार्थ—प्रिय आँखो के सामने तो पड़ा करे किन्तु उसका सङ्गम प्राप्त न हो सके—ऐसी स्थिति में जितनी व्यथा होती है उतनी प्रिय के विदेश रहने पर नही । सूर्यकान्त मणि रात मे सूर्य के विना (उसके विरह में) केवल मलिन रहती है और दिन में (सूर्य का दर्शन होते हुये भी उसे न पाकर संताप से) जलने लगती है ॥ २६ ॥

सखी नायिका को उपदेश दे रही है—

अविभाव्यो मित्रेऽपि स्थितिमात्रेणैव नन्दयन्दयितः ।
रहसि व्यपदेशादयमर्थ इवाराजके भोग्यः ॥ २७ ॥

पदार्थ—मित्रेऽपि—मित्रों की उपस्थिति में भी, सूर्य के वर्तमान रहते हुए । अविभाव्यः—अचिन्तनीयः—चिन्तन योग्य नहीं । स्थितिमात्रेण—केवल वर्तमान रह कर । नन्दयन्—प्रसन्न करता हुआ । दयितः—(१) प्रियः, (२) प्रीति विषयः । रहसि—एकान्त में । व्यपदेशात्—व्याजात्—बहाने से । अराजके—देश मे अशान्ति की स्थिति होने पर । अर्थः इव—धन की भाँति । भोग्यः—उपभोग करना चाहिये ।

सरलार्थ—मित्रजन मे भी अथवा दिन मे प्रिय का चिन्तन नही करना चाहिए । वह उस समय अपनी स्थिति मात्र से आनन्द देता है (यही बहुत

है)। (रात में) एकान्त में बहाने से उसका उपभोग करना चाहिए। जैसे (छिपा कर रक्खा) धन दिन मे अथवा मित्रो मे खोल कर देखा भी नहीं जाता केवल उसकी स्थिति से ही मन आनन्दित हुआ करता है और देश के अराजक होने पर—देश में अन्धेर होने पर, वह लूट न लिया जाय और अपने भी काम न आ सके अतः किसी बहाने से (कोई न कोई प्रयोजन निकाल कर) उसका उपभोग किया जाता है ॥ २७ ॥

पराङ्गनासंभोगरूप अपराध सुन कर रूठी हुई नायिका से नायक कह रहा है—

अश्रौषीरपराधान्मम तथ्यं कथय मन्मुखं वीक्ष्य ।
अभिधीयते न किं यदि न मानचौराननः कितवः ॥२८॥

पदार्थ—मम अपराधान्—मेरे अपराधो को। अश्रौषीः—तू ने सुना। मन्मुखम्—मम मुखम्—मेरे मुख को। वीक्ष्य—देख कर। तथ्यं कथय—सत्य कहो, इसमें कहाँ तक सत्यता है बताओ। यदि। मानचौराननः—मानस्य चौररूपम् आननम् यस्य सः—जिसका आनन मान को चुरा लेता है। कितवः—धूर्तः (त्वम्)। न (पुरः भवेः)—सामने न रहो। किं न अभिधीयते—क्यों न कहा जाता।

सरलार्थ—नायक—तू ने मेरे अपराध सुने हैं ? (केवल सुनने से ही किसी को अपराधी मान लेना अनुचित है)। मेरा मुख देख कर सच सच बता (क्या मैं अपराधी प्रतीत होता हूँ)। नायिका—हाँ, क्यो न कहती, किन्तु तू धूर्त यदि मेरे सामने न होता और तेरा मुख देखते ही मेरा मान हर न उठता —तेरा मुख देखते ही (स्नेह-वश) मेरा मान चला जाता है और मै कुछ कह नहीं पाती ॥ २८ ॥

नायक और नायिका की आसक्ति का कोई वर्णन कर रहा है—

अन्योन्यमनु स्रोतसमन्यदथान्यत्तटात्तटं भजतोः ।
उदितेऽर्केऽपि न माघस्नानं प्रसमाप्यते यूनोः ॥ २९ ॥

पदार्थ—स्रोतसम्—प्रशस्तं स्रोतः यस्मिन् तत्—प्रशस्त जल-प्रवाह है जहाँ। प्रशंसा अर्थ में स्रोतस् शब्द से अच् प्रत्यय है। तटात् अन्यत्तटम्—तट से दूसरा तट। अथ—अनन्तर। अन्यत् तटम्—दूसरे तट को। अनु—लक्ष्य कर। अन्योऽन्यम्—परस्पर। भजतोः—सेवन करते हुए। यूनोः—युवक और युवती का। माघस्नानं न प्रसमाप्यते—माघस्नान समाप्त नहीं होता।

सरलार्थ—(परस्पर निभृत संभाषण आदि का उपयुक्त अवसर निकालने के लिए) 'इस तट की अपेक्षा वह तट प्रशस्त जलप्रवाह युक्त है' इस बहाने से बार-बार एक तट से दूसरे तट को जाते नायक और नायिका का माघस्नान (जो सूर्योदय के पूर्व ही समाप्त हो जाना चाहिए) सूर्योदय हो जानेपर भी समाप्त नहीं होने को आता ॥ २९ ॥

यौवनशालिनी, किन्तु दुर्जनों की सङ्गति से अनुपभोग्य नायिका से नायक अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

अयि चूतवल्लि फलभरनताङ्गि विष्वग्विकासिसौरभ्ये ।
श्वपचघटकर्पराङ्का त्वं किल फलितापि विफलैव ॥ ३० ॥

पदार्थ—अयि चूतवल्लि—हे आम्रलते । फलानां भरैः नतानि अङ्गानि यस्याः तत्सम्बुद्धिः—फलभरनताङ्गि—फल-भार से (स्तनभार से) जिसका अङ्ग झुका है । विष्वग्विकासिसौरभ्ये—विष्वक् (सर्वतः) विसारि (प्रसरण-शीलम्) सौरभ्यम् (१—सौगन्ध्यम् , २—कीर्तिः) यस्याः तत्सम्बुद्धिः—सब ओर जिसकी सुगन्ध (कीर्ति) फैल रही है । श्वपचघटकर्पराङ्का—श्वपचाः चाण्डालाः, तेषां घटकर्पराणाम् अङ्कः चिह्नं यस्याः सा—(१) चाण्डाल के घटखप्पर से अङ्कित, (२) दुर्जनसङ्गशालिनी । त्वम् । किल—निश्चयेन फलिता अपि—फली हुई भी । विफला एव—विफल ही (है) ।

सरलार्थ—फल भार से झुकी, चारो ओर प्रसरित सुगन्ध वाली आम्र-लते ! चाण्डाल के घटखप्पर से अङ्कित (दुर्जनसङ्गतिशालिनी) होने के कारण तू फली हुई भी निश्चय निष्फल ही है ॥ ३० ॥

संसार में प्रतिष्ठापूर्वक क्षणिक जीवन भी उत्तम है—ऐसा कोई कह रहा है—

अञ्जलिरकारि लोकैर्म्लानिमनाप्त्वैव रञ्जिता जगती ।
संध्याया इव वसतिः स्वल्पापि सखे सुखायैव ॥ ३१ ॥

पदार्थ—लोकैः—जनैः—लोगो ने । अञ्जलिः अकारि—(१) अर्घदानार्थ अंजलि बाँधा, (२) हाथ जोड़ा, आज्ञाकारी बन गये । म्लानिम्—(१) निस्तेजस्कता, (२) असामर्थ्य । अनाप्त्वा एव—न प्राप्त हो कर ही । जगती । रञ्जिता—(१) लाल कर दी गई, (२) अनुरागवती बना दी गई । सन्ध्यायाः इव—सन्ध्या की-सी । स्वल्पा अपि वसतिः—थोड़े समय तक की अवस्थिति । सुखाय एव—सुख के लिए ही (होती है) ।

सरलार्थ—संसार (अर्चटान के लिए) अञ्जलि जोड़ता है, विना निस्तेज हुए ही जगती को रञ्जित (रक्तिम, अनुरागवती) वना देता है। इस प्रकार का, सन्ध्याकाल का-सा क्षणिक जीवन भी सुखकारक ही होता है ॥ ३१ ॥

नायिका नायक से कह रही है—

अगृहीतानुनयां मामुपेक्ष्य सख्यो गता वतैकाहम् ।
प्रसभं करोषि मयि चेत्त्वदुपरि वपुरद्य मोक्ष्यामि ॥ ३२ ॥

पदार्थ—अगृहीतानुनयाम्—न गृहीतः (स्वीकृतः) अनुनयः यया ताम्—जिसने (सखियों का) अनुनय स्वीकार नहीं किया । माम् उपेक्ष्य—मेरी उपेक्षा कर । सख्यः—सखियाँ । गताः—चली गयीं । वत—खेद—हर्ष । यहाँ इसका प्रयोग खेद और हर्ष इन दोनों अर्थों में है । अहम् एका—मैं अकेली । चेत्—यदि । प्रसभं करोषि—बलात्कार करोगे । अद्य—अभी । त्वदुपरि—तुझ पर । वपुः मोक्ष्यामि—शरीर छोड़ दूँगी (प्राण त्याग दूँगी, शरीर गिरा दूँगी)।

सरलार्थ—मैंने सखियों का अनुनय नहीं स्वीकार किया अतः (मेरे मान को असाध्य समझ) मुझे छोड़ कर वे चली गयीं। खेद है, इस समय मैं अकेली हूँ। यदि तुम मेरे साथ बलात्कार करते हो तो अभी मैं तुम पर अपना शरीर दे दूँगी (प्राण त्याग दूँगी)।

(इस प्रकार के कथन से नायिका का अभिप्राय है—हर्ष का विषय है कि मैंने सखियों का अनुनय स्वीकार नहीं किया अतः वे चली गयीं और मैं अकेली हूँ: ऐसे अवसर पर तुम मेरे साथ बलात्कार कर सकते हो और मैं भी तुम पर फट पड़ूँगी एवम् यथेच्छ विपरीत रति का आनन्द लूँगी) ॥ ३२ ॥

नायक को नायिका की ओर आकृष्ट करने के लिए सखी नायक से उत्तेजक वचनों द्वारा कह रही है—

अस्थिररागः कितवो मानी चपलो विदूपकस्त्वमसि ।
मम सख्याः पतसि करे पश्यामि यथा ऋजुर्भवसि ॥३३॥

पदार्थ—अस्थिररागः—न स्थिरः रागः यस्य सः—जिसका अनुराग स्थिर नहीं है । कितवः—धूर्तः । मानी । चपलः । विदूपकः—विकृत अंगों, वचनों, वेषों से हँसाने वाला । त्वम् असि । मम सख्याः करे—मेरी सखी के हाथों में । पतसि—पड़ते हो । यथा ऋजुः—जैसा सरल । भवसि—होते हो । पश्यामि—देखती हूँ ।

सरलार्थ—(मैं मानती हूँ) तुम्हारा अनुराग किसी एक में स्थिर नहीं रहता, तुम धूर्त धोखा देने में बड़े निपुण, गर्वशाली, चंचल और अनेक प्रकार

की चेष्टा करने वाले विदूषक हो, परन्तु मेरी सखी के साथ में पड़कर तुम कितने सीधे हो जाओगे—यह मुझे देखना है (उसके हाथ में पड़ते ही तुम्हारी ये सारी बातें गायब होयेंगी) ॥ ३३ ॥

नायिका की सखी, क्रुद्ध होकर जाते नायक से, नायिका की आसक्ति का वर्णन करती, नायक को मनाने की चेष्टा कर रही है—

अकरुण कातरमनसो दर्शितनीरा निरन्तरालेयम् ।
त्वामनु धावति विमुखं गङ्गेव भगीरथं दृष्टिः ॥ ३४ ॥

पदार्थ—अकरुण—न करुणा यस्मिन् तत्सम्बुद्धिः—हे निष्करुण ! कातरमनसः—(षष्ठयन्त) कातरं मनः यस्याः तस्याः—कातर मन है जिसका उस नायिका की । दर्शितनीरा—दर्शितं नीरं यया सा—(१) जिसने आँसू प्रकट किया (बहाया), (२) जल जिसने प्रकट किया । निरन्तराला—निर्गतम् अन्तरालम् यस्याः सा—(१) निरवकाश—सर्वत्र विद्यमान, (२) आकाश से निकली । इयं दृष्टिः—यह दृष्टि । भगीरथं गंगा इव—जैसे गङ्गा भगीरथ के पीछे । विमुखम्—(१) क्रोध से पीछे मुड़कर न देखने वाले, (२) आगे गमन करने के कारण पीछे न देखने वाले । त्वामनु—तुम्हारे पीछे । धावति—दौड़ रही है ।

सरलार्थ—(परम आसक्त नायिका को छोड़कर जाने वाले) अकरुण ! कातरमन वाली नायिका की,—आँसू गिराती अविच्छिन्न दृष्टि, (क्रोध-वश) पीछे मुड कर न देखने वाले तेरे पीछे; आकाश से उतरी, जल-प्रवाह प्रकट करती, आगे-आगे जाते भगीरथ के पीछे गङ्गा के समान,—लगी दौड़ रही है ॥ ३४ ॥

हृदय में मान छिपाये हुई नायिका से नायक कह रहा है—

अन्तःकलुपस्तम्भितरसया भृङ्गारनालयेव मम ।
अप्युन्मुखस्य विहिता वरवर्णिनि न त्वया तृप्तिः ॥ ३५ ॥

पदार्थ—अन्तःकलुपस्तम्भितरसया—अन्तः कलुपेण (१—क्रोधादिना, २—पङ्कादिना) स्तम्भितः (अप्रकटीकृतः) रसः (१—शृंगारादिः २—जलम्) यया तया—(१) हृदय गत क्रोधादि के कारण जिसके द्वारा रस स्तम्भित हो गया, (२) भीतर रुके पंक आदि के कारण जिसके द्वारा जल का गिरना बन्द हो गया । भृङ्गारनालया इव—भृङ्गारस्य नालया इव—सोने की झारी (कलश) की नलिका (टोटी) की तरह । त्वया वरवर्णिनि—तुमने, हे सुन्दरि ! उन्मुखस्य (१) उत्कण्ठितस्य, (२) ऊर्ध्वमुखस्य—उत्कण्ठित, (२) ऊर्ध्वमुख की । मम—मेरी । तृप्तिः न विहिता—तृप्ति नहीं की ।

सरलार्थ—हे वरवर्णिनि ! हृदयगत क्रोधादि के कारण रस न प्रकट करने वाली तूने मुझ उत्कण्ठित को तृप्त नहीं किया; जैसे सुवर्ण की झारी की नलिका (टोंटी) अन्दर कीचड़ आदि फँस जाने के कारण जल का गिराना रोक देती है और प्यासा व्यक्ति (जल की आशा से) ऊपर मुँह किये ताकता रह जाता है ॥ ३५ ॥

नायक के सङ्गम का रहस्य लोक में प्रकट हो जाने पर आश्चर्यचकित नायिका से सखी अन्योक्तिद्वारा कह रही है—

अयि सरले सरलतरोर्मदमुदितद्विपकपोलपालेश्च ।
अन्योन्यमुग्धगन्धव्यतिहारः कषणमाचष्टे ॥ ३६ ॥

पदार्थ—अयि सरले। सरलतरोः—सरलवृक्ष का। मदमुदितद्विपकपोलपालेः—मदेन (१—दानेन, २—मन्मथेन), मुदितः द्विपः तस्य कपोलपालेः—दान से मुदित गज की गण्डस्थली का। अन्योन्यमुग्धगन्धव्यतिहारः—अन्योन्यम् मुग्धस्य (सुन्दरस्य) गन्धस्य (अनुरागस्य) व्यतिहारः (विनिमयः)। कषणम्—(१) रगड़, (२) योग। आचष्टे—कह देता है।

सरलार्थ—अयि सरले ! सरलवृक्ष और मदमुदित गज की गण्डस्थली का परस्पर सुन्दरगन्ध का आदान-प्रदान, उनके पारस्परिक कषण (१—रगड़, २—योग) को संसार में प्रकट कर देता है (इस प्रकार पारस्परिक अनुराग ही सम्बन्ध को बता देता है) ॥ ३६ ॥

नायक, नायिका द्वारा देखे जाने से प्राप्त सुख का वर्णन अपने मित्र से कर रहा है—

अस्याः कररुहखण्डितकाण्डपटप्रकटनिर्गता दृष्टिः ।
पटविगलितनिष्कलुषा स्वदते पीयूषधारेव ॥ ३७ ॥

पदार्थ—अस्याः—इस (नायिका) की। कररुहखण्डितकाण्डपटप्रकट-निर्गता दृष्टिः—करे रोहति कररुहः तेन खण्डितः (सच्छिद्रीकृतः) काण्डपटः तेन प्रकटं निर्गता—नख से बनाये, कनातगत छिद्र से स्पष्ट निकली दृष्टि। पटविगलितनिष्कलुषा—पटेन विगलिता अतः निष्कलुषा—वस्त्र से छानी गई अतएव निर्मल। पीयूषधारा इव—अमृतधारा-सी। स्वदते—स्वादिष्ठ लगती है।

सरलार्थ—कनात में नखद्वारा बनाये गये छिद्र से स्पष्ट निकली, इस नायिका की दृष्टि, वस्त्र से छनी अतः निर्मल पीयूषधारा-सी मन को भाती है ॥ ३७ ॥

पतिगृह को प्रथम वार गमन करती बाला की प्रसन्नता का वर्णन एक स्त्री दूसरी से कर रही है—

अस्याः पतिगृहगमने करोति माताश्रुपिच्छिलां पदवीम् ।
गुणगर्विता पुनरसौ हसति शनैः शुष्करुदितमुखी ॥ ३८ ॥

पदार्थ—अस्याः—इसके। पतिगृहगमने—पति के घर गमन के अवसर पर। माता। पदवीम्—मार्गम्—मार्ग को। अश्रुपिच्छिलाम्—अश्रुभिः पिच्छिलाम्—आँसुओं से चिकना, फिसलन वाला अर्थात् अत्यन्त आर्द्र। करोति—कर रही है। गुणगर्विता—गुणैः (रूपादिभिः) गर्विता—रूप, यौवन आदि गुणों से गर्वीली। पुनः असौ—और वह। शुष्करुदितमुखी—शुष्कम् (अश्रुरहितं) रुदितम् (रोदनं) यस्य तत् मुखं यस्याः सा—शुष्करोदन जिसका मुख करता है। शनैः हसति।

सरलार्थ—इसके पहिले-पहल पति के घर जाते समय माता तो (वात्सल्य से) मार्ग को आँसुओं से आर्द्र कर दे रही है और वह गुणों से गर्वीली अश्रुरहित रोदन (केवल दिखाने के लिए) करती, धीरे-धीरे हँसती है ॥ ३८ ॥

विदेश से घर को प्रस्थित पथिक उत्कण्ठित हो कह रहा है—

अङ्के निवेश्य कूणितदृशः शनैरकरुणेति शंसन्त्याः ।
मोक्ष्यामि वेणिबन्धं कदा नखैर्गन्धतैलाक्तैः ॥ ३९ ॥

पदार्थ—अङ्के निवेश्य—अङ्क में बैठा कर। कूणितदृशः—कूणिता—संकोचिता दृक् यया तस्याः, जिसने आँखें बन्द कर ली हैं। हे अकरुण। शनैः—धीरे से। इति—ऐसा। शंसन्त्याः—कहती हुई (उस पत्नी का)। गन्धतैलाक्तैः—गन्धतैलेन आक्तैः—गन्धतैल लगे हुए। नखैः—नखों से। कदा—कब। वेणीबन्धं—वेणी बन्धन को। मोक्ष्यामि—खोलूँगा।

सरलार्थ—(बहुत दिनों से बँधी वेणी को खोलते समय होते कष्ट से) मुँदी आँखों वाली 'अरे अकरुण, धीरे से (खोल)' ऐसा कहती हुई प्रिया का वेणी-बन्धन (अपने) सुगन्धित तैल लगे नखों से कब खोलूँगा (प्रोषित-पतिका को केशसंस्कार आदि करने का निषेध है) ॥ ३९ ॥

दूती, नायिका को विना अलंकार आदि धारण किए ही अविलम्ब अभिसार के लिए प्रेरित करती हुई कह रही है—

अलमनलंकृतिसुभगे भूषणमुपहासविषयमितरासाम् ।
कुरुषे वनस्पतिलता प्रसूनमिव वन्ध्यवल्लीनाम् ॥ ४० ॥

पदार्थ—अलम्—अत्यर्थम्—अत्यन्त। अनलंकृतिसुभगे—बिना अलंकार के ही सौभाग्यशालिनि! इतरासाम्—अन्यासाम्—अन्यस्त्रियो के। भूषणम्—भूषण को। वन्ध्यवल्लीनाम्—उन लताओं के, जिनमें फूल लगते हैं पर फल नहीं। प्रसूनम् इव—पुष्प को जैसे। वनस्पतिलता—जिसमें पुष्प के बिना ही फल लगते हैं। त्वम्। उपहासविषयं कुरुषे—उपहासास्पद बना रही हो।

सरलार्थ—अरे विना अलंकार के ही (प्रिय को आकृष्ट करने का) सौभाग्य रखने वाली, (भूषण धारण करने पर भी प्रिय को आकृष्ट करने में असमर्थ) अन्य स्त्रियों के भूषण को तू, वन्ध्यलताओं के विफल प्रसून को वनस्पतिलता के समान, उपहासास्पद बना रही है ॥ ४० ॥

कोई, संयोगवश महत्त्व प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की निन्दा कर रहा है—

अबुधा अजङ्गमा अपि कयापि गत्या परं पदमवाप्ताः।
मन्त्रिण इति कीर्त्यन्ते नयबलगुटिका इव जनेन॥ ४१॥

पदार्थ—अबुधाः—ज्ञानशून्याः, पण्डितभिन्नाः वा—ज्ञानशून्य, मूर्ख। अजङ्गमाः—(१) गतिशून्य, (२) इधर-उधर भेजने योग्य नहीं। कयापि गत्या—(१) विशेषचाल से, (२) दैववश। परं पदम्—(१) प्रथम पंक्तिसदन, (२) उत्कृष्ट-स्थान को। अवाप्ताः—प्राप्त कर। नयबलगुटिकाः—नयबलस्य गुटिकाः इव—बुद्धिबल की गोलियों की भाँति। जनेन—लोगो के द्वारा। मन्त्रिणः इति कीर्त्यन्ते—अमात्य की पदवी पाते हैं।

सरलार्थ—जैसे पदाति नामक गुटिका (गोली) राजसदन में संयोग-वश पहुँच कर अमात्यों द्वारा व्यवहृत होकर बुद्धिबल की गुटिका प्रसिद्ध हो जाती है उसी प्रकार ये मूर्ख, इधर-उधर भेजने योग्य भी नही, विशेष चाल से उच्च पद प्राप्त कर लोगो के द्वारा 'अमात्य' कहे जाते हैं॥ ४१॥

मेरी सखी अत्यन्त अभिमानशालिनी है—ऐसा कहती हुई सपत्नी की सखी से नायिका की सखी कह रही है—

अतिशीलशीतलतया लोकेषु सखी मृदुप्रतापा नः।
क्षणवास्यदह्यमानः प्रतापमस्याः प्रियो वेद॥ ४२॥

पदार्थ—लोकेषु—जनेषु—लोगो में। अतिशीलशीतलतया—अतिशीलः शीतलः (स्वभावः) यस्याः सा अतिशीलशीतला, तस्याः भावः अतिशीतशीतलता तया। अथवा—शीलम्—शोभनः स्वभावः, अतिशीलः अत्यन्तसत्स्वभावः, तस्य शीतलतया—सौम्यतया इत्यर्थः—सौम्य स्वभाव के कारण। नः सखी—

हमारी सखी। मृदुप्रतापा। अस्याः। क्षणवाम्यदह्यमानः—क्षणवाम्येन क्षणिक-कौटिल्येन अथवा क्षणे उत्सवे कौटिल्येन प्रणयकोपेन—प्रणयकोप से। दह्यमानः—संतप्त होता हुआ। प्रियः। प्रतापम्—तेजोविशेष को, प्रकृष्ट सन्ताप को। वेद—जानता है।

सरलार्थ—यों तो (इसकी) सौम्यता के कारण लोग हमारी सखी को मृदुप्रताप (निरभिमान) समझते हैं। किन्तु इसके प्रताप (तेजोविशेष, प्रकृष्ट सन्ताप) को, (इसकी) क्षणिक कुटिलता अथवा प्रणय कोप से सन्तप्त होता (इसका) प्रिय (ही) जानता है ॥ ४२ ॥

यदि यह (नायिका) उत्कृष्ट गुण रखती है तो इसका नायक क्यों अन्य अंगनाओं में अनुरक्त रहता है—ऐसा कहती हुई किसी स्त्री से नायिका की सखी कह रही है—

अन्यास्वपि गृहिणीति ध्यायन्नभिलषितमाप्नोति ।
पश्यन्पाषाणमयीः प्रतिमा इव देवतात्वेन ॥ ४३ ॥

पदार्थ—अन्यासु अपि—अन्य अंगनाओं में भी। गृहिणी इति ध्यानम्—अपनी नायिका की ही भावना करता। अभिलषितम्—(१) आनन्द, (२) वांछित फल। आप्नोति—पाता है। पाषाणमयीः प्रतिमाः—पाषाणमयी प्रतिमा को। देवतात्वेन—देवता भाव से। पश्यन् इव—देखता हुआ जैसे।

सरलार्थ—(अपनी गृहिणी के समान गुणवती न होने पर भी) अन्य अंगनाओं में भी अपनी नायिका की भावना से आनन्द प्राप्त करता है जैसे पत्थर की प्रतिमाओं को देवता भाव से देखनेवाला व्यक्ति वाञ्छित फल को पाता है ॥ ४३ ॥

गर्वशाली नायक से नायिका की सखी कह रही है—

अनुपेत्य नीचभावं बालक परितो गभीरमधुरस्य ।
अस्याः प्रेम्णः पात्रं न भवसि सरितो रसस्येव ॥ ४४ ॥

पदार्थ—बालक !—अपरिपक्व बुद्धिवाले ! नीचभावम्—गर्वशून्यता को। अनुपेत्य—न प्राप्त होकर। परितः—चारों ओर से। गभीरमधुरस्य—(१) गभीरम्—बहुपरिमाणम्, मधुरं—सुखदम्, (२) अगाध और मधुर रसवाला। अस्याः—इसके। प्रेम्णः पात्रम्—(१) पात्र, (२) दोनों तटों के बीच का प्रदेश। सरितः—नदी का। जलस्य इव—जल का सा। न भवसि।

सरलार्थ—हे नासमझ ! तू नीच भाव (१—गर्वशून्यता, २—झुकाव) न

अपनाने के कारण इस नायिका के अत्यन्त मधुर और बहुपरिमाण सुखद प्रेम का पात्र नहीं बन पा रहा है। देख, नीचा (नम्र) होने के कारण ही नदी के दोनों तट के बीच का प्रदेश, नदी के अगाध मधुर रस वाले जल से पूर्ण हो जाता है (किन्तु तुम वैसा आचरण नहीं कर पा रहे हो—यह खेद का विषय है) ॥ ४४ ॥

सखी अन्योक्ति के द्वारा नायिका की प्रशंसा कर रही है—

अधिवासनमाधेयं गुणमार्गमपेक्षते न च ग्रथनाम् ।
कलयति युवजनमौलिं केतककलिका स्वरूपेण ॥ ४५ ॥

पदार्थ—अधिवासनम्—संस्कार। आधेयम्—औपाधिक। गुणमार्गम्—गुणस्य सूत्रस्य मार्गम्—सूत्र के मार्ग (छिद्र) को। ग्रथनाम्—गूँथने को। न च अपेक्षते—आवश्यक नहीं समझती। केतककलिका—केतकस्य कलिका—केतक (केवड़ा) की कली। स्वरूपमात्रेण—अपने रूप मात्र से। युवजनमौलिम्—यूनां जनाना मौलिम्—युवकों के शिर को। कलयति—प्राप्त होती है, उनका शिरोभूषण बनती है।

सरलार्थ—केतकी की कली को सुगन्धित पदार्थ से सुवासित होने, अस्वाभाविक कृत्रिम (सूत डालने के लिए छिद्रों) तथा गूँथने आदि की अपेक्षा नहीं होती। वह तो स्वरूप मात्र से युवकों का शिरोभूषण बनती है।

(नायिका स्वयं पद्मिनी होने के कारण सुगन्धित पदार्थों से सुवासित होने, स्वाभाविक गुणों से युक्त होने के कारण कृत्रिम गुणों का अन्वेषण करने और नायक को स्वयं वश में रखने की शक्ति रखने के कारण दूती आदि के नियोजन की अपेक्षा नहीं रखती। उसके तो स्वरूपमात्र से युवकजन सामने माथा टेकते और अपनाये जाने की प्रार्थना किया करते हैं) ॥ ४५ ॥

नायिका के विषय में नायक की आसक्ति बढ़ाने के लिए सखी नायक से कह रही है—

अपनीतनिखिलतापां सुभग स्वकरेण विनिहितां भवता ।
पतिशयनवारपालिज्वरौषधं वहति सा मालाम् ॥ ४६ ॥

पदार्थ—सुभग—सौभाग्यशालिन् !। अपनीतनिखिलतापाम्—अपनीतः निखिलः तापः यया ताम्—जिसने समस्त सन्ताप को दूर कर दिया। भवता स्वकरेण—स्वेन करेण—आप द्वारा, अपने हाथ से। विनिहिताम् मालाम्—पिन्हाई गई माला को। पतिशयनवारपालिज्वरौषधम्—वारं पालयितुम् शीलमस्येति

वारपाली, पत्युः शयनमेव वारपाली ज्वरः तस्य औषधम्—बारी से आने वाले ज्वर को वारपाली ज्वर कहा जाता है, जैसे अँतरिया (एक दिन का अन्तर देकर आने वाला ज्वर), इसी प्रकार तिजरिया, चौथिया आदि। पति का शयन ही वारपालि ज्वर (चातुर्थिकादि) है, उसके लिए औषधरूप। सा वहति—वह धारण किये रहती है।

सरलार्थ—हे सुभग! अखिल सन्ताप (१—दुःख, २—नानाविध ज्वर) को नष्ट कर देने वाली, आप के द्वारा अपने ही हाथ से पहिनायी गयी माला को वह (नायिका) पतिशयन रूप चातुर्थिक आदि ज्वर के लिए औषध-सी धारण किये रहती है॥ ४६॥

नायकविषयक, नायिका की आसक्ति का वर्णन सखी नायक से कर रही है—

अगणितगुणेन सुन्दर कृत्वा चारित्रमप्युदासीनम्।
भवतानन्यगतिः सा विहितावर्तेन तरणिरिव॥ ४७॥

पदार्थ—हे सुन्दर! अगणितगुणेन—(१) अगणिताः गुणाः यस्य तेन—जिसके अगणित गुण है, (२) अगणितः (अनादृतः) गुणः (बन्धनरज्जुः) येन तेन—जिसने बन्धनरज्जु का तिरस्कार कर दिया। भवता—आप द्वारा। चारित्रम् अपि—(१) चरित्रमेव चारित्रम् (पातिव्रत्यम्) तदपि—पातिव्रत को भी, (२) च+अरित्रम्—अरित्रम्—पतवार को भी। उदासीनं कृत्वा—तिरस्कृत्य—तिरस्कृत कर। आवर्तेन—(जल के) भँवर द्वारा। तरणिः इव—नौका-सी। अनन्यगतिः—नास्ति अन्या गतिः यस्याः—(१) जिसकी और कोई गति (शरण) नही है, (२) जिसका अन्यत्र गमन नही होता। सा विहिता—कृता—वह कर दी गई।

सरलार्थ—हे सुन्दर! असंख्य चातुर्यादि गुणवाले आपने उसका पातिव्रतधर्म भी छुड़ा कर अब तो उसे अनन्यगति बना दिया—आप के अतिरिक्त और कोई उसे शरण नहीं है। जैसे आवर्त, नाव को अपने मे ही ऐसा आकृष्ट किये रहता है कि उसे बन्धनरज्जु रोक नहीं पाती, पतवार भी दूसरी ओर ले जाने में असफल रहता है और नाव उसी जगह घूम घुमा कर चक्कर लगाया करती है॥ ४७॥

पराङ्गना द्वारा उत्तरीय वस्त्र रख लेने से और अन्य वस्त्र न होने के कारण लज्जित व्यक्ति से कोई कहता है—

अनुरक्तरामया पुनरागतये स्थापितोत्तरीयस्य।
अप्येकवाससस्तव सर्वयुवभ्योऽधिका शोभा॥ ४८॥

पदार्थ—अनुरक्तरामया—अनुरक्तया रामया—अनुरक्त रमणी द्वारा। पुनरागतये—पुनः आने के लिए। स्थापितोत्तरीयस्य—स्थापितम् उत्तरीयम् यस्य तस्य—जिसका उत्तरीय (ऊपर पहनने का कपड़ा) रख लिया गया। एकवाससः—एकं वासः (वस्त्रं) यस्य तस्य—जिसके एक ही वस्त्र है तव—तुम्हारी। सर्वयुवभ्यः—सकलैश्वर्यशालिपुरुषेभ्यः—समस्त ऐश्वर्यशाली तरुणों से। शोभा अधिका—शोभा बढ़कर है।

सरलार्थ—(हे युवक!) इसी बहाने तुम पुनः आ सको—इस प्रयोजन से, अनुरक्त रमणी ने जो तुम्हारा उत्तरीय (वस्त्र) रख लिया और तुम्हारे पास वही एक वस्त्र था तो (यह लज्जा का विषय नहीं) समस्त ऐश्वर्यशाली युवकों से तुम्हारी शोभा अधिक है॥ ४८॥

मार्ग में सहसा नायिका के अर्ध आलिङ्गन का वर्णन, कोई अपने मित्र से कर रहा है—

अर्धः प्राणित्येको मृत इतरो मे विधुंतुदस्येव।
सुधयेव प्रियया पथि संगत्यालिङ्गितार्धस्य॥ ४९॥

पदार्थ—पथि—मार्गे—मार्ग में। संगत्या—सङ्गति, मुठभेड़ होने से। प्रियया—प्रिया द्वारा। आलिङ्गितार्धस्य—आलिङ्गितः अर्धः यस्य तस्य—जिसका अर्ध (अङ्ग) आलिङ्गित है। मे—मेरा। सुधया—सुधा द्वारा। विधुन्तुदस्य—विधुं (चन्द्रं) तुदति इति विधुंतुदः तस्य (राहोः)—चन्द्रमा को जो व्यथित करता है ऐसे राहु का। इव—जैसे। एकः अर्धः—एक आधा भाग। प्राणिति—जीवति—जी रहा है। इतरः—दूसरा आधा भाग। मृतः—मर गया।

सरलार्थ—मार्ग में उसकी मुठभेड़ हो जाने के कारण आधे शरीर का आलिङ्गन हो जाने से मेरा (वह) आधा भाग तो जीवित है और शेष आधा मर चुका है जैसे सुधा द्वारा राहु का॥ ४९॥

नायक अपनी नायिका की सौम्यता का वर्णन अपने सखा से कर रहा है—

अवधीरितोऽपि निद्रामिषेण माहात्म्यमसृणया प्रियया।
अवबोधितोऽस्मि चपलो बाष्पस्तिमितेन तल्पेन॥ ५०॥

पदार्थ—निद्रामिषेण—निद्राव्याजेन—निद्रा के बहाने। अवधीरितः—तिरस्कृतः—तिरस्कृत। अपि—भी। माहात्म्यमसृणया—माहात्म्येन—प्रशस्त अन्तःकरण होने के कारण, मसृणया—स्निग्धया—प्रियया—स्निग्ध प्रिया द्वारा। चपलः। बाष्पस्तिमितेन—बाष्पैः अश्रुभिः स्तिमितेन—आर्द्रेण। तल्पेन। अवबोधितः—ज्ञापितः अस्मि। मैं सूचित किया गया।

सरलार्थ—(पहिले तो मान के कारण) निद्रा के बहाने उसने मेरा तिरस्कार किया (किन्तु तुरन्त ही) अपने प्रशस्त अन्तःकरण से स्निग्ध प्रिया ने आँसुओ से आर्द्र सेज द्वारा मुझे चपल बताया। (रोते-रोते आँसुओ से सेज आर्द्र हो गयी थी और प्रत्यक्ष कुछ न कह कर अप्रत्यक्ष ढंग से मुझे मेरे अपराध का ज्ञान कराया) ॥ ५० ॥

एक गुणशालिनी दूसरी दुर्गुणशालिनी दो अङ्गनायें एक ही नाम वाली है। एक तरुण ने उनमें से दुर्गुणशालिनी अङ्गना को नामसाम्य के कारण गुणशालिनी समझकर उसी की सङ्गति की, इस पर वह गुणशालिनी अङ्गना उस तरुण से अन्योक्ति द्वारा कह रही हे—

अयि शब्दमात्रसाम्यादास्वादितशर्करस्य तव पथिक ।
स्वल्पो रसनाच्छेदः पुरतो जनहास्यता महती ॥ ५१ ॥

पदार्थ—अयि पथिक ! शब्दमात्रसाम्यात्—शब्दमात्रस्य साम्यात्—केवल नाम एक होने के कारण। आस्वादितशर्करस्य—आस्वादिता शर्करा (सिकता) येन तस्य—जिसने सिकता का आस्वादन किया। तव। रसनाच्छेदः स्वल्पः—तुम्हारी जिह्वा का कटना तो थोड़ा हुआ। पुरतः—आगे। महती जनहास्यता—जनस्य हास्यता—आगे लोगो के द्वारा बड़ी हँसी (होगी)।

सरलार्थ—हे पथिक ! (गुणो से अनभिज्ञ होने के कारण अज्ञानता-वश) तुमने जो 'शर्करा' संज्ञाशब्दमात्र की समता के कारण (शक्कर के स्थान पर) सिकता का आस्वादन किया उसके परिणामस्वरूप जिह्वा तो थोड़ी सी कटी (इसका दुःख नहीं), आगे लोगो द्वारा तुम्हारी बड़ी हँसी होगी (इसका दुःख है)। (मेरे नामसाम्य के कारण (गुणों के आधार पर नहीं) तुमने जो उसकी सङ्गति की, उसकी नीरसता के कारण तुम्हारे आस्वाद में जो बाधा हुई, वह तो हुई ही, दुराचारिणीरूप में उसकी प्रसिद्धि होने के कारण तुम्हारा बड़ा लोकोपहास होगा (यह दुःख का विषय है) ॥ ५१ ॥

सपत्नी के दुःख से सन्तप्त किसी स्त्री को अन्य स्त्री समझा रही है—

अभिनवयौवनदुर्जयविपक्षजनहन्यमानमानापि ।
सूनोः पितृप्रियत्वाद्बिभर्ति सुभगामदं गृहिणी ॥ ५२ ॥

पदार्थ—अभिनवयौवनदुर्जयविपक्षजनहन्यमानमाना अपि—अभिनवेन यौवनेन, दुःखेन जेतुं शक्यः यो विपक्षजनः तेन हन्यमानः मानः यस्याः सा—अभिनव यौवन के कारण जिनको जीतना कठिन, ऐसे सपत्नीजन से जिसका

मान हन्यमान है। गृहिणी—प्रथमपत्नी। सूनोः—पुत्रस्य। पितृप्रियत्वात्—पितुः प्रियः तस्य भावः तस्मात्—पिता को प्रिय होने के कारण। सुभगामदम्—सुभगानां मदम्—सौभाग्यशालिनी स्त्रियों के गर्व को। बिभर्ति—धारण करती है—रखती है।

सरलार्थ—(अप्रसूता होने के कारण) अभिनवयौवनशालिनी अतएव दुर्जय सपत्नियों के द्वारा मान का हनन किये जाने पर भी गृहिणी, (उसका) पुत्र, पिता को प्रिय है—इस कारण सौभाग्यशालिनी होने का गर्व रखती है। (पितृप्रिय पुत्र की माता होने के कारण सपत्नी के अवमान पर तुम्हें ध्यान नहीं देना चाहिए) ॥ ५२ ॥

स्नान के लिए प्रवाह में प्रविष्ट होती नायिका का वर्णन कोई कर रहा है—

अपमानितमिव संप्रति गुरुणा ग्रीष्मेण दुर्बलं शैत्यम् ।
स्नानोत्सुकतरुणीस्तनकलशनिबद्धं पयो विशति ॥ ५३ ॥

पदार्थ—गुरुणा—प्रबलेन—प्रबल। ग्रीष्मेण—ग्रीष्म से। अपमानितम् इव—तिरस्कृत-सा। दुर्बलं शैत्यम्—शीत-भाव। स्नानोत्सुकतरुणीस्तनकलश-निबद्धम्—स्नानाय उत्सुकायाः तरुण्याः स्तनकलशयोः निबद्धम्—स्नानोत्सुक तरुणी के स्तनकलश में निबद्ध। पयः विशति—जल में घुस रहा है। (तरुणी का स्तन ग्रीष्म में शीतल होता है)।

सरलार्थ—(ग्रीष्म में तरुणी का स्तन शीतल होता है—इसी आधार पर उत्प्रेक्षा की गयी है) मानो प्रबल ग्रीष्म से अपमानित दुर्बल शैत्य, स्नानोत्सुक कामिनी के कुचरूप दो कलश बाँध कर (स्वदेहत्याग के लिए) जल में प्रवेश कर रहा है ॥ ५३ ॥

अधिक विलम्ब होने पर भी शयनागार से क्यों नहीं निकलती—ऐसा कहती हुई सखी से नायिका कह रही है—

अलसयति गात्रमखिलं क्लेशं मोचयति लोचनं हरति ।
स्वाप इव प्रेयान्मम मोक्तुं न ददाति शयनीयम् ॥ ५४ ॥

पदार्थ—गात्रम्—शरीर को। अलसयति—(१) (नानाविधसुरति-क्रीडा से) उठने आदि में असमर्थ बना देता है, (२) जृम्भा आदि के कारण सांसारिक व्यापार में असमर्थ बना देता है। अखिलम्—समस्त। क्लेशम्—(१) दुःख, (२) गृहकार्यजन्य श्रम को। मोचयति—दूर करता है। लोचनं हरति—(१) नेत्र को अपने अधीन कर लेता है, केवल अपनी ही ओर आकृष्ट कर लेता

है, (२) लोचन को जड़ (दर्शन-शक्ति-शून्य) बना देता है। स्वापः—निद्रा। इव—समान। प्रेयान्—(१) प्रिय, (२) प्रीति का विषय। मम शयनीयं मोक्तुं न ददाति—मुझे शय्या छोड़ने नहीं देता।

सरलार्थ—प्रिय, स्वाप (निद्रा) के समान, (१—अनेक प्रकार की सुरत क्रीडा से, २—जृम्भा आदि के कारण) शरीर को अलस (१—उठने आदि में असमर्थ, २—करणीय कर्म में असमर्थ) कर देता है, अखिल क्लेश (१—दुःख, २—कार्यजन्य श्रम) को दूर करता है; नेत्रों को हर लेता है (१—अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, २—दर्शनशक्तिरहित कर देता है) और इस प्रकार मुझे सेज नहीं छोड़ने देता ॥ ५४ ॥

नायक, स्नाता नायिका की प्रशंसा कर रहा है—

अंसावलम्बिकरधृतकचमभिषेकार्द्रधवलनखरेखम् ।
धौताधरनयनं वपुरस्त्रमनङ्गस्य तव निशितम् ॥ ५५ ॥

पदार्थ—अंसावलम्बिकरधृतकचम्—अंसे स्कन्धप्रदेशे अवलम्बिताः करेण धृताः कचाः यस्मिन् तत्—जिसमें कन्धे पर लटके बाल हाथ से पकड़े गये हैं। अभिषेकार्द्रधवलनखरेखम्—अभिषेकः स्नानं, तेन आर्द्राः धवलाः नखरेखाः नखक्षतानि यस्मिन्—जिसमें नखक्षत अभिषेक से आर्द्र अतएव धुलने से धवल हो गये हैं। धौताधरनयनम्—धौते अधरनयने यस्मिन् तत्—जिसमें अधर और नयन धुल उठे हैं। तव वपुः—शरीर। अनङ्गस्य—न अङ्गानि यस्य तस्य (कामदेवस्य) जिसके अङ्ग नहीं है। निशितम्—तीक्ष्णम्। अस्त्रम्।

सरलार्थ—कन्धे पर लटके बालों को (जल-विमोचन के लिए) हाथ से पकड़ रक्खा है, स्नान से आर्द्र अतएव नखक्षतों की लाली दूर हो गयी और वे श्वेत दिखाई पड़ रहे हैं, अधर और नेत्र धुल उठे हैं (पीक की लीक नष्ट हो गयी, ऐसे समय) तुम्हारा शरीर कामदेव का तीक्ष्ण अस्त्र हो रहा है ॥ ५५ ॥

वेश्या में आसक्त किसी तरुण को कोई स्त्री समझा रही है—

अविनिहितं विनिहितमिव युवसु स्वच्छेषु वारवामदृशः ।
उपदर्शयन्ति हृदयं दर्पणबिम्बेषु वदनमिव ॥ ५६ ॥

पदार्थ—वारवामदृशः—वाराङ्गनाः—वेश्यायें। स्वच्छेषु युवसु—निर्मल अन्तःकरण वाले युवकों में। अविनिहितम्—सौंपे न गये। हृदयम्—(अपने) हृदय को। विनिहितम्—सौंपा गया। इव—सा। दर्पणबिम्बेषु—दर्पण में। वदनमिव—वदन को भाँति। उपदर्शयन्ति—प्रकट करती है।

सरलार्थ—वेश्यायें, निर्मल अन्तःकरण वाले युवकों में अपने हृदय को समर्पित नहीं करतीं, केवल समर्पित किया हुआ-सा दिखाती हैं, जैसे दर्पण में मुख वास्तव में रहता नहीं, केवल निहित-सा दिखायी देता है ॥ ५६ ॥

'मैं इसमें आसक्त हूँ—यह बात लोक में कैसे फैल गयी! कहीं नायक ही इसका प्रचार करने वाला तो नहीं है अथवा यह काम सखियों का है' इस प्रकार सोचती-विचारती नायिका से सखी कह रही है—

अतिलज्जया त्वयैव प्रकटः प्रेयानकारि निभृतोऽपि ।
प्रासादमौलिरुपरि प्रसरन्त्या वैजयन्त्येव ॥ ५७ ॥

पदार्थ—अतिलज्जया—अत्यन्त लज्जा से। त्वया एव—तुमने ही। उपरि प्रसरन्त्या वैजयन्त्या इव—ऊपर फहराती हुई वैजयन्ती (पताका) द्वारा जैसे। प्रासादमौलिः—प्रासाद का शिरोभाग। निभृतः—दूसरों द्वारा अज्ञात। प्रेयान्—प्रिय। प्रकटः—विदितः।

सरलार्थ—(जहाँ-जहाँ उसकी दृष्टि पड़ती थी, वहाँ-वहाँ से तू भागती रहती थी) अपनी इस लज्जा से तूने ही (दूसरों द्वारा) अज्ञात प्रिय को प्रकट कर दिया (इसे देख कर यह अत्यन्त लज्जा का अभिनय करती है अतः यह इसमें अवश्य आसक्त है—ऐसा लोगों ने भांप लिया), जैसे ऊपर फहराती पताका प्रासाद के शिखर को व्यक्त कर देती है ॥ ५७ ॥

मध्यस्थ का अवलम्बन लेकर संघटित वचनों से खल भी जीता जा सकता है—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

अन्योन्यग्रथनागुणयोगाद्गावः पदार्पणैर्बहुभिः ।
खलमपि तुदन्ति मेढीभूतं मध्यस्थमालम्ब्य ॥ ५८ ॥

पदार्थ—अन्योन्यग्रथनागुणयोगात्—(१) अन्योन्यं ग्रथनारूपो गुणः तस्य योगात्—परस्पर अविरोधी संघटनात्मक गुण के योग से, (२) परस्पर बन्धनरज्जु के योग से। गावः—(१) वाचः, (२) वृषभाः—वाणी, वचन, बैल। बहुभिः पदार्पणैः—(१) व्यवहारपदप्रदर्शनैः, (२) चरणविन्यासैः—व्यवहार का पद (औचित्य) दिखाकर, निरन्तर चरणों को रख-रख कर। मेढीभूतम् मध्यस्थम्—(१) आधारभूत पक्षपात रहित विवादनिर्णायक, (२) मध्यभूमि में स्थित काष्ठ। आलम्ब्य—(का) आलम्बन लेकर। खलम्—(१) दुर्जनम्, (२) धान्यमर्दनस्थानम्—दुष्ट; खलिहान को। तुदन्ति—पीडित करते हैं।

सरलार्थ--परस्पर अविरोधी संघटनात्मक गुणयुक्त वाणी, व्यवहार का पद (औचित्य) दिखा कर आधारभूत पक्षपातरहित विवादनिर्णायक का आलम्बन लेकर दुष्ट को भी पराजित कर देती है। (परस्पर बन्धन-रज्जु से युक्त (बँधे) बैल, चरणविन्यास से— बार-बार चरणो को रख-रख, उठा-उठा कर मध्यभूमि में स्थित काष्ठ का आलम्बन लेकर खलिहान को खूँद डालते हैं)।

(किसी प्रदेश-विशेष में धान्यमर्दन के समय रस्सी से बैलो को परस्पर एक से एक को बाँधने के अतिरिक्त, मध्य में एक मोटा खूँटा गाडते हैं और अन्तिम बाये बैल को एक रस्सी से उसमें बाँध देते हैं और सब बैल चक्कर लगाते है। इस तरह एक निश्चित पद्धति पर बैल चला करते हैं। इधर-उधर भागने का अवसर नहीं आता)॥ ५८ ॥

दुष्टो के वचन दुःसह होते हैं—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

अननुग्रहेण न तथा व्यथयति कटुकूजितैर्यथा पिशुनः ।
रुधिरादानादधिकं दुनोति कर्णे क्वणन्मशकः ॥ ५९ ॥

पदार्थ—अननुग्रहेण—द्रव्यादिहरण रूप विपरीत आचरण से। पिशुनः—दुष्ट। न तथा व्यथयति—वैसा दुःख नहीं पहुँचाता। यथा—जितना। कटु कूजितैः—दुर्वचनैः—दुर्वचनों से। मशकः। रुधिरादानात्—रुधिरस्य आदानात् ग्रहणात्—खून चूसने से अधिक। कर्णे क्वणन्—कान में भिनभिनाता। दुनोति—दुःख देता है।

सरलार्थ—खल, द्रव्यादिहरण रूप प्रतिकूल व्यवहार कर उतना दुःख नहीं देता जितना अपने दुष्ट वचनो से। मशक कानों में भिनभिनाता खून चूसने की अपेक्षा अधिक कष्ट देता है।

(श्लोक के अन्तर्गत दोनो विशेष वाक्य हैं। पिशुन और मशक, कटु-कूजन और क्वणित, अननुग्रह और रुधिरादान का साम्य दिखाया गया है तथा दोनो में समानधर्म व्यथयति और दुनोति क्रिया (समानार्थक) द्वारा दिखाया गया है अतः प्रतिवस्तूपमा अलंकार है)॥ ५९ ॥

पहिले की लघुता बाद में गौरवशाली हो जाने पर भी दूर नहीं होती—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

अग्रे लघिमा पश्चान्महतापि पिधीयते नहि महिम्ना ।
वामन इति त्रिविक्रममभिदधति दशावतारविदः ॥ ६० ॥

पदार्थ—अग्रे--प्रथमतः—पहिले की। लघिमा—लाघवम्—लघुता।

पश्चात्—बाद की। महतापि महिम्ना—महान् गौरव से भी। न पिधीयते—नाच्छाद्यते—ढकती नहीं, दूर नहीं होती। दशावतारविदः—दश अवतार को जानने वाले। त्रिविक्रमम्—त्रिविक्रम भगवान् को। वामनः इति अभिदधति—'वामन' ऐसा कहते है।

सरलार्थ—पहले की लघुता बाद के गौरव (दीर्घता) से छिपायी नहीं जा सकती, (हरि के) दश अवतारों के विषय में जानने वाले लोग त्रिविक्रम को वामन कहते हैं।

(सामान्य का विशेष से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है)॥ ६० ॥

नवीन सपत्नी से शङ्कित गृहिणी से सखी कह रही है—

अङ्के स्तनंधयस्तव चरणे परिचारिका प्रियः पृष्ठे ।
अस्ति किमु लभ्यमधिकं गृहिणि यदाशङ्कसे बालाम् ॥६१॥

पदार्थ—गृहिणि! तव अङ्के—तुम्हारी गोद में। स्तनन्धयः—दूध पीने वाला बालक। चरणे—चरण मे। परिचारिका—दासी। पृष्ठे प्रियः—पीछे प्रिय अर्थात् आज्ञाकारी प्रिय। अधिकं किमु लभ्यम् अस्ति—इससे अधिक और क्या पाना है। यत्—जो। बालाम् आशङ्कसे—(अनुभवशून्य) बाला का भय करती हो।

सरलार्थ—(घर का सारा अधिकार तो तुम्हारे ही हाथ मे है) हे गृहिणि! गोद में दूधपीता बच्चा, चरणो में दासी, पीछे आज्ञाकारी प्रिय—इससे अधिक और तुम्हें चाहिए ही क्या! जो उस (अनुभवशून्य) बाला से सशङ्कित रहती हो॥ ६१ ॥

नायक और नायिका की आसक्ति का वर्णन कोई किसी से कर रहा है—

अधर उदस्तः कूजितमामीलितमक्षि लोलितो मौलिः ।
आसादितमिव चुम्बनसुखमस्पर्शेऽपि तरुणाभ्याम् ॥ ६२ ॥

पदार्थ—अधरः। उदस्तः—उत् ऊर्ध्वम् अस्तः क्षिप्तः—ऊपर उठाया गया। कूजितम्—पीडासूचक शब्द किया। अक्षि—आँख। आमीलितम्—मुँद गयी। मौलिः—शिरः। लोलितः—हिलाया गया। तरुणाभ्याम्—तरुणश्च तरुणी च इति तरुणौ (एकशेष द्वन्द्व समास) ताभ्याम्, तरुण और तरुणी द्वारा। अस्पर्शेऽपि—विना स्पर्श किए, रजोदर्शन मे भी। चुम्बनसुखम्—चुम्बन का सुख। आसादितम् इव—मानों पा लिया।

सरलार्थ—(चुम्बनार्थ) अधर ऊँचा किया गया। पीडासूचक स्वर

किया। (सुखाविर्भाव से) आँखे मुँद गयीं। (निषेधार्थ) शिर हिलाया गया। इस तरह तरुण और तरुणी दोनो ने परस्पर एक दूसरे का स्पर्श न कर रजोदर्शन में भी चुम्बन का आनन्द मानो पा लिया ॥ ६२ ॥

दूती ने दीवाल के छिद्र से नायक की भुजा अन्दर प्रवेश करा कर नायिका के आलिङ्गन का संयोग रचा। देर तक यह स्थिति बनी रहने पर दूती ने नायक को भुजा खींच लेने की सलाह दी परन्तु वह स्पर्शजन्य आनन्द-लुब्ध कुछ देर और इस स्थिति मे रहना चाहता है और दूती से कहता है—

अतिरभसेन भुजोऽयं वृतिविवरेण प्रवेशितः सदनम् ।
दयितास्पर्शोल्लसितो नागच्छति वर्त्मना तेन ॥ ६३ ॥

पदार्थ—अतिरभसेन—बड़े वेग से। वृतिविवरेण—वृत्याः विवरेण—दीवार के छिद्र से। सदनम् प्रवेशितः—घर में प्रविष्ट किया गया। भुजः—हाथ। दयितास्पर्शोल्लसितः—दयितायाः प्रियायाः स्पर्शेन उल्लसितः—प्रिया के स्पर्श से उल्लसित। तेन वर्त्मना—उस मार्ग से। न आगच्छति—नहीं आ रहा है।

सरलार्थ—(दुर्बल होने के कारण) यह भुजा दीवाल के छिद्र से (उत्कण्ठावश) बड़े वेग से भीतर प्रविष्ट तो हो गया परन्तु प्रिया के स्पर्श से उल्लसित (फूला न समाता) उस छिद्र से निकल नहीं पा रहा है (अतः थोड़ी देर और धैर्य रख, प्रयत्न कर रहा हूँ, संभवतः निकल आये) ॥ ६३ ॥

नायक नायिका से कह रहा है—

अम्बरमध्यनिविष्टं तवेदमतिचपलमलघु जघनतटम् ।
चातक इव नवमभ्रं निरीक्षमाणो न तृप्यामि ॥ ६४ ॥

पदार्थ—अम्बरमध्यनिविष्टम्—अम्बरम् वस्त्रम्, आकाशं वा, तन्मध्यनिविष्टम्—(१) वसनमध्यवर्ति, (२) आकाशमध्यवर्ति। अतिचपलम् (१—रतादि व्यापार से, २—स्वभावतः) अत्यन्त चञ्चल। अलघु—महत्। तव—तुम्हारा। इदम्—पुरोवर्ति। जघनतटम्—जघन प्रदेश को। नवम्—नूतन। अभ्रम्—बादल को। चातकः इव—चातक की भाँति। निरीक्षमाणः—देखता हुआ। न तृप्यामि—तृप्त नहीं होता।

सरलार्थ—मैं अम्बर (वसन) मध्यवर्ती, रतादि व्यापार से अति चंचल, विस्तृत तुम्हारे जघनतट को; अम्बर (गगन) मध्यवर्ती, स्वभावतः चंचल, विस्तृत मेघ को चातक की भाँति, देखता हुआ तृप्त नहीं हो रहा हूँ ॥ ६४ ॥

उपपति को घर से बाहर निकाल देने का समय हो गया—ऐसा संकेत करती नायिका की सखी, नायिका से कह रही है—

अयमन्धकारसिन्धुरभाराक्रान्तावनीभराक्रान्तः ।
उन्नतपूर्वाद्रिमुखः कूर्मः संध्यास्रमुद्वमति ॥ ६५ ॥

पदार्थ—अन्धकारसिन्धुरभाराक्रान्तावनीभराक्रान्तः—अन्धकारा: एव सिन्धुराः (गजाः), तेषां भारेण आक्रान्ता या अवनी (पृथ्वी) तस्याः भरेण आक्रान्तः—अन्धकार रूप गजों के भार से आक्रान्त पृथ्वी के भार से दबा। उन्नतपूर्वाद्रिमुखः—उन्नतः पूर्वाद्रिः (उदयगिरिः) एव मुखं यस्य सः—जिसका उदयगिरि रूप मुख ऊँचा हो गया है। अयं—यह। कूर्मः—कच्छप। सन्ध्यास्रम्—सन्ध्या एव अस्रम् (रुधिरम्)—सन्ध्या रूप रक्त को। उद्वमति—उगल रहा है।

सरलार्थ—अन्धकाररूप गजों के भार से आक्रान्त पृथ्वी के भार से दबा हुआ यह (पृथ्वी का आधार भूत) कमठ मानो उदयगिरि रूप मुख को ऊपर उठाये सन्ध्या रूप रक्त मुख से उगल रहा है॥ ६५ ॥

मूर्खों का समावेश मूर्खों में ही होता है पण्डितों में नहीं—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

अन्तर्भूतो निवसति जडे जडः शिशिरमहसि हरिण इव ।
अजडे शशीव तपने स तु प्रविष्टोऽपि निःसरति ॥ ६६ ॥

पदार्थ—जडे—(१—मूर्खता से, २—जलरूप होने से) जड़ में। जड़ः—मूर्ख। शिशिरमहसि—शिशिरं (शीतलम्) महः (दीप्तिः) यस्य तस्मिन् शिशिरमहसि—जिसकी दीप्ति शीतल है—चन्द्रमा में। हरिणः इव—हरिण की भाँति। अन्तर्भूतः—निहितः, दूसरों द्वारा विशेष रूप से ज्ञात नहीं। अजडे—पण्डिते। स मूर्खः तु—वह मूर्ख। तपने—सूर्ये। शशी इव—चन्द्रमा की भाँति। प्रविष्टः अपि—प्रविष्ट भी। निःसरति—दूरीभवति—(शीघ्र ही) दूर हो जाता है।

सरलार्थ—(जल रूप होने के कारण) जड़ चन्द्रमा में (पशु होने के कारण) जड हरिण की भाँति, मूर्ख में मूर्ख प्रविष्ट रहता है परन्तु वही जड पण्डित मे प्रविष्ट होकर (अमावस्या के दिन) सूर्य में प्रविष्ट चन्द्रमा की भाँति (शीघ्र ही) दूर हो जाता है॥ ६६ ॥

दूती नायिका की वैद्यविषयक आसक्ति का वर्णन वैद्य से कर रही है—

अगणितजनापवादा त्वत्पाणिस्पर्शहर्षतरलेयम् ।
आयास्यतो वराकी ज्वरस्य तल्पं प्रकल्पयति ॥ ६७ ॥

पदार्थ—अगणितजनापवादा—न गणितः जनापवादः यया सा—जिसने लोकनिन्दा को नहीं गिना। त्वत्पाणिस्पर्शहर्षतरला—तव पाणिना यः स्पर्शः, तेन यो हर्षः, तस्मै तरला—तुम्हारे करस्पर्श से प्राप्स्यमान हर्ष के लिए चंचल (आतुर)। इयं वराकी—यह वेचारी। आयास्यतः ज्वरस्य—आगामी ज्वर की। तल्पम्—सेज को। प्रकल्पयति—सजा रही है।

सरलार्थ—यह वेचारी लोक-निन्दा की भी उपेक्षा कर (नाड़ी देखते समय) तुम्हारे कर-स्पर्श से प्राप्त होने वाले हर्ष के लिए चञ्चल (आतुर), आने वाले ज्वर की सेज (बड़े उत्साह से) सजा रही है ॥ ६७ ॥

एक ही वंश से उत्पन्न दो व्यक्तियों में कोई समृद्ध कोई दरिद्र, कोई प्रधान कोई गुणीभूत (आश्रित, गौण)—यह विधाता की सृष्टि विचित्र है—ऐसा कोई किसी खिन्न व्यक्ति को समझा रहा है—

अप्येकवंशजनुषोः पश्यत पूर्णत्वतुच्छताभाजोः ।
ज्याकार्मुकयोः कश्चिद्गुणभूतः कश्चिदपि भर्ता ॥ ६८ ॥

पदार्थ—एकवंशजनुषोः—एकस्मात् (१—कुलात्, २—वेणोः) जनुः (जन्म) ययोः तयोः—जिन (दो) का एक ही वंश (१—कुल, २—बाँस) से जन्म हुआ। अपि—भी। पूर्णत्वतुच्छताभाजोः—पूर्णत्वम् (१—समृद्धत्वम्, २—स्थूलावयवत्वम्), तुच्छता (१—निर्धनत्वम्, २—सूक्ष्मत्वम्) तयोः भाजोः—एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म, एक समृद्ध दूसरा निर्धन। ज्याकार्मुकयोः—ज्या च कार्मुक च तयोः—प्रत्यञ्चा और धनुष में। कश्चित्—कोई अर्थात् प्रत्यंचा। गुणभूतः—गुण हुआ (गौण)। कश्चिदपि—और कोई अर्थात् धनुष। भर्ता—(धारण करने वाला) भर्ता (प्रधान)।

सरलार्थ—एक ही वंश (बाँस) से उत्पन्न प्रत्यञ्चा और धनुष में—धनुष स्थूल अवयवों का और प्रत्यञ्चा सूक्ष्म अवयवों का; धनुष भर्ता (धारण करने वाला प्रधान) और प्रत्यञ्चा गुणभूत (गौण) हुआ।

(एक ही वंश से उत्पन्न दो व्यक्तियों में एक समृद्ध दूसरा निर्धन अतएव एक पोषक और प्रधान, दूसरा आश्रित और गौण होता है। इस सृष्टि के वैचित्र्य को देखो) ॥ ६८ ॥

सखी नायक से कह रही है—

अभिनवकेलिक्लान्ता कलयति बाला क्रमेण घर्माम्भः ।
ज्यामर्पयितुं नमिता कुसुमास्त्रधनुर्लतेव मधु ॥ ६९ ॥

पदार्थ—अभिनवकेलिक्लान्ता—अभिनवेन (अननुभूतेन) केलिना (सुरतेन) क्लान्ता (श्रान्ता)—सुरत (जिसकी अनुभूति अभी नहीं है) से थकी हुई। बाला। क्रमेण—कपोल आदि अङ्गक्रम से। घर्माम्भः—पसीने को। कलयति—गच्छति—प्राप्त होती है। ज्याम्—मौर्वी को। अर्पयितुम्—चढ़ाने को। नमिता—झुकायी गई। कुसुमास्त्रधनुर्लता इव—कुसुमम् अस्त्रम् यस्य तस्य (कामदेवस्य) धनुर्लता इव—कामदेव की धनुर्लता की भाँति। मधु—मकरन्द को।

सरलार्थ—बाला (जिसे अभी सुरत का अनुभव नहीं है) अभिनव सुरत से थक कर कपोल आदि अंगो पर पसीने की बूँदों से युक्त हो जाती है; जैसे डोरी चढ़ाने के लिए झुकायी गयी कामदेव की धनुर्लता मकरन्द बाहर निकालती है ॥ ६९ ॥

किसी विरही का कथन है—

असती कुलजा धीरा प्रौढा प्रतिवेशिनी यदासक्तिम् ।
कुरुते सरसा च तदा ब्रह्मानन्दं तृणं मन्ये ॥ ७० ॥

पदार्थ—असती (पति मे नहीं, प्रिय में अनन्य प्रेम रखने वाली)। कुलजा—सद्वंश मे उत्पन्न। धीरा—प्रौढा। प्रतिवेशिनी—पड़ोसिनी। यदा—जब। आसक्तिम् कुरुते—आसक्ति करती है। तदा—तब। ब्रह्मानन्दं तृणं मन्ये—ब्रह्मानन्द को तृण (तुच्छ) समझता हूँ।

सरलार्थ—असती (प्रिय से ही, पति से नही, अनन्य प्रेम रखने वाली) सद्वंशोद्भवा (अतएव स्थिर प्रेम वाली), प्रौढा (अतएव केलिकला-मर्मज्ञ) पड़ोसिनी जब आसक्ति रखती है तब ब्रह्मानन्द को मै तृण (तुच्छ) समझता हूँ ॥ ७० ॥

चिरविरहखिन्न नायिका से नायक कह रहा है—

अविरलपतिताश्रु वपुः पाण्डु स्निग्धं तवोपनीतमिदम् ।
शतधौतमाज्यमिव मे स्मरशरदाहव्यथां हरति ॥ ७१ ॥

पदार्थ—अविरलपतिताश्रु—अविरलम् (अविच्छिन्नम्) पतितम् अश्रु यस्मात् तत्—(१—चिरकालीन दर्शन से, २—जलसंसर्गी होने से) जिससे आँसू (जलविन्दु रूप) गिर रहा है। पाण्डु—(१—विरह से, २—स्वभावतः)

पीत वर्ण, उज्ज्वल वर्ण। स्निग्धम्—(१) स्नेहशील, (२) स्वभावतः चिक्कन। तव—तुम्हारा। उपनीतम्—उपलब्ध। इदं वपुः—पुरोवर्ति शरीर। शतधौतम्—सौ वार (जल से) धोया। आज्यम् इव—घृत की भाँति। मे—मम। स्मरशरदाहव्यथाम्—स्मरस्य (कामदेवस्य) शरेण यो दाहः तस्य व्यथाम्—कामदेव के बाणजन्य सन्ताप की व्यथा को। हरति—दूर करता है।

सरलार्थ—अविच्छिन्न गिरते अश्रु-विन्दुओं वाला, विरह से पीतवर्ण और स्निग्ध,—उपलब्ध तुम्हारा यह शरीर, कामदेव के बाण से जनित सन्ताप (कामज्वर) की व्यथा को दूर करता है, जैसे सौ वार (ज.. से) धोया अतएव जल-विन्दु गिराता, उज्ज्वल एवम् स्निग्ध घृत जीर्णज्व आदि को नष्ट करता है।

(शरीर और घृत की समानता के कारण उपमा अलङ्कार) ॥ ७१ ॥

खेत की रखवाली करती हुई इस ग्रामीण युवती का संभोगस्थल यह खेत ही है—ऐसा कोई कह रहा है—

अन्तर्निपतितगुञ्जागुणरमणीयश्चकास्ति केदारः।
निजगोपीविनयव्ययखेदेन विदीर्णहृदय इव ॥ ७२ ॥

पदार्थ—अन्तर्निपतितगुञ्जागुणरमणीयः—अन्तर्निपतिताः गुञ्जाः गुणश्च तैः रमणीयः—अन्दर गिरी गुञ्जाओं और (गुञ्जा-माल के) सूत्र से सुन्दर। केदारः—खेत। निजगोपीविनयव्ययखेदेन—निजा या गोपी (रक्षिका) तस्याः विनयः (शालीनता) तस्य व्ययेन (नाशेन) यः खेदः तेन—अपनी रक्षिका के विनय-विनाश के दुःख से। विदीर्णहृदयः—विदीर्णम् हृदयं यस्य सः—जिसका हृदय विदीर्ण है, इव—सा। चकास्ति—शोभते।

सरलार्थ—(खेत में संभोग आदि से टूट कर) गिरी गुञ्जा और सूत्र अर्थात् गुञ्जा-हार से सुन्दर खेत, मानो अपनी रक्षिका के विनय-विनाश से उत्पन्न दुःख के कारण विदीर्ण हृदय-सा शोभित हो रहा है (खेत में विदीर्ण-हृदयता की उत्प्रेक्षा होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार) ॥ ७२ ॥

दुराचारिणी स्त्री किस प्रकार पति को धोखा देकर उसके सामने भी अपने प्रिय से मिलने की युक्ति निकाल लेती है—इस सम्बन्ध में उदाहरणस्वरूप कोई एक निकटवर्तिनी का वर्णन कर रहा है—

अमुना हतमिदमिदमिति रुदती प्रतिवेशिनेऽङ्गमङ्गमियम्।
रोषमिपदलितलज्जा गृहिणी दर्शयति पतिपुरतः ॥ ७३ ॥

पदार्थ—रुदती—रोती । रोषमिषदलितलज्जा—रोषमिषेण दलिता (नाशिता) लज्जा यया सा—जिसने मिथ्या कोप से लज्जा नष्ट कर दी। इयं गृहिणी—यह (गृहकार्य में व्यापृत) स्त्री। अमुना—पत्या—पति द्वारा। इदमिदमङ्गम्—यह-यह अङ्ग। हतम्—प्रताडित हुआ। इति—इस प्रकार। अङ्गम् अङ्गम्—वक्षःस्थल आदि प्रत्येक अङ्ग को। पतिपुरतः—पत्युः पुरतः—पति के सामने । प्रतिवेशिने—(उपपतिरूप) पड़ोसी को । दर्शयति—दिखाती है।

सरलार्थ—रोती हुई, मिथ्या कोप से लज्जा नष्ट कर, यह गृहिणी, पतिद्वारा यह-यह अङ्ग प्रताडित हुआ—इस प्रकार पति के सामने, वक्षःस्थल आदि प्रत्येक अङ्ग को अपने उपपति प्रिय पड़ोसी को दिखाती है ॥ ७३ ॥

इति विभान्व्याख्यासमेता अकारव्रज्या।

आकारव्रज्या

अन्य रमणी के साथ सुरत-क्रीडा कर, नायिका के पास आगत नायक द्वारा, नायिका से अनुराग-प्रदर्शन न करने का कारण पूछे जाने पर, नायिका कह रही है—

आन्तरमपि वहिरिव हि व्यञ्जयितुं रसमशेषतः सततम् ।
असती सत्कविसूक्तिः काचघटीति त्रयं वेद ॥ ७४ ॥

पदार्थ—आन्तरमपि—भीतर निहित, अन्तरङ्ग भी। रसम्—(१) राग, (२) श्रृङ्गारादि, (३) द्रव द्रव्य को। वहिः इव—बाहर-सा, वहिरङ्ग-सा। हि—निश्चयेन—निश्चयरूप से। अशेषतः—सम्पूर्ण रूप से। व्यञ्जयितुम्—प्रकट करने के लिए। असती—कुलटा स्त्री। सत्कविसूक्तिः—सत्कवेः सूक्तिः—सत्कवि की सूक्ति। काचघटी—काच की वनी झारी (कलश)। इति त्रयं वेद—ये तीन हैं, आप जानते हैं, अथवा संसार जानता है।

सरलार्थ—अन्तरङ्ग रस (अनुराग, श्रृङ्गारादि, द्रवद्रव्य) को वहिरङ्ग-सा प्रकट करने के लिए (समर्थ) क्रमशः कुल्टा स्त्री, सत्कवि की सूक्ति और काच की वनी झारी ये ही तीन हैं—इस वात को आप अथवा संसार जानता है (जिसमें यह गुण है उसी कुलटा के पास जाओ) ॥ ७४ ॥

मानिनी नायिका से नायक कह रहा है—

आलोक एव विमुखी क्वचिदपि दिवसे न दक्षिणा भवसि ।
छायेव तदपि तापं त्वमेव मे हरसि मानवति ॥ ७५ ॥

पदार्थ—आलोके एव—(१) दर्शन होने पर ही, (२) प्रकाश होने पर ही। विमुखी—विरुद्धं विगतं वा मुखम् आननं यस्याः सा—जिस (स्त्री) ने अपना मुख किसी कारणवश फेर लिया हो। क्वचिदपि दिवसे—किसी भी दिन। दक्षिणा—(१) अनुकूलगामिनी, (२) दाहिनी ओर स्थित। न भवसि—नहीं होती। मानवति—(१) मानिनि ! (२) परिमाणवती। तदपि—तो भी। मे—मम। छाया इव—छाया की भाँति। तापम्—(१) दुःख, (२) आतप को। त्वमेव हरसि—तू ही हरती है।

सरलार्थ—दर्शन होते ही तू मुँह फेर लेती है और कभी अनुकूल नहीं होती। हे मानिनि, तो भी, प्रकाश होते ही विमुख और कभी दाहिने न होने वाली छाया की भाँति, तू ही मेरे सन्ताप को दूर करती है।

(नायिका और छाया का साम्य-कथन होने से उपमा अलंकार) ॥ ७५ ॥

कोई, अपने सखा से अपनी नायिका के सुरत-पाण्डित्य का वर्णन कर रहा है—

आज्ञा काकुर्याच्ञाक्षेपो हसितं च शुष्करुदितं च।
इति निधुवनपाण्डित्यं ध्यायंस्तस्या न तृप्यामि ॥ ७६ ॥

पदार्थ—आज्ञा—इसे ऐसा करो—एवम् स्वरूप आज्ञा। काकुः—वक्रोक्ति। याच्ञा—इसे मुझे दो—एतत्स्वरूप याच्ञा। आक्षेपः—किसी काम को करने पर दोषी ठहराना। हसितम्—(आनन्द से) हँसना। शुष्करुदितम्—बिना आँसू, कृत्रिम रुदन। इति—एवम्। तस्याः—उसके। निधुवन-पाण्डित्यम्—सुरतसम्बन्धी पाण्डित्य को। ध्यायन्—सोचता, चिन्तन करता। न तृप्यामि—नहीं तृप्त होता हूँ।

सरलार्थ—"ऐसा करो"—ऐसी आज्ञा देना, (उद्दीपक) वक्र वचन बोलना, अमुक पदार्थ मुझे दो—ऐसी याचना करना, ऐसा क्यो किया—इस प्रकार मुझे दोषी ठहराना, (आनन्द से) हँसना, (असामर्थ्य प्रकट करने के लिए) बिना आँसू कृत्रिम रुदन;—उसके इस प्रकार के सुरत-पाण्डित्य का ध्यान करता मै तृप्त नही होता हूँ ॥ ७६ ॥

किसी मान की हुई नायिका को सखी समझा रही है—

आज्ञापयिष्यसि पदं दास्यसि दयितस्य शिरसि किं त्वरसे।
असमयमानिनि मुग्धे मा कुरु भग्नाङ्कुरं प्रेम ॥ ७७ ॥

पदार्थ—आज्ञापयिष्यसि—आज्ञा करोगी, नायक तुम्हारे अधीन होगा। दयितस्य शिरसि—प्रिय के सिर पर। पदम् दास्यसि—चरण दोगी, नायक

चरणो में प्रणत होगा। किं त्वरसे—जल्दी क्यों कर रही हो। मुग्धे—सरले। असमयमानिनि—असमय मान करने वाली। प्रेम। भग्नाङ्कुरम्—भग्नः अङ्कुरः यस्य तत्—जिसका अङ्कुर भग्न हो गया हो। मा कुरु—मत करो।

सरलार्थ—प्रिय तुम्हारी आज्ञाओं का पालन करेगा। सिर पर चरण होंगे—वह चरणों में प्रणत होगा। जल्दी क्यों मचा रही हो। अरी सरले, बिना समय आये ही मान करने वाली! (अभी तो) प्रेम अङ्कुरित ही हो रहा है, उसके अङ्कुर को मत तोडो (प्रेम दृढ हो जाने पर यह सब किया जाना चाहिये। पहिले प्रेम से प्रिय को अधीन बनाओ, पश्चात् कोपादि करो)॥ ७७॥

नायक सखा से, अपनी नायिका के चातुर्य की प्रशंसा कर रहा है—

आसाद्य भङ्गमनया द्यूते विहिताभिरुचितकेलिपणे।
निःसारयताक्षानिति कपटरुषोत्सारिताः सख्यः॥ ७८॥

पदार्थ—विहिताभिरुचितकेलिपणे—विहिता अभिरुचिता केलिः एव पणः यस्मिन् तस्मिन्—जिसमें मन भर सुरत-क्रीडा रूप पण (दाँव पर लगायी गयी वस्तु) है। द्यूते—जुआ में। भङ्गम्—पराजय को। आसाद्य—पाकर। अनया—नायिका द्वारा। अक्षान्—पासो को। निःसारयत—हटा दो। इति—इस प्रकार। कपटरुषा—मिथ्या-कोप से। सख्यः उत्सारिताः—सखियाँ हटा दी गयीं।

सरलार्थ—द्यूत क्रीडा में, जिसमें हारा हुआ व्यक्ति, विजयी को इच्छाभर सुरत-दान दे—यही पण (दाँव पर लगायी गयी वस्तु) था; नायिका ने पराजित होने पर (ऐसा खेल आगे कदापि न हो) दूर करो पासो को—इस प्रकार मिथ्या कोप प्रकट कर (पासों को दूर ले जाने के बहाने) सखियों को हटा दिया (प्रतिज्ञात सुरत-दान का उपयुक्त अवसर निकाल लिया)॥ ७८॥

कुपिता नायिका को सखी समझा रही है—

आदरणीयगुणा सखि महता निहितासि तेन शिरसि त्वम्।
तव लाघवदोषोऽयं सौधपताकेव यच्चलसि॥ ७९॥

पदार्थ—आदरणीयगुणा—आदरणीयाः गुणाः (सौन्दर्यादयः) यस्याः सा—जिसके गुण (सौन्दर्य आदि) आदरणीय हैं। महता तेन—(१) उस महान् (नायक) द्वारा, (२) उस महान् (सौध) द्वारा। त्वम्—तुम। शिरसि निहिता—(१) (आज्ञा पालन से) सिर पर रक्खी गयी हो, (२) अग्रभाग पर रक्खी गयी। सखि। तव—तुम्हारा। अयम् लाघवदोषः—यह लघुतारूप दोष। सौधपताका इव—सौधस्य पताका इव—प्रासाद की पताका की भाँति। यत्—जो। चलसि—चञ्चल (अस्थिरचित्त) होती हो।

सरलार्थ—हे सखि ! तुम्हारे सौन्दर्य आदि गुण सराहनीय हैं जिससे उस महान् नायक द्वारा तुम सिर पर रक्खी गयी हो परन्तु तुम्हारा यह लघुता रूप दोष है जो तुम, अच्छे गुणों (तन्तुओं) वाली, प्रासाद द्वारा अग्रभाग पर धारण की गई सौधपताका की भाँति चञ्चल (अस्थिरचित्त) होती हो ॥ ७९ ॥

नायक, धूप में सूखते वस्त्र में, नायिका को प्राप्त करने के लिए तपस्या करने की उत्प्रेक्षा कर, नायिका से तद्विषयक अपनी उत्कट स्पृहा की अभिव्यक्ति कर रहा है—

आर्द्रमपि स्तनजघनान्निरस्य सुतनु त्वयैतदुन्मुक्तम् ।
खस्थमवाप्तुमिव त्वां तपनांशूनंशुकं पिबति ॥ ८० ॥

पदार्थ—आर्द्रमपि—(१) जलार्द्र, (२) प्रेमार्द्र भी । स्तनजघनात्—स्तनश्च जघनं च अनयोः समाहारः स्तनजघनम् तस्मात्—स्तन और जघनतट से । निरस्य—हटाकर । त्वया—तुम्हारे द्वारा । उन्मुक्तम्—परित्यक्त । एतत् अंशुकम्—यह वस्त्र । त्वाम् अवाप्तुम्—तुमको पाने के लिए । खस्थम्—खे आकाशे तिष्ठति इति खस्थम्—(१) अन्तरिक्ष में, (२) अन्तराल में स्थित । तपनांशून्—तपनस्य सूर्यस्य अंशवः किरणाः तान्—सूर्य की किरणों को । पिबति इव—मानो पी रहा है ।

सरलार्थ—हे सुतनु ! (१—जल से, २—प्रेम से) आर्द्र भी, स्तन और जघनतट से हटाकर तुम्हारे द्वारा परित्यक्त यह वस्त्र, तुम्हें पुनः प्राप्त करने के लिए मानो आकाश में स्थित (निरवलम्ब) सूर्य की किरणों का पान कर रहा है (निरवलम्ब अन्तराल में अवस्थित हो केवल सूर्य की किरणों का पान करना—तप का एक प्रकार है) ॥ ८० ॥

कोई किसी युवती की चेष्टा का वर्णन कर रहा है—

आरोपिता शिलायामश्मेव त्वं स्थिरेति मन्त्रेण ।
मग्नापि परिणयापदि जारमुखं वीक्ष्य हसितेव ॥ ८१ ॥

पदार्थ—अश्मेव त्वम् स्थिरा (भव) इति मन्त्रेण—"पत्थर की भाँति तुम स्थिर हो—" एतदर्थक मन्त्र से । शिलायाम् आरोपिता—शिला पर चरण स्थापित किया । परिणयापदि—परिणयः एव आपत् तस्याम्—परिणयरूप आपत्ति में । मग्ना—डूबी । अपि—भी । जारमुखम्—जारस्य उपपतेः मुखम्—प्रिय उपपति के मुख को । वीक्ष्य—दृष्ट्वा—देखकर । हसितैव—हँसी ही ।

सरलार्थ—(युवती पहिले से ही अपना एक प्रिय बना चुकी है, उसका प्रेम उसमें ही पत्थर की भाँति स्थिर हो चुका है, अब किसी के साथ विवाह

होते समय) "पत्थर की भाँति तुम स्थिर रहो" एतदर्थक "अश्मेव त्वं स्थिरा (भव)" इस मन्त्र से उसने शिला पर अपना चरण रक्खा और (मन्त्र के अनुसार आचरण करने से प्रिय उपपति से प्रेम हटाना पड़ता है जो असंभव है और यदि प्रिय उपपति से प्रेम हटा कर इस विवाहित पति में नहीं लगाती हूँ तो वेद के उल्लङ्घन का दोष लगता है, इस प्रकार उभयतःपाशा रज्जुः न्याय से यह विवाह आपत्तिस्वरूप बन रहा था) विवाह रूप आपत्ति में मग्न भी (दर्शकों में बैठे हुए) उपपति प्रिय का मुख देखकर (प्रेमातिशय से वेदमन्त्र का उल्लङ्घन ही श्रेयस्कर समझ) हँस ही पड़ी (ये लोग कितने मूर्ख हैं जो इस विवाह के समय स्थिर रहने की प्रार्थना कर रहे हैं, जब मैं इससे पूर्व ही तुम्हारे (उपपति के) साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर विवाह कर चुकी हूँ। तुम्हें इस विवाह के अवसर पर की गयी स्थिर होने की प्रार्थना पर दुःखी होने की आवश्यकता नहीं, मैंने वेद की मर्यादा के उल्लङ्घन को अपेक्षाकृत श्रेयस्कर समझ तुम्हीं से अपना प्रेम-सम्बन्ध पूर्ववत् स्थिर रखने का अन्तिम निर्णय कर इस विवाहरूप आपत्ति में डूबी हुई भी, अब निकल कर एक किनारे पहुँच गयी)।

(अनन्त पण्डितकृत व्यङ्ग्यार्थदीपना टीका समेत, निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित पुस्तक मे इस श्लोक के पूर्वार्ध में "त्वं स्थिरा भवेति मन्त्रेण" पाठ मिलता है जो छन्दोभङ्ग के कारण चिन्त्य है। अनन्तपण्डितकृत टीका में, स्पष्टार्थ अध्याहृत 'भव' क्रियापद सहित, "अश्मेव त्वं स्थिरा भवेति मन्त्रेण' का उल्लेख देखकर टीका के अनुरोध से मूल में भव क्रिया पद जोड़ दिया गया और छन्दोभङ्ग की ओर ध्यान नहीं दिया गया—ऐसा प्रतीत होता है) ॥ ८१ ॥

नायक के पास अन्य अङ्गना भी आती है—इस सत्य समाचार से खिन्न नायिका को नायक अपने चातुर्यपूर्ण वचनो से समाश्वसित कर रहा है—

आयाति याति खेदं करोति मधु हरति मधुकरीवान्या।
अधिदेवता त्वमेव श्रीरिव कमलस्य मम मनसः ॥ ८२ ॥

पदार्थ—मधुकरी इव—भ्रमरी की भाँति। अन्या—वह (दूसरी)। आयाति याति—आती-जाती है। खेदं करोति—खेद उत्पन्न करती है। मधु हरति—मकरन्द का हरण करती है। कमलस्य श्रीः इव—कमल की जैसे लक्ष्मी। मम मनसः—मेरे मन की। अधिदेवता—अधिका देवता—इष्टदेवता। त्वमेव (असि)—तू ही है।

सरलार्थ—वह अन्य अङ्गना तो भ्रमरी की भाँति (चञ्चल) आती-जाती है, मुझे खिन्न करती है, (धन-रूप) मकरन्द ले जाती है (उसके आने से मुझे न तो कोई सुख मिलता है और न मेरे मन में उसके लिए स्थान ही

है), कमल की, लक्ष्मी के समान मेरे मन की अधिदेवता तू ही है (अतः तद्विषयक खेद तुझे नहीं करना चाहिए) ॥ ८२ ॥

सखी नायिका को उपदेश दे रही है—

आसाद्य दक्षिणां दिशमविलम्बं त्यजति चोत्तरां तरणिः ।
पुरुषं हरन्ति कान्ताः प्रायेण हि दक्षिणा एव ॥ ८३ ॥

पदार्थ—दक्षिणाम् दिशम्—दक्षिण दिशा को । आसाद्य—प्राप्त कर । तरणिः—सूर्यः । उत्तराम्—उत्तर दिशा को । अविलम्बम्—शीघ्र । त्यजति—त्याग देता है । दक्षिणाः एव—चतुराः अनुकूलाः वा—चतुर अथवा अनुकूल । कान्ताः—रमणियाँ । प्रायेण—बाहुल्येन । पुरुषं हरन्ति—पुरुष को स्वाधीन कर लेती है ।

सरलार्थ—दक्षिण दिशा को प्राप्त कर सूर्य उत्तर दिशा को शीघ्र छोड़ देता है । दक्षिण (चतुर एवं मनोनुकूल) स्त्रियाँ ही पुरुष को आकृष्ट कर पाती है (सूर्य दक्षिणायन में संचरण करते समय तीव्रगति और उत्तरायण में संचरण करते समय मन्दगति रहता है) ॥ ८३ ॥

कोई, अन्योक्ति द्वारा नायिका की प्रशंसा कर रहा है—

आदानपानलेपैः काश्चिद्गरलोपतापहारिण्यः ।
सदसि स्थितैव सिद्धौषधिवल्ली कापि जीवयति ॥ ८४ ॥

पदार्थ—काश्चित्—कुछ (ओषधियाँ) । आदानपानलेपैः—आदानं च, पानं च, लेपश्च तैः—(१) मन्त्रपूर्वक ग्रहण करने, पीने और शरीर में लेप करने से ; (२) अञ्चलादि ग्रहण, अधरपान और सर्वाङ्गीण आलिङ्गन से । गरलोपतापहारिण्यः—गरलस्य उपतापं हर्तुं शीलमासाम्—(१) विष के ताप, (२) कामजन्य सन्ताप को हरने वाली । का अपि—अनिर्वचनीय । सिद्धौषधिवल्ली—(१) अलौकिक शक्तिसम्पन्न ओषधिवल्ली, (२) अलौकिक सौन्दर्यादि गुण सम्पन्न नायिका । सदसि—स्वस्थाने, आवासे वा स्थिता एव—अपने स्थान पर ही स्थित (दर्शन मात्र से) । जीवयति—जीवन प्रदान करती है ।

सरलार्थ—कुछ सामान्य ओषधियाँ मन्त्रपूर्वक ग्रहण करने, पान करने, तथा शरीर मे लेप करने से विषताप का शमन करती है; किन्तु अलौकिक शक्ति-सम्पन्न अवर्णनीय ओषधि अपने स्थान पर स्थित ही (दर्शन मात्र से) जीवन प्रदान करती है ।

(अन्य सामान्य अङ्गनाएँ वस्त्राञ्चल पकड़ने, अधर पान करने और सर्वाङ्गीण आलिङ्गन करने से कामसन्ताप को हरने में समर्थ होती हैं किन्तु तुम अनिर्वचनीय सौन्दर्यादि अलौकिक गुणो से युक्त, अपने आवास मे स्थित ही

(व्यापारों के बिना, केवल दर्शन से मृतप्राय विरही को) जीवन प्रदान करती हो ॥ ८४ ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है--

आन्दोललोलकेशीं चलकाञ्चीकिङ्किणीगणक्वणिताम् ।
स्मरसि पुरुषायितां तां स्मरचामरचिह्नयष्टिमिव ॥ ८५ ॥

पदार्थ--आन्दोललोलकेशीम्--आन्दोलेन लोलाः केशाः यस्याः ताम्--आन्दोल (आगे-पीछे क्रमशः डोलना) से जिसकी अलकें चञ्चल हैं। चलकाञ्चीकिङ्किणीगणक्वणिताम्--चला या काञ्ची तस्याः किङ्किणीगणस्य क्वणितं यस्याः ताम्--जिसकी चञ्चल करधनी की किङ्किणियों से शब्द होता है। पुरुषायिताम्--विपरीतरतकारिणीम्--विपरीत रत करने वाली। स्मरचामरचिह्नयष्टिमिव--स्मरस्य चामरचिह्नस्य यष्टिमिव--कामदेव के चामरचिह्न की यष्टि-सी। तां स्मरसि--उसे स्मरण करते हो।

सरलार्थ--(विपरीत रत के समय) आगे-पीछे क्रमशः डोलने से जिसकी अलकें चञ्चल हो उठती हैं, जिसकी चञ्चल करधनी की क्षुद्रघण्टिकाओं से मधुर ध्वनि होती है, कामदेव को सर्वविदित करने में चामरचिह्नरूप, प्रसिद्ध गुणों वाली उस नायिका का क्या स्मरण करते हो ? अर्थात् उसे तुम भूल गये और वह तुम्हें खोजती फिरती है ॥ ८५ ॥

नायक, नायिका से कह रहा है--

आक्षिपसि कर्णमक्ष्णा बलिरपि बद्धस्त्वया त्रिधा मध्ये ।
इति जितसकलवदान्ये तनुदाने लज्जसे सुतनु ॥ ८६ ॥

पदार्थ--सुतनु--शोभना तनूः यस्याः तत्सम्बुद्धिः--सुन्दर शरीर वाली ! अक्ष्णा--नेत्रेण--नेत्र से। कर्णम्--(१) श्रवणम्, (२) राधेयम्--कान को, कर्ण को, जो कुन्ती का पुत्र था और राधा नामक स्त्री से पालित होने के कारण राधेय कहलाता था। आक्षिपसि--(१) स्पृशसि, (२) तिरस्करोषि--स्पर्श करती हो, तिरस्कृत करती हो। त्वया--तुम्हारे द्वारा। मध्ये--मध्यभाग में, कटि प्रदेश में। बलिः अपि--(१) त्रिवली, (२) तन्नामक दैत्य। त्रिधा--तीन भागों में। बद्धः--बाँधा गया। इति--इस प्रकार। जितसकलवदान्ये--जिताः सकलाः वदान्याः प्रसिद्धदानिनः यया तत्सम्बुद्धिः--हे सकलदानियों को जीत लेने वाली ! तनुदाने--(१) शरीरदान में, (२) स्वल्प दान में। लज्जसे--लज्जित होती हो।

सरलार्थ--हे सुतनु ! तू नेत्र से कर्ण (१--कान, २--कर्णनामक प्रसिद्ध

दानी) को आक्षिप्त (१—स्पृष्ट, २—तिरस्कृत) करती है। तूने मध्यभाग में वलि (१—त्रिवली, २—बलि नामक दैत्य) को तीन भागो में बाँध रक्खा है। इस प्रकार सकल उत्कर्षशाली दानियो को जीतने वाली ! तू तनुदान (१—शरीरदान, २—अल्प दान) में लज्जा करती है [अत्यन्त उदार होने के कारण तुम्हारा तनुदान (शरीरदान) भी तनु (स्वल्प) दान ही कहा जायगा] ॥ ८६ ॥

किसी की नायिकाविषयक आसक्ति का वर्णन कोई कर रहा है—

आक्षेपचरणलङ्घनकेशग्रहकेलिकुतुकतरलेन ।
स्त्रीणां पतिरपि गुरुरिति धर्म न श्राविता सुतनुः ॥ ८७ ॥

पदार्थ—आक्षेपचरणलङ्घनकेशग्रहकेलिकुतुकतरलेन—आक्षेपः तिरस्कारः, चरणलङ्घनम् पादप्रहारः, केशग्रहः एतेषां केलिकुतुके तरलेन—तिरस्कार, पादप्रहार, केशग्रह (बालो को पकडना) के केलि-कौतुक में समासक्त (पति) ने। पतिः। स्त्रीणां गुरुः—स्त्रियो का गुरु। इति धर्मम्—इस धर्म को। सुतनुः श्राविता अपि न—सुन्दरी को सुनाया भी नहीं।

सरलार्थ—तिरस्कार, पादप्रहार, केशग्रह आदि केलि-कौतुक में समासक्त पति ने, पति स्त्रियो का गुरु होता है—यह वाक्य (साधारण धर्मचर्चा के समय) सुन्दरी को सुनाया भी नहीं (संभव है, ऐसा सुनकर वह मेरा आक्षेप आदि करना बन्द कर दे और केलि का सारा आनन्द समाप्त हो जाय) ॥ ८७ ॥

स्नानागार मे नायिका समस्त वस्त्र उतार कर स्नान कर रही थी, स्नान करने के बाद वस्त्र पहिन नही पायी थी कि पीछे से नायक ने आकर उसे अपने अङ्क मे भर लिया और सुरत का आनन्द लिया—इस आकस्मिक सङ्ग का वर्णन नायिका, सखी से कर रही है—

आगच्छतानवेक्षितपृष्ठेनार्थी वराटकेनेव ।
मुषितास्मि तेन जघनांशुकमपि वोढुं नशक्तेन ॥ ८८ ॥

पदार्थ—अनवेक्षितपृष्ठेन—अनवेक्षितेन (अदृष्टेन) पृष्ठेन—पीछे से, जिधर मै देख नही पायी, अनवेक्षितं पृष्ठं येन तेन—जिसने (आतुरता-वश) पीछे की ओर (अन्यजनदर्शन की शङ्का से भी) नही देखा। कपर्दपक्ष मे—अनवेक्षितम् पृष्ठं यस्य तेन—जिसका पीछे वाला भाग देखा नही गया। नशक्तेन न शक्ता यस्मात् तेन - जिसकी अपेक्षा (मै) शक्त (समर्थ) नहीं। कपर्द पक्ष मे—("जघनांशुकमपि वोढुम्" का अन्वय इसी के साथ करना चाहिए) न शक्तेन—असमर्थेन। तेन—नायक द्वारा। जघनांशुकमपि वोढुम्—जघन का

वस्त्र भी (पहिनने के लिए) ग्रहण करने में। मुषिता अस्मि—असमर्थ हो गई। कपर्दपक्ष में अंशुक का अर्थ—अंशुः एव अंशुकः तम् अंशुकम् किरणम्—पीछे की ओर वनी किरण-रेखा।

सरलार्थ—(हे सखि ! स्नानागार में मेरे स्नान करते समय) नायक, मेरे पीछे से आया जिससे मैं उसके आने को जान न सकी, वह इतना आतुर था कि पीछे से कोई आ न रहा हो—ऐसी शङ्का कर पीछे मुड़ कर देखा तक नहीं, मै उससे समर्थ नहीं हूँ अतः (उससे बल नही चला) मैं (पहिनने के लिए उत्तरीय वस्त्र तो दूर रहा) जघन वस्त्र भी ग्रहण करने में, उसके द्वारा असमर्थ बन गई। जैसे पीछे की ओर किरण शून्य सच्छिद्र कपर्द से, विना पीछे का भाग देखे ग्रहण कर लेने पर, याचक धोखा खा जाता है। (गौडदेश मे कवि के जीवन-काल मे कपर्द का प्रयोग व्यवहार में होता था) ॥ ८८ ॥

प्रणयकोपयुक्त अथवा सुरतश्रान्त सोती हुई नायिका का वर्णन सखी, अपर सखी से कर रही है—

आकुञ्चितैकजङ्घं दरावृतोर्ध्वोरु गोपितार्धोरु।
सुतनोः श्वसितक्रमनमदुदरस्फुटनाभि शयनमिदम् ॥ ८९ ॥

पदार्थ—आकुञ्चिता एका जङ्घा यस्मिन् तत्—जिसमें एक जाँघ सिकोड़ ली गयी है। दरावृतोर्ध्वोरु—दरम् ईषत् आवृतः ऊर्ध्वम् ऊरुः यस्मिन् तत्—जिसमें ऊरु प्रदेश का ऊपरी भाग थोड़ा सा ढका है। गोपितार्धोरु—गोपितः अत्यन्तम् आच्छादितः अर्धः उरुः यत्र तत्—जिसमें आधा उरु प्रदेश अत्यन्त आच्छादित है। श्वसितक्रमनमदुदरस्फुटनाभि—श्वसितक्रमेण नमत् यत् उदरं तेन स्फुटा नाभिः यत्र तत्—श्वास क्रम से उदर के नत होने से नाभि स्पष्ट प्रकट हो रही है जिसमें। सुतनोः—सुन्दरी का। इदं शयनम्—यह शयन (नींद)।

सरलार्थ—सुन्दरी का शयन हो रहा है, एक जाँघ सिकोड़ ली गयी है, ऊरुप्रदेश का ऊर्ध्व थोड़ा सा, और आधा ऊरुप्रदेश बहुत अधिक ढका है; श्वास क्रम से उदर के नत होने से नाभि स्पष्ट प्रकट हो रही है (इस समय इसे जगाना उचित नहीं) ॥ ८९ ॥

सखी नायक से, तद्विषयक नायिका की आसक्ति का वर्णन कर रही है—

आदाय धनमनल्पं ददानया सुभग तावकं वासः।
मुग्धा रजकगृहिण्या कृता दिनैः कतिपयैर्निःस्वा ॥ ९० ॥

पदार्थ—सुभग ! अनल्पं—बहु। धनम्। आदाय—गृहीत्वा—लेकर।

तावकं वासः—तुम्हारा वस्त्र। ददानया रजकगृहिण्या—देती हुई धोबिन द्वारा। कतिपयैः दिनैः—कतिपय दिनो में। मुग्धा—सुन्दरी, विवेकशून्य। निःस्वा—निर्गतं स्वं धनं यस्याः सा—निर्धना। कृता—बना दी गई।

सरलार्थ—हे सुभग (तुम्हारे अङ्ग-सङ्ग को कौन कहे, तुम्हारे वस्त्रो को ही देखकर परमानन्द पाती है और इसके लिए धोबिन को पैसे देती है) बहुत सा धन लेकर (उसे देखने के लिए) तुम्हारा वस्त्र देती धोबिन द्वारा कतिपय दिनो मे वह मुग्धा (सुन्दरी, विवेकशून्य) निर्धन कर दी गई॥ ९० ॥

किसी दुर्जन को अधिकार दिलाने के लिए प्रयत्नशील से कोई अन्योक्ति द्वारा कर रहा है—

आस्तां वरमवकेशी मा दोहदमस्य रचय पूगतरोः।
एतस्मात्फलितादपि केवलमुद्वेगमधिगच्छ ॥ ९१ ॥

पदार्थ—अस्य पूगतरोः—इस सुपारी के वृक्ष का। दोहदम्—दोहद। मा रचय—मत रचो। अवकेशी—निष्फल। आस्ताम्—रहे। वरम्—अच्छा। एतस्मात् फलितादपि—इसके फलने से भी। केवलम्—केवल। उद्वेगम्—(१—अधैर्यादि, २—सुपारी का फल उद्वेग), अधिगच्छ—जानीहि—जानो।

सरलार्थ—इस पूग वृक्ष का (फलोत्पत्ति के लिए) दोहद मत रचो। यह बिना फल के रहे—यही अच्छा है। फलित होने से भी इसका फल उद्वेग (१—अधैर्यादि, २—सुपारी के फल का नाम) होता है—ऐसा समझ लो (इसे अधिकार दिलाने पर तुम्हे उद्वेग ही होगा) ॥ ९१ ॥

दुष्ट का अवलम्बन लेकर किया गया कार्य अवश्य अनर्थकारी होता है, ऐसा कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

आरब्धमब्धिमथनं स्वहस्तयित्वा द्विजिह्वममरैर्यत्।
उचितस्तत्परिणामो विषमं विषमेव यज्जातम् ॥ ९२ ॥

पदार्थ—अमरैः—देवो ने। यत्—जो। द्विजिह्वम्—द्वे जिह्वे यस्य तम् (सर्पम्)—(१) जिसके दो जीभ हों अर्थात् सर्प को, (२) तत्काल ही अन्यथावादी, को। स्वहस्तयित्वा—(१) अपने हाथ में कर, (२) अपने अधीन कर। अब्धिमथनम्—अब्धेः समुद्रस्य मथनम्—समुद्रमन्थन। आरब्धम्—आरम्भ किया। तत्परिणामः—तस्य परिणामः। उचितः एव—उचित ही हुआ। विषमम् विषम्—तीव्र विष। जातम्—उत्पन्न हुआ।

सरलार्थ—देवो ने जो द्विजिह्व (१—सर्प, २—अन्यथावादी) को अपने हाथ में कर समुद्रमंथन आरम्भ किया उसका परिणाम उचित ही हुआ जो

विषम विष उत्पन्न हुआ (यथा द्विजिह्व के अवलम्बन से समुद्र मथने पर विष हुआ, उसी प्रकार दुष्ट के अवलम्बन से आरम्भ किए गए कार्य का परिणाम भी दुष्ट होगा) ॥ ९२ ॥

नायक, सुरतश्रान्त नायिका के शयन का वर्णन कर रहा है—

आवर्जितालकालि श्वासोत्कम्पस्तनार्पितैकभुजम् ।
शयनं रतिविवशतनोः स्मरामि शिथिलांशुकं तस्याः ॥९३॥

पदार्थ—आवर्जिता संयमिता अलकाली केशपंक्तिः यत्र तत्—जिसमें अलकें संयमित हैं । श्वासोत्कम्पस्तनार्पितैकभुजम्—श्वासैः उत्कम्पयोः स्तनयोः एकः भुजः यत्र तत्—जिसमें श्वासों से काँपते स्तनों पर एक भुज (निहित) है । शिथिलांशुकम्—शिथिलम् अंशुकं वस्त्रं यत्र तत्—जिसमें वस्त्र शिथिल हो गया है । रतिविवशतनोः—रत्या विवशा तनुः यस्याः तस्याः—रति से जिसका शरीर विवश है । तस्याः शयनम्—उसका शयन । स्मरामि—स्मरण करता हूँ ।

सरलार्थ—रति से विवश शरीर वाली उस (नायिका) के शयन का स्मरण करता हूँ—जिसमें अलकें संयमित कर ली गई थीं, श्वासों से काँपते स्तनों पर एक भुजा पड़ी थी और वस्त्र शिथिल था ॥ ९३ ॥

चिरविरहखिन्न नायिका से प्रावृट्प्रादुर्भाव का कथन कर पति के आगमन की दृढ़ आशा बँधाती सखी कह रही है—

आम्राङ्कुरोऽयमरुणश्यामलरुचिरस्थिनिर्गतः सुतनु ।
नवकमठकर्परपुटान्मूर्धेवोर्ध्वं गतः स्फुरति ॥ ९४ ॥

पदार्थ—अयम्—यह । आम्राङ्कुरः—आम का अँखुआ । अरुणश्यामलरुचिः—अरुणश्यामला रुचिः दीप्तिः यस्य सः—जिसका वर्ण लाल और श्यामल है । अस्थिनिर्गतः—अस्थि कर्कशोपरिभागः तस्मात् निःसृतः—आम की गुठली के ऊपर के कठोर भाग से निकला । हे सुतनु—सुन्दरि ! नवकमठकर्परपुटात्—नवः नूतनः यः कमठः तस्य यत् कर्परपुटम् पृष्ठास्थि ततः—नूतन कमठ के कर्परपुट (पीठ की हड्डी) से । ऊर्ध्वं गतः—निकला हुआ । मूर्धा इव—शिरोभाग-सा । स्फुरति—प्रतिभाति—शोभित हो रहा है ।

सरलार्थ—यह आम का अँखुआ जिसका वर्ण लाल और श्यामल है, गुठली के कठोर ऊपरी भाग से निकला, हे सुन्दरि ! नूतन कमठ की पीठ की ऊपरी हड्डी (कर्परपुट) से बाहर निकला शिरोभाग-सा शोभित हो रहा है (वर्षाकाल आ गया, तुम्हारा पति शीघ्र ही आयेगा) ॥ ९४ ॥

नायिका में आसक्त नायक, उपदेश देते हुए अपने सखा से कह रहा है—

आभङ्गुराग्रबहुगुणदीर्घास्वादप्रदा प्रियादृष्टिः ।
कर्षति मनो मदीयं ह्रदमीनं बडिशरज्जुरिव ॥ ९५ ॥

पदार्थ—आभङ्गुराग्रबहुगुणदीर्घास्वादप्रदा प्रियादृष्टिः—(१) ईषत् भङ्गुरः अग्रः यस्याः सा, कुटिलकटाक्षा—जिसका अग्र (कटाक्ष) थोड़ा टेढ़ा है, (२) कुटिलाग्रा—जिसका अग्रभाग थोड़ा टेढ़ा है । बहुगुणा—बहवः गुणाः (१) वशीकरणतादयः, श्वेतकृष्णरक्तरूपाः वा, (२) तन्तवः यस्यां सा—(१) वशीकरणतादिशालिनी श्वेतकृष्णरक्तरूपशालिनी वा, (२) बहुतन्तुमयी । दीर्घा—(१) कर्णान्तं प्रसरणशीला, (२) लम्बायमाना—(१) कानो तक फैली, (२) लम्बायमान । आस्वादप्रदा—(१) सुखदा, (२) मधुरवस्तुदात्री—(१) सुख देने वाली, (२) मधुर वस्तु देनेवाली । प्रियादृष्टिः—प्रिया की दृष्टि । ह्रदमीनम्—ह्रदस्य—गम्भीरसरोवरस्य मीनम् मत्स्यम्—गहरे सरोवर के मत्स्य को । बडिशरज्जुः—बलिनः मत्स्यान् श्यति नाशयति इति बडिशम् तस्य रज्जुः—वंसी की डोर । इव—समान । मदीयं मनः—मेरे मन को । कर्षति—खींचती है ।

सरलार्थ—कुटिल कटाक्ष वाली, वशीकरणता आदि गुणों से, श्वेत, श्याम, रक्त रूप से युक्त, कर्ण पर्यन्त लम्बी, सुखदा प्रिया की दृष्टि मेरे मन को, गंभीर सरोवर के मत्स्य को कुटिलाग्र, बहुतन्तुमयी लम्बी, मधुरवस्तुदात्री वंसी की डोर के समान, आकृष्ट कर लेती है (खीच लेती है) ॥ ९५ ॥

नायिका की सखी पराङ्गनासक्त नायक की भर्त्सना करती, नायक से कह रही है—

आलप यथा यथेच्छसि युक्तं तव कितव किमपवारयसि ।
स्त्रीजातिलाञ्छनमसौ जीवितरङ्का सखी सुभग ॥ ९६ ॥

पदार्थ—यथा यथा इच्छसि—जैसा जैसा चाहते हो । आलप—बक लो । युक्तं तव—तुम्हें सब उचित है । कितव—धूर्त । किम्—क्यो । अपवारयसि—छिपाते हो । असौ—इयम् मत्सखी—यह मेरी सखी । स्त्रीजातिलाञ्छनम्—स्त्रीजातौ लाञ्छनम्—स्त्रीमात्रकलङ्कभूता । जीवितरङ्का—जीविताय जीवनाय रङ्का—जीने के लिए दीन ।

सरलार्थ—तुम्हारे मन में जो आये वह इच्छा भर कह लो । तुम को यह उचित है । धूर्त ! क्यो छिपाते हो (खूब बाते रचो, उनमें मुझे विश्वास नहीं) । मेरी यह सखी स्त्री मात्र में कलङ्क है (अन्य स्त्रियाँ ऐसा सहन नहीं कर सकती) ।

यह जीवन के लिए दीन बनी हुई है (क्योंकि बिना तुम्हें देखे उसका मरण निश्चित है)॥ ९६ ॥

नायिका नायक के प्रति अन्योक्ति द्वारा कहती है—

आस्वादितोऽसि मोहाद्धत विदिता वदनमाधुरी भवतः ।
मधुलिप्तक्षुर रसनाच्छेदाय परं विजानासि ॥ ९७ ॥

पदार्थ—मधुलिप्तक्षुर—मधुना लिप्तः क्षुरः तत्सम्बुद्धिः—हे मधुलिप्त क्षुर (छूरा)! मोहात्—अज्ञान के कारण। आस्वादितः असि—तुम्हारा आस्वादन किया गया। बत—खेदे—खेद का विषय है। भवतः वदनमाधुरी विदिता—आपके वदन का माधुर्य ज्ञात हो चुका। रसनाच्छेदाय परं विजानासि—रसनाच्छेदन खूब जानते हो।

सरलार्थ—मधुलिप्त क्षुर, मोह-वश तुम आस्वादित किये गये किन्तु खेद है—तुम्हारे मुख की माधुरी ज्ञात हो चुकी। रसनाच्छेदन खूब जानते हो (केवल वदनमाधुर्य मात्र से स्वविषयक लोककथन का खण्डन कर अन्तःकरण में दुष्टता बनाये रखते हो)॥ ९७ ॥

किसी अविवाहित से कोई कह रहा है—

आकृष्टिभग्नकटकं केन तव प्रकृतिकोमलं सुभगे ।
धन्येन भुजमृणालं ग्राह्यं मदनस्य राज्यमिव ॥ ९८ ॥

पदार्थ—आकृष्टिभग्नकटकम्—आकृष्टया (१—अवलम्बनेन, २—विमर्देन) भग्नं कटकं (१—वलयं, २—सैन्यं) यस्य तत्—(१) अवलम्बन से जिसका कङ्कण टूट गया, (२) विमर्द से जिसका सैन्य भग्न हो गया। प्रकृति-कोमलम्—प्रकृत्या (१—स्वभावेन, २—प्रकृतिभिः, प्रजाभिः)—प्रजा से, कोमलम्—(१—मृदु, २—सौम्यम्)—मृदु अथवा सौम्य। तव—तुम्हारा। भुजमृणालम्—भुजः मृणालम्—भुजकमलदण्ड। हे सुभगे—सौभाग्यशालिनी। मदनस्य राज्यमिव—मदन के राज्य-सा। केन धन्येन—किस धन्य पुरुष द्वारा। ग्राह्यम्—गृहीत होगा।

सरलार्थ—हे सौभाग्यशालिनी! अवलम्बन मात्र से जिसका कङ्कण टूट गया, जो स्वभावतः कोमल है, तुम्हारे ऐसे भुजमृणाल को कौन धन्य पुरुष, दलने-मलने से जिसका सैन्य-दल छिन्न-भिन्न हो गया, जो प्रजाओं से सौम्य है, कामदेव के उस राज्य-सा, ग्रहण करेगा? (जो तुम्हारा पाणिस्पर्श करेगा वह मदन-महीपति ही है)॥ ९८ ॥

नायक नायिका के प्रति कह रहा है—

आरुह्य दूरमगणितरौद्रक्लेशा प्रकाशयन्ती स्वम् ।
वातप्रतीच्छनपटी वहित्रमिव हरसि मां सुतनु ॥ ९९ ॥

पदार्थ—हे सुतनु—सुन्दर शरीर वाली ! दूरम्—प्रासादशिखर पर दूर। आरुह्य—चढ़ कर। अगणितरौद्रक्लेशा—न गणितः रौद्रः (१—दुःसहः, २—घर्मसम्बन्धी) क्लेशः यया सा—(१) जिसने दुःसह क्लेश की चिन्ता नहीं की, (२) जिसने प्रचण्ड धूप के क्लेश की चिन्ता नही की। स्वम्—आत्मानम्—अपने को। प्रकाशयन्ती—दर्शयन्ती—दिखाती हुई। माम्—मुझको। वातप्रतीच्छनपटी—पाल (जो नौका पर ऊपर टँगा होता है)। वहित्रम् इव—पोत, नाव को जैसे। हरसि—स्वाधीन कर लेती हो।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! प्रासाद शिखर पर दूर बहुत ऊँचे चढ़कर, दुःसह क्लेश की उपेक्षा कर, तुम अपना दर्शन देती हुई मुझको अपने अधीन कर लेती हो (तुम्हारे दर्शन से मै आकृष्ट होकर यहाँ आ गया) जैसे वातप्रतीच्छनपटी (पाल) दूर ऊपर टँगी धूप का क्लेश तिरस्कृत करती, दूर से ही दिखायी पड़ती; नाव को अपने अधीन रखती है ॥ ९९ ॥

कतिपय व्यक्तियो का आश्रय लेकर, किसी का अपकार करने को उद्यत व्यक्ति से कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

आयासः परहिंसा वैतंसिकसारमेय तव सारः ।
त्वामपसार्य विभाज्यः कुरङ्ग एषोऽधुनैवान्यैः ॥ १०० ॥

पदार्थ—वैतंसिकसारमेय—वैतंसिकस्य (व्याधस्य) सारमेयः कुक्कुरः, तत्सम्बुद्धिः—हे बहेलिये के कुत्ते ! आयासः—श्रमः। परहिंसा। तव सारः—सारभूतम्। त्वाम्—तुझको। अपसार्य—दूरीकृत्य—हटा कर, भगा कर। एषः कुरङ्गः—यह हरिण। अधुना एव—अभी इसी समय। अन्यैः—व्याध के अनुयायियो द्वारा। विभाज्यः—बाँट लिया जायगा।

सरलार्थ—हे व्याध के कुत्ते ! (तनिक विचार कर, निष्फल कार्य करने से तेरा क्या लाभ ?) (व्यर्थ) श्रम और अन्यप्राणी की हत्या—यही तेरा सारभूत है—यही तेरे भाग में आयेगा। (बलपूर्वक) तुझे दूर भगा कर इस हरिण को अभी इसी समय व्याध के अनुयायी बाँट लेगे (तो ऐसा पाप-कर्म व्यर्थ तू क्यो करता है ?) ॥ १०० ॥

किसी बाला में आसक्त नायक, बाला की अङ्गरक्षिका के कारण, उपयुक्त

अवसर न मिलने से दुःखी है। उसका मित्र, अङ्करक्षिका को अन्य पुरुष में लुब्ध कर, उसे हटा कर अवसर प्राप्त करने का उपाय बताते हुए कह रहा है—

आनयति पथिकतरुणं हरिण इह प्रापयन्निवात्मानम् ।
उपकलमगोपि कोमलकलमावलिकवलनोत्तरलः ॥ १०१ ॥

पदार्थ—कोमला ये कलमाः तेषाम् आवलयः तासां कवलने उत्तरलः इति कोमलकलमावलिकवलनोत्तरलः—कोमल कलम (धान्य विशेष) पक्ति के खाने में उत्कण्ठित । आत्मानं प्रापयन् इव—अपने को प्राप्त कराता-सा । हरिणः । पथिकतरुणम्—पथिक युवक को । उपकलमगोपि—कलमगोप्याः समीपे—उपकलमगोपि—कलमरक्षिका के पास। आनयति—ले जाता है ।

सरलार्थ—(मित्र ! दुःखी मत हो। अङ्करक्षिका को अन्य सुन्दर युवक मे ससक्त कर नायिका से दूर हटा दो और उसका सङ्ग प्राप्त करने के लिए उपयुक्त अवसर इस प्रकार निकाल लो। लोक में हरिण (पशु भी) इस नीति का आश्रय लेता है) कोमल कलमावलि के उपभोग के लिए उत्कण्ठित हरिण (अवसर निकालने के लिए) तरुण पथिक को अपने को प्राप्त कराता हुआ-सा, कलमरक्षिका के पास पहुँचाता है। (हरिण तरुण पथिक के पास मार्ग में खडा हो जाता है। उसे ग्रहण करने के लिए पथिक अनुसरण करता है; मृग शनैः शनैः चलकर कलमरक्षिका के पास तक उस पथिक को पहुँचा कर, कलमरक्षिका को पथिक के साथ वहाँ से अन्यत्र गुप्तस्थान में भेजकर स्वयं निर्बाध कलमावलि का भक्षण करता है; यही उपाय तुम्हे भी करना चाहिए) ॥ १०१ ॥

तुमने उसके साथ कौन-सा दुर्व्यवहार किया, जो तुम्हारा प्रिय होकर भी आज-कल तुम्हारे विषय में वह कटु वचन कहा करता है—इस प्रकार कहने वाली सखी से नायिका कह रही है—

आसीदेव यदार्द्रः किमपि तदा किमयमाहतोऽप्याह ।
निष्ठुरभावादधुना कटूनि सखि रटति पटह इव ॥ १०२ ॥

पदार्थ—सखि ! यदा—जब । आर्द्रः—(१) प्रेमयुक्त, (२) गीला । आसीत्—था। तदा—तब। अयमेव—यही। आहतोऽपि—प्रताडित भी। किम्—क्या। किमप्याह—कुछ कहता था ? अधुना—आज-कल। निष्ठुरभावात्—(१) प्रेमाभाव से, (२) शुष्क-भाव से। पटहः इव—नगाड़े की तरह। कटु रटति—कटुवचन बोलता है।

सरलार्थ—सखि ! (इसके कटुवचनो का कारण मेरा अपराध नहीं अपितु इसका निष्ठुरभाव है) जब प्रेमार्द्र रहा करता था तो यही मेरे द्वारा प्रताडित होकर भी क्या कुछ कहता था ? अर्थात् नहीं। आजकल निष्ठुर (प्रेमशून्य)

होने के कारण शुष्क नगाड़े की भाँति कटुवचन रटता है (नगाडा भी आर्द्र रहने पर ताडित होकर शब्द नहीं करता, शुष्क होने पर करता है) ॥ १०२ ॥

पराङ्गनासंभोग लक्षित कर, नायिका द्वारा दण्ड दिलाने की धमकी देती नायिका की सखी से नायक कह रहा है—

आज्ञाकरश्च ताडनपरिभवसहनश्च सत्यमहमस्याः ।
न तु शीलशीतलेयं प्रियेतरद्वक्तुमपि वेद ॥ १०३ ॥

पदार्थ—अस्याः—नायिका का । अहम्—मैं । आज्ञाकरः च—आज्ञा करोतीति—आज्ञाकारी । ताडनपरिभवसहनः च—ताडनं, परिभवञ्च, एतयोः सहनः च—और ताडन एवं तिरस्कार सहने वाला । सत्यम्—यह सच है । शीलशीतला—शीलेन स्वभावेन शीतला सौम्या—सौम्य स्वभाव की । इयम्—मम मनोवर्तिनी—यह मेरे मन में सदा रहने वाली । प्रिया । इतरद्—अप्रियम्—अप्रिय । वक्तुमपि—बोलना भी । न वेद—नहीं जानती ।

सरलार्थ—यह सत्य समझो—मैं इसका आज्ञाकारी और (तत्कृत) ताडन और तिरस्कार का सहने वाला हूँ । यह मनोवर्तिनी स्वभाव से सौम्य प्रिया अप्रिय (करना तो दूर) बोलना भी नहीं जानती । (अतः तुम उससे मेरा अपराध बताकर कुछ बिगाड न सकोगी) ॥ १०३ ॥

किसी नायक में आसक्ति कर, उपाय करने पर भी उसे न पा सकी नायिका से अन्य स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

आधाय दुग्धकलशे मन्थानं श्रान्तदोर्लता गोपी ।
अप्राप्तपारिजाता दैवे दोषं निवेशयति ॥ १०४ ॥

पदार्थ—दुग्धकलशे—दुग्धस्य कलशे—दूध के घड़े में । मन्थानम्—रई (दही मथने की लकडी विशेष) को । आधाय—कृत्वा—रखकर, डाल कर । श्रान्तदोर्लता—श्रान्ता दोर्लता भुजलता यस्याः सा—जिसकी भुजलता थक गयी । गोपी—गोपस्य स्त्री—गोप की स्त्री । अप्राप्तपारिजाता—न प्राप्तः पारिजातः यया सा—जिसे पारिजात वृक्ष नही मिला । दैवे—दैव में । दोषम्—दोष को । निवेशयति—स्थापयति—स्थापित करती है, दैव को दोष देती है ।

सरलार्थ—(जैसे देवो ने क्षीरसमुद्र को मथकर पारिजात वृक्ष प्राप्त किया और कृष्ण ने उसे सत्यभामा को दिया वैसे मैं भी क्षीर मथ कर उसे प्राप्त कर सत्यभामा की समता प्राप्त करूँ—इस उद्देश्य से) दूध के घड़े मे मथनी डाल कर (चलाते-चलाते) थकित भुजलता वाली गोपी (विवेकशून्या) पारिजात

वृक्ष को न पा सकी तो (अपनी मूर्खता पर नहीं) दैव के सिर दोष मढ़ती है ॥ १०४ ॥

कोई, नायिका की सौम्यता अपने सखा से कह रहा है—

आस्तां मानः कथनं सखीषु वा मयि निवेद्यदुर्विनये ।
शिथिलितरतिगुणगर्वा ममापि सा लज्जिता सुतनुः ॥१०५॥

पदार्थ—निवेद्यदुर्विनये--निवेदितुं योग्यः दुर्विनयः यस्य तस्मिन्--जिसका दुर्विनय निवेदन योग्य है । मयि (सति)—मेरे होने पर । मानः । सखीषु वा कथनम्—अथवा सखियों में कहना । आस्ताम्—दूर रहे । शिथिलितरतिगुण-गर्वा—शिथिलितः रतिगुणानां गर्वः यस्या सा—जिसका रतिगुण का गर्व शिथिल हो गया । सा सुतनुः—वह सुन्दरी । ममापि लज्जिता—मुझ अपराधी के प्रति भी लज्जित हो गई ।

सरलार्थ—मैंने ऐसा अपराध किया जो अवश्य कथनीय था किन्तु मान करना अथवा सखियो के बीच कहना तो दूर रहे, अपने रति के गुणो के गर्व को शिथिल कर (यदि मुझमें गुण होते तो यह अन्य नायिका मे क्यों आसक्त होता—यह सोच कर) वह सुन्दरी मुझ (अपराधी) के प्रति भी लज्जित हो उठी ॥ १०५ ॥

कोई (परकीया) नायिका, प्रिय आगमन के उत्सव मे, तण्डुल आदि को पीस, द्रवरूप कर करतल मे लगा-लगा चित्र बनाना तथा मङ्गल गान करना आदि विधान, लोकभय मे प्रत्यक्ष न कर आवर्त (जल की भँवर) आदि के बहाने कर रही है--यह बात एक स्त्री दूसरी से कहती है—

आवर्तैरातर्पणशोभां डिण्डीरपाण्डुरैर्दधती ।
गायति मुखरितसलिला प्रियसंगममङ्गलं सुरसा ॥ १०६ ॥

पदार्थ—डिण्डीरपाण्डुरैः—डिण्डीरः—फेनः तेन श्वेतैः--फेनश्वेत । आवर्तैः—जलानां भ्रमैः—जल के भँवरों से । आतर्पणशोभाम्—आतर्पणस्य शोभाम् दधती कुर्वती—मातृतर्पण की शोभा करती । मुखरितसलिला—मुखरितं सशब्दं कृतं सलिलं यया—जिसके द्वारा सलिल मुखरित हुआ । सुरसा—शोभनः रसः अनुरागः यस्याः सा—सानुरागातिशया—परमानुरागवती । प्रियसङ्गम-मङ्गलं--प्रियसङ्गमनैमित्तिक मङ्गल । गायति—गा रही है ।

सरलार्थ—फेनो से श्वेत जल की भँवरो द्वारा तर्पण शोभा का सम्पादन करती, जल को मुखरित कर वह परमानुरागमयी, प्रियसङ्गमनैमित्तिक मङ्गल गा

रही है (फेन ही तण्डुल आदि का द्रव है, आवर्त ही करतलकृत चित्र है, जल की ध्वनि ही मङ्गलगान है) ॥ १०६ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता आकारव्रज्या ।

इकारव्रज्या

रात के सुरतश्रम से सोयी नायिका को सिखाती सखी कह रही है—

इयमुद्गतिं हरन्ती नेत्रनिकोचं च विदधती पुरतः ।
न विजानीमः किं तव वदति सपत्नीव दिननिद्रा ॥१०७॥

पदार्थ—इयं तव दिननिद्रा—यह तुम्हारी दिन की निद्रा । सपत्नी इव—सपत्नी की तरह । उद्गतिम्—(१) गमनम्—गमन को, (२) उत्कर्षम्—उत्कर्ष को । हरन्ती—हरती हुई । नेत्रनिकोचम्—नयनसंकोच को (१—आलस्य से, २—भय से) । विदधती—करती । पुरतः—अग्रे—आगे । किं वदति—वदिष्यति—क्या कहेगी । न विजानीमः—नही जानते है ।

सरलार्थ—यह तुम्हारी दिन की निद्रा सपत्नी की भाँति तुम्हारी उद्गति (१—गमन, २—उत्कर्ष) को हरती, तुम्हारे नेत्रो को (१—आलस्य से, २—भय से) संकुचित करती आगे न जाने क्या कहेगी (अतः इसे शीघ्र छोड़ दो) ॥ १०७ ॥

बाला ने हार को जनेऊ की तरह धारण किया है जिससे एक कुच तो छूट गया है और एक पर हार पड़ा हुआ है—इस शोभा को देख कर कोई उसकी समता गुलेल से कर रहा है—

इदमुभयभित्तिसंततहारगुणान्तर्गतैककुचमुकुलम् ।
गुटिकाधनुरिव बालावपुः स्मरः श्रयति कुतुकेन ॥१०८॥

पदार्थ—इदम्—यह । उभयभित्तिसंततहारगुणान्तर्गतैककुचमुकुलम्—उभयभित्तौ उभयपार्श्वे संततहारगुणः तस्य अन्तर्गतः एककुचमुकुलः यस्मिन् तत्—जिसमें दोनो ओर (ऊपर और नीचे) सिरो पर अविच्छिन्न हार की लडी रूप गुण (डोरी) है उसके अन्तर्गत एक कुचकली (गोली) है । बालावपुः—बालायाः वपुः—बाला के शरीर को । गुटिकाधनुः इव—गुटिका-धनुष के समान । गुटिकाधनुष, एक धनुषविशेष है जिसमें दोनो सिरो पर, एक सिरे से दूसरे सिरे तक दोहरी डोरी लगी रहती है, दोनो डोरियो के बीच, सिरो की मध्यस्थता के कारण इतना अन्तर रहता है कि दोनो के बीच मे मिट्टी आदि की बनी गोली रखकर छोडी जा सके । इस धनुष को लोक मे गुलेल

कहते हैं। स्मरः—कामदेव। कुतुकेन—कौतूहलवश। श्रयति—प्रयुक्त करता है।

सरलार्थ—एक सिरे से दूसरे सिरे तक अविच्छिन्न हार की लड़ी रूप डोरी के अन्तर्गत कुचकली रूप (गोली) जिसमें है, ऐसे बाला के शरीर को कामदेव गुलेल की भाँति कौतूहलवश प्रयुक्त करता है (इस अवस्था में जो बाला के शरीर को देखत' हैं उसे कामदेव की गोली लग जाती है)॥ १०८॥

सम्भोग में कान्त शीघ्र स्खलित न हो और सम्भोग देर तक चलता रहे—इस उद्देश्य से कान्त के चित्त को दूसरी ओर लगाती नायिका कह रही है—

इह शिखरिशिखरावलम्बिनि विनोददरतरलवपुषि तरुहरिणे।
पश्याभिलषति पतितुं विहगी निजनीडमोहेन॥१०९॥

पदार्थ—इह। शिखरिशिखरावलम्बिनि—शिखरी वृक्षः, 'तरुशैलौ शिखरिणौ' इत्यमरः, तस्य शिखरावलम्बिनि—वृक्ष के शिखर (अग्रभाग) पर लटका। विनोददरतरलवपुषि—विनोदेन दरम् ईषत् तरलं चञ्चलं वपुः यस्य तस्मिन्—विनोद से जिसका शरीर कुछ-कुछ चंचल है। तरुहरिणे—शाखामृगे, वानरे—बन्दर पर। विहगी—पक्षिणी, चिड़िया। निजनीडमोहेन—निजनीडस्य मोहेन भ्रमेण—अपने घोंसले के भ्रम से। पतितुम् अभिलषति—बैठने की अभिलाषा करती है। पश्य—देखो।

सरलार्थ—इधर देखो—वृक्ष के अग्रभाग पर लटके, विनोद से थोड़ा चञ्चल शरीर वाले बन्दर पर, चिड़िया अपने घोंसले के भ्रम से बैठना चाहती है।

(सम्भोग में स्तम्भन के लिए कहा गया है—'वानरं चपलं ध्यायेद् वृक्ष-शाखावलम्बिनम्' इति। 'शाखामृगमतिचपलं क्षितिरुहनिहितं विचिन्तयेत् प्राज्ञः। अपि मणिमुखपर्यन्तःप्राप्तं बीजं हि नो गलति॥ इति॥' वृक्ष शाखा में चपल वानर का ध्यान करने से लिङ्ग के अग्रभाग तक आया भी बीज नहीं लटके बाहर निकलता)॥ १०९॥

नायक द्वारा अन्य अङ्गना के देखे जाने पर कुपित नायिका से नायक कह रहा है—

इक्षुर्नदीप्रवाहो द्यूतं मानग्रहश्च हे सुतनु।
भ्रूलतिका च तवेयं भङ्गे रसमधिकमावहति॥ ११०॥

पदार्थ—हे सुतनु—सुन्दरि! इक्षुः—ईख। नदीप्रवाहः—नदी की धारा। द्यूतम्—जुआ। मानग्रहः—मान करना। तव—तुम्हारी। इयं भ्रूलतिका च—और यह भ्रूलता। भङ्गे—(क्रमशः दाँतों से चबाने, सेतुबन्धन, पराजय होने,

परित्याग करने, वक्र होने) पर। अधिकम्। रसम् (क्रमशः माधुर्य, जलाधिक्य, क्रीडनाधिकोत्साह, रागातिशय, प्रसादाधिक्य)। आवहति—ददाति—देती है।

सरलार्थ—हे सुन्दरि! ईख दाँतों से चबायी जाने पर माधुर्यातिशय देती है, नदीप्रवाह सेतु बन्धन से भङ्ग होने पर अधिक जल रखने लगता है, जुआ, पराजय होने पर खेलने का उत्साह और बढ़ाता है एवम् तुम्हारा मान, तुम्हारे द्वारा मेरा परित्याग होने पर राग को और अधिक बढ़ाता है, तुम्हारी भ्रूलतायें वक्र होने पर प्रसाद की अधिकता ही करती हैं (अतः मान छोड़कर पूर्ववत् स्नेहशील हो जाओ) ॥ ११० ॥

नायक को देखकर मुँह फेर लेनेवाली तथा पर्दा कर लेने वाली नायिका से सखी कह रही है—

इन्दोरिवास्य पुरतो यद्विमुखी सापवारणा भ्रमसि।
तत्कथय किं नु दुरितं सखि त्वया छाययेव कृतम् ॥१११॥

पदार्थ—इन्दोः इव—चन्द्रस्य इव—चन्द्र के समान। अस्य—नायकस्य—नायक के। पुरतः—आगे। यत्—जो। विमुखी—(१—मुँह फेर लेने वाली, २—पराङ्मुखी)। सापवारणा—अपवारेण सह वर्तमाना—(१—परदा कर लेने-वाली, २—व्यवधान रखने वाली)। इतस्ततः गच्छसि—इधर-उधर जाती है। त्वया—तेरे द्वारा। छायया इव—छाया की भाँति। किं नु—कौन सा। दुरितम्—पाप। कृतम्—किया गया। तत् कथय—उसे कहो।

सरलार्थ—हे सखि! (सन्तापशामक एवम् आलिङ्गन योग्य) चन्द्र-समान इस नायक के आगे जो तू मुँह फेर, आवरण कर इधर-उधर चलती है तो बता, पराङ्मुखी व्यवधान रखनेवाली छाया की भाँति तू ने कौन-सा पाप किया है (जिसके फल-स्वरूप तेरा एतादृश आचरण है) ॥ १११ ॥

कोई दुर्विनीत नायिका किसी सौम्य पुरुष को अपने फन्दे मे फँसाने के लिए उद्यत है—ऐसा देखकर कोई व्यक्ति अन्योक्ति द्वारा उस पुरुष को सचेत कर रहा है—

इह कपटकुतुकतरलितदृशि विश्वासं कुरङ्ग किं कुरुषे।
तव रभसतरलितेयं व्याधवधूर्वालधौ वलते ॥ ११२ ॥

पदार्थ—हे कुरङ्ग—मृग! कपटकुतुकतरलितदृशि—कपटपूर्णकुतुकेन तरलिता दृक् यया तस्याम्—जिसने कपटकुतुक से दृष्टि चंचल की है! इह—एतस्याम्—इसमें। विश्वासं किं कुरुषे—विश्वास क्यों करते हो? तव रभस-तरलिता—रभसेन प्रेमोत्साहेन तरलिता चञ्चलतां प्राप्ता—तुम्हारे प्रेमोत्साह से

चञ्चल । इयं व्याधवधूः—व्याध की यह स्त्री । वालधौ—पुच्छे, वलते—(पूँछ के पीछे) निकट आ रही है ।

सरलार्थ—हे मृग, कपटपूर्ण उत्कण्ठा से चंचल दृष्टि वाली इस (स्त्री) पर तू क्यो विश्वास कर रहा है ? तेरे प्रेमोत्साह से चञ्चल यह व्याध की स्त्री तेरी पूँछ के पीछे निकट पहुँच रही है (अभी-अभी अविलम्ब तुझे अपने बन्धन में बाँध लेगी) ॥ ११२ ॥

महान् नायक के सङ्ग से गर्विता को लक्ष्य कर एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

इह वहति वहुमहोदधिविभूषणा मानगर्वमियमुर्वी ।
देवस्य कमठमूर्तेर्न पृष्ठमपि निखिलमाप्नोति ॥ ११३ ॥

पदार्थ—वहुमहोदधिविभूषणा—(१) बहु अत्यन्तं महोदधिरूपं विभूषणं यस्याः सा—महोदधि ही जिसका अत्यन्त विभूषण है, (२) वहुः महः दीप्तिः तस्य उदधिः विभूषणं यस्याः सा—जिसका विभूषण दीप्ति का सागर (अत्यन्त चमकीला) है । इयम् उर्वी—(१) पृथ्वी, (२) श्रेष्ठा । मानगर्वम्—मानस्य—(१) परिमाणस्य, (२) सर्वोत्कृष्टताभिमानस्य, गर्वम्—(१) परिमाण, (२) सर्वोत्कृष्टताभिमान का गर्व । वहति—रखती है । कमठमूर्तेः देवस्य—कच्छपरूपभगवतः—कच्छप भगवान् के । निखिलम्—समग्रम्—समग्र । पृष्ठमपि—पीठ को भी । न आप्नोति—नही घेर पाती ।

सरलार्थ—महोदधिरूप विभूषण वाली यह पृथ्वी तुम्हारे सामने (अपने) परिमाण का गर्व करती है किन्तु कच्छप भगवान् के (समग्र शरीर को कौन कहे) समग्र पीठ को भी व्याप्त नहीं कर पाती (हृदय में तो स्थान ही नहीं पाती, पीठ मे पाती भी है तो समग्ररूप से नही) ॥ ११३ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता इकारव्रज्या ।

ईकारव्रज्या

कोई, किसी नायिका के विषय मे अपने सखा से कह रहा है—

ईर्ष्यारोपज्वलितो निजपतिसङ्गं विचिन्तयंस्तस्याः ।
च्युतवसनजघनभावनसान्द्रानन्देन निर्वामि ॥ ११४ ॥

पदार्थ—तस्याः—उसका । निजपतिसङ्गम्—निजस्य पत्युः सङ्गम्—निज पति के सङ्ग को । विचिन्तयन्—सोचता । ईर्ष्यारोपज्वलितः—ईर्ष्यया यो रोषः तेन ज्वलितः—ईर्ष्याजन्य रोष से संतप्त । च्युतवसनजघनभावनसान्द्रानन्देन—

च्युतं वसनं यस्मात् तत् जघनं तस्य चिन्तनेन यः सान्द्रानन्दः तेन—निर्वसन जघन के चिन्तन से प्राप्त महान् आनन्द से। निर्वामि—शीतल होता हूँ।

सरलार्थ—उसका अपने पति का सङ्ग सोच कर ईर्ष्याजन्य रोष से संतप्त हो उठा (किन्तु) उसके निर्वसन जघन के चिन्तन से प्राप्त स्निग्ध महान् आनन्द से शीतल होता हूँ (जिसके जघन के ध्यान से इतना आनन्द है उसके पाने पर क्या कहना!) ॥ ११४ ॥

महान् व्यक्ति द्वारा परिगृहीत होने के गुण से ही इसमें तुम आसक्ति कर रहे हो यह उचित नहीं—ऐसा कोई अन्योक्ति द्वारा किसी से कह रहा है—

ईश्वरपरिग्रहोचितमोहोऽस्यां मधुप किं मुधा पतसि।
कनकाभिधानसारा वीतरसा कितवकलिकेयम् ॥ ११५ ॥

पदार्थ—ईश्वरपरिग्रहोचितमोहः—ईश्वरस्य (१—महादेवस्य, २—महतः) परिग्रहेण अंगीकारेण उचितः मोहः भ्रमः यस्य सः—ईश्वर द्वारा अंगीकार किये जाने से जिसका भ्रम उचित है। अस्यां कलिकायाम्—इस कलिका पर। मधुप—मधु पिबति मधुपः तत्सम्बुद्धिः—भृङ्ग। मुधा—व्यर्थ। किं पतसि—क्यों गिरते हो (पतन क्यों करते हो)। इयम्—यह। कनकाभिधानसारा—कनकाभिधानमेव सारः यस्याः सा—(१) जिसमें सार केवल कनक (धतूरा) नाम ही है, (२) जिसमें (उसका) सुनहरा (सुन्दर) नाम ही सार है। विगतरसा—विगतः रसः यस्याः—जिसका रस चला गया (१—मकरन्द-रहित, २—अनुरागरहित)। कितवकलिका—(१) कितवस्य कलिका—धतूर की कली, 'उन्मत्तः कितवो धूर्तो धत्तूरः कनकाह्वयः' इत्यमरः, (२) कितवी कलिका इति कितवकलिका—यह धूर्त कली है।

सरलार्थ—हे मधुप! महादेव जी द्वारा अंगीकार होने से इसमें तुम्हारा मोह उचित ही है परन्तु तुम व्यर्थ इस कलिका पर क्यो पतित हो रहे हो (गिर रहे हो)। इसमे कोई सार नही है, इसका केवल नाम ही कनक है, वास्तव में यह धतूर की मकरन्दरहित कली है।

(अरे रसिक! महान् व्यक्ति से परिगृहीत होने के कारण यह रसीली और आनन्दप्रदायिनी होगी—इस भ्रम से इसमें आसक्ति कर तू पतित क्यो हो रहा है? केवल सुवर्ण (सुन्दर) नाम वाली यह है। इसमें अनुराग नही है। यह एक धूर्त नारी है) ॥ ११५ ॥

वापी के निकट कतिपय लोगों से परिवृत नायिका को देखकर कोई कहता है—

ईषदवशिष्टजडिमा शिशिरे गतमात्र एव चिरमङ्गैः ।
नवयौवनेव तन्वी निषेव्यते निर्भरं वापी ॥ ११६ ॥

पदार्थ—ईषदवशिष्टजडिमा—ईषत् अवशिष्टः जडिमा (१—शैत्यं, २—जडत्वम्) यस्याः सा—जिसकी जडिमा थोड़ी रह गयी है । शिशिरे गतमात्रे एव—शिशिर ऋतु के बीतते ही अर्थात् वसन्तादि में । अङ्गैः—(१) अवयवैः, (२) गुणभूतैः—(१) अवयवों से, (२) गुण (अप्रधान) होने से । चिरम्—निर्भरम्—अत्यन्त । नवयौवना तन्वी इव—नवयौवना सुन्दरी सी । निषेव्यते—सेवन की जाती है ।

सरलार्थ—जिसमें जडिमा (१—शैत्य, २—जडत्व) थोड़ी सी रह गयी है, जो अवयवों से अथवा गुण होने से चिर नवयौवना है, ऐसी सुन्दरी सी वापी शिशिर के बीतने पर वसन्त आदि ऋतु में सेवनीय होती है ॥ ११६ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता ईकारव्रज्या ।

उकारव्रज्या

सखी नायिका की प्रशंसा कर रही है—

उल्लसितभ्रूधनुषा तव पृथुना लोचनेन रुचिराङ्गि ।
अचला अपि न महान्तः के चञ्चलभावमानीताः ॥ ११७ ॥

पदार्थ—रुचिराङ्गि—रुचिराणि अङ्गानि यस्याः तत्सम्बुद्धिः—सुन्दर अङ्गों वाली ! उल्लसितभ्रूधनुषा—(१) उल्लसितं भ्रूरूपं धनुः, (२) भ्रूसदृशं धनुः यस्य तेन—(१) जिसका भ्रूरूप धनुष उल्लसित है, (२) जिसका भ्रू समान धनुष उल्लसित है । तव—तुम्हारे । पृथुना—(१) विशाल, कर्णपर्यन्त, (२) पृथु नामक राजा से । लोचनेन—नेत्रेण—नेत्र से । महान्तः—(१) श्रेष्ठाः, (२) परिमाणशालिनः—(१) श्रेष्ठ, (२) बड़े परिमाण वाले । अचलाः अपि—(१) चापलशून्य भी, (२) पर्वत भी । के—कौन । न—नहीं । चञ्चल-भावम् आनीताः—चञ्चलभाव को प्राप्त हुए ।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! उल्लसित भ्रू रूप धनुष वाले कर्ण पर्यन्त आयत तुम्हारे नेत्र से कौन-कौन बड़े धीर चञ्चल नहीं बन गये (तुम्हारे कटाक्ष विक्षेप मात्र से कौन-कौन धैर्य छोड़ विह्वल नहीं हो गये ?)

(भौं के समान उल्लसित धनुष वाले पृथु राजा ने बड़े-बड़े पर्वतों को इधर-उधर कर दिया) ।। ११७ ।।

मेरी कृपा से ही ये धनी हो गये और इस बात का सारा श्रेय मेरे नितम्ब को है—ऐसा, कोई अपनी सखी से कह रही है—

उपनीय यन्नितम्बे भुजंगमुच्चैरलम्भि विबुधैः श्रीः ।
एकः स मन्दरगिरिः सखि गरिमाणं समुद्वहतु ।। ११८ ।।

पदार्थ—यन्नितम्बे—(१) यस्य नितम्बे, (२) यस्मिन् नितम्बे—(१) जिसके, (२) जिस नितम्ब पर । भुजगम्—(१) सर्पम्, (२) विटम्—(१) सर्प को, (२) विट (कामुक) को । उपनीय—प्राप्त करा कर । विबुधैः—(१) देवैः, (२) विशेषज्ञान-वद्भिः—(१) देवों ने, (२) विशिष्ट ज्ञानवालों ने । उच्चैः श्रीः (१)—उत्कृष्ट लक्ष्मी, (२) बड़ा धन । अलम्भि—प्राप्त किया । सः मन्दरगिरिः—(१) वह मन्दराचल, (२) मन्दरगिरिः इव—मन्दराचल-सा (नितम्ब) । एकः—केवल । गरिमाणं—गौरवम्—गौरव, श्रेय । समुद्वहतु—प्राप्त करे—रक्खे ।

सरलार्थ—जिसके नितम्ब (कटक) पर सर्प को लगा कर देवों ने उत्कृष्ट लक्ष्मी को प्राप्त किया, हे सखि ! एक वह मन्दराचल (अन्य पर्वत नहीं) गौरव रक्खे ।

(जिस नितम्ब पर विट (कामुक) को पहुँचा कर बुद्धिमानों ने अपार धन प्राप्त किया; मन्दराचल-सा वह मेरा एक नितम्ब (अन्य स्त्रियों का नहीं) गौरव रक्खे, श्रेय ले) ।। ११८ ।।

चाँदनी रात में उपपति के पास जाने को उद्यत नायिका से सखी कह रही है—

उल्लसितलाञ्छनोऽयं ज्योत्स्नावर्षी सुधाकरः स्फुरति ।
आसक्तकृष्णचरणः शकट इव प्रकटितक्षीरः ।। ११९ ।।

पदार्थ—उल्लसितलाञ्छनः—उल्लसितं लाञ्छनं यस्य सः—जिसका कलङ्क-चिह्न अत्यन्त स्पष्ट प्रकट हो रहा है । ज्योत्स्नावर्षी—ज्योत्स्नां चन्द्रिकां वर्षति—चाँदनी बरसाता । अयं सुधाकरः—यह चन्द्रमा । आसक्तकृष्णचरणः—आसक्तः कृष्णस्य चरणः यस्मिन् सः—जिसमें कृष्ण का चरण लगा है । प्रकटितक्षीरः—प्रकटितं क्षीरं येन सः—जिसके द्वारा क्षीर प्रकट हुआ । शकटः इव—शकटासुर के समान । स्फुरति—शोभते—शोभित हो रहा है ।

सरलार्थ—स्पष्ट प्रकट दिखायी देने वाले कलङ्क से युक्त, चाँदनी की वर्षा कर रहा चन्द्रमा श्रीकृष्णचरणों से युक्त, क्षीर प्रकट करते शकटासुर के समान शोभित हो रहा है (इस समय गमन करने से लाञ्छन अवश्य होगा) ।। ११९ ।।

मिथ्याकोप को अनुनय-विनय से दूर करने में असफल नायक के चले जाने पर उसके लिए आकुल नायिका किसी से कह रही है—

उपचारानुनयास्ते कितवस्योपेक्षिताः सखीवचसा ।
अधुना निष्ठुरमपि यदि स वदति कलिकैतवाद्यामि ॥१२०॥

पदार्थ—कितवस्य—धूर्तस्य—धूर्त के। ते—वे। उपचारानुनयाः—उपचाराः अनुनयाश्च—उपचारों और अनुनयों को। सखीवचसा—सख्याः वचसा—सखी के कहने से। उपेक्षिताः—स्वीकार नहीं किया, माना नहीं। अधुना—अब। यदि सः—यदि वह। निष्ठुरम् अपि वदति—निष्ठुर वचन भी बोलता। कलिकैतवात्—कलेः कलहस्य कैतवात् व्याजात्—कलह के बहाने से। यामि—जाती।

सरलार्थ—(उस) धूर्त के वे पूर्ववत् उपचार और अनुनय, सखी के कहने से मैंने स्वीकार नहीं किये। (उसके चले जाने पर, उसके पास कौन सा मुँह लेकर, अथवा किस बहाने से जाऊँ?) यदि इस समय (अनुनय-विनय तो दूर रहे) निष्ठुर वचन ही वह बोल देता तो कलह के बहाने से ही (ऐसा वचन क्यों कह रहे हो—यही कहने का प्रयोजन लेकर) उसके पास जाती ॥ १२० ॥

सखी नायिका से कह रही है—

उषसि परिवर्तयन्त्या मुक्तादामोपवीततां नीतम् ।
पुरुषायितवैदग्ध्यं व्रीडावति कैर्न कलितं ते ॥ १२१ ॥

पदार्थ—व्रीडावति—लज्जावति—विपरीत लक्षणा से निर्लज्जे! उपवीतता नीतम्—उपवीतरूप की गई। मुक्तादाम—मोती माला। उषसि—प्रातः। परिवर्तयन्त्याः ते—परिवर्तित करती तेरा। पुरुषायितवैदग्ध्यम्—पुरुषायितस्य विपरीतरतस्य वैदग्ध्यम् पाण्डित्यम्—विपरीत रत का पाण्डित्य। कैः न कलितम्—किन-किन लोगो ने नही जान लिया।

सरलार्थ—लज्जावति! (रात को) उपवीतरूप बनायी गयी मोती माला को प्रातः ठीक करती तेरा विपरीत रति का पाण्डित्य किन-किन लोगो ने नहीं जान लिया (मेरे सामने लज्जा का अभिनय करती है परन्तु रतिकाल की तेरी निर्लज्जता को उपवीत रूप की गयी मोतीमाला सबसे बता रही है) ॥ १२१ ॥

दूती, नायिका से कह रही है—

उड्डीनानामेषां प्रासादात्तरुणि पक्षिणां पङ्क्तिः ।
विस्फुरति वैजयन्ती पवनच्छिन्नापविद्धेव ॥ १२२ ॥

पदार्थ—तरुणि—युवति ! प्रासादात्—प्रासाद से । उड्डीनानाम्—उड़े हुये । पक्षिणाम्—पक्षियों की । पङ्क्तिः । पवनच्छिन्नापविद्धा—पवनेन छिन्ना अपविद्धा च—वायु से छिन्न और दूर की गई । वैजयन्ती—माला के समान । विस्फुरति—विशेषेण स्फुरति—विशेष शोभित हो रही है ।

सरलार्थ—हे तरुणि ! (नायक के पहुँचने से) प्रासाद से उड़े पक्षियों की पङ्क्ति वायु द्वारा छिन्न और दूर की गयी माला की भाँति विशेष शोभित हो रही है (नायक प्रासाद पर पहुँच गया, तुम भी शीघ्र जाओ) ॥ १२२ ॥

अत्यन्त क्रूर एवं दुःखावह व्यक्तियों से संरक्ष्यमाण किसी युवती से कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

उज्जागरितभ्रामितदन्तुरदलरुद्धमधुकरप्रकरे ।
काञ्चनकेतकि मा तव विकसतु सौरभ्यसंभारः ॥ १२३ ॥

पदार्थ—हे काञ्चनकेतकि ! उज्जागरितः भ्रामितः दन्तुरदलैः रुद्धः मधुकराणां प्रकरः यया तत्सम्बुद्धिः—जिसने भौंरों के समूह को जगाया, भरमाया और दाँतेदार खुरदुरे किनारे वाले पत्तों से निरुद्ध किया । तव । सौरभ्यसंभारः—सुगन्ध का कोष । मा विकसतु—मत विकसित हो ।

सरलार्थ—हे सुवर्णकेतकि ! तेरे लिए भौंरों का समूह जागता रहा, चक्कर काटता रहा और तूने दाँतेदार खुरदुरे पत्तों से उन्हें रोक दिया, अपने पास तक आने भी नहीं दिया तो (ईश्वर करे) तेरी सुगन्ध का कोष विकसित न हो ।

(जो युवक तुम्हारे दर्शन के लिए रात्रिजागरण, भ्रमण आदि किया करते हैं उन्हें दुष्टों द्वारा रोक दिये जाने पर तुम्हारा यौवन निष्फल है) ॥ १२३ ॥

सखी, क्षुद्र व्यक्ति में आसक्ति करने के पश्चात् चिन्ता करती नायिका से कह रही है—

उल्लसितभ्रूः किमतिक्रान्तं चिन्तयसि निस्तरङ्गाक्षि ।
क्षुद्रापचारविरसः पाकः प्रेम्णो गुडस्येव ॥ १२४ ॥

पदार्थ—निस्तरङ्गाक्षि—निस्तरङ्गे अक्षिणी यस्याः तत्सम्बुद्धिः—हे निश्चल नेत्र वाली ! उल्लसितभ्रूः—उल्लसिते ऊर्ध्वं शोभिते भ्रुवौ यस्याः सा—जिसकी भौंहे ऊपर की ओर चढ़ी शोभित हैं । अतिक्रान्तं—गतं, किं चिन्तयसि ?—गत बात की चिन्ता क्यों करती है । गुडस्य इव—गुड का सा । प्रेम्णः पाकः—प्रेमपरिपाक । क्षुद्रस्य नीचस्य अपचारेण अपराधेन विरसः—(१) नीच के अपराध से नीरस, (२) क्षुद्रायाः मक्षिकायाः अपचारेण मृत्युना विरसः ।

सरलार्थ—हे निश्चलनेत्रे ! भौंहो को ऊपर ताने, गत बात का चिन्तन क्यो करती हो (जो होना था, हो गया ; बिना सोचे-समझे सम्बन्ध करने से) प्रेम-परिपाक नीच (प्रिय) के अपराध से विरस हो जाता है, जैसे गुड का परिपाक मक्खी के मरने से घृणित हो जाता है ॥ १२४ ॥

किसी नायिका के रतौत्सुक्य का वर्णन एक स्त्री दूसरी से कर रही है—

उद्दिश्य निःसरन्तीं सखीमियं कपटकोपकुटिलभ्रूः ।
एवमवतंसमाक्षिपदाहतदीपो यथा पतति ॥ १२५ ॥

पदार्थ—निःसरन्तीं सखीम्—निकलती सखी को । उद्दिश्य—लक्ष्य कर, (सखी की) ओर । इयं—यह । कपटकोपकुटिलभ्रूः—कपटकोपेन कुटिले भ्रुवौ यस्याः सा—कपटकोप से जिसकी भौंहें कुटिल है । अवतंसम्—कर्णभूषण अथवा माला को । एवम्—ऐसा । आक्षिपत्—फेंका । यथा—जिससे । आहतः दीपः इति आहतदीपः—बुझा दीप । पतति—गिर पड़ा ।

सरलार्थ—(नायिका की रति-केलि चल रही थी, इसी बीच मे दीप लेकर किसी काम से केलिसदन की ओर) निकलती सखी को लक्ष्य कर मिथ्या कोप से कुटिल भौह वाली इस नायिका ने कर्णभूषण अथवा माला यों फेंकी कि दीप बुझकर (उसके हाथ से) गिर गया अथवा अवतंस द्वारा पिटा दीपक हाथ से गिर पड़ा (और बुझ गया) ॥ १२५ ॥

शान्त निर्बल पर भी प्रबल का तेज अपेक्षाकृत अधिक काम नही देता—ऐसा, कोई अन्योक्ति द्वारा किसी से कह रहा है—

उदितोऽपि तुहिनगहने गगनप्रान्ते न दीप्यते तपनः ।
कठिनघृतपूरपूर्णे शरावशिरसि प्रदीप इव ॥ १२६ ॥

पदार्थ—उदितः अपि तपनः—उदित भी सूर्य । तुहिनगहने—तुहिनस्य हिमस्य गहनं यस्मिन् तस्मिन्—जिसमें हिम की गम्भीरता है । गगनप्रान्ते—आकाश प्रान्त में । न दीप्यते—दीप्त नहीं होता । कठिनघृतपूरपूर्णे—कठिनस्य घृतस्य पूरेण पूर्णे—जमे घृत पूर से पूर्ण । शरावशिरसि—शरावस्य मृद्भाजन-विशेषस्य शिरसि—शराव (कोसा या कसोरा) के अग्रभाग पर । प्रदीपः इव—दीपक की तरह ।

सरलार्थ—हिमनिबिड आकाश प्रान्त में उदित भी सूर्य, जमे घृत से पूर्ण शराव (कोसा) के अग्र भाग में प्रदीप की भाँति दीप्त नही होता ॥ १२६ ॥

प्रिय को न पाने से दुःखी नायिका सखी से कह रही है—

उद्गमनोपनिवेशनशयनपरावृत्तिवलनवचनेषु ।
अनिशं स मोहयति मां हृल्लग्नः श्वास इव दयितः ॥ १२७ ॥

पदार्थ—सः—दृष्टपूर्वः, दयितः प्रियः—वह जिसे पहिले देखा था, प्रिय। हृल्लग्नः—हृदये स्थितः—हृदय में स्थित। उद्गमनोपनिवेशनशयनपरावृत्तिवलनवचनेषु—उद्गमने उत्थाने, उपनिवेशने स्थितौ, शयनस्य परावृत्तौ पार्श्वपरिवर्तने, वलने वक्राङ्गकरणे, वचने वचनव्यापारे च। अनिशम्—निरन्तरम्। श्वासः इव—हृच्छ्वासरोगः इव—हृदय के श्वास रोग के समान। मोहयति—भ्रान्ति जनयति, असमर्थां करोति—असमर्थ कर देता है।

सरलार्थ—कुछ ही समय पहिले जिसे देखा था वह प्रिय हृदय में स्थित, उठने, बैठने, करवट बदलने और बोलने मे हृदय के श्वासरोग की भाँति असमर्थ कर रहा है (अतः उसे ले आने का प्रयत्न कर) ॥ १२७ ॥

कटाक्ष मात्र से कार्य हो सकता है, दूती आदि का उपयोग व्यर्थ है—ऐसा एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

उज्झितसौभाग्यमदस्फुटयाच्ञानङ्गभीतयोर्यूनोः।
अकलितमनसोरेका दृष्टिर्दूती निसृष्टार्था ॥ १२८ ॥

पदार्थ—उज्झितसौभाग्यमदस्फुटयाच्ञानङ्गभीतयोः—उज्झितः त्यक्तः सौभाग्यस्य मदः यस्या सा स्फुटयाच्ञा प्रकटयाच्ञा अनङ्गश्च ताभ्यां भीतयोः—जिसमें सौभाग्य का मद छूट जाता है ऐसी प्रकट याच्ञा और अनङ्ग से डरे (दोनो की)। अकलितमनसोः—न कलितं मनः याभ्यां तयोः—जिनके द्वारा एक दूसरे का मन (अभिप्राय) नहीं जाना गया। यूनोः—युवा च युवतिश्च इति युवानौ तयोः (एकशेष द्वन्द्व)—युवक और युवती का। एका दृष्टिः—केवल दृष्टि। निसृष्टार्था दूती—वह दूती जो उभय पक्ष की बातो को समझ कर स्वयम् उत्तर दे ले और कार्य निष्पन्न कर ले। 'उभयोर्भावमुन्नीय स्वयं वदति चोत्तरम्। सूत्कृष्टं कुरुते कार्यं निसृष्टार्था तु सा स्मृता ॥'

सरलार्थ—स्पष्ट प्रार्थना करने पर सौभाग्य का मद छूट जाता है और प्रार्थना न करने पर अनङ्ग बाधा—इस प्रकार दोनों से डरे हुए, परस्पर एक दूसरे के मनोगत भाव को न समझे युवक और युवती की केवल दृष्टि (परस्परावलोकन) दोनो की बातो को समझ कर स्वयम् उत्तर दे लेने वाली और कार्य सम्पन्न कर लेनेवाली (निसृष्टार्था) प्रथम श्रेणी की दूती होती है ॥ १२८ ॥

यद्यपि इसका उपभोग बहुत लोग करते है तथापि एक ही जार में अत्यन्त आसक्त है, ऐसा—एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

उत्तमभुजंगसंगमनिस्पन्दनितम्बचापलस्तस्याः।
मन्दरगिरिरिव विबुधैरितस्ततः कृष्यते कायः ॥ १२९ ॥

पदार्थ—उत्तमभुजंगसंगमनिस्पन्दनितम्बचापलः—उत्तमो यो भुजङ्गः, (१—सर्पः, २—जारः) तस्य संगमेन (१—बन्धनेन, २—संभोगेन) निस्पन्दस्य निश्चलस्य नितम्बस्य (१—कटकप्रदेशस्य, २—कटिप्रदेशस्य) चापलं यस्मिन् सः—उत्तम सर्प अथवा जार के बन्धन अथवा संभोग से निश्चल कटक अथवा कटिप्रदेश की चपलता है जिसमे। तस्याः कायः—उसका शरीर। मन्दरगिरिः इव—मन्दराचल के समान। विबुधैः—(१) ज्ञानवद्भिः, (२) देवैः—बुद्धिमानो अथवा देवो द्वारा। इतस्ततः—इधर-उधर। कृष्यते—खींचा जाता है।

सरलार्थ—उसका उत्तम जार के संभोग से निश्चल नितम्ब की चंचलता से युक्त शरीर बुद्धिमानो द्वारा इधर-उधर खींचा जाता है; जैसे उत्तम सर्प के बन्धन से निश्चल कटक प्रदेश की चंचलता से युक्त मन्दराचल देवो के द्वारा खीचा जाता था ॥ १२९ ॥

इसका पति अत्यन्त जड है, अतः तुम भय मत करो—ऐसा एक स्त्री किसी पुरुष से कह रही है—

उपनीय कलमकुडवं कथयति सभयश्चिकित्सके हलिकः।
शोणं सोमार्धनिभं वधूस्तने व्याधिमुपजातम् ॥ १३० ॥

पदार्थ—कलमानां कुडवम्—कुडव भर कलम (जडहन), कुडव एक प्राचीन तौल है। उपनीय—समीपे संस्थाप्य—समीप रखकर। हलिकः—हलवाहा, किसान। सभयः—डरा। चिकित्सके—वैद्ये—वैद्य से। वधूस्तने—वधू के स्तन मे। शोणम्—रक्तम्—लाल। सोमार्धनिभम्—अर्धचन्द्राकार। उपजातम्—उत्पन्न। व्याधिम्—रोगं—रोग को। कथयति—कहता है।

पदार्थ—(यह मूर्ख) हलवाहा, (वैद्य के शुल्करूप मे) एक कुडव (१२ अंजलि भर) जड़हन समीप रख कर (रोग के कारण) डरा हुआ; वैद्य से (नखक्षत को) वधू के स्तन में लाल अर्धचन्द्राकार (कोई) रोग पैदा हो गया—बताता है (इसे नखक्षत का भी ज्ञान नही है अतः तुम निर्भय आओ) ॥ १३० ॥

आग जलाते समय, आसक्तिवश जार का मानस संभोग करती, अपने धूर्त द्वारा देखी जाती हुई नायिका को, सखी निह्नवपूर्ण (वास्तविकता को छिपा लेने वाले) वचनो द्वारा, वैसा करने से रोक रही है—

उन्मुकुलिताधरपुटे भूतिकणत्रासमीलितार्धाक्षि।
धूमोऽपि नेह विरम भ्रमरोऽयं श्वसितमनुसरति ॥ १३१ ॥

पदार्थ—उन्मुकुलितम् उत्कृष्टमुकुलवत् कृतम् अधरपुटं यया तत्सम्बुद्धिः—जिसने (अग्नि प्रज्वलित करने के लिए फूँक लगाने से) अधरपुट को मुकुल के समान बना लिया। भूतिकणत्रासमीलितार्धाक्षि—भूतेः भस्मनः कणानां त्रासेन, नेत्रान्ते भस्मसम्बन्धभयेन मीलिते अर्धम् अक्षिणी यया तत्सम्बुद्धिः—नेत्र प्रदेश में भस्म के कण न पड़ जायँ—इस भय से जिसने आँखें मूँद लीं। धूमः अपि इह न—इसमें (जलने को कौन कहे, अभी तक) धुआँ भी नहीं हो सका। अतः विरम—फूँकना बन्द कर दे। अयं भ्रमरः—यह भौंरा। श्वसितम्—साँस (वदनामोदपूर्ण) को। अनुसरति—अनुसरण कर रहा है।

सरलार्थ—हे (आग प्रज्वलित करने के लिए फूत्कार करने से) मुकुल समान बने अधर पुट वाली! हे नेत्र में भस्म कण पडने के भय से आँखों को आधा बन्द रखने वाली! (जलना तो दूर) अभी इसमें धुआँ भी नहीं हुआ; (जिसे तू धुआँ समझ रही है वह) यह भौंरा है जो तुम्हारे वदन-सौरभ-पूर्ण साँस का अनुसरण करता चक्कर काट रहा है; अतः इस अनर्थक काम को बन्द कर दो। (तुम्हारे अधरोन्मुकुलन तथा नयनार्धनिमीलन का समाधान फूत्कार तथा भस्मसम्बन्धभय से तो मैंने कर दिया, तुम्हारे श्वसित का समाधान किसी तरह भी नहीं किया जा सकता और भ्रमर (यथार्थ का ग्राहक) तुम्हारा पति उसका अनुसरण (ज्ञान) अविलम्ब कर लेगा अतः उक्त लक्षणो के जनक मानस संभोग को इसी समय समाप्त कर दो)।

अथवा

आग जलाते समय जार को चुम्बन देती नायिका को उसकी सखी प्रोत्साहित कर रही है—हे भूतिकणत्रासमीलितार्धाक्षि, इति (भस्मकणत्रास से तुम्हारी आँखे अधमुँदी नहीं हैं अपितु जारचुम्बन के सुख से) उन्मुकुलिताधरपुटे इह—चुम्बनार्थ जिसने अपने अधर पुट को मुकुलवत् कर लिया है इस जार मे तू चुम्बन-दान मत बन्द कर। यह धुआँ नहीं है, तेरे वदनसमीरण के सौरभ मे लुब्ध भ्रमरपंक्ति है (अतः इनके काट खाने के बहाने से दन्तक्षत का समाधान कर लिया जायगा। तू निश्चिन्त हो यथेच्छ चुम्बन दे)॥ १३१ ॥

नायक के पास आती-जाती बाला को देख कर कुपित गृहिणी से नायक कह रहा है—

उपरि परिप्लवते मम बालेयं गृहिणि हंसमालेव ।
सरस इव नलिननाला त्वमाशयं प्राप्य वससि पुनः ॥१३२॥

पदार्थ—हे गृहिणि! सरसः—सरोवरस्य इव—सरोवर के समान। मम उपरि—मेरे ऊपर। हंसमाला इव इयम्—हंसमाला सी यह। बाला। परिप्लवते—

भ्रमति—चक्कर लगाती है, निकट आया-जाया करती है। त्वं पुनः—किन्तु तुम। नलिननाला—नलिनस्य कमलस्य नाला—कमलनाल सी। आशयम्—अभ्यन्तरं हृदयं वा—भीतर, हृदय को प्राप्त कर। वससि—बसती हो।

सरलार्थ—हे गृहिणि ! जैसे सरोवर के ऊपर हंसमाला चक्कर काटा करती है और कमलनाला सरोवर के भीतर रहती है; ठीक उसी प्रकार यह बाला मेरे ऊपर मँडराया करती है और तुम अन्तःकरण में बसती हो ॥ १३२ ॥

तुम्हारे कुचकुम्भ के दर्शन से मुग्ध बड़े-बड़े उत्तरदायी पुरुष कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो जाते हैं—ऐसा, कोई आकृष्ट व्यक्ति नायिका से कह रहा है—

उत्कम्पघर्मपिच्छिलदोःसाधिकहस्तविच्युतश्चौरः ।
शिवमाशास्ते सुतनु स्तनयोस्तव चञ्चलाञ्चलयोः ॥१३३॥

पदार्थ—हे सुतनु—सुन्दरि ! उत्कम्पघर्मपिच्छिलदोःसाधिकहस्तविच्युतः—उत्कम्पः—उत्कृष्टः कम्पः यस्य सः, घर्मेण स्वेदेन पिच्छिलः, दोःसाधिकस्य—यामिकस्य यः हस्तः तस्मात् विच्युतः—कम्पनयुक्त, स्वेद से पिच्छिल (फिसलन वाला), पहरेदार के हाथ से छूटा। चौरः। चञ्चलाञ्चलयोः—चञ्चलः अञ्चलः याभ्यां तयोः—जिनसे अञ्चल चञ्चल हो उठता है। तव स्तनयोः—तुम्हारे दोनों स्तनों का। शिवं—कल्याणम्, आशास्ते—कथयति—शिवमस्तु इति आशिषम् कथयति—आशीर्वाद दे रहा है।

सरलार्थ—(तुम्हारे कुचकुम्भों को देख कर) पहरेदार के कम्पनयुक्त, स्वेद से पिच्छिल हाथ से निकल कर भगा चोर, तुम्हारे अञ्चल को चञ्चल बनाने वाले स्तनों का कल्याण हो—ऐसा आशीर्वचन कह रहा है ॥ १३३ ॥

किसी नायिका के हाथ से खींचे जाते हुए नायक से सखी अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

उत्क्षिप्तबाहुदर्शितभुजमूलं चूतमुकुल मम सख्या ।
आकृष्यमाण राजति भवतः परमुच्चपदलाभः ॥ १३४ ॥

पदार्थ—उत्क्षिप्तबाहुदर्शितभुजमूलम्—उत्क्षिप्तेन बाहुना दर्शितं भुजमूलं यत्र क्रियायाम् तत्—ऊपर उठे बाहु से जिसमें भुजमूल (स्कन्ध) दिखाई पड़ा अर्थात् पूर्णभुजोत्थापनपूर्वक। चूतमुकुल—रसालमुकुल ! मम सख्या आकृष्यमाण—मेरी सखी से खींचा जाता हुआ। भवतः—आप का। परम्—उत्कृष्ट। उच्चतरपदलाभः—उच्चतर पद का लाभ। राजति—सुन्दर देख पड़ता है।

सरलार्थ—रसालमुकुल ! पूरी भुजा उठाने से भुजमूल प्रदर्शन पूर्वक मेरी

सखी से खींचे जाते हुए आप को उत्कृष्ट स्थान की प्राप्ति हो गयी (इसके हाथों द्वारा आकर्षण स्वर्ग सुखदायी है) ॥ १३४ ॥

तेरे हार का दर्शन कर सभी तेरे विहार की आकांक्षा करते हैं—ऐसा, सखी नायिका से कह रही है—

उच्चकुचकुम्भनिहितो हृदयं चालयति जघनलग्नाग्रः ।
अतिनिम्नमध्यसंक्रमदारुनिभस्तरुणि तव हारः ॥ १३५ ॥

पदार्थ—उच्चकुचकुम्भनिहितः—उच्चयोः कुचकुम्भयोः निहितः—उच्च कुच-कुम्भ पर स्थित । जघनलग्नाग्रः—जघने कटिपुरोभागे लग्नम् अग्रं यस्य सः—जघन प्रदेश पर जिसका अग्रभाग लगा है । अतिनिम्नमध्यसंक्रमदारुनिभः—अत्यन्तं निम्नस्य मध्यस्य संक्रमाय यत् दारु तन्निभः—तुम्हारे मध्यभाग रूप निम्नप्रदेश को लाँघने के लिए स्थापित काष्ठ-सा । हृदयं चालयति—हृदय को चञ्चल कर देता है ।

सरलार्थ—तरुणि ! उच्च कुचकुम्भ पर पड़ा, जिसका अग्रभाग जघन प्रदेश पर लगा है अर्थात् जघन प्रदेश तक लम्बायमान, तुम्हारे मध्यभाग रूप अत्यन्त निम्न प्रदेश को लाँघने के लिए स्थापित दारु (काष्ठ) सा तुम्हारा हार (दर्शक के) हृदय को चञ्चल कर देता है (निम्न प्रदेश को लकड़ी पर से चलकर पार करते समय सबका हृदय चंचल हो जाता है—अनुभव-सिद्ध है) ॥ १३५ ॥

अभिसार का समय हो गया—ऐसा, सखी नायिका से कह रही है—

उल्लसितशीतदीधितिकलोपकण्ठे स्फुरन्ति तारौघाः ।
कुसुमायुधविधृतधनुर्निर्गतमकरन्दबिन्दुनिभाः ॥ १३६ ॥

पदार्थ—उल्लसितशीतदीधितिकलोपकण्ठे—उल्लसितः प्रादुर्भूतः शीतदीधितिः चन्द्रः तस्य कलोपकण्ठे मनोज्ञसमीपदेशे—उदित चन्द्र के मनोहर समीपदेश में । तारौघाः—ताराणाम् ओघाः, नक्षत्रों के समूह । कुसुमायुधविधृतधनुर्निर्गत-मकरन्दबिन्दुनिभाः—कुसुमायुधेन कामदेवेन विधृतं यद् धनुः तस्मान्निर्गता ये मकरन्दबिन्दवः—कामदेव द्वारा धृत धनुष से निकले मकरन्द बिन्दु, तेषां निभाः सदृशाः—उनके सदृश । स्फुरन्ति—शोभन्ते ।

सरलार्थ—उदित चन्द्र के समीप, नक्षत्रों के समूह, कामदेव के द्वारा धृत धनुष से निकले मकरन्द बिन्दु के समान शोभित हो रहे हैं (चन्द्रमा-सा सहायक पाकर कामदेव धनुष चढ़ाकर तैयार हो गया है अतः शीघ्र अभिसार करो) ॥ १३६ ॥

कोई नायिका, नायक के विलम्ब से आने पर मान करने के पश्चात् किसी प्रकार मान दूर होते-होते रात थोड़ी सी शेष रहने पर पछता रही है—

उपनीय प्रियमसमयविदं च मे दग्धमानमपनीय।
नर्मोपक्रम एव क्षणदे दूतीव चलितासि ॥ १३७ ॥

पदार्थ—हे क्षणदे—रात्रि ! अथ च उत्सवदे ! असमयविदम्—न समयं वेत्ति इति तम्—समय न जानने वाला। प्रियम्—प्रिय को। उपनीय—प्राप्त करा कर। असमयविदम्—समय न जानने वाला। मे—मेरा। दग्धम् मानम्—इस जले मान को (दग्ध शब्द कुत्साभाव में प्रयुक्त है)। अपनीय—दूर कर। नर्मोपक्रमे—नर्मणः क्रीडायाः उपक्रमे आरम्भे—क्रीडारम्भ में। एव—ही। दूती इव--दूती के समान। चलिता असि—चलती बनी।

सरलार्थ—हे क्षणदे (उत्सवदे) ! तू (उत्सवदा होकर उत्सव का सम्पादन करे—यह अनुचित है) समय न जानने वाले (पूर्वरात्रि में न आने वाले) प्रिय को पहुँचा कर, समय न जानने वाले (अल्पावशिष्ट रात में न करने योग्य) इस जले मेरे मान को दूर कर क्रीडारम्भ में ही दूती के समान चलती बनी।

(दूती भी नायक को पहुँचा, नायिका का मान दूर कर, दोनो का संयोग करा कर वहाँ से चली जाती है)॥ १३७ ॥

तुम्हारे कर-स्पर्श से ही अधीर नायिका तुम्हारे लिए आतुर है—ऐसा, नायक से नायिका की सखी कह रही है—

उत्तमवनितैकगतिः करीव सरसीपयः सखीधैर्यम्।
आस्कन्दितोरुणा त्वं हस्तेनैव स्पृशन्हरसि ॥ १३८ ॥

पदार्थ—उत्तमवनितैकगतिः—(१) उत्तमवनितानाम् एकगतिः, (२) उत्तमवनितावत् एका मुख्या गतिः यस्य सः—(१) उत्तम वनिता के (अन्य अनुरूप नायक न मिलने से तुम्हीं) एक गति हो, (२) उत्तमवनिता की भाँति जिसकी गति (चाल) है। आस्कन्दितोरुणा—आस्कन्दितौ ऊरू जङ्घे येन तेन—जिसने जाँघों को संस्पृष्ट किया। हस्तेनैव—(१) हाथ से ही, (२) शुण्डादण्ड से ही। स्पृशन्—स्पर्श करता। करी—हस्ती। सरसीपयः—सरसी के जल को। इव—यथा। सखीधैर्यम्—सखी के धैर्य को। त्वं हरसि—तुम हरते हो।

सरलार्थ—(अपने अनुरूप अन्य नायक का अभाव होने से) उत्तम वनिताओं के केवल तुम गति रूप हो। जाँघो का संस्पर्श करने वाले (लम्बे) हाथ से ही स्पर्श कर तुमने सखी का धैर्य हर लिया (आगे न जाने क्या-क्या

हरोगे) जैसे वनिता की भाँति मन्द गति, (अपनी) जाँघो का स्पर्श कर, हाथी सूँड से सरसी के जल को स्पर्श करता हरता है ॥ १३८ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता उकारव्रज्या ।

ऊकारव्रज्या

जरठ से विवाहित, प्रेमराहित्य से खिन्न किसी तरुणी से सखी अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

ऊढामुनातिवाहय पृष्ठे लग्नापि कालमचलापि ।
सर्वसहे कठोरत्वचः किमङ्केन कमठस्य ॥ १३९ ॥

पदार्थ—सर्वसहे—वसुमति ! अमुना कमठेन ऊढा—इस कमठ से वहन की गयी । पृष्ठे लग्ना अपि—पीठ मे लगी हुई ही । अचला अपि—अचला भी है । कालम् अतिवाहय—समय बिताओ । कठोरत्वचः—कठोरा त्वक् यस्य तस्य—जिसका चमड़ा कठोर है उसके । कमठस्य—कमठ के । अङ्केन—अङ्क से किम्—क्या फल ?

सरलार्थ—हे सर्वसहे (सब सहने वाली) वसुमति ! तुम इस कमठ से वहन की गयी हो; पीठ मे लगी हुई ही; तुम अचला भी हो अतः अपना समय बिताओ । कठोर चर्म वाले कमठ के अङ्क से क्या फल ? ॥ १३९ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता ऊकारव्रज्या ।

ऋकारव्रज्या

यहाँ स्वकटाक्षविक्षेपादि चातुर्य प्रदर्शन उचित नही है अतः सरलता से पड़ी रहो—ऐसा कोई स्त्री किसी स्त्री को सिखा रही है—

ऋजुना निधेहि चरणौ परिहर सखि निखिलनागराचारम् ।
इह डाकिनीति पल्लीपतिः कटाक्षेऽपि दण्डयति ॥ १४० ॥

पदार्थ—ऋजुना—सरलेन अर्थात् मार्गेण—मार्ग । चरणौ निधेहि—स्थापय—चलो । निखिलनागराचारं—समग्र नागर रीति को । परिहर—त्यज—छोड़ो । इह—यहाँ । पल्लीपतिः—घोषाधिपः—(अहीरो की) बस्ती का मालिक । कटाक्षेऽपि—कटाक्ष करने पर भी । डाकिनी इति—'डाकिनी है' ऐसा कह कर । दण्डयति—दण्ड देता है ।

सरलार्थ—सीधे मार्ग से चलो, नागर रीति को छोडो । इस अहीरो की बस्ती का मालिक, कटाक्ष-विक्षेप से भी डाकिनी कहकर दण्ड देता है ॥ १४० ॥

यहाँ शास्त्र चर्चा होती है—ऐसा समझ कर आया व्यक्ति वहाँ ग्रामीण चर्चा देख कर कहता है—

ऋषभोऽत्र गीयत इति श्रुत्वा स्वरपारगा वयं प्राप्ताः ।
को वेद गोष्ठमेतद्गोशान्तौ विहितबहुमानम् ॥ १४१ ॥

पदार्थ—ऋषभः—(१) स्वरविशेषः, (२) वृषभश्च—(१) स्वरविशेष, (२) बैल। अत्र गीयते—यहाँ गाया जाता है। इति श्रुत्वा—यह सुनकर। स्वरपारगाः—स्वराणां पारगाः विशेषज्ञाः—स्वरो के विशेषज्ञ। वयं प्राप्ताः—हम आये। एतत्—यह। गोशान्तौ—गोशान्ति में। विहितबहुमानम्—विहितः बहुमानः यत्र—बहुत मान जहाँ किया गया। गोष्ठम्—गोशाला। को वेद—कौन जानता है।

सरलार्थ—यहाँ ऋषभ स्वर गाया जाता है—ऐसा जानकर हम आये। कौन जानता था कि यह गोशाला है, यहाँ गोशान्तिविषयक बहुमान किया गया है (दीपोत्सव आदि के अवसर पर गायो को अलङ्कृत कर गान करते हैं) ॥ १४१ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता ऋकारव्रज्या।

एकारव्रज्या

नायक अधर की प्रशंसा करता है—

एको हरः प्रियाधरगुणवेदी दिविषदोऽपरे मूढाः ।
विषममृतं वा सममिति यः पश्यन्गरलमेव पपौ ॥ १४२ ॥

पदार्थ—प्रियाधरगुणवेदी—प्रियायाः अधरस्य गुणान् वेत्तुं शीलमस्य—प्रिया के अधर गुणो को जानने वाला। एकः हरः—एक शिवजी। अपरे—अन्य। दिविषदः—दिवि स्वर्गे सीदन्ति इति दिविषदः देवाः—देव लोग। मूढाः—मूढ़। यः—हरः—शिवजी। विषम् अमृतं वा समम्—विष और अमृत दोनो समान हैं। इति पश्यन्—ऐसा समझ कर। गरलमेव पपौ—गरल ही पिया।

सरलार्थ—प्रिया के अधर गुणो को केवल शंकर जी जानते हैं, अन्य देव तो मूढ हैं; जिन्होने (प्रियाधरपानाभाव मे अमृत भी विष है) अतः दोनो को समान समझ विष को ही पिया। अन्य देवो ने तो कमला के अधर के लिए नहीं अपि तु अमृत के लिए यत्न किया और कमला के अधर से सुधा को अधिक समझा अतः वे मूढ है) ॥ १४२ ॥

पति के विदेश गमन के अवसर पर (यह) पुनः न लौटे—इस उद्देश्य से अमङ्गल करती दुश्चरित्र पत्नी, अमङ्गल-भय से गमन स्थगित कर देने वाले पति को देख कर सखी से कहती है—

एष्यति मा पुनरयमिति गमने यदमङ्गलं मयाकारि ।
अधुना तदेव कारणमवस्थितौ दग्धगेहपतेः ॥ १४३ ॥

पदार्थ—अयं पुनः मा एष्यति—यह पुनः लौट कर न आयेगा। इति—इस विचार से। गमने—गमनवेला में। मया—मैंने। यदमङ्गलम्—जो अमङ्गल। अकारि—किया। अधुना—अब। तदेव—वही। दग्धगेहपतेः—जले गृहस्वामी के (दग्ध पद कुत्सा में प्रयुक्त है)। अवस्थितौ—रुकने में। कारणम्—कारण बन गया।

सरलार्थ—यह पुनः लौट कर न आये (तो मैं स्वच्छन्द जारों के साथ विहार करूँगी) इस विचार से इसके प्रस्थान के समय मैंने जो अमङ्गल किया, उसी के कारण इस दग्ध—गृहस्वामी (मेरा जो सच्चा प्रिय नहीं) ने अपना गमन स्थगित कर दिया (सोचा कुछ और हो गया कुछ) ॥ १४३ ॥

वह तुझमें ही आसक्त है—ऐसा सखी नायक से कह रही है—

एकैकशो युवजनं विलङ्घमानाक्षनिकरमिव तरला ।
विश्राम्यति सुभग त्वामङ्गुलिरासाद्य मेरुमिव ॥ १४४ ॥

पदार्थ—एकैकशः—बारी-बारी एक-एक को। युवजनम्—युवक को। अक्षनिकरम् इव—अक्षाणाम् मालामणीनां निकरम् समुदायमिव—माला की मणियों (दानों) के समूह की भाँति। विलङ्घमाना—(१) अवगणयन्ती, (२) उल्लङ्घयन्ती—(१) उपेक्षा करती, (२) लाँघती। अङ्गुलिः इव—अङ्गुली की भाँति। तरला—चञ्चला। मेरुमिव—माला की मध्यमणि, जो माला के बीचो-बीच रहती है, उसके समान। त्वां प्राप्य—तुम्हें पाकर। विश्राम्यति—विश्राम पाती है, रुकती है।

सरलार्थ—हे सुभग ! जैसे चंचल अंगुली माला के एक-एक दाने को छूती, लाँघती मेरु (बीचो-बीच स्थित दाने को) पाने पर ही रुकती है; उसी प्रकार वह चंचल एक-एक युवक को देखती, तिरस्कृत करती, तुम्हे पाने पर ही विश्राम पाती है ॥ १४४ ॥

याच्ञा के खेद से खिन्न व्यक्ति कह रहा है—

एकः स एव जीवति स्वहृदयशून्योऽपि सहृदयो राहुः ।
यः सकललघिमकारणमुदरं न बिभर्ति दुष्पूरम् ॥ १४५ ॥

पदार्थ—सकललघुताकारणम्—सारी लघुता का कारण । दुष्पूरम्—जिसका भरना दुष्कर है । उदरं यो न बिभर्ति—जो उदर नहीं रखता है । सः स्वहृदयशून्यः अपि—वह निजी हृदय न रखने वाला भी । सहृदयः राहुः—हृदयेन सहितः राहुः एव एकः जीवति—सहृदय राहु ही एक जीता है ।

सरलार्थ—जिसका भरना कठिन होता है, अतएव जो सारी लघुता का कारण है—ऐसे पेट को जो नहीं रखता—वह हृदयशून्य भी राहु सहृदय अकेला जीता है (जो पेट भरने के लिए इधर-उधर हाथ फैलाता फिरता है वह ही मरा है)

(इसी अभिप्राय से रहीम ने भी कहा है—'सब से पहिले वे मरे, जो कछु माँगन जाहिं ।') ॥ १४५ ॥

कोई विदेशस्थ अपने मन में सोच रहा है—

एकेन चूर्णकुन्तलमपरेण करेण चिबुकमुन्नमयन् ।
पश्यामि बाष्पधौतश्रुति नगरद्वारि तद्वदनम् ॥ १४६ ॥

पदार्थ—एकेन—एक से । चूर्णकुन्तलम्—अलकम्—अलक को । अपरेण करेण—दूसरे हाथ से । चिबुकम् उन्नमयन्—चिबुक को ऊपर उठाता । नगरद्वारि—नगरद्वार (नगर के बाहर का द्वार) पर । बाष्पधौतश्रुति—बाष्पेण अश्रुणा धौता श्रुतिः कर्णः यत्र तत्—जिसमें कान आँसू से धुल गया है । तद्-वदनम्—तस्याः वदनम्—उसके मुख को । पश्यामि—देखूँगा ।

सरलार्थ—(भगवान् वह दिन कब लायेगा कि मैं अपने घर लौटूँगा; मेरा आगमन सुन प्रेमातिशय से आँसू गिराती प्रिया तोरण (नगरद्वार) तक दौड़ी आकर खड़ी राह देखती रही होगी) मैं (पहुँच कर) एक हाथ से उसकी अलकों को, दूसरे से चिबुक को ऊपर उठाता हुआ, नगर के फाटक पर आँसू से धुले कान वाला प्रिया का मुख देखूँगा ॥ १४६ ॥

सखी नायक से कह रही है—

एकं जीवनमूलं चञ्चलमपि तापयन्तमपि सततम् ।
अन्तर्वहति वराकी सा त्वां नासेव निःश्वासम् ॥ १४७ ॥

पदार्थ—एकं जीवनमूलम्—एक जीवन का कारण । चञ्चलम् अपि—चंचल भी । सततम्—निरन्तरम् । तापयन्तम् अपि—तप्त करता भी । नासा । निःश्वासम् इव—निःश्वास-सा । सा वराकी—वह बेचारी । त्वाम् अन्तर्वहति—हृदय में रखती है ।

सरलार्थ—जैसे नासिका जीवन-मूल, चंचल, निरन्तर तप्त करते निःश्वास को भीतर रखती है ठीक उसी प्रकार वह बेचारी, जीवन-मूल, चंचल (अन्याङ्ग-

नासक्त) अतएव निरन्तर सन्तत करते हुए भी तुम्हें अपने हृदय में रखती है ॥ १४७ ॥

नायक की भेजी दूती से नायिका कह रही है—

एकं वदति मनो मम यामि न यामीति हृदयमपरं मे ।
हृदयद्वयमुचितं तव सुन्दरि हृतकान्तचित्तायाः ॥ १४८ ॥

पदार्थ—एकं मम मनः वदति यामि इति—मेरा एक मन तो कहता है कि जाऊँ। मे अपरं हृदयम् (वदति) न यामि—मेरा दूसरा मन कहता है कि न जाऊँ। सुन्दरि ! हृतकान्तचित्तायाः—हृतं कान्तस्य चित्तं यया तस्याः—जिसने प्रिय के चित्त को हर लिया है। तव—तुम्हारे। हृदयद्वयमुचितम्—दो हृदय होना ठीक ही है।

सरलार्थ—नायिका दूती से कहती है—एक हृदय तो कहता है कि जाऊँ और दूसरा कहता है कि न जाऊँ। (नायिका के जाने में सन्देह है—यह अनुमान कर) दूती नायिका से कहती है—तुमने जो नायक का चित्त हर कर अपने अधीन कर लिया है अतः तुम्हारे पास दो हृदय का होना ठीक ही है (नायक तुम्हारी इस उदासीनता से अन्य में अनुरक्ति करने लगेगा अतः शीघ्र चलो) ॥ १४८ ॥

कोई हलिक (हलवाहा, किसान) की पत्नी के सङ्गम की प्रशंसा कर रहा है—

एरण्डपत्त्रशयना जनयन्ती स्वेदमलघुजघनतटा ।
धूलिपुटीव मिलन्ती स्मरज्वरं हरति हलिकवधूः ॥ १४९ ॥

पदार्थ—एरण्डपत्त्रशयना—एरण्डपत्राणां शयनं यस्याः सा—एरण्ड (रेंड) के पत्तों की शय्या जिसकी है। स्वेदम्—पसीना। जनयन्ती—उत्पन्न करती। अलघुजघनतटा—अलघु महत् जघनतटं यस्याः सा—बड़े जघन वाली। मिलन्ती—अङ्गों में लगती। हलिकवधूः—हलिकस्य वधूः—हलिक की पत्नी। धूलिपुटी इव—धूलि की पोटली की भाँति। स्मरज्वरम्—स्मरस्य कामस्य ज्वरम्—काम ज्वर को। हरति—हरती है।

सरलार्थ—एरण्ड के पत्तों की जिसकी शय्या है, (सुरतातिशय से नायक के) पसीना पैदा करती, विस्तृत जघन वाली हलिकवधू अंगों से लगकर धूलि की पोटली की भाँति कामज्वर को हरती है।

(एरण्डपत्र से लपेटी, स्वेद उत्पन्न करती, स्थूलपुरोभागवाली, अङ्ग में लगकर धूलिपोटली मदनज्वर को दूर करती है—ऐसा वैद्यक में प्रसिद्ध है) ॥ १४९ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता एकारव्रज्या ।

ककारव्रज्या

यह पड़ोसी में आसक्त है—ऐसा कोई कह रहा है—

केलिनिलयं सखीमिव नयति नवोढां स्वयं न मां भजते ।
इत्थं गृहिणीमर्ये स्तुवति प्रतिवेशिना हसितम् ॥ १५० ॥

पदार्थ—केलिनिलयम्—केलिसदनम्—क्रीडागृह में । सखीमिव—जैसे सखी को । नवोढाम्—नव-विवाहिता को । नयति—पहुँचाती है । स्वयं मां न भजते—स्वयं मुझको नहीं सेवन करती । इत्थम्—इस प्रकार । गृहिणीम्—प्रथम पत्नी की । अर्ये—वैश्ये । स्तुवति सति—गृहिणी की इस प्रकार जब वैश्य प्रशंसा करने लगा । प्रतिवेशिना हसितम्—पड़ोसी हँस पड़ा ।

सरलार्थ—सखी की भाँति नवोढा को क्रीडागृह तक पहुँचाती है और स्वयम् मेरा उपभोग नहीं करती—इस प्रकार वैश्य के प्रथम पत्नी की प्रशंसा करने पर पड़ोसी हँस पड़ा (यह तो मुझ में आसक्त है, इसके पास सपत्नी को भेज कर स्वयम् मेरे पास आती है—यह इसे नहीं ज्ञात है) ॥ १५० ॥

कुछ समय के बाद प्राप्तयौवना यह हमारे उपयोग मे आयेगी—ऐसी आशा करने वाले से अन्योक्ति द्वारा कोई कह रहा है—

कालक्रमकमनीयक्रोडेयं केतकीति काशंसा ।
वृद्धिर्यथा यथास्यास्तथा तथा कण्टकोत्कर्षः ॥ १५१ ॥

पदार्थ—कालक्रमकमनीयक्रोडा—कालक्रमेण कमनीयः क्रोडः (१—समीपप्रदेशः, २—भुजाभ्यन्तरम्) यस्याः सा—कालक्रम से समीपदेश (भुजाभ्यन्तर) कमनीय है जिसका । इयं केतकी—यह केतकी । इति—ऐसी । का आशंसा—क्या आशा । यथा यथा अस्याः वृद्धिः—जैसे-जैसे इसकी वृद्धि होगी । तथा तथा—त्यों त्यों । कण्टकोत्कर्षः—काँटों का उत्कर्ष ।

सरलार्थ—यह केतकी कालक्रम से कमनीय समीपदेश (भुजाभ्यन्तर) की होगी (और तेरे उपयोग मे आयेगी) ऐसी आशा क्या, अर्थात् कोई आशा नहीं । क्योकि ज्यो ज्यो वृद्धि होगी त्यो त्यो इसमे काँटो का उत्कर्ष भी होगा (इसके यौवन में अनेक दुष्ट इससे संयुक्त होगे) जिससे तुम्हारे उपयोग में यह न आ सकेगी ॥ १५१ ॥

सपत्नी के पास जाने के लिए उपयुक्त समय, इस प्रथम पत्नी के सो जाने

के बाद ही होगा—ऐसा सोच कर अपने सोने का झूठ-मूठ बहाना कर उसकी श्वासध्वनि की ओर कान लगाये नायक से प्रथम पत्नी कह रही है—

कृतकस्वाप मदीयश्वासध्वनिदत्तकर्ण किं तीव्रैः ।
विध्यसि मां निःश्वासैः स्मरः शरैः शब्दवेधीव ॥ १५२ ॥

पदार्थ—हे कृतकस्वाप—कृतकः कृत्रिमः स्वापः निद्रा यस्य तत्सम्बुद्धिः—हे मिथ्या नींद वाले ! मदीयश्वासध्वनिदत्तकर्ण !—मदीयश्वासध्वनिषु दत्तः कर्णः येन तत्सम्बुद्धिः—मेरी श्वास ध्वनि में कान दिये हुए ! माम्—मुझको । तीव्रैः—(१) दीर्घैः, (२) तीक्ष्णैः । निःश्वासैः—निःश्वासों से । शब्दवेधी स्मरः—शब्दवेधी कामदेव के समान । शरैः—बाणों से । किम्—क्यों । विध्यसि—वेधते हो ।

सरलार्थ—हे मिथ्या सुप्त ! (जब यह सो जाये तो मैं उसके पास चलूँ—इस आशय से) मेरी श्वास-ध्वनि की ओर कान दिये, शब्दवेधी कामदेव की तरह अपने दीर्घ श्वास रूप तीक्ष्ण शरों से क्यों पीडित कर रहे हो ? (छल से क्यों ? ऐसे ही जाओ, मैं रोकती नहीं) ॥ १५२ ॥

किसी कामुकविशेष के संचार से अन्य लोगों का गमन वेश्या के पास नहीं हो पाता था, उसके चले जाने के बाद कोई अन्योक्ति द्वारा उस वेश्या से कह रहा है—

क्व स निर्मोकदुकूलः क्वालंकरणाय फणिमणिश्रेणी ।
कालियभुजंगगमनाद्यमुने विश्वस्य गम्यासि ॥ १५३ ॥

पदार्थ—सः—प्रसिद्धः निर्मोकः एव सर्पकञ्चुकः एव दुकूलः—सर्प का केंचुल रूप दुकूल । क्व—कहाँ । अलंकरणाय—अलंकरण के लिए । फणिमणि-श्रेणी—फणिना मणयः तेषा श्रेणी—सर्प मणियों की पंक्ति । क्व—कहाँ । कालिय-भुजङ्गगमनात्—कालियनामा यो भुजङ्गः (१—सर्पः, २—तत्तुल्यो विटः) तस्य गमनात्—कालिय नामक सर्प (तत्तुल्य विट) के जाने से । हे यमुने ! (१—नदि, २—यमुना इति नाम) । विश्वस्य गम्या—गन्तुं योग्या । असि—संसार तुम्हारे पास जाने लगा ।

सरलार्थ—वह तुम्हारा सर्प का केंचुल रूप दुकूल नहीं, अलंकार के लिए सर्प मणियाँ नहीं । कालिय नामक भुजङ्ग (१—सर्प, २—तत्तुल्य विट) के जाने से तुम्हारी यह अवस्था हो गयी कि सभी लोग बे-खटके तुम्हारे पास जा सकेंगे ॥ १५३ ॥

कोई नायिका को प्रसन्न करने का वृत्तान्त सखा से कह रहा है—

किंचिन्न बालयोक्तं न सप्रसादा निवेशिता दृष्टिः ।
मयि पदपतिते केवलमकारि शुकपञ्जरो विमुखः ॥ १५४ ॥

पदार्थ—मयि पदपतिते—जब मैं उसके पैर पड़ा। बालया किंचित् न उक्तम्—बाला ने कुछ कहा नहीं। न सप्रसादा—प्रसादेन सह वर्तमाना, दृष्टिः निवेशिता—न मुझ पर प्रसन्नतापूर्ण दृष्टि डाली। केवलम् । शुकपञ्जरः—तोते का पिंजड़ा । विमुखः—अन्यदिङ्मुखः—दूसरी ओर । अकारि—कर दिया।

सरलार्थ—मेरे पैर पड़ने पर उस बाला ने न तो कुछ कहा और न प्रसन्नता की दृष्टि ही मुझ पर डाली; केवल तोते का पिंजड़ा (उठाकर) दूसरी ओर रख दिया (इस प्रकार शुकपिंजर को हटा कर दूसरी ओर रखने से एकान्त की स्थिति उत्पन्न कर रति की मूक अनुमति मुझे मिल गई) ॥ १५४ ॥

किसी सामान्य वनिता की चेष्टा का कोई वर्णन कर रहा है—

कृतहसितहस्ततालं मन्मथतरलैर्विलोकितां युवभिः ।
क्षिप्तः क्षिप्तो निपतन्नङ्गे नर्तयति भृङ्गस्ताम् ॥ १५५ ॥

पदार्थ—कृतः हसितेन हस्ततालः यत्र—हास से हस्ततालकरणपूर्वक। मन्मथतरलैः—मन्मथेन तरलैः कामचञ्चलैः—काम से चंचल। युवभिः विलोकिताम्—युवकों द्वारा देखी गयी। ताम्—नायिकाम्—नायिका को। क्षिप्तः क्षिप्तः—बार बार दूर किया गया। अङ्गे निपतन्—शरीर के अवयवों पर पड़ता। भृङ्गः—भृङ्गः इव—भृङ्ग-सा। नर्तयति—नचाता है।

सरलार्थ—हास से कृतहस्ततालपूर्वक, कामचञ्चल युवकों द्वारा विलोकित उस नायिका को बार-बार दूर किया गया, अङ्गों पर गिरते भौंरे के समान लम्पट पुरुष नचाता है (भौंरा भी किसलय की चंचलता से बार-बार हटाये जाने पर भी उसी लता पर बैठता है, इसी प्रकार बार-बार नायिका के करों द्वारा हटाये जाने पर भी लम्पट लोकदृष्टि और लज्जा की उपेक्षा कर उसके कुच आदि का स्पर्श करता है) ॥ १५५ ॥

प्रतिबन्ध से दुःखी नायिका को कोई स्त्री समझाती है—

कमलमुखि सर्वतोमुखनिवारणं विदधदेव भूपयति ।
रोधोऽरुद्धस्वरसास्तरङ्गिणीस्तरलनयनाश्च ॥ १५६ ॥

पदार्थ—हे कमलमुखि ! सर्वतोमुखनिवारणम्—(१) सर्वतोमुखस्य निवारणम्—जल का निवारण, बन्धन से प्रवाह-विच्छेदन, (२) सर्वस्मात्

मुखस्य निवारणम् अप्रदर्शनं च—सब से मुख का अप्रदर्शन। विदधत्—कुर्वत् एव—करता हुआ ही। रोधः—(१) तटम्, (२) रोधनम्—तट और प्रतिबन्ध। अरुद्धस्वरसाः—न रुद्धः स्वः रसः (१—जलम्, २—इच्छा) याभिः ताः—जिनके द्वारा अपना जल और इच्छा रोकी नहीं जाती। तरङ्गिणीः—नदियो को। तरलनयनाश्च—तरले नयने यासां ताः—जिनके नेत्र तरल हैं, नायिकाओ को। भूपयति—शोभा बढ़ाता है।

सरलार्थ—हे कमलमुखि! (नदी का) तीर, जल-प्रवाह को बाँध कर स्वतन्त्र इधर-उधर बहने से रोककर तरङ्गिणी (नदी, जो स्वभावतः चञ्चल होती है) जो अपने जल को रोक नहीं पाती—की शोभा बढ़ाता है। (नायिका का) निरोध, सब से मुख का निवारण कर—लज्जा से सबके सामने मुख दिखाने से रोक कर, जो अपनी इच्छा को स्वयं रोक नही पाती उस तरलनयना नायिका (जो स्वभावतः चंचल होती है) की शोभा बढ़ाता है (नदी के लिए तीर, नायिका के लिए निरोध आवश्यक ही नही अनिवार्य भी है)॥ १५६॥

वह क्यो नहीं आ रही है—ऐसा कहते हुए नायक से दूती कह रही है—

कितव प्रपञ्चिता सा भवता मन्दाक्षमन्दसंचारा।
बहुदायैरपि संप्रति पाशकसारीव नायाति॥ १५७॥

पदार्थ—हे कितव!—धूर्त!—भवता—आपके द्वारा। प्रपञ्चिता—(१) प्राकट्य को प्राप्त, अवगत कराई गयी, (२) चलाई गयी। मन्दाक्षमन्दसंचारा—(१) मन्दाक्षेण लज्जया मन्दः संचारः यस्याः सा—लज्जा से जो घर से बाहर नही जाती, (२) मन्दाक्षैः—अल्पसंख्यकपाशकैः मन्दः संचारः यस्याः सा—अल्पसंख्यक पासो के कारण एक घर से दूसरे घर को कम जा पाती है। सा—वह। संप्रति—इस समय। बहुदायैः अपि—(१) बहुत द्रव्य देने पर भी, (२) बहुत दॉव लगाने पर भी। पाशकसारी इव—जुआ खेलने की गोटी के समान। न आयाति—नहीं आती।

सरलार्थ—हे कितव! तुमने उसे अवगत करा दिया—संसार जान गया कि वह तुममें आसक्त है। अतः अब लज्जा के कारण घर से दूसरे घर जाना उसका कम हो गया है, (आगे के लिये नहीं कह सकती) इस समय तो बहुत द्रव्य भेंट करने पर भी वह नहीं आयेगी। जैसे—अपनी चलायी गयी गोटी, पासो के कम रहने पर एक घर से दूसरे घर में संचार नही करती और बहुत दॉव लगाने पर भी वह नहीं आती॥ १५७॥

सामान्य वनिता का पड़ोसी कह रहा है—

कः श्लाघनीयजन्मा माघनिशीथेऽपि यस्य सौभाग्यम् ।
प्रालेयानिलदीर्घः कथयति काञ्चीनिनादोऽयम् ॥ १५८ ॥

पदार्थ—कः—कौन । श्लाघनीयजन्मा—श्लाघनीयं जन्म यस्य सः—जिसका जन्म श्लाघनीय है । माघनिशीथेऽपि—माघ के अर्धरात्र में भी । प्रालेयानिलदीर्घः—प्रालेयानिलेन शीतवायुना दीर्घः । अयं काञ्चीनिनादः—यह काञ्ची की झनकार । यस्य सौभाग्यम् कथयति—जिसका सौभाग्य कह रही है ।

सरलार्थ—यह कौन श्लाघनीय जन्म वाला व्यक्ति है जिसके सौभाग्य को, माघ के अर्धरात्र में भी शीतवायु द्वारा (श्रमापनोदक होने के कारण सुरतातिशय सम्पादन से) दीर्घ काञ्ची (करधनी) की मधुर झनकार सूचित कर रही है ॥ १५८ ॥

प्रेमातिशयवती होने पर भी मैं उसके पास जाने में डरती हूँ—ऐसा कहती हुई नायिका से नायक की दूती कह रही है—

किमशकनीयं प्रेम्णः फणिनः कथयापि या बिभेति स्म ।
सा गिरिशभुजभुजंगमफणोपधानाद्य निद्राति ॥ १५९ ॥

पदार्थ—प्रेम्णः किम् अशकनीयम्—प्रेम क्या नहीं कर सकता ? या—पार्वती । फणिनः कथया अपि—सर्पचर्चया अपि—साँप की चर्चा से भी । बिभेति स्म—डरती थी । सा—वह । अद्य—आज । गिरिशभुजभुजङ्गमफणोपधाना—गिरौ शेते इति गिरिशः हरः तस्य भुजभुजङ्गमः भुजसर्पः तस्य फणा एव उपधानं यस्याः सा—हर के भुजसर्प की फणा है उपधान (तकिया) जिसका । निद्राति—सोती है ।

सरलार्थ—प्रेम क्या नहीं कर सकता ? जो (विवाह से पूर्व) साँप की चर्चा से भी डर जाती थी आज (विवाह के बाद) शिव के भुजसर्प के फन की तकिया लगा कर सोती है ।

(अतः नायक के रसास्वादन के बाद भय नहीं ठहरेगा) ॥ १५९ ॥

सामान्य वनिता की सङ्गति अनुचित है—ऐसा कोई किसी को शिक्षा दे रहा है—

कृत्रिमकनकेनेव प्रेम्णा मुषितस्य वारवनिताभिः ।
लघुरिव वित्तविनाशक्लेशो जनहास्यता महती ॥ १६० ॥

पदार्थ—कृत्रिमकनकेन इव—कृत्रिमं धातुवादादिभिः मिथ्याविहितं यत् कनकं तेन इव—रासायनिक क्रिया से मिथ्या निर्मित सुवर्ण से जैसे । प्रेम्णा—

प्रेम से। वारवनिताभिः—वेश्याओ द्वारा। मुषितस्य—ठगे गये (व्यक्ति का)। वित्तविनाशक्लेशः—वित्तस्य विनाशेन क्लेशः—धन के नाश से जन्य क्लेश। लघुः इव—थोड़ा सा। जनहास्यता महती—लोकनिन्दा बड़ी।

सरलार्थ—जैसे रासायनिक अपनी कला से मिथ्यानिर्मित सोने से ठगता है और ठगे व्यक्ति का धन जो जाता है वह तो थोड़ा है, उसकी मूर्खता पर जो लोकनिन्दा होती है वह बडी है। ठीक इसी प्रकार वारवनिताओं से कृत्रिम प्रेम द्वारा ठगे गये व्यक्ति का धन-नाश से उत्पन्न क्लेश तो अल्प है, जो लोक निन्दा होती है वह बहुत बड़ी है (अतः सामान्य वनिता का सङ्ग उचित नहीं है)॥ १६० ॥

सखी नायिका से कह रही है—

किं पर्वदिवसमार्जितदन्तोष्ठि निजं वपुर्न मण्डयसि।
स त्वां त्यजति न पर्वस्वपि मधुरामिक्षुयष्टिमिव ॥ १६१ ॥

पदार्थ—पर्वदिवसमार्जितदन्तोष्ठि—पर्वदिवसे मार्जितौ दन्तोष्ठौ यया तत्संबुद्धिः—पर्व के दिन जिसने दाँत और ओष्ठ को साफ कर रक्खा है अर्थात् उनका संस्कार नही किया है। निजं वपुः—अपने शरीर को। किं न मण्डयसि—क्यो मण्डित नहीं करती। सः—वह (नायक)। त्वाम्—तुमको। मधुराम् इक्षुयष्टिमिव—मधुर ईखयष्टि की तरह। पर्वस्वपि—(१) पर्व के दिनो में भी, (२) गाँठो में भी। न त्यजति—नहीं छोड़ेगा।

सरलार्थ—हे पर्व के दिन दाँतो और ओठों को संस्कार-विहीन रखने वाली ! तुम अपने शरीर का मण्डन क्यो नहीं करती ? वह तुमको मधुर इक्षुयष्टि के समान पर्व [१—पर्व दिवस, २—ग्रन्थि (ईख की)] मे भी नहीं छोड़ेगा ॥ १६१ ॥

किसी नायक से मिलाने के लिए दूती नायिका से कह रही है—

कष्टं साहसकारिणि तव नयनार्धेन सोऽध्वनि स्पृष्टः।
उपवीतादपि विदितो न द्विजदेहस्तपस्वी ते ॥ १६२ ॥

पदार्थ—हे साहसकारिणि !—अनुचितकारिणि ! तव—तेरे। नयनार्धेन—कटाक्ष से। सः—वह। अध्वनि—मार्गे—मार्ग मे। स्पृष्टः—स्पर्श किया गया। कष्टम्—यह दुःख है। तपस्वी। द्विजदेहः—द्विजस्य देहः यस्य—जिसका शरीर ब्राह्मण का है। उपवीतादपि—जनेऊ से भी। ते न विदितः—तुझे नही ज्ञात हुआ।

सरलार्थ—हे साहसकारिणि ! मार्ग में तेरे कटाक्ष से वह स्पृष्ट हुआ—तेरे कटाक्ष का विषय बना। यह बड़ा दुःख है। वह तपस्वी और ब्राह्मण है,

(उसके) यज्ञोपवीत से क्या तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ ? (अन्य जातीय होता तो कोई बात नहीं थी, चल कर तुम उसे जीवन दो, अन्यथा तुम्हें ब्रह्महत्या का पाप लगेगा) ।। १६२ ।।

बड़े श्रम से मिली इससे तुम्हें क्या सुख मिलता है—ऐसा कहने वाले से कोई कहता है—

क्लेशेऽपि तन्यमाने मिलितेयं मां प्रमोदयत्येव ।
रौद्रेऽनभ्रेऽपि नभःसुरापगावारिवृष्टिरिव ।। १६३ ।।

पदार्थ—क्लेशेऽपि तन्यमाने—क्लेश विस्तीर्ण करने पर भी । मिलिता इयम्—मिली यह । मां प्रमोदयत्येव—मुझे प्रमुदित ही करती है । अनभ्रेऽपि—मेघाभावेऽपि—मेघों के न रहने पर भी । रौद्रे—आतपे—आतप में, धूप में । नभःसुरापगावृष्टिरिव—नभसः आकाशस्य, सुरापगायाः गङ्गायाः वृष्टिरिव ।

सरलार्थ—बड़े क्लेश से मिली हुई यह (दूसरों को प्रमुदित करती है या नहीं, कौन जानता है) मुझे तो प्रमुदित ही करती है; जैसे बिना बादल के धूप में आकाशगङ्गा की वृष्टि (सन्तप्त को शीतलता प्रदान करती है) ।। १६३ ।।

अत्यन्त लज्जा के कारण परदा करने वाली किसी तरुणी से कोई कहता है—

कूपप्रभवाणां परमुचितमपां पट्टबन्धनं मन्ये ।
याः शक्यन्ते लब्धुं न पार्थिवेनापि विगुणेन ।। १६४ ।।

पदार्थ—याः—जो । विगुणेन—(१) रज्जुशून्येन, (२) गुणरहितेन । पार्थिवेन—(१) पृथिव्याः विकारः पार्थिवः तेन कलशादिना, (२) पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः तेन राज्ञा अपि—(१) रज्जु के बिना घड़े से भी, (२) गुणरहित राजा से भी । न लब्धुं शक्यन्ते—नहीं प्राप्त की जा सकतीं । कूपप्रभवाणाम्—कूपः प्रभवः यासां तासाम्—जिनका प्रभव (उत्पत्तिस्थान) कूप है । अपाम्—जलानाम्—जल का । पट्टबन्धनम्—(१) पट्टस्य सरण्याः बन्धनम्—सीढ़ी बाँधना, (२) परदा करना । परम् उचितम्—अत्यन्त उचित । मन्ये—मानता हूँ ।

सरलार्थ—कुये का जल जिसे बिना रस्सी का घड़ा नहीं पा सकता—उसका सीढ़ी बाँधना तथा जो उच्च कुलोत्पन्न नायिका बिना गुण के राजा को भी अलभ्य है, उसका परदा करना—मैं अत्यन्त उचित समझता हूँ (इधर-उधर द्रव्य-लोभ से घूमने वाली तुम्हारा क्या परदा !) ।। १६४ ।।

खण्डिता नायिका नायक से कह रही है—

कररुहशिखानिखात भ्रान्त्वा विश्रान्त रजनिदुरवाप ।
रविरिव यन्त्रोल्लिखितः कृशोऽपि लोकस्य हरसि दृशम् ॥ १६५ ॥

पदार्थ—कररुहशिखानिखात !—कररुहाः नखाः तेषां शिखाभिः अग्रभागैः निखात !—नखों के अग्रभाग से खोदा हुआ अर्थात् हे नखक्षतशालिन् ! भ्रान्त्वा—(१) इधर-उधर घूमकर, (२) मेरु की प्रदक्षिणा कर । विश्रान्त । रजनि-दुरवाप—रात्रि में दुर्लभ । यन्त्रोल्लिखितः—यन्त्रैः उल्लिखितः—यन्त्रों से खोदा हुआ । रविः इव—सूर्यः इव । कृशोऽपि—दुर्बल, निस्तेजस्क । लोकस्य—संसार की अर्थात् सबकी । दृशं हरसि—दृष्टि को हरते हो ।

सरलार्थ—हे बहुनखक्षतशालिन् ! इधर-उधर घूम कर शान्त, रात्रि में दुर्लभ ! यन्त्रोल्लिखित (यन्त्रों से खोदा गया हुआ) सूर्य-से दुर्बल और निस्तेज भी तुम संसार को (मुझको नहीं) सुन्दर लगते हो ॥ १६५ ॥

अपने पति को सुखी क्यों नहीं बनाती—ऐसा कहती हुई किसी स्त्री से कोई कह रह रही है—

किं करवाणि दिवानिशमपि लग्ना सहजशीतलप्रकृतिः ।
हन्त सुखयामि न प्रियमात्मानमिवात्मनश्छाया ॥ १६६ ॥

पदार्थ—सहजशीतलप्रकृतिः—सह (१—बाल्यतः, २—उत्पत्तितः) जाता शीतला शान्ता प्रकृतिः स्वभावः यस्याः सा—(१) बाल्यकाल से, (२) उत्पत्ति काल से जिसका स्वभाव शीतल है । दिवानिशमपि—दिवा च निशा च अनयोः समाहारः दिवानिशम् (समाहार द्वन्द्व)—दिन-रात भी । लग्ना—लगी । आत्मनः छाया—अपनी छाया । आत्मानम् इव—जैसे अपने को । प्रियम्—प्रिय को । हन्त—खेद है । न सुखयामि—नहीं सुखी बना पाती हूँ । किं करवाणि—क्या करूँ ।

सरलार्थ—बाल्यकाल से ही शीतल स्वभाव वाली मैं दिन-रात सेवा के लिए साथ लगी अपने प्रिय को उसी प्रकार सुखी नहीं बना पाती हूँ जिस प्रकार स्वभावतः उत्पत्ति समय से ही शीतल, साथ लगी अपनी छाया अपने को शीतलता नहीं प्रदान कर पाती—क्या करूँ ? ॥ १६६ ॥

नायक के सभोग में श्रम होता है—इस प्रकार कहती हुई नायिका से सखी कह रही है—

केशैः शिरसो गरिमा मरणं पीयूषकुण्डपातेन ।
दयितवहनेन वक्षसि यदि भारस्तदिदमचिकित्स्यम् ॥ १६७ ॥

पदार्थ—केशैः—बालों से। शिरसः गरिमा—शिर का भार। पीयूषकुण्ड-पातेन—पीयूषस्य अमृतस्य कुण्डे पातेन—अमृतकुण्ड में गिरने से। मरणम्—मृत्यु। दयितवहनेन—दयितस्य प्रियस्य वहनेन—प्रिय को वहन करने से। यदि। वक्षसि—वक्षःस्थल पर। भारः। तत्—तो। इदम्—यह। अचिकित्स्यम्—बेइलाज।

सरलार्थ—यदि केशों से शिर पर भार होता है—अमृतकुण्ड में गिरने से मृत्यु होती है, प्रिय को वहन करने से वक्षःस्थल पर भार होता है तो फिर इसकी कोई दवा नहीं ॥ १६७ ॥

नायक मानिनी से कह रहा है—

किंचित्कर्कशतामनु रसं प्रदास्यन्निसर्गमधुरं मे ।
इक्षोरिव ते सुन्दरि! मानस्य ग्रन्थिरपि काम्यः ॥ १६८ ॥

पदार्थ—हे सुन्दरि! किंचित्कर्कशतामनु—थोड़ी सी कठोरता के बाद। मे—मह्यम्—मुझे। निसर्गमधुरं—स्वभावमृष्टं—स्वभावतः स्वादिष्ठ। रसम्—(१) रतिम्, (२) द्रवम्—(१) रति, (२) रस (पेय)। प्रदास्यन्—देने वाला। ते मानस्य—तुम्हारे मान की। इक्षोः इव—ईख की-सी। ग्रन्थिः अपि—गाँठ भी। काम्यः—वाञ्छनीयः।

सरलार्थ—हे सुन्दरि! थोड़ी सी कठोरता के बाद मुझे स्वभावतः स्वादिष्ठ जो रस (रति) प्रदान करेगा तुम्हारे उस मान की ग्रन्थि (दूर न होने का आग्रह) भी उसी प्रकार वाञ्छनीय है जैसे ईख की गाँठ थोड़ी-सी कठोरता के बाद स्वभावतः मधुर रस (पीने को) देती है अतः वह सभी को वाञ्छनीय होती है ॥ १६८ ॥

कोई अत्यन्त प्रवीण व्यक्ति कह रहा है—

केन गिरिशस्य दत्ता बुद्धिर्भुजगं जटावनेऽर्पयितुम् ।
येन रतिरभसकान्ताकरचिकुराकर्षणं मुषितम् ॥ १६९ ॥

पदार्थ—गिरिशस्य—गिरौ शेते इति गिरिशः तस्य (शिवस्य)—पर्वत पर सोने वाले शिव जी को। भुजगम्—सर्पम्—साँप को। जटावने—जटारूप-वने—जटारूप वन में; अथवा जटानाम् अवनम् रक्षणम् तत्र (तन्निमित्तम्) जटाओं की रक्षानिमित्त। अथवा जटाभिः (भुजगस्य) अवने रक्षणे (तन्नि-मित्तम्)—जटाओं से (सर्प की) रक्षानिमित्त। केन बुद्धिः दत्ता—किसने (अयुक्त) परामर्श दिया। येन—जिससे। रत्याः रभसेन रतिवेगेन यत् कान्तया करेण चिकुराकर्षणम् केशाकर्षणम् इति रतिरभसकान्ताकरचिकुरा-

कर्षणम्—रतिवेग से कान्ता से कर द्वारा केशों का खींचा जाना। मुषितम्—हृतम्, नष्टम्। नष्ट हो गया। (चिकुराकर्षरसमुषितः—ऐसा भी पाठ कहीं-कहीं मिलता है—चिकुराकर्षण जन्यरसः सः मुषितः यस्य—केशाकर्षण से उत्पन्न जिसका रस हर उठा। एतादृशः हरः जातः—ऐसे शंकर जी हो गये)।

सरलार्थ—साँप को, जटारूपवन में, यद्वा जटाओं की रक्षा के निमित्त, अथवा जटाओं द्वारा (भूषणरूप सर्प की) रक्षा के निमित्त, धारण करने की (अनुचित) सम्मति शिव को किसने प्रदान की, जिससे रतिवेग से कान्ता (पार्वती) से कर द्वारा केशो का खीचा जाना नष्ट हो गया (और तज्जन्य रस की अनुभूति से शिवजी वञ्चित रह गये) ॥ १६९ ॥

अनुभवशून्य नायक को सखी शिक्षा दे रही है—

करचरणकाञ्चिहारप्रहारमविचिन्त्य बलगृहीतकचः।
प्रणयी चुम्बति दयितावदनं स्फुरदधरमरुणाक्षम् ॥ १७० ॥

पदार्थ—प्रणयी—प्रीतिशाली नायकः। बलगृहीतकचः—बलेन गृहीताः कचाः येन सः—जिसने बलपूर्वक बालों को पकड़ा। करचरणकाञ्चिहारप्रहारम्—करः चरणः काञ्चिः रशना, हारः तेषां प्रहारम्—कर, चरण, रशना, हार आदि के प्रहार को। अविचिन्त्य—तिरस्कृत्य—तिरस्कृत कर। स्फुरदधरम्—स्फुरन् अधरः यस्य तत्—जिसका अधर थरथरा रहा है। अरुणाक्षम्—अरुणे रक्ते अक्षिणी यस्मिन् तत्—जिसमें आँखें लाल हो उठी है। दयितावदनम्—दयितायाः प्रियायाः वदनम्—प्रिया के मुख को। चुम्बति—चूमता है।

सरलार्थ—(तुम्हें निर्भय स्वेच्छाचार करना चाहिए क्योंकि) प्रीतिशाली नायक, बलपूर्वक केशो को पकड़ कर, कर-चरण-काञ्ची-हार के प्रहार की चिन्ता न कर, (निष्ठुर वचन कहने के लिए) थरथराते अधरवाले तथा (कोप के कारण) लाल नेत्रोंवाले प्रिया-मुख को चूमता है ॥ १७० ॥

नायक के पराङ्गनासंभोग से दुःखित नायिका को सखी समझा रही है—

कुरुतां चापलमधुना कलयतु सुरसासि यादृशी तदपि।
सुन्दरि ! हरीतकीमनु परिपीता वारिधारेव ॥ १७१ ॥

पदार्थ—हे सुन्दरि ! अधुना—इस समय। चापलम् कुरुताम्—चपलता करे। यादृशी—जैसी। सुरसा—शोभनः रसः यस्यां सा—जिसमें मधुर रस है—रससंभृत। असि—तू है। तदपि—वह भी। हरीतकीमनु—हरीतकी (हर्रा) के बाद। परिपीता—पी गयी। वारिधारा इव—जलधारा इव—जलधारा के समान। कलयतु—जानातु—जाने।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! नायक चपलता करता है, करे, (उसे मना मत करो)। हरीतकी खाने के बाद पी गयी जलधारा के समान (जैसे तिक्तकटुरस-शाली हरीतकी का स्वाद लेने के बाद जलधारा सबसे मीठी लगती है उसी प्रकार अन्यगुणहीन नायिकाओं का रसास्वादन करने के पश्चात्) तू जैसी रससंभृत आनन्दप्रदायिनी है—उसे भी (वह नायक) जान ले ॥ १७१ ॥

सामान्य वनिता से सखी कह रही है—

कज्जलतिलककलङ्कितमुखचन्द्रे गलितसलिलकणकेशि ।
नवविरहदहनतूलो जीवयितव्यस्त्वया कतमः ॥ १७२ ॥

पदार्थ—कज्जलतिलककलङ्कितमुखचन्द्रे—कज्जलतिलकेन कलङ्कितः मुखचन्द्रः यस्याः तत्संबुद्धिः—हे कज्जलतिलक से कलङ्कित मुखचन्द्र वाली ! गलितसलिल-कणकेशि—गलिताः सलिलकणाः येभ्य एतादृशाः केशाः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—जिसके केशों से जल-बिन्दु गिर चुके हैं। नवविरहदहनतूलः—नवः नूतनः यः विरहदहनः विरहाग्निः तस्य तूलः तूलरूपः—नूतन विरहाग्नि का तूलरूप (रूई)। त्वया—तू। कतमः जीवयितव्यः—किसे जीवन प्रदान करेगी।

सरलार्थ—(दृष्टि-दोष के निवारण के लिए लगाये गये) काजल के तिलक से कलङ्कयुक्त मुखचन्द्र वाली ! सलिलकण गिरा चुके केशों वाली ! (तुम्हारे इस रूप के दर्शन से तत्कालजन्य) नूतन विरहाग्नि से तूल के समान दह्यमान पुरुषों में किसे (आज) तू जीवन प्रदान करेगी, कौन अनुग्राह्य होगा ॥१७२॥

दारिद्र्यदशा में भी महान् पुरुष दान-वृत्ति नहीं छोड़ते – ऐसा कोई कह रहा है –

कृच्छ्रानुवृत्तयोऽपि हि परोपकारं त्यजन्ति न महान्तः ।
तृणमात्रजीवना अपि करिणो दानद्रवार्द्रकराः ॥ १७३ ॥

पदार्थ—कृच्छ्रानुवृत्तयः—कष्टजीवनाः—कष्टमय जीवनवाले। अपि—भी। महान्तः—महान् पुरुष। परोपकारम्—(दानरूप) परोपकार को। न त्यजन्ति—नहीं छोड़ते हैं। तृणमात्रजीवनाः अपि—तृणमात्रेण जीवनं येषां ते—तृणमात्र से जिनका जीवन है। करिणः—गजाः—गज। दानद्रवार्द्रकराः—दानं मदः तस्य द्रवः दानोदकं तेन आर्द्रः करः शुण्डादण्डः येषां ते—मदजल से आर्द्र है कर (शुण्डादण्ड) जिनका।

सरलार्थ—कष्टमय जीवन में भी महान् पुरुष दानरूप परोपकार-वृत्ति को नहीं छोड़ते। हाथी, जो तृणमात्र से जीवन व्यतीत करते हैं उनका कर (शुण्डा-दण्ड) दानजल (मद) से आर्द्र रहता है ॥ १७३ ॥

किसी गोपी का आलिङ्गन कर स्थित कृष्ण को देख, विस्मय से आये बालकों से गोपी की सखी कह रही है—

किं हसथ किं प्रधावथ किं जनमाह्वयथ बालका विफलम्।
तदयं दर्शयति यथाऽरिष्टः कण्ठेऽमुना जगृहे॥ १७४॥

पदार्थ—बालकाः—अरे बालको! किं हसथ—क्यों हँसते हो? किं प्रधावथ—क्यों दौड़ रहे हो? जनम्—लोगों को। किम् आह्वयथ—क्यों बुलाते हो? अमुना—इसके द्वारा। अरिष्टः यथा कण्ठे जगृहे—अरिष्ट का गला जिस ढंग से पकड़ा गया था। तत् अयं दर्शयति—वही यह दिखा रहे हैं।

सरलार्थ—अरे बालको! क्यों हँसते हो? क्यों दौड़ रहे हो? लोगों को क्यों बुला रहे हो? (यहाँ केवल बीती घटना का अभिनय हो रहा है और कोई बात नहीं है) श्रीकृष्ण ने अरिष्टासुर का गला कैसे दबाया था, वही दिखा रहे हैं॥ १७४॥

रतिसंलग्न नायिका का वर्णन कोई स्त्री किसी से कर रही है—

कातरताकेकरितस्मरलज्जारोषमसृणमधुराक्षी।
मोक्तुं न मोक्तुमथवा चलतेऽसावर्धलब्धरतिः॥ १७५॥

पदार्थ—कातरताकेकरितस्मरलज्जारोषमसृणमधुराक्षी—कातरता भीतिः तया केकरिते वक्रीकृते, स्मरलज्जारोषैः मसृणमधुरे स्निग्धसुन्दरे अक्षिणी यस्याः सा। अर्धलब्धरतिः—अर्धं लब्धा रतिः यया सा—जिसने आधी ही रति प्राप्त की है। मोक्तुं अथवा न मोक्तुम्—(नायक को) छोड़ने या न छोड़ने को। चलते—उद्यत होती है।

सरलार्थ—कातरता (भय) से टेढ़ी, काम, लज्जा, रोष से स्निग्ध और मधुर नेत्रवाली, आधी ही रति प्राप्त कर, (भय, लज्जा, रोष के कारण) नायक को छोड़ने तथा (कामावेश से) न छोड़ने को उद्यत होती है॥ १७५॥

दूर से आये हुए व्यक्तियों को कुछ फल न मिलने पर अन्योक्ति द्वारा कोई कह रहा है—

केतकगर्भे गन्धादरेण दूरादमी द्रुतमुपेताः।
मदनस्यन्दनवाजिन इव मधुपा धूलिमाददते॥ १७६॥

पदार्थ—केतकगर्भे—केतकपुष्पस्य मध्ये—केतक पुष्प के बीच। गन्धादरेण—(१) गन्धस्य आदरेण लोभेन—गन्ध के लोभ से। द्रुतं—वेग से। दूरात् उपेताः—आगताः—दूर से आये, (२) गन्धादरेण—गन्धस्य आदरः यस्य तेन (वायुना)—जिसे गन्ध का आदर है। द्रुतं दूरात् उपेताः। मदनस्यन्दनवाजिनः

इव—मदनस्य स्यन्दनस्य वाजिनः इव—मदनरथ के घोड़ों के समान। मधुपाः—भौंरे। धूलिम् आददते—(१) पुष्परज, (२) धूलि (गर्द) प्राप्त करते हैं।

सरलार्थ—केतकपुष्प के बीच सुगन्ध के लोभ से, वेग से दूर से आये भौंरे; वायु द्वारा दूर से वेग से आये कामदेव के रथ के घोड़ों के समान धूलि (१—पुष्परज, २—गर्द) प्राप्त करते है ॥ १७६ ॥

मूर्ख में आसक्त कामिनी के चातुर्यादिगुण व्यर्थ हैं—ऐसा कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

को वक्रिमा गुणाः के का कान्तिः शिशिरकिरणलेखानाम्।
अन्तः प्रविश्य यासामाक्रान्तं पशुविशेषेण ॥ १७७ ॥

पदार्थ—शिशिरकिरणलेखानाम्—शिशिराः किरणाः यस्य सः चन्द्रः तस्य लेखानाम्—चन्द्ररेखाओं की। कः वक्रिमा—वक्रता क्या? गुणाः के—गुण क्या। का कान्तिः—शोभा क्या? यासाम् अन्तः प्रविश्य—जिनके भीतर प्रवेश कर। पशुविशेषेण—(अतिजडेन) मृगेण, आक्रान्तम्—अत्यन्त जड मृग ने व्याप्त कर लिया।

सरलार्थ—चन्द्ररेखाओं की वक्रता, गुण, कान्ति सब व्यर्थ है जिनके भीतर प्रविष्ट अत्यन्त जड मृग ने अन्तःप्रदेश को व्याप्त कर लिया ॥ १७७ ॥

मैं बलपूर्वक इस कन्या का विवाह करूँगा—ऐसा कहते हुए व्यक्ति से कोई दृष्टान्त दे कर मना कर रहा है—

कृतविविधमथनयत्नः पराभवाय प्रभुः सुरासुरयोः।
इच्छति सौभाग्यमदात्स्वयंवरेण श्रियं विष्णुः ॥ १७८ ॥

पदार्थ—कृतविविधमथनयत्नः—कृतः विविधः मथने यत्नः येन सः—(समुद्र के) मथने में जिन्होने विविध यत्न किया। सुरासुरयोः—सुरस्य असुरस्य च—देवदानवयोः—देव और दानव दोनों का। पराभवाय—पराजय के लिए। प्रभुः—समर्थः। विष्णुः। सौभाग्यमदात्—सौभाग्यस्य अभिमानात्—सौभाग्य के अभिमान से। स्वयंवरेण—स्वयंवर द्वारा। श्रियम्—लक्ष्मीम्—लक्ष्मी को। इच्छति—(प्राप्त करना) चाहा।

सरलार्थ—जिन्होंने समुद्र-मथन में विविध यत्न किया (अतः तज्जन्यफलरूप लक्ष्मी के पाने के अधिकारी न्यायतः भी थे) देव-दानव दोनों को पराजित करने में समर्थ (शक्तिबल से भी प्राप्त कर सकते थे) उन विष्णु ने सौभाग्य मद से स्वयंवर द्वारा प्राप्त करना चाहा (अतः तुम्हें भी शारीरिक-बौद्धिक बल होते हुए भी उसी रीति का अवलम्बन करना चाहिये, यदि तुम सौभाग्यशाली हो तो तुम्हारा वरण वह अवश्य करेगी) ॥ १७८ ॥

वैदेशिकों में प्रीति रखने वाली किसी कामिनी से कोई स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

किं पुत्रि ! गण्डशैलभ्रमेण नवनीरदेषु निद्रासि ।
अनुभव चपलाविलसितगर्जितदेशान्तरभ्रान्तीः ॥ १७९ ॥

पदार्थ—हे पुत्रि ! गण्डशैलानां भ्रमेण—गण्डशैलो के भ्रम से, पर्वत से टूट कर गिरे बड़े-बड़े खण्डों को गण्डशैल कहते हैं। 'गण्डशैलास्तु च्युताः स्थूलोपला गिरेः' इत्यमरः। नवनीरदेषु—नूतनमेघेषु—नूतन मेघों पर। किं निद्रासि—कि विश्वासं करोषि इत्यर्थः—क्यो विश्वास करती हो। चपलाविलसितगर्जितदेशान्तरभ्रान्तीः—चपलायाः तडितः विलसितानि, गर्जितानि च, देशान्तरभ्रान्तीः—देशान्तरभ्रमणानि च। अनुभव—चपला की चमक (प्रेमोद्योतक हाव-भाव) गर्जन, दिगन्त-भ्रमण आदि का दुःख अनुभव करोगी।

सरलार्थ—हे पुत्रि ! गण्डशैलो के भ्रम से नूतन मेघों पर अत्यन्त विश्वास क्यों करती हो ? (इनकी सङ्गति करने से) चपलारूप सपत्नी का वैभव, तर्जन, दिगन्त गमनादि का दुःख अवश्य अनुभव करोगी ॥ १८० ॥

नायिका की सखी नायक की सखी से कह रही है—

कान्तः पदेन हत इति सरलामपराध्य किं प्रसादयथ ।
सोऽप्येवमेव सुलभः पदप्रहारः प्रसादः किम् ॥ १८० ॥

पदार्थ—कान्तः प्रियः चरणेन हतः—(इसने) प्रिय को चरण से प्रताडित किया। इति—इस प्रकार। सरलाम्—इस सरल, सीधी, नायिका को। अपराध्य—सापराध बना कर। किं प्रसादयथ—क्यो प्रसन्न करने की चेष्टा करती हो। सोऽपि पादप्रहारः प्रसादः—वह भी पादप्रहाररूप प्रसाद। एवमेव किं सुलभः—ऐसे ही क्या मिल जाता है ?

सरलार्थ—इसने प्रिय को चरण से प्रताडित किया—इस प्रकार (कहकर) उस सरल को तुमने अपराधी घोषित किया तो उसे अब क्यो मनाने की चेष्टा करती हो ? अथवा इस प्रकार कह कर और अपराध लगा कर क्या तुम उसे मना रही हो ? (परन्तु यह नही सोचती हो) क्या पाद-प्रहाररूप प्रसाद ऐसे ही मिल जाता है ? (नायिका का पादप्रहार भी इस नायक को अत्यन्त दुर्लभ है, इसके अपराध के हिसाब से तो पादप्रहार द्वारा नायिका का चरण-स्पर्श भी इसे नहीं मिलना चाहिए) ॥ १८० ॥

नायक को क्यों नहीं लाती हो—नायिका के इस प्रकार दूती से कहने पर सखी नायिका से कह रही है—

कर्णगतेयममोघा दृष्टिस्तव शक्तिरिन्द्रदत्ता च ।
सा नासादितविजया क्वचिदपि नापार्थपतितेयम् ॥ १८१ ॥

पदार्थ—कर्णगता—(१) कर्णपर्यन्तविशाला, (२) कर्णहस्तगता च—(१) कर्णपर्यन्त विस्तृत, (२) कर्ण के हाथ मे प्राप्त । अमोघा—(१) सफला, (२) अमोघानाम्नी । इन्द्रदत्ता—(१) इन्द्रेण परमेश्वरेण, (२) पुरंदरेण दत्ता—(१) परमेश्वर से, (२) पुरन्दर से दी गयी । इयं तव दृष्टिः शक्तिश्च—यह तुम्हारी दृष्टि और शक्ति । इयम् तव दृष्टिः—यह तुम्हारी दृष्टि, क्वचिदपि न अपार्थपतिता—अपगतः अर्थः यस्य तस्मिन् अपार्थे पण्ढे न पतिता—कभी किसी पुरुषत्वहीन पर नही पड़ी अतः आसादितविजया—आसादितः विशिष्टानां जयः यया सा—जिसने बड़ो पर जय पा लिया । सा शक्तिः—वह शक्ति, अपार्थपतिता—अपार्थे अर्जुनभिन्ने घटोत्कचे पतिता अर्जुनभिन्न घटोत्कच पर गिर कर, क्वचिदपि—कहीं भी कभी भी । न आसादितविजया—न आसादितः विजयः अर्जुनः यया सा । जिसे अर्जुन नही मिला—अतः जिसे विजय नहीं मिली ।

सरलार्थ—तुम्हारी कर्णपर्यन्त विस्तृत दृष्टि जिसे परमेश्वर ने दिया है, और कर्ण के हाथ मे प्राप्त अमोघनाम्नी शक्ति जिसे इन्द्र ने दिया था; इन दोनो मे तुम्हारी दृष्टि सफल है, वह शक्ति तो नाम ही से केवल अमोघ कहलाती थी । तुम्हारी दृष्टि कहीं भी अपार्थ (पुरुषत्वहीन) पर नहीं पड़ी और विजय प्राप्त कर सकी एवं उससे विजय कोई नहीं प्राप्त कर सका । वह शक्ति नासादित-विजया – अर्जुन को न प्राप्त कर अपार्थ (पार्थभिन्न घटोत्कच) पर पड़ी जिससे विजय नहीं प्राप्त कर सकी अतः इन दोनो में तुम्हारी दृष्टि ही प्रशस्यतर है (इस प्रकार जो तुम्हारे कटाक्षमात्र से वश्य नहीं हुआ वह पुरुष नहीं षण्ढ है) ॥ १८१ ॥

पुरुषत्वहीन पर कटाक्ष का प्रभाव नहीं पड़ता तो फिर दूतियाँ क्या करेगी—ऐसा सखी नायिका से कह रही है—

क्लेशयसि किमिति दूतीर्यदशक्यं सुमुखि ! तव कटाक्षेण ।
कामोऽपि तत्र सायकमकीर्तिशङ्की न संधत्ते ॥ १८२ ॥

पदार्थ—हे सुमुखि ! तव कटाक्षेण—तुम्हारे कटाक्ष से । यद् अशक्यम्—जो नहीं हो सका । दूतीः—दूतियो को । किमिति क्लेशयसि—क्यो क्लेश देती है ।

काम अपि—काम भी। अकीर्तिशङ्की—अकीर्तिशङ्का वाला। तत्र—पुरुषत्वहीन। पर। सायकं न संधत्ते—सायक-सन्धान नहीं करता।

सरलार्थ—हे सुमुखि-तुम्हारे कटाक्ष से जो नहीं कुछ हुआ (तो उसे पुरुष न समझो) दूतियो को क्लेश क्यो देती हो ? ऐसे षण्ढ पर (पुरुषत्व-हीन पर) अपनी असफलतारूप अपकीर्ति के भय से कामदेव भी शर-सन्धान नहीं करता ॥ १८२ ॥

कोई अधर की प्रशंसा करता है—

को वेद मूल्यमक्षद्यूते प्रभुणा पणीकृतस्य विधोः ।
प्रतिविजये यत्प्रतिपणमधरं धरनन्दिनी विदधे ॥ १८३ ॥

पदार्थ—प्रभुणा—ईश्वरेण, शिव द्वारा। अक्षद्यूते—जुये के खेल में। पणीकृतस्य—दॉव पर लगाये गये द्रव्यरूप। विधोः—चन्द्रमा का। मूल्यं को वेद—मूल्य कौन जानता है। यत्—जो। धरनन्दिनी—धरति महीम् इति धरः, 'धरपर्वताः' इत्यमरः, तस्य नन्दिनी—पार्वती। प्रतिविजये—मुकाबिले मे। प्रतिपणम्—विपरीत पक्ष से दॉव पर लगाया गया द्रव्य। अधरं विदधे—अधर को बनाया।

सरलार्थ—(द्यूत-क्रीडा मे) शङ्करजी ने (बहुमूल्य समझ कर) चन्द्रमा को दॉव पर लगाया। ऐसे चन्द्रमा का मूल्य कौन जानता है ? (चन्द्रमा की गणना कोई नही करता)। क्योकि पार्वती ने शिवजी के मुकाबिले में विपरीत पक्ष से (चन्द्रमा से अधिक मूल्यवान्) अपने अधर को प्रतिपण बनाया (दॉव पर रख दिया) ॥ १८३ ॥

कुपित नायिका से नायक कह रहा है—

कुपितां चरणप्रहरणभयेन मुञ्चामि न खलु चण्डि ! त्वाम् ।
अलिरनिलचपलकिसलयताडनसहनो लतां भजते ॥१८४॥

पदार्थ—चण्डि—(मिथ्या) कोपने—हे मिथ्या कोप करने वाली ! चरण-प्रहरणभयेन—चरणप्रहार के भय से। कुपितां त्वाम्—कुपित तुझको। खलु—निश्चय। न मुञ्चामि—नही छोड़ूँगा। अनिलचपलकिसलय-ताडनसहनः—अनिलेन वायुना चपलः यः किसलयः तस्य यत् ताडनं तस्य सहनः—वायु द्वारा चपल किसलय का ताडन सहने वाला। अलिः—भृङ्गः। लता भजते—लता के रस का आस्वादन करता है।

सरलार्थ—हे मिथ्या कोपने ! तुम्हारे चरणप्रहार के भय से मै, कुपित तुझे छोड़ने को नही। क्योकि भौरा, वायु द्वारा चञ्चल किसलय का ताडन सह कर ही लता का रसास्वादन करता है ॥ १८४ ॥

विलम्ब से आये नायक पर कुपित नायिका के चरणो पर नायक द्वारा प्रणिपात किये जाने पर भी माननिरसन न होते देख सखी नायिका से कहती है–

कोपाकृष्टभ्रूस्मरशरासने संवृणु प्रिये ! पततः ।
छिन्नज्यामधुपानिव कज्जलमलिनाश्रुजलविन्दून् ॥ १८५ ॥

पदार्थ—कोपाकृष्टभ्रूस्मरशरासने—कोपेन आकृष्टं भ्रूरूपं स्मरशरासनं यया तत्सम्बुद्धिः–कोप से भ्रूरूप कामधनुष खींचने वाली ! छिन्नज्यामधुपान् इव—छिन्ना या ज्या तन्मधुपान् इव––छिन्न ज्यारूप मधुपो से । कामदेव का धनुष भ्रमररूप ज्या (प्रत्यञ्चा) रखता है—ऐसा प्रसिद्ध है । प्रिये–प्रिय पर । पततः—गिरते । कज्जलमलिनाश्रुजलविन्दून्––कज्जलेन मलिनाः श्यामाः अश्रुजलविन्दवः, कज्जल से श्याम अश्रुजल-विन्दुओं को । संवृणु—रोको, बन्द करो ।

सरलार्थ—हे कोप से भ्रूरूप काम-धनुष को खीचने वाली ! (कोप से खींचने से) टूटे ज्यारूप मधुपों के सदृश, (चरणों में गिरे) प्रिय पर पड़ने वाले, कज्जल से मलिन अश्रुजलविन्दुओं को बन्द करो । (नायक की प्रणति के पश्चात् कोप करना अनुचित है, अथवा डोरी टूट गई है, यदि अब भी कोप करती हो तो रुष्ट नायक को किसी भी प्रकार मनाना असंभव हो जायगा) ॥ १८५ ॥

बाल-वनिता का चित्त स्वाधीन करने में असफल-प्रयत्न होकर कोई तर्क कर रहा है—

कामेनापि न भेत्तुं किमु हृदयमपारि बालवनितानाम् ।
मूढविशिखप्रहारोच्छूनमिवाभाति यद्वक्षः ॥ १८६ ॥

पदार्थ—बालवनितानां—बालवनिताओं के । हृदयम्—हृदय को । कामेन अपि—कामदेव भी । भेत्तुम्—भेदन करने में । किमु—वितर्के । न अपारि—समर्थ नहीं हुआ । यत्—जो । वक्षः—वक्षःस्थल । अथवा यासां वक्षः—यद्वक्षः—जिनका वक्षःस्थल । मूढस्य विशिखस्य प्रहारेण उच्छूनम् इव—मुढे बाण के प्रहार से सूजा हुआ सा । आभाति—ज्ञात होता है ।

सरलार्थ—(मैं समझता हूँ) बाल-वनिताओं के हृदय का कामदेव भी भेदन नहीं कर सका : तभी तो उनका वक्षःस्थल मुढे बाण के प्रहार से (भिन्न न होकर, केवल थोडी-सी चोट खाकर) उभरा हुआ, ऊँचा उठा हुआ, सूजा हुआ-सा दिखायी देता है ॥ १८६ ॥

सँपेरा साँपो का खेल दिखा रहा है । दर्शको में नायिका भी है, लोग उसी

का मुख देख रहे हैं, साँपों के खेल की ओर किसी का ध्यान नहीं है—ऐसा देख कर सखी कह रही है—

किं परजीवैर्दीव्यसि विस्मयमधुराक्षि ! गच्छ सखि ! दूरम् ।
अहिमधिचत्वरमुरगग्राही खेलयतु निर्विघ्नः ॥ १८७ ॥

पदार्थ—हे सखि ! विस्मयमधुराक्षि—विस्मयेन मधुरे सुन्दरे अक्षिणी यस्याः तत्सम्बुद्धिः—हे विस्मय से सुन्दर नेत्रवाली ! परजीवैः—परस्य अन्यस्य जीवैः प्राणैः—दूसरे (सँपेरा) के प्राणो से, अथवा निजसंकेतित नायक के प्राणो से, अथवा परेषामिति-अन्येषाम्—दूसरो, अन्य नायिकाओ के संकेतित नायको के प्राणो से । किं दीव्यसि—क्यो खेलती है—प्राण क्यो लेती है । दूरं गच्छ—दूर हटो । चत्वरमधिकृत्य—चौराहे पर । उरगग्राही—उरगाणाम् ग्रहीतुं शीलमस्य इति उरगग्राही—सँपेरा । निर्विघ्नः—विघ्नरहित । अहिं खेलयतु—सर्प को खेलाए ।

सरलार्थ—हे सखि ! विस्मय से मधुर नेत्रवाली ! (तुम्हारे वदनविलोकन में आसक्त जनो में सँपेरा का खेल व्यर्थ हो जायगा और वह लोगो से कुछ धन न पा सकेगा—इस प्रकार उसकी जीविका मे बाधा डाल कर) दूसरे के प्राणो से क्यो खेलती हो ? चौराहे पर सँपेरा निर्विघ्न साँप का खेल करे : तुम दूर हटो । अथवा सँपेरा देर तक साँपो का खेल करे (और दुष्ट जन इसी में आसक्त रहें, तुम संकेतित नायक के पास जाओ) उसके प्राणो से क्यो खेलती हो ? (विलम्ब करने पर कामानल के सन्ताप से उसके प्राण ही चले जायेगे) अथवा (अन्य नायिकाओं के संकेतित नायक यहाँ तुम्हारा मुख देखने में आसक्त हैं, उनके न पहुँचने पर उनकी नायिकाओ के प्राण तथा तत्परिणामस्वरूप उनके नायको के प्राण चले जायेंगे, इस प्रकार) दूसरो के प्राण क्यों लेती हो ? ॥ १८७ ॥

कुपित नायिका के प्रहार से खिन्न नायक को नायिका की सखी समझा रही है—

करचरणेन प्रहरति यथा यथाङ्गेषु कोपतरलाक्षी ।
रोपयति परुषवचनैस्तथा तथा प्रेयसीं रसिकः ॥ १८८ ॥

पदार्थ—कोपतरलाक्षी—कोपेन तरले चञ्चले अक्षिणी यस्याः सा—जिसके नेत्र कोप से चञ्चल हैं । करचरणेन—करौ च चरणौ च इति करचरणम् (समाहार द्वन्द्व) तेन—करो और चरणो से । अंगेषु—अंगो पर । यथा यथा प्रहरति—ज्यो ज्यो प्रहार करती है । तथा तथा—त्यो त्यो । परुषवचनैः—क्रोधजनक वाक्यो से । प्रेयसीम्—प्रिया को । रोपयति—कोपयति—कुपित करता है । (सः एव) रसिकः—(वही) रसिक है ।

सरलार्थ—कोप से चञ्चल नेत्रवाली (अपने) करों और चरणों से (प्रिय के) अंगों पर ज्यों ज्यो प्रहार करती है : त्यो त्यों क्रोधजनक वाक्यो से प्रिया को (जो और) कुपित करता है (वही) रसिक है (यदि तुम रसिक हो तो कर-चरण-प्रहार से तुम्हें खिन्न नहीं होना चाहिये) ॥ १८८ ॥

तुम नायिका की निन्दा करते हो—ऐसा कहने वाली नायिका की सखी से नायक कह रहा है—

कस्तां निन्दति लुम्पति कः स्मरफलकस्य वर्णकं मुग्धः ।
को भवति रत्नकण्टकममृते कस्यारुचिरुदेति ॥ १८९ ॥

पदार्थ—तां कः निन्दति—उसकी कौन निन्दा करता है । स्मरफलकस्य—मदनपट का । वर्णकम्—चित्रम्—चित्र । कः मूढः लुम्पति—कौन मूर्ख मिटाता है । रत्नकण्टकम्—रत्नस्य कण्टकम् निन्दकः—रत्न का निन्दक । कः भवति—कौन होता है । अमृते—सुधा में । कस्य अरुचिः उदेति—अरुचि किसे होती है !

सरलार्थ—उसकी कौन निन्दा करता है ? मदन-पट के चित्र को कौन मूर्ख मिटाता है ? रत्न का निन्दक कौन होता है ? सुधा में अरुचि किसे होती है ? (ऐसी सुन्दरी की मैं निन्दा कैसे कर सकता हूँ ?) ॥ १८९ ॥

संकेत-स्थल पर जा नायिका को न पाकर, वहाँ मैं गया था—यह सूचित करने के लिए आम्रपल्लव लेकर नायिका के सामने आये नायक से नायिका की सखी कह रही है—

कोपवति पाणिलीलाचञ्चलचूताङ्कुरे त्वयि भ्रमति ।
करकम्पितकरवाले स्मर इव सा मूर्च्छिता सुतनुः ॥१९०॥

पदार्थ—कोपवति—कोपयुक्त । पाणिलीलाचञ्चलचूताङ्कुरे—पाणौ लीलया विलासेन चञ्चलः चूताङ्कुरः आम्रपल्लवः यस्य तस्मिन्—जिसके हाथ मे विलास से चञ्चल आम्रपल्लव है । करकम्पितकरवाले—करे कम्पितः करवालः येन तस्मिन्—जिसने हाथ मे खड्ग लपलपाया । स्मरे इव—कामदेव के समान । त्वयि भ्रमति सति—तुम्हारे घूमते रहने पर । सा सुतनुः—वह सुन्दरी । मूर्च्छिता—मूर्च्छित हो गई ।

सरलार्थ—(संकेत स्थल पर न आने के कारण) क्रोधयुक्त, हाथ मे लीला से चञ्चल आम्रपल्लव लिये (मारने के लिये) हाथ में खड्ग लपलपाते कामदेव के समान (नायिका को विदित करने के लिए) जब तुम घूम रहे थे ; वह सुन्दरी (संकेतस्थल पर न पहुँच पाने के दुःख से) मूर्च्छित हो गई ॥१९०॥

सुरत के समय उस कुलवती का नाम तुम्हारे द्वारा लिया जाना उचित नहीं है—ऐसा कहती सखी से नायक कह रहा है--

कौलीन्यादलमेनां भजामि न कुलं स्मरः प्रमाणयति ।
तद्भावनेन भजतो मम गोत्रस्खलनमनिवार्यम् ॥ १९१ ॥

पदार्थ—अलम्--अत्यन्त । कौलीन्यात्--कुलीनता के भाव से । एनां भजामि—इसका संभोग करता हूँ । स्मरः—कामदेव । कुलं न प्रमाणयति—कुल को (ऊँचा अथवा नीचा) नहीं मानता । तद्भावनेन—तस्याः भावनेन—उस कुलवती की भावना से । भजतः मम—संभोग करते मेरा । गोत्रस्खलनम्—भूल से उसी का नाम लेना । अनिवार्यम्--निवारण नहीं किया जा सकता ।

सरलार्थ—मैं इसका संभोग उस कुलवती की कुलीनता (उच्चकुलोत्पत्ति) के भाव से करता हूँ क्योकि कामदेव कुल को (ऊँचा अथवा नीचा) नहीं मानता । मै उसी कुलवती की भावना से इसका संभोग करता हूँ, अतः मेरा गोत्रस्खलन अनिवार्य है—भूल से उसी कुलवती का नाम लिया जाना रोका नही जा सकता ॥ १९१ ॥

किसी नायिका के पति को देख कर डरे नायक से दूती कह रही है--

कुत इह कुरङ्गशावक ! केदारे कलममञ्जरीं त्यजसि ।
तृणबाणस्तृणधन्वा तृणघटितः कपटपुरुषोऽयम् ॥१९२॥

पदार्थ—हे कुरङ्गशावक !—मृगशावक (अज्ञ) । इह केदारे--सस्यपूर्ण—क्षेत्रे—सस्यपूर्ण खेत में । कलममञ्जरीम्—शालिमञ्जरी को । कुतः त्यजसि—क्यो छोड़ता है ? तृणबाणः--तृणरूपो बाणः यस्य सः--तृणरूप बाण है जिसका । तृणधन्वा—तृणरूपं धनुः यस्य सः—तृणरूप धनुष है जिसका । तृणघटितः—तृणैः घटितः निर्मितः— तृणो से बनाया गया । अयं कपटपुरुषः—मिथ्यापुरुष । (खेत में पुरुषाकार तृणो का पुतला खड़ा किया जाता है, उसके हाथ मे तृण का धनुषबाण भी रहता है, जिससे रात में उसे रक्षकपुरुष समझ कर, मृग आदि जानवर फसल को हानि न पहुँचा सके) ।

सरलार्थ--हे मृगशावक (अज्ञ और भयभीत) इस खेत में शालिमञ्जरी को क्यो छोड़ता है--क्यो नही चरने आता । (जिसे तू रक्षापुरुष समझ रहा है) यह तृणो से बनाया गया मिथ्यापुरुष है, इसके हाथ में तृण का धनुषबाण है (इस प्रकार तुम निर्भय यहाँ आओ)॥ १९२ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता ककारव्रज्या ।

खकारव्रज्या

कोई सज्जनो की मित्रता की प्रशंसा कर रहा है—

खलसख्यं प्राङ्मधुरं वयोऽन्तराले निदाघदिनमन्ते ।
एकादिमध्यपरिणतिरमणीया साधुजनमैत्री ॥ १९३ ॥

पदार्थ—खलसख्यम्—सख्युर्भावः सख्यम्, खलानां सख्यम् इति खलसख्यम्—दुष्टो की मैत्री। प्राक्—प्रथमतः—पहले। मधुरम्। अन्तराले—मध्ये—मध्य में। वयः—तारुण्यम्—युवावस्था की भाँति मादक। अन्ते—अन्त में। निदाघदिनम्—ग्रीष्मदिनम्—ग्रीष्म दिवस की भाँति सन्तापकारी। एका साधुजनमैत्री—अनुपम साधुजन की मैत्री। आदिमध्यपरिणतिरमणीया—आदौ—प्रथमे, मध्ये, परिणतौ अन्ते च रमणीया मनोहारिणी।

सरलार्थ—दुष्टो की मित्रता आरम्भ मे मधुर, मध्य में युवावस्था की भाँति मादक तथा अन्त मे परिणाम में ग्रीष्मकालीन दिवस की भाँति सन्तापकारक होती है। सज्जनो की मित्रता आरम्भ में, मध्य में तथा अन्त मे परिणाम मे सदा सर्वथा मनोहारिणी होती है॥ १९३ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता खकारव्रज्या।

गकारव्रज्या

किसी गुणवान् दरिद्र नायक से मिलाने के लिये सखी अथवा दूती नायिका से कह रही है—

गुणमधिगतमपि धनवान्न चिरान्नाशयति रक्षति दरिद्रः ।
मज्जयति रज्जुमम्भसि पूर्णः कुम्भः सखि! न तुच्छः॥१९४॥

पदार्थ—धनवान्—पूर्णः। अधिगतमपि—प्राप्तमपि। गुणम्—(१) सौन्दर्यादि, (२) रज्जु। न चिरात्—शीघ्र। नाशयति—नष्ट कर देता है। दरिद्रः—अपूर्णः। रक्षति—रक्षा करता है। पूर्णः कुम्भः रज्जुम्—पूर्णकुम्भ रज्जु (गुण) को। अम्भसि मज्जयति—पानी में डुबो देता है (नष्ट कर देता है)। तुच्छः अपूर्णः न।

सरलार्थ—हे सखि! धनी नायक प्राप्त गुण (सौन्दर्य आदि) को नष्ट कर देता है और दरिद्र उसकी रक्षा करता है। पूर्णकुम्भ रस्सी (गुण) को जल में डुबोता है (व्यर्थ नष्ट करता है) और अपूर्ण कुम्भ नही (डुबोता)। (अतः दरिद्र होने पर भी उस गुणवान् की संगति उचित है)॥ १९४ ॥

बड़ो के द्वारा बड़ो के पास जाना चाहिए, अन्यथा न जाये—ऐसा कोई किसी को उपदेश दे रहा है—

गुरुरपि लघूपनीतो न निमज्जति नियतमाशये महतः ।
वानकरोपनीतः शैलो मकरालयस्येव ॥ १९५ ॥

पदार्थ—लघूपनीतः—लघुना उपनीतः—लघु द्वारा समीप ले जाया गया। गुरुः—(१) श्रेष्ठ, महान्, (२) भारी। महतः—महान्, भारी। आशये—(१) हृदये, (२) मध्ये—(१) हृदय में, (२) मध्य में। न निमज्जति—न प्रविशति—(१) स्थान नहीं पाता, (२) नहीं डूबता। वानरकरोपनीतः—वानराणां करैः उपनीतः—वानर के हाथ से पहुँचाया गया। शैलः—पर्वत। मकरालयस्य इव—मकराणाम् आलयः तस्य इव समुद्रस्य इव—समुद्र के हृदय में यथा।

सरलार्थ—(महान् व्यक्ति द्वारा महान् के पास पहुँचने पर उसके हृदय मे स्थान पाया जा सकता है) लघु व्यक्ति के द्वारा महान् व्यक्ति भी यदि महान् के पास पहुँचता है तो निश्चय ही वह उसके हृदय में प्रवेश नहीं पाता-आदर का पात्र नहीं होता। जैसे वानर (लघु) द्वारा ले जाया गया पर्वत (महान् भी) समुद्र (महान्) के मध्य (हृदथ) में डूब नहीं सका (अपनाया) नही जा सका ॥ (रामचन्द्रजी के लंका प्रस्थान के समय वानरों द्वारा लाये पर्वत समुद्र में डूबे नहीं और तभी सेतु बाँधा गया था) ॥ १९५ ॥

किसी के प्रति कभी दुर्वचन नही कहना चाहिए—ऐसा कोई किसी को उपदेश दे रहा है—

गौरीपतेर्गरीयो गरलं गत्वा गले जीर्णम् ।
जीर्यति कर्णे महतां दुर्वादो नाल्पमपि विशति ॥ १९६ ॥

पदार्थ—गरीयः—महत्तरं, गरलं। गौरीपतेः—शिवस्य। गले—कण्ठे—कण्ठ में। गत्वा—जा कर। जीर्णम्—पच गया अर्थात् नष्ट हो गया। दुर्वादः—दुर्वचन, निन्दा। महतां कर्णे—महान् लोगो के कान में। जीर्यति—नष्ट हो जाता है। अल्पमपि—तनिक भी। न विशति—नहीं घुसता है। अल्पं—नीच पुरुष मे। विशत्यपि—प्रविष्ट भी हो जाता है।

सरलार्थ—अत्यन्त भयंकर विष जाकर शिवजी के कण्ठ मे नष्ट हो गया (बाहर नही निकल सका) महान् व्यक्तियो के कान में दुर्वाद नष्ट हो जाता है (सुनते समय ही नष्ट होकर) हृदय में तनिक भी नहीं उतरता। नीच पुरुष में (नष्ट होने को कौन कहे) प्रविष्ट भी हो जाता है (बडो के मुख से किसी की निन्दा नहीं निकलती है, नीचो के मुख से ही बाहर निकलती है) ॥१९६॥

किसी रमणी की जारविषयक आसक्ति का वर्णन, एक स्त्री दूसरी से कर रही है—

गृहपतिपुरतो जारं कपटकथाकथितमन्मथावस्थम् ।
प्रीणयति पीडयति च बाला निःश्वस्य निःश्वस्य ॥ १९७ ॥

पदार्थ—गृहपतिपुरतः—पति के आगे। कपटकथाकथितमन्मथावस्थम्—कपटकथाभिः कथिता मन्मथस्य कामस्य अवस्था येन तम्—कपट-कथाओं द्वारा जिसने अपनी मदनावस्था प्रकट कर दी। जारम्—प्रिय उपपति को। बाला। निःश्वस्य निःश्वस्य—आह भर-भर कर। प्रीणयति—प्रसन्न करती है। पीडयति—और पीडित करती है।

सरलार्थ—(बाला के) गृहस्वामी के आगे, [धनविशेष न पाने से मनसिज (१—मन में उत्पन्न २—काम) सन्ताप से कदर्थित मैं आप ऐसे उत्तम व्यक्ति का दर्शन नहीं कर पाता केवल गरल खाकर मर जाने का विचार होता है]—ऐसी कपट-वार्ता से अपनी मदनावस्था को जिसने प्रकट कर दिया उस प्यारे उपपति को बाला अपनी निःश्वास प्रक्रिया से सुरत के लिए आश्वासन देकर प्रसन्न करती है और सुरतातिशय का स्मरण करा के पीडित करती है ॥ १९७ ॥

रति-कौशल से रहित, अपने पुरुषत्व पर अभिमान रखने वाले किसी व्यक्ति से एक स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

गतिगञ्जितवरयुवतिः करी कपोलौ करोतु मदमलिनौ ।
मुखबन्धमात्रसिन्धुर ! लम्बोदर ! किं मदं वहसि ॥१९८॥

पदार्थ—गत्या—(१) गमनविशेषेण, (२) ज्ञानेन—रतिनैपुण्येन। गञ्जिता—(१) तिरस्कृता, (२) स्वाधीनीकृता वरा (१—गतिविशेषशालिनी, २—कामकेलिज्ञानशालिनी) युवतिः येन—(१)—जिस (हाथी) ने गमन-विशेष से गतिविशेषशालिनी युवती को तिरस्कृत कर दिया, (२)—जिस पुरुष ने रति-नैपुण्य से कामकेलिज्ञानवती युवती को स्वाधीन कर लिया। करी—हाथी। कपोलौ—कपोलों को। मदमलिनौ—(१) मद—दानजल, (२) गर्व से मलिन। करोतु—करे। मुखबन्धमात्रसिन्धुर—मुखबन्धमात्र से गज। लम्बो-दर—लम्बे उदरवाला (१—गतिविशेषशून्य, २—उठने में भी असमर्थ)। किं मदं वहसि—क्या मद (गर्व) रखते हो।

सरलार्थ—गमनविशेष से गतिविशेषशालिनी युवती को तिरस्कृत करने वाला हाथी अपने कपोलों को मद से मलिन करे। तू मुखबन्धमात्र से गज,

लम्बोदर, क्या मद (गर्व) रखता है ? (अपने रति-नैपुण्य से कामकेलि-निपुण युवती को स्वाधीन करने वाला पुरुष गर्व करे तो उचित है। तू केवल पुरुषचिह्न से युक्त (तद्गुणरहित) लम्बोदर उठने-बैठने में असमर्थ क्या गर्व करता है) ॥ १९८ ॥

प्रिय के मुख से भूलकर सपत्नी बाला का नाम निकल पड़ने से श्रेष्ठ पत्नी के किए गए मान को सपत्नी बाला सुन कर कितनी मुदित हुई—ऐसा एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

गेहिन्याः शृण्वन्ती गोत्रस्खलितापराधतो मानम् ।
स्निग्धां प्रिये सगर्वां सखीषु बाला दृशं दिशति ॥१९९॥

पदार्थ—गेहिन्याः—गृहपत्नी का । गोत्रस्खलितापराधतः—गोत्रस्खलितम् एव अपराधः ततः—गोत्रस्खलित (भूल से मुख से दूसरे का नाम निकल जाने) रूप अपराध से । मानम् शृण्वन्ती—मान सुनती । प्रिये स्निग्धाम्—प्रिय पर स्निग्ध । सखीषु सगर्वाम्—सखियों पर गर्व-पूर्ण । दृशम्—दृष्टि को। बाला दिशति—बाला डालती है ।

सरलार्थ—गृहपत्नी के सामने, (आसक्ति-विशेष होने के कारण) नायक के मुख से सपत्नी का नाम निकल पड़ा, इस पर गृहपत्नी मान कर बैठी—यह संवाद पाकर बाला, (अपने में प्रिय की आसक्ति जान कर) प्रिय पर स्निग्ध—स्नेहपूर्ण और सखियों पर (सौभाग्य के कारण) गर्व पूर्ण दृष्टि डालती है ॥ १९९ ॥

नायक, नायिका से केलि-वन में चलने के लिए कह रहा है—

ग्रीष्ममये समयेऽस्मिन्विनिर्मितं कलय केलिवनमूले ।
अलमालवालवलयच्छलेन कुण्डलितमिव शैत्यम् ॥२००॥

पदार्थ—ग्रीष्ममये—ग्रीष्मप्रचुरे, अस्मिन् समये—इस ग्रीष्मप्रचुर समय में । विनिर्मितम् । केलिवनमूले—केलिवृक्षसमूह के नीचे । अलम्—अत्यन्त । शैत्यम्—शीतलता । आलवालवलयच्छलेन—आलवाल (थाला) के घेरा के व्याज से । कुण्डलितमिव—कुण्डलित-सा । कलय—समझो, जानो ।

सरलार्थ—इस ग्रीष्मप्रचुर समय में, केलिवृक्षसमूह के नीचे अत्यन्त शीतलता मानो थाला के घेरे के बहाने सिमटी-सी पड़ी है (अतः इस समय वहीं चल कर क्रीडा करें) ॥ २०० ॥

मेरे गुणो में निबद्ध है—ऐसा समझ कर नायक का विश्वास मत करो—ऐसा अन्योक्ति द्वारा एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

गुणबद्धचरण इति मा लीलाविहगं विमुञ्च सखि! मुग्धे!
अस्मिन्वलयितशाखे क्षणेन गुणयन्त्रणं त्रुटति ॥२०१॥

पदार्थ—हे सखि! मुग्वे! गुणैः—(१) सूत्रैः, (२) चातुर्यादिभिः, बद्धौ चरणौ यस्य सः—जिसका चरण गुणों (सूत्रो, चातुर्यादि) से बँधा है। इति—एवम्—ऐसा समझ कर। लीलाविहगम्—लीलापक्षी को। मा विमुञ्च—मत छोड़ो। अस्मिन् वलयितशाखे—वृक्षे। गुणयन्त्रणम्—गुणैः यन्त्रणम्—बन्धनम्। गुणो का—सूत्रो का बन्धन। क्षणेन—क्षणभर मे, त्रुटति—टूट जाता है।

सरलार्थ—हे सखि! मुग्धे! इसके चरण सूत्र से बँधे हैं अतः कहाँ जायगा—ऐसा सोच कर लीलापक्षी को मत छोड़। क्योंकि इस वलयितशाखा वाले वृक्ष मे सूत्र बन्धन क्षण में टूट जाता है। (मेरे चातुर्यादि गुणो से इसका व्यवहार बद्ध है अतः नायक को स्वच्छन्द मत विचरने दो क्योंकि नायिका-समूह में चातुर्यादि गुणों का बन्धन तुरन्त टूट जाता है) ॥ २०१ ॥

मदनवेदना असह्य है—ऐसा कोई स्त्री किसी से कह रही है—

गुरुगर्जिसान्द्रविद्युद्भयमुद्रितकर्णचक्षुषां पुरतः।
बाला चुम्बति जारं वज्रादधिको हि मदनेषुः ॥२०२॥

पदार्थ—गुरुगर्जिसान्द्रविद्युद्भयमुद्रितकर्णचक्षुषाम्—गुरुगर्जिश्च सान्द्रविद्युच्च ताभ्यां यद् भयं तेन मुद्रितकर्णचक्षुषां—गम्भीरगर्जन निविड बिजली के भय से जिन्होने कानो और आँखो को मूँद लिया है। तेषा पुरतः—उनके सामने। बाला। जारम्—उपपति को। चुम्बति—चूमती है। मदनेषुः—मदनशरः—कामदेव का बाण। वज्रादधिकः—वज्र से बढ़ कर है।

सरलार्थ—मेघगर्जन और विद्युत् के भय से लोगों ने जब आँख-कान मूँद लिये तो उनके आगे बाला उपपति को चूम रही है—क्योकि कामदेव का बाण वज्र से बढ़ कर है (तभी तो सबने भय से आँख-कान-मूँद लिये परन्तु वह बाला नहीं डरी अथवा मेघगर्जित विद्युद्भय क्षणिक है, अतिशीघ्र नेत्र खुलने से ये लोग देख लेंगे—ऐसा विवेक नही है) ॥ २०२ ॥

मान करने का स्वभाव जिसका हो गया—ऐसी नायिका से सखी कहती है—

गृहिणीगुणेषु गणिता विनयः सेवा विधेयतेति गुणाः।
मानः प्रभुता वाम्यं विभूषणं वामनयनानाम् ॥२०३॥

पदार्थ—गृहिणी—गृहाधिपत्यशालिनी तस्या गुणेषु—गृहिणी के गुणो में।

विनयः सेवा विधेयता इति त्रयो गुणाः। वामनयनाना दुःशीलानां मानः प्रभुता वाम्यं कौटिल्यम् इति विभूषणम्—दुःशीला स्त्रियो के मानादि तीन विभूषण हैं।

सरलार्थ—गृहिणी के गुणों में विनय, सेवा, विधेयता (वश्यता) ये तीन गुण गिने गये हैं। दुःशील अङ्गनाओं के मान, प्रभुता, कुटिलता ये तीन विभूषण है।

(अतः यदि तू गृहाधिपत्यप्रतिष्ठादि चाहती है तो मानादि त्याग कर विनयादि करो) ॥ २०३ ॥

पति द्वारा अत्यन्त लालन पाने पर भी तू दुःखित ही है—ऐसा कहती सखी से कोई कह रही है—

गुणमान्तरमगुणं वा लक्ष्मीर्गङ्गा च वेद हरिहरयोः।
एका पदेऽपि रमते न वसति निहिता शिरस्यपरा ॥२०४॥

पदार्थ—हरिहरयोः—हरिश्च हरश्च तयोः—विष्णु भगवान् और शिव जी के। आन्तरम्—भीतरी, हृदय का। गुणम्, अगुणं दोषं—गुण-दोष को। लक्ष्मीः गंगा च। वेद—जानती है। एका—लक्ष्मी। पदेऽपि रमते—चरणों में भी रमती है। अपरा—गङ्गा। शिरसि निहिताऽपि—सिर पर निहित भी। न वसति—न तिष्ठति।

सरलार्थ—भगवान् विष्णु और शिव जी के आन्तरिक गुण-दोष को लक्ष्मी और गङ्गा जानती हैं। लक्ष्मी जी चरणो में रमती हैं (वाह्य आदर नही प्राप्त है), गङ्गा जी सिर पर धारण की गयी है (बाह्य आदर प्राप्त है) तथापि स्थिर नहीं हैं ॥ २०४ ॥

बहुत समय के बाद घर आये हुये, पुनः विदेश जाने को इच्छुक नायक से नायिका कह रही है—

गत्वा जीवितसंशयमभ्यस्तः सोढुमतिचिराद्विरहः।
अकरुण! पुनरपि दित्ससि सुरतदुरभ्यासमस्माकम् ॥२०५॥

पदार्थ—जीवितसंशयं गत्वा—जीवन को सन्देह में डाल कर। अतिचिराद्—बहुत समय मे। विरहः सोढुम् अभ्यस्तः—विरह सहने का अभ्यास हो सका। अकरुण! अस्माकं सुरतदुरभ्यासम्—हमें सुरत का दुरभ्यास। पुनरपि—फिर। दित्ससि—दातुमिच्छसि—देना चाहते हो।

सरलार्थ—(तुम्हारे विदेश जाने पर तुम्हारे साथ पड़ा हुआ सुरत-अभ्यास इतना दुःखदायी हुआ था कि) जीवन भी संदिग्ध हो गया था, बड़ी कठिनाई से बहुत दिनो में विरह सहने का अभ्यास पड़ सका। हे अकरुण!

अब फिर उसी सुरत का अभ्यास मुझे कराना चाहते हो (तो इसके बाद तुम्हारे विदेश जाने पर हमारा प्राणपरित्याग ही होगा) ॥ २०५ ॥

नायक द्वारा सपत्नी का नाम भूल से ले लेने पर भी अतिशीतल बनी गृहिणी के विषय में नायक कह रहा है—

गोत्रस्खलितप्रश्नेऽप्युत्तरमतिशीलशीतलं दत्त्वा ।
निःश्वस्य मोघरूपे स्ववपुषि निहितं तया चक्षुः ॥२०६॥

पदार्थ—गोत्रस्खलितप्रश्नेऽपि—गोत्रस्खलितेन प्रश्नः तस्मिन्नपि—सपत्नी का नाम भूल से लिए जाने के प्रश्न पर भी। अतिशीलम्—अत्यन्तं शीलेन स्वभावेन शीतलम्—अत्यन्त स्वभावशीतल। उत्तरं दत्त्वा—उत्तर देकर। मोघरूपे—मोघं निष्फलं रूपं यस्य तस्मिन्—जिसका रूप निष्फल है। स्ववपुषि—स्वशरीरे—अपने शरीर पर। निःश्वस्य—आह भर कर। तया—उसने। चक्षुः निहितम्—दृष्टि डाली।

सरलार्थ—(मेरी गृहिणी इतने सौम्य स्वभाव की है कि) भूल से मनोवर्तिनी बाला का नाम निकल पड़ने पर (क्रोध के स्थान पर) अत्यन्त शीतल उत्तर वचन देकर अपने निष्फल रूप वाले शरीर पर आह भरकर उसने दृष्टि डाली। (यह रूप नायक को अपने अधीन क्यों नहीं कर पाता) ॥ २०६ ॥

किसी चञ्चल स्वभाव की रमणी के विषय में कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

गन्धग्राहिणि ! शालोन्मीलितनिर्यासनिहितनिखिलाङ्गि ! ।
उपभुक्तमुक्तभूरुहशतेऽधुना भ्रमरि ! न भ्रमसि ॥२०७॥

पदार्थ—हे गन्धग्राहिणि—आमोद ग्रहण करने वाली ! शालोन्मीलितनिर्यासनिहितनिखिलाङ्गि—शालस्य वृक्षविशेषस्य उन्मीलितः यः निर्यासः रसः तत्र निहितानि निखिलानि अङ्गानि यया तत्सम्बुद्धिः—शालवृक्ष के प्रकट हुए रस में सकल अङ्गों को निहित रखने वाली ! उपभुक्तमुक्तभूरुहशते—उपभुक्तं मुक्तं च भूरुहाणां शतं यया तत्सम्बुद्धिः—जिसने सैकड़ों वृक्षों का उपभोग किया और त्याग दिया। भ्रमरि ! अधुना न भ्रमसि—इस समय नहीं घूम रही हो।

सरलार्थ—हे आमोद ग्रहण करने वाली ! शालवृक्ष के प्रकट हुए रस में सर्वाङ्ग डुबो देने वाली ! सैकड़ों वृक्षों का उपभोग कर छोड़ देने वाली भ्रमरि ! अब तुम नहीं घूमती हो (तुमको लोलुप और चञ्चल स्वभाव की समझ कर सब ने तुम्हारी उपेक्षा कर दी) ॥ २०७ ॥

किसी स्त्री के द्वारा लघु व्यक्ति के साथ समानता दिये जाने पर वह उस स्त्री से कह रहा है--

गुरुषु मिलितेषु शिरसा प्रणमसि लघुषून्नता समेषु समा ।
उचितज्ञासि तुले ! किं तुलयसि गुञ्जाफलैः कनकम् ॥२०८॥

पदार्थ—गुरुषु—(१) गुरुताशालिषु, (२) श्रेष्ठेषु—(१) गुरुता-सम्पन्न, (२) श्रेष्ठ । मिलितेषु—(१) संयुक्तेषु, (२) समागतेषु—(१) संयुक्त होने पर, (२) मिलने पर । शिरसा प्रणमसि— (१) अग्रभागेन, (२) मस्तकेन, प्रकर्षेण अवनता भवसि, नमस्करोषि—(१) अग्रभाग से अत्यन्त झुक जाती हो, (२) मस्तक से नमस्कार करती हो । लघुषु—(१) न्यूनपरिमाण-शालिषु, (२) नीचेषु—(१) कम वजनवालो, (२) नीच व्यक्तियो (के मिलने पर) । उन्नता—(१) उच्चा, (२) साभिमाना—(१) अग्रभाग ऊँचा कर लेती हो, (२) साभिमान होती हो । समेषु समा—सम के मिलने पर सम होती हो । तुले ! उचितज्ञा असि—इस प्रकार हे तराजू ! तू उचितज्ञ है । गुञ्जाफलैः—गुञ्जाफलो (घुँघची) से । कनकं—सुवर्ण को । किं तुलयसि—क्यों तोलती हो ?

सरलार्थ—गुरुतासम्पन्न का संयोग होने पर अग्रभाग से अवनत हो जाती है । न्यून परिमाण वालो का संयोग होने पर अग्रभाग ऊँचा कर लेती है । सम के मिलने पर सम रहती है। इस प्रकार हे तराजू ! तू उचितज्ञ है परन्तु गुञ्जा-फलो से सुवर्ण को क्यों तोलती है (यहाँ तेरी उचितज्ञता कहाँ चली जाती है ?)

[हे उचितज्ञे ! तराजू ! श्रेष्ठों के आने पर नमस्कार करती है, नीचों के मिलने पर साभिमान हो उठती है, सम व्यक्तियों के मिलने पर सम भाव से रहती है तो मेरी अधम और लघु व्यक्तियो से तुलना क्यो करती है, इसमे तेरी उचितज्ञता कहाँ चली जाती है ?] ॥ २०८ ॥

कोई गृहिणी की सखी से कह रहा है—

गेहिन्या ह्रियमाणं निरुध्यमानं नवोढया पुरतः ।
मम नौकाद्वितयार्पितगुण इव हृदयं द्विधा भवति ॥२०९॥

पदार्थ—गेहिन्या—गृहिणी के द्वारा । ह्रियमाणम्—हरा जाता हुआ । नवोढया—नवोढा द्वारा । पुरतः निरुध्यमानम्—आगे निरुध्यमान, रोका जाता हुआ । मम हृदयम्—मेरा हृदय । नौकाद्वितयार्पितगुणः इव—नौकाद्वितये अर्पितः गुणः इव —विपरीतगामी दो नौकाओ मे अर्पित किये गये गुण (रज्जु) की भाँति । द्विधा—द्विप्रकारं, भवति—दो प्रकार का हो जाता है, दो भागों मे विभक्त हो जाता है ।

सरलार्थ—मेरा हृदय गृहिणी के द्वारा अपनी ओर आकृष्ट किया जाता है तो नवोढा द्वारा आगे रोक दिया जाता है—इस प्रकार विपरीतगामी दो नौकाओं से सम्बन्धित रज्जु की भाँति दो भाग हो जाता है ॥ २०९ ॥

एक ही गुण में विशेष ज्ञान रखना उचित है, सब गुणों में थोड़ा-थोड़ा ज्ञान रखना नहीं,—ऐसा कोई कह रहा है—

गुण आकर्षणयोग्यो धनुष इवैकोऽपि लक्षलाभाय ।
लूतातन्तुभिरिव किं गुणैर्विमर्दासहैर्बहुभिः ॥२१०॥

पदार्थ—धनुषः इव—धनुष का-सा । आकर्षणयोग्यः—(१) विचार-क्षम, (२) खींचने योग्य । एकोऽपि—एक—अकेला भी । गुणः—(१) गुण, (२) रज्जु । लक्षलाभाय—(१) लक्षसंख्याकधनलाभाय. (२) वेध्य-लाभाय—(१) लाखसंख्या में धन लाभ के लिए, (२) लक्ष्य को वेधने के लिए । विमर्दासहैः—(१) विचारासहैः (२) आकर्षणासहैः—(१) विचार में असमर्थ, (२) आकर्षण को न सह पाने वाले । लूतातन्तुभिः इव—लूता कीटविशेषः, तत्तन्तुभिः इव—मकड़ी के तन्तुओं के समान । बहुभिः गुणैः किम्—बहुत से गुणों से क्या फल ? अर्थात् कुछ भी फल नहीं ।

सरलार्थ—धनुष का सा आकर्षणयोग्य (१—विचारक्षम, २—खींचने के योग्य) अकेला एक भी गुण, (१—चातुर्यादि, २—रज्जु) लक्षलाभ (१—लक्षसंख्याकधनलाभ, १—वेध्यलाभ) के लिए होता है । विचार में असमर्थ, आकर्षण को न सह पाने वाले मकड़ी के तन्तुओं के समान अनेक गुणों से कुछ भी फल नहीं होता ॥ २१० ॥

नायकविषयक नायिका की आसक्ति का वर्णन दूती नायक से कर रही है—

गायति गीते शंसति वंशे वादयति सा विपञ्चीषु ।
पाठयति पञ्जरशुकांस्तव संवादाक्षरं बाला ॥ २११ ॥

पदार्थ—सा बाला । तव—तेरे । संवादाक्षरम्—संवाद का अक्षर । गीते गायति—गीत में गाती है । वंशे शंसति—वंशी में बजाती है । विपञ्चीषु—वीणाओं में । वादयति—बजाती है । पञ्जरशुकान्—पिञ्जरस्थ शुकों को । पाठयति—पढ़ाती है ।

सरलार्थ—(तेरे संवाद का एक अक्षर भी उसे प्राणप्रिय है) संवाद का अक्षर, वह बाला गीत में गाती है, वंशी में बजाती है, वीणाओं पर बजाती है, पञ्जरस्थ शुकों को पढ़ाती है ॥ २११ ॥

सौम्यता के कारण क्षुद्र को उपभोग प्राप्त होता है, किन्तु गर्व के कारण महान् को नहीं—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

गणयति न मधुव्ययमयमविरतमापिबतु मधुकरः कुमुदम् ।
सौभाग्यमानवान्परमसूयति द्युमणये चन्द्रः ॥ २१२ ॥

पदार्थ—मधुकरः—मधुप । कुमुदम् आपिबतु—कुमुद का रस पान करे । सौभाग्यमानवान्—सौभाग्य एवं मान वाला । अयं चन्द्रः—यह चन्द्र । मधुव्ययं न गणयति—मधुव्यय की परवाह नहीं करता । परम्—किन्तु । द्युमणये—सूर्याय, असूयति—सूर्य का तिरस्कार करता है ।

सरलार्थ—मधुप कुमुद का रसपान करे । सौभाग्यमानशाली चन्द्र मधुव्यय की परवाह नहीं करता; किन्तु सूर्य का तिरस्कार करता है ॥ २१२ ॥

नायकविषयक आसक्ति को लज्जावश छिपाती नायिका से उसकी सखी कह रही है—

गुणविधृता सखि ! तिष्ठसि तथैव देहेन किं तु हृदयं ते ।
हृतममुना मालायाः समीरणेनेव सौरभ्यम् ॥ २१३ ॥

पदार्थ—हे सखि ! गुणविधृता—गुणैः—(१) लोकवादभय आदि, (२) डोरों से, विधृता—स्थिर बनाई गई । तू देहेन तथैव तिष्ठसि—शरीर से पूर्ववत् स्थित है । किन्तु । समीरणेन—वायुद्वारा । मालायाः सौरभ्यमिव—माला की सुगन्ध के समान । अमुना—नायक द्वारा । ते हृदयम् हृतम्—तेरा हृदय हर लिया गया ।

सरलार्थ—हे सखि ! यद्यपि तू लोकवादभय आदि से, शरीर से तो यथास्थित ही दिखाई दे रही है, किन्तु वायु द्वारा, डोरों से यथास्थित दिखाई देने वाली माला की हृतसुगन्ध की भाँति, नायक द्वारा तेरा हृदय हर उठा है (अतः छिपाना व्यर्थ है, उससे मिलने का यत्न कर) ॥ २१३ ॥

मानिनी नायिका की प्रसादनोपरान्त चेष्टा का वर्णन नायक अपने सखा से कर रहा है—

गुरुसदने नेदीयसि चरणगते मयि च मूकयापि तया ।
नूपुरमपास्य पदयोः किं न प्रियमीरितं प्रियया ॥ २१४ ॥

पदार्थ—गुरुसदने नेदीयसि—गुरुजन का आवास निकट होने पर । मयि चरणगते—मेरे प्रणत होने पर । मूकया अपि तया—उस मूक प्रिया के द्वारा । पदयोः नूपुरम्—पैरों का नूपुर । अपास्य—दूर कर । किं न प्रियम्—क्या प्रिय नहीं । ईरितम्—उक्तम्—कहा, अर्थात् सब कुछ कह दिया ।

सरलार्थ—गुरुजन का आवास निकट होने पर, (गुरुजन के भय से) मेरे प्रणत होने पर मूक बिना कुछ बोले उस प्रिया ने पैरों का नूपुर दूर कर सब कुछ मेरा प्रिय कह दिया (रति की अनुमति दी, तू निःशब्द चरणों से रात में आना, मैने मानपरित्याग कर दिया अथवा मैं आ रही हूँ तू आगे चल, आदि भाव संकेत द्वारा प्रकट कर दिया) ॥ २१४ ॥

दरिद्र में क्यों अनुरक्त हो—ऐसा कहती स्त्री से नायिका कह रही है—

ग्रन्थिलतया किमिक्षोः किमपभ्रंशेन भवति गीतस्य ।
किमनार्जवेन शशिनः किं दारिद्र्येण दयितस्य ॥ २१५ ॥

पदार्थ—इक्षोः—ईख के। ग्रन्थिलतया—ग्रन्थिलः (गाँठदार) ग्रन्थिप्रचुरः, तस्य भावः ग्रन्थिलता तया—गाँठों की बहुलता से। किम्—क्या। गीतस्य—गीत के। अपभ्रंशेन—विकृतिमय शब्दों के होने से। किम्। शशिनः—चन्द्रमसः—चन्द्रमा के। अनार्जवेन—कौटिल्येन किम्—वक्रता से क्या ? दयितस्य—प्रियस्य—प्रिय के। दारिद्र्येण—दारिद्र्य से। किं भवति—क्या होता है।

सरलार्थ—(रसना को सुख देने वाली) ईख की ग्रन्थिबहुलता, गाँठों से युक्त होना (दोष) नहीं गिना जाता। (श्रवणेन्द्रिय को सुख प्रदान करने वाले) गीत के अपभ्रंश (विकृतिपूर्ण शब्दों से युक्त होना) दोष से क्या ? उसका यह दोष नहीं गिना जाता। (नेत्रों को आह्लाद प्रदान करने वाले) चन्द्रमा की वक्रता का विचार नहीं किया जाता। (तो सकल अङ्गों को आनन्द प्रदान करने वाले) प्रिय का दारिद्र्यमात्र दोष क्या कर सकता है ? उसके इस दोष पर ध्यान देना उचित नहीं (उसके दारिद्र्य को दोष मानने वाली, भूल कर रही है) ॥ २१५ ॥

कोई नायक अपनी गृहिणी की ईर्ष्याजन्य चेष्टा का वर्णन सखा से कर रहा है—

गेहिन्या चिकुरग्रहसमयससीत्कारमीलितदृशापि ।
बालाकपोलपुलकं विलोक्य निहतोऽस्मि शिरसि पदा ॥२१६॥

पदार्थ—चिकुरग्रहसमयससीत्कारमीलितदृशा अपि—चिकुराणां केशानां ग्रहस्य समये ससीत्कारं मीलिते दृशौ यया सा—केश पकड़ते समय जिसने सीत्कारपूर्वक नेत्रों को मूँद लिया। गेहिन्या—गृहिणी द्वारा। बालाकपोलपुलकम्—बालायाः कपोलसम्बन्धि पुलकम्—सपत्नी बाला के कपोल की पुलक को। विलोक्य—देख कर। पदा—चरणेन—चरण से। शिरसि—सिर पर। निहतः अस्मि—मै प्रताडित हुआ।

सरलार्थ—मैंने चुम्बन के लिये उसके केशों को पकड़ना आरम्भ किया, उस समय सी-सी (कष्टव्यंजक ध्वनि) करती (आनन्दाविर्भाव के कारण) उसने अपनी आँखे मूँद ली तथापि (कुछ क्षण पहले मेरे द्वारा चूमे गये) सपत्नी बाला के पुलकित कपोल को देखकर (ईर्ष्यावश) उसने मेरे सिर पर (ऐसा तूने क्यों किया—यह भाव प्रकट करने के लिए) चरणों से प्रहार किया ॥ २१६ ॥

अन्य नायक के साथ रात में सुरत-क्रीडा की। प्रातः उस नायक द्वारा प्रदत्त नखक्षत देखकर उस पर क्रुद्ध नायिका से सखी कह रही है—

गुरुपक्ष्म जागरारुणघूर्णत्तारं कथंचिदपि वलते ।
नयनमिदं स्फुटनखपदनिवेशकृतकोपकुटिलभ्रु ॥ २१७ ॥

पदार्थ—स्फुटनखपदनिवेशकृतकोपकुटिलभ्रु—स्फुटानां नखपदाना निवेशेन कृतः यः कोपः तेन कुटिले भ्रुवाँ यस्याः तत्सम्बुद्धिः—स्पष्ट नखक्षत के स्थान को देखकर किये गये कोप से जिसकी भौं कुटिल है। गुरुपक्ष्म—गुरु पक्ष्म यस्य तत्—(आलस्य से) जिसकी पलक भारी है। जागरारुणघूर्णत्तारम्—जागरेण अरुणः घूर्णन् तारः (कनीनिका) यस्य तत्—रात्रि जागरण से लाल और चकराती पुतली वाला। इदं नयनम्—यह नेत्र। कथंचिदपि—बड़ी कठिनाई से। वलते—चल पाता है।

सरलार्थ—नायक द्वारा प्रदत्त नखक्षत को देख, क्रोध से कुटिल भ्रुकुटि ! आलस्य से भारी पलक वाला, रात्रिजागरण से लाल और चकराती पुतली वाला तुम्हारा यह नेत्र बड़े क्लेश से भी घूम पाता है (एक नखक्षत इस प्रकार देख कर क्रुद्ध हो रही है, किन्तु अन्य नखक्षतो को नही देख पा रही है। उस समय तो कोई भय नहीं किया, अब भय करना व्यर्थ है) ॥ २१७ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता गकारव्रज्या।

घकारव्रज्या

नायक, नायिका की आलिङ्गनकालीन चेष्टा का वर्णन अपने सखा से कर रहा है—

घटितजघनं निपीडितपीनोरु न्यस्तनिखिलकुचभारम् ।
आलिङ्गन्त्यपि बाला वदत्यसौ मुञ्च मुञ्चेति ॥ २१८ ॥

पदार्थ—घटितं (संस्पृष्टं) जघनं यस्मिन् कर्मणि तत्—जघन सटाकर। निपीडितपीनोरु—निपीडितौ पीनौ मांसलौ ऊरू यस्मिन् कर्मणि तत्—मांसल

जङ्घाप्रदेश को अत्यन्त दबाकर। न्यस्तनिखिलकुचभारम्—न्यस्तः निखिलः कुचयोः भारः यस्मिन् कर्मणि तत्—कुचों का पूरा भार डाल कर। आलिङ्गन्ती—आलिङ्गन करती। असौ बाला—यह बाला। मुञ्च मुञ्च—छोड़ो-छोड़ो। इति—ऐसा। वदति—बोलती है।

सरलार्थ—(रतेच्छा से) जघन प्रदेश सटाकर, मांसल जङ्घो को दबा कर, सारा स्तन भार डाल कर आलिङ्गन करती बाला 'छोड़ो-छोड़ो' ऐसा कहती है॥ २१८॥

भाग्य-वश ही लक्ष्मी स्थिर होती है, यत्न से नहीं—ऐसा कोई कह रहा है—

घटितपलाशकपाटं निशि निशि सुखिनो हि शेरते पद्माः।
उज्जागरेण कैरव! कति शक्या रक्षितुं लक्ष्मीः॥ २१९॥

पदार्थ—घटितपलाशकपाटम्—घटित पलाशरूपं कपाटं यत्र तत्—पत्ररूप कपाट को बन्द कर। निशि-निशि—प्रत्येक रात में। सुखिनः—सुखी। पद्माः—कमल। शेरते—सोते हैं। कैरव—हे कुमुद! उज्जागरेण—जागने से। लक्ष्मीः कति रक्षितुं शक्या—लक्ष्मी की कितनी रक्षा की जा सकती है।

सरलार्थ—पत्ररूप कपाट को बन्द कर रात भर कमल सुख से सोते हैं! हे कुमुद! जागने से लक्ष्मी की कितनी रक्षा की जा सकती है? (निरुद्यम के पास लक्ष्मी रहती है, उद्योगी के पास नहीं—भाग्य ही धन की रक्षा करने में समर्थ है)।

(अथवा—जो अङ्गना (चञ्चल होने के कारण) अन्यत्र जाना चाहती है उसकी रखवाली कोई नहीं कर सकता ऐसा कोई किसी से कहता है)॥२१९॥

कोई प्रातःकाल का वर्णन कर रहा है—

घूर्णन्ति विप्रलब्धाः स्नेहापायात्प्रदीपकलिकाश्च।
प्रातः प्रस्थितपान्थस्त्रीहृदयं स्फुटति कमलं च॥ २२०॥

पदार्थ—विप्रलब्धाः—वियोगिन्यः, यद् वा संकेतनिकेतने प्रियतमाप्राप्ति-समाकुलहृदयाः विप्रलब्धाः—वियोगिनी अथवा संकेतस्थल पर प्रियतम को न पाने से समाकुलहृदय। प्रदीपकलिकाः च—दीपक के फूल, चिराग के गुल। स्नेहापायात्—स्नेहस्य प्रीतेः, तैलस्य च अपायात्—नाशात्—स्नेह (प्रीति, तैल) के नाश से। घूर्णन्ति—भ्रमित होती हैं, चक्कराती हैं। प्रस्थितपान्थस्त्रीहृदयम्—प्रस्थितस्य पान्थस्य या स्त्री तस्याः हृदयम्—जाने वाले पथिक की स्त्री का हृदय। कमलं च—और कमल। स्फुटति—(१) टो-टूक हो जाता है, (२) खिल जाता है।

सरलार्थ—वियोगिनी अथवा संकेतस्थल पर प्रियतम को न पाने से समाकुल हृदय स्त्रियां तथा दीप के फूल, स्नेह (१–प्रीति, २–तैल) के अभाव से भ्रमित होते हैं। प्रस्थित पान्थ की स्त्री का हृदय प्रातः दो टूक हो जाता है और कमल खिलता है ॥ २२० ॥

इति विभाव्याख्यासमेता घकारव्रज्या।

चकारव्रज्या

कोई स्त्री किसी से कह रही है—

चपलस्य पलितलाञ्छितचिकुरं दयितस्य मौलिमवलोक्य।
खेदोचितेऽपि समये संमदसेवाददे गृहिणी ॥ २२१॥

पदार्थ—चपलस्य—पराङ्गनालम्पटस्य, दयितस्य—प्रियस्य—पराङ्गनालम्पट प्रिय का। पलितलाञ्छितचिकुरम्—पलितेन जरया, लाञ्छिताः चिह्निताः चिकुराः केशाः यस्य तम्–बुढापे से जिसके केश चिह्नित हैं। मौलिम्—शिरः—सिर। अवलोक्य—देख कर। खेदोचितेऽपि समये—खेद करने योग्य समय में भी, खेद के अवसर पर भी। गृहिणी—प्रथम पत्नी ने। संमदमेव—आनन्द-मेव—आनन्द ही। आददे—प्राप्त किया।

सरलार्थ—पराङ्गनालम्पट प्रिय का सिर, बुढ़ापा से चिह्नित केशो वाला देख कर, खेद के अवसर पर भी गृहिणी ने आनन्द ही प्राप्त किया ॥ २२१ ॥

नायक, मानिनी नायिका से कह रहा है—

चण्डि! प्रसारितेन स्पृशन्भुजेनापि कोपनां भवतीम्।
तृप्यामि पङ्किलामिव पिबन्नदीं नलिननालेन ॥ २२२ ॥

पदार्थ—हे चण्डि—कोपने! प्रसारितेन भुजेन अपि—बाहोको फैला कर। कोपना भवतीम्—कोप किये हुई तुमको। स्पृशन्—स्पर्श करता हुआ। पङ्किलां नदीम्—मटमैली नदी को। नलिननालेन—कमलनाल से। पिबन् इव—पीता हुआ सा। तृप्यामि—तृप्त होता हूँ।

सरलार्थ—हे चण्डि! (निकटवर्ती न होने के कारण) बाहु फैला कर तुम्हारा स्पर्श पाता हुआ भी मै पंकिल नदी को कमलनाल से पीता हुआ-सा तृप्त होता हूँ (कमलनाल से पान करने पर स्वच्छ जल की प्राप्ति से तृप्ति होती है, इस प्रकार तुम्हारा मान मुझे दुःखकर नहीं है, अतः इसे त्याग दो) ॥ २२२ ॥

खण्डिता, नायक से अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

चपलभुजङ्गीभुक्तोज्झित! शीतलगन्धवह! निशि भ्रान्त!।
अपराशां पूरयितुं प्रत्यूपसदागते! गच्छ ॥ २२३ ॥

पदार्थ—चपलभुजङ्गीभुक्तोज्झित—(१) चपलाः याः भुजंग्यः सर्पिण्यः ताभिः आदौ भुक्तः पश्चात् उज्झितः—तत्सम्बुद्धिः—चपलसर्पिणियों द्वारा पान किया गया और पुनः त्यागा गया अतएव सविष होने के कारण अस्पृश्य! (२) चपलाः भुजंग्यः वेश्याः ताभिः भुक्तोज्झित!—चपल वेश्याओं द्वारा भोगा गया और बाद में छोड़ दिया गया, अतएव अस्पृश्य! शीतलगन्धवह—(१) शीतल समीरण!—(२) गन्धं वहति—अङ्ग में शीतल गन्ध वहन करने वाला। निशि भ्रान्त!—(१) रात में घूमने वाला, (२) रात में इधर-उधर चक्कर लगाने वाला निशाचर! प्रत्यूषसदागते—प्रत्यूषे प्रातःकाले सदा निरन्तरम् आगतिः आगमनं यस्य एतादृश—प्रातःकाल जिसका आगमन होता है। अपराशाम्—(१) अपरदिशाम्, पूरयितुम्—पूर्णां कर्तुम्—अन्य दिशा को पूर्ण करने, (२) अपरस्याः अन्यस्याः आशाम् इच्छाम् सफलां कर्तुम्—अन्य स्त्री की इच्छा सफल करने को। गच्छ—जाओ।

सरलार्थ—चपल सर्पिणियों द्वारा पान किया गया और बाद में त्यागा गया अतएव सविष होने के कारण अस्पृश्य! शीतल समीरण! रात में भ्रमणशील! निरन्तर प्रातःकाल आने वाले! (अब) दूसरी दिशा को पूर्ण करने को जा।

[चपल वेश्याओं द्वारा भोगा गया और बाद में छोड़ दिया गया (अतएव अस्पृश्य), अङ्गों में शीतल गन्ध लगाये हुए, रात में इधर-उधर मारा-मारा फिरने वाला (निशाचर), सदा प्रातःकाल आने वाले! (अब) किसी अन्य स्त्री की इच्छा पूरी करने को जा (तुझ ऐसे से मुझे कोई आशा नहीं)] ॥ २२३ ॥

नायिका की दशा का वर्णन, सखी नायक से कर रही है—

चिरपथिक! द्राघिममिलदलकलताशैवलावलिग्रथिता।
करतोयेव मृगाक्ष्या दृष्टिरिदानीं सदानीरा ॥ २२४ ॥

पदार्थ—हे चिरपथिक! द्राघिममिलदलकलताशैवलावलिग्रथिता—द्राघिम्णा दैर्घ्येण मिलन्त्यः अलकलताः एव शैवलावलिः तया ग्रथिता युक्ता—(संस्कार न किये जाने से) लम्बी होने के कारण परस्पर संबद्ध अलकलतारूप सेवारों से युक्त। करतोया इव—पूर्वबङ्गाल की एक नदी विशेष, उसके समान। मृगाक्ष्याः—मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा मृगाक्षी तस्याः—जिसकी आँखें मृग की आँखों के समान हैं अर्थात् परम सुन्दरी की। दृष्टिः। इदानीम्—इस समय सदानीरा—(१) सदा नीरम् अश्रुजलं यस्यां सा, (२) सदा नीरं जलं यस्यां

सा—(१) जिसमें सदा अश्रुजल भरा रहता है, (२) सदानीरा, करतोया नदी का दूसरा नाम है। 'करतोया सदानीरा' इत्यमरः।

सरलार्थ—हे चिरपथिक ! (पूर्वसमय की अपेक्षा आज-कल दुःखका वेग बढ़ जाने के कारण) दीर्घ होने के कारण (तुम्हारे प्रवास से संस्कार न किये जाने से) परस्पर उलझी सम्बद्ध अलकलता रूप सेवारो से युक्त करतोया नदी के समान उस मृगनयनी की दृष्टि (निरन्तर अश्रुपूर्ण होने से) सदानीरा (संज्ञा प्राप्त कर रही) है। (करतोया नदी सदानीरा नाम से पुकारी जाती है, नायिका भी इस प्रकार सदानीरा हो रही है) ॥ २२४ ॥

नायक, मानिनी नायिका से कह रहा है—

चण्डि ! दरचपलचेलव्यक्तोरुविलोकनैकरसिकेन ।
धूलिभयादपि न मया चरणहतौ कुञ्चितं चक्षुः ॥ २२५ ॥

पदार्थ—हे चण्डि ! दरचपलचेलव्यक्तोरुविलोकनैकरसिकेन—दरचपलचेलेन ईषच्चञ्चलवस्त्रेण व्यक्तयोः ऊर्वोः विलोकनम् तस्मिन् एकरसिकेन—थोडा-सा वस्त्र चञ्चल होने के कारण प्रकट जंघो को देखने का अनन्यरसिक। मया—मैंने। चरणहतौ—पादप्रहारे—तुम्हारे पादप्रहार करने पर। धूलिभयादपि—धूलि के भय से भी। चक्षुः न कुञ्चितम्—आँख नहीं बन्द की।

सरलार्थ—थोड़ा सा वस्त्र चञ्चल होने के कारण प्रकट (तेरे) जंघों को देखने का अनन्य रसिक मैने, तेरे पाद-प्रहार करने पर, (आँख में तेरे पैर की) धूल न पड़ जाय—इस भय से भी आँख बन्द नही की (जंघा देखने में लगा ही रहा) ॥ २२५ ॥

नायक, नायिका की गति का वर्णन कर रहा है—

चलकुण्डलचलदलकस्खलदुरसिजवसनसज्जदूरुयुगम् ।
जघनभरक्लमकूणितनयनमिदं हरति गतमस्याः ॥२२६॥

पदार्थ—चलकुण्डलचलदलकस्खलदुरसिजवसनसज्जदूरुयुगम्—चलौ कुण्डलौ, चलन्तः अलकाः, स्खलत् उरसिजयोः स्तनयोः वसनम्, सजत् ऊरुयुगम् यत्र तत्—जिसमें कुण्डल चञ्चल है, अलकें चल रही है, स्तन पर का वस्त्र खिसक रहा है, दोनो जँघे (पीन होने के कारण) परस्पर रगड खा रहे है। जघनभरक्लमकूणितनयनम्—जघनस्य भरेण यः क्लमः श्रमः तेन कूणितं संकुचितं नेत्रं यत्र तत्—जघनभार से जन्य श्रम से जिसमे नेत्र मुँद गया है। अस्याः—इसका। इदं गतम्—यह गमन। हरति—हर लेता है।

सरलार्थ—नायिका जब चलती है तो कानो के कुण्डल और अलकें चञ्चल हो उठती है, स्तन पर से वस्त्र खिसकने लगता है, पीन दोनों जंघाये परस्पर

रगड़ खाने लगती हैं और जघन के भार से जन्य श्रम से आँख मुँद जाती है—इसका इस प्रकार का गमन मेरे मन को हर लेता है ॥ २२६ ॥

किसी नायिका के सङ्गम की आशा से, उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते नायक से कोई स्त्री कह रही है—

चरणैः परागसैकतमफलमिदं लिखसि मधुप ! केतक्याः ।
इह वसति कान्तिसारे नान्तःसलिलापि मधुसिन्धुः ॥२२७॥

पदार्थ—हे मधुप ! केतक्याः—केतकी का । इदम्—यह । परागसैकतम्—परागरूप रेतीला तट । अफलम्—व्यर्थम् । लिखसि—कुरेदता है । कान्तिसारे—कान्तिः एव सारः यत्र तस्मिन्—कान्तिमात्र जिसमें सार है । इह—परागसैकते—परागरूप रेतीले तट में । अन्तःसलिलापि—अन्तः सलिलं यस्याः सा—भीतर जलवाली । मधुसिन्धुः—मकरन्द नदी । न वसति—नहीं है।

सरलार्थ—हे मधुप ! केतकी का यह परागरूप रेतीला तट तू व्यर्थ कुरेदता है । केवल देखने में सुन्दर इस पराग रूप रेतीले तट के भीतर भी जल वाली मकरन्द नदी नही है (इस प्रकार इसके भीतर भी मद नहीं है, अतः तुम्हारा श्रम अनर्थक है) ॥ २२७ ॥

बहुत दिनो के बाद लौटा नायक, नायिका के अङ्गो में नखक्षत के चिह्नो को देखकर उसके चरित्र पर सन्देह करता है, तभी नायिका की सखी कहने लगती है—

चिरकालपथिक ! शङ्कातरङ्गिताक्षः किमीक्षसे मुग्ध ।
त्वन्निस्त्रिंशाश्लेषव्रणकिणराजीयमेतस्याः ॥ २२८ ॥

पदार्थ—हे चिरकालपथिक ! मुग्ध ! सुन्दर ! मूढ ! शङ्कातरङ्गिताक्षः—शङ्कया संशयेन तरङ्गिते अक्षिणी यस्य सः—सन्देहवश जिसकी आँखे चञ्चल हो उठीं । किम्—क्या । ईक्षसे—देख रहे हो । एतस्याः—इसके । तव निस्त्रिंशस्य खड्गस्य आश्लेषः तस्य व्रणकिणराजी इयम्—तुम्हारे खड्ग के आलिङ्गन से जात घावो के चिह्नों की यह पंक्ति है ।

सरलार्थ—हे चिरकाल पथिक ! मुग्ध ! संशय से चञ्चल आँखो से (इसके अङ्गो को) क्या देख रहे हो ? (ये नखक्षत नहीं हैं) तुम्हारे खड्ग का विरहातिशय से उन्मादवश, तुम्हारा प्रीतिपात्र होने के कारण आलिङ्गन करने से जात घावों के निशानो की यह पंक्ति है । (अतः तुम इसे अन्यथा न समझो, तुममें इसका जैसा प्रेम है, वैसा किसी में किसी का नहीं) ॥२२८॥

अपने अविवेक से, चञ्चल अपनी नायिका को पीटते किसी व्यक्ति को, उस नायिका में आसक्त कोई व्यक्ति पीटने के लिए उद्यत हुआ किन्तु रोक लिया गया—ऐसा कोई स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

चपलां यथा मदान्धश्छायामयमात्मनः करी हन्ति ।
आस्फालयति करं प्रतिगजस्तथायं पुरो रुद्धः ॥ २२९ ॥

पदार्थ—मदान्धः—मदेन अन्धः—(१) मतवाला, (२) विवेकशून्य । अयं करी—यह हाथी । आत्मनः—अपनी । चपलां छायाम्—चपल छाया को । यथा हन्ति—जितना मारता है । तथा—उतना ही । पुरः रुद्धः—आगे रोका गया । अयम्—यह । प्रतिगजः—आक्रमणकारी गज । करम्—सूँड, हाथ । आस्फालयति—(१—चलाता है, २—मलता है ।

सरलार्थ—मदान्ध यह हाथी जितना ही अपनी चपल छाया को मारता है, उतना ही सामने रोका हुआ यह आक्रमणकारी गज अपनी सूँड़ को हिलाता है । (यह विवेकशून्य अपनी चञ्चल नायिका को जितना ही पीटता है, उसका प्रतिवेशी तदङ्गनासक्तिवश उसे मारने को उद्यत किन्तु रोका गया उतना ही हाथ मल कर रह जाता है । इस प्रकार लोकलज्जा से कुछ कह नहीं पा रहा है) ॥२२९॥

नायक अपने सखा से कह रहा है—

चुम्बनलोलुपमदधरहृतकाश्मीरं स्मरन्न तृप्यामि ।
हृदयद्विरदालानस्तम्भं तस्यास्तदूरुयुगम् ॥ २३० ॥

पदार्थ—चुम्बनलोलुपमदधरहृतकाश्मीरम्—चुम्बने लोलुपेन मम अधरेण हृतं काश्मीरं केसरं यस्य तत्—चूमने में लोलुप मेरे अधर से जिसका केसर हर लिया गया । चुम्बनलोलुपः मद धरति इति मदधरः—चुम्बन-लोलुप मतवाला हाथी, तेन हृत काश्मीरं केसरं यस्य तत् । हृदयद्विरदालानस्तम्भम्—हृदयरूप-द्विरदः गजः तस्य आलानम् बन्धनम् तदर्थं स्तम्भम्—हृदयरूप गज के बाँधने को स्तम्भरूप । तस्याः—उसका । तत्—उस । ऊरुयुगम्—जंघाद्वय को । स्मरन्—स्मरण करता । न तृप्यामि—तृप्त नहीं होता हूँ ।

सरलार्थ—चुम्बनलोलुप मेरे अधर से जिसका केसर हर लिया गया, मेरे हृदयरूप गज को बाँधने के लिए स्तम्भ रूप, नायिका के उस जंघाद्वय को स्मरण करता तृप्त नहीं होता हूँ ॥ २३० ॥

केशपरिष्कार करती नायिका की चेष्टा का वर्णन, सखी नायक से कर रही है—

चिकुरविसारणतिर्यङ्नतकण्ठी विमुखवृत्तिरपि बाला ।
त्वामियमङ्गुलिकल्पितकचावकाशा विलोकयति ॥ २३१ ॥

पदार्थ—चिकुरविसारणतिर्यङ्नतकण्ठी—चिकुराणां केशानां विसारणं परिष्कारः तेन तिर्यक् नतः कण्ठः यस्याः सा—बालों को झाड़ते समय जिसका कण्ठ तिरछा झुका है। विमुखवृत्तिः—विमुखा वृत्तिः परिस्थितिः यस्याः सा—जिसकी परिस्थिति विपरीत है, जो परिस्थितिवश स्वच्छन्दता से सामने देख नहीं सकती। इयं बाला—यह बाला नायिका। त्वाम्—तुझे। अङ्गुलिकल्पितकचावकाशा—अङ्गुलीभिः कल्पितः केशेषु अवकाशः यया सा—जिसने अंगुलियों से बालों में (दृष्टि के लिए) जगह बना ली। विलोकयति—देख रही है।

सरलार्थ—इस बाला का बालों का परिष्करण करने से कण्ठ तिरछा नीचे झुका है (देखने के लिए सिर उठा नहीं सकती। और बाल आगे की ओर लटके है, दृष्टि के लिए वे बाधक हो रहे हैं) ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी यह बाला अंगुलियों से बालों के बीच दृष्टि भर के लिए अवकाश (जगह) बना कर उसी से दृष्टि डाल कर तुम्हें देख रही है (तुम भी अपने विलोकन आदि से इस पर अनुग्रह करो) ॥ २३१ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

चुम्बनहृताञ्जनार्धं स्फुटजागररागमीक्षणं क्षिपसि ।
किमुषसि वियोगकातरमसमेषुरिवार्धनाराचम् ॥ २३२ ॥

पदार्थ—चुम्बनहृताञ्जनार्धं—चुम्बनेन हृतं अञ्जनार्धं यस्य तत्—चुम्बन से जिसका आधा अञ्जन मिट गया है। स्फुटजागररागम्—स्फुटः प्रकटः जागरेण रागः यस्य तत्—जागने से जिसका राग (लाली) प्रकट है। वियोगकातरम्—वियोगात् कातरम् भीतम्—भावी वियोग से भीत। ईक्षणम्—दृष्टिम्। असमेषुः—कामदेवः। अर्धनाराचम् इव—अर्धशरमिव—अर्धशर की भाँति। उषसि—प्रातः। किं क्षिपसि—क्यों डाल रही है

सरलार्थ—चुम्बन से जिसका आधा अञ्जन मिट गया है, जागरण से जिसका राग प्रकट हो रहा है, जो भावी वियोग से भीत है, उस दृष्टि को, कामदेव द्वारा डाले गये अर्ध शर के समान (नायक पर) क्यों डाल रही हो ? ॥ २३२ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता चकारव्रज्या।

छकारव्रज्या

सखी नायिका से कह रही है—

छायाग्राही चन्द्रः कूटत्वं सततमम्बुजं व्रजति ।
हित्वोभयं सभायां स्तौति तवैवाननं लोकः ॥ २३३ ॥

पदार्थ—चन्द्रः। छायाग्राही—सकलङ्कः। अम्बुजम्—कमलम्। सततम्—निरन्तरम्। कूटत्वम्—अवसादम्, सङ्कोचमित्यर्थः। अवसाद, सङ्कोच को। व्रजति—गच्छति—प्राप्त होता है। उभयं हित्वा—दोनों का परित्याग कर। सभायाम्—सभा में। लोकः—लोक। तवैव—तुम्हारे ही। आननम् मुखं स्तौति—मुख की प्रशंसा करता है।

सरलार्थ—चन्द्र सकलङ्क है और कमल नित्य सङ्कोच को प्राप्त होता है अतः इन दोनों का परित्याग कर सभा में लोग तुम्हारे ही मुख की प्रशंसा करते हैं॥ २३३॥

नायक की शिष्टता पर मुग्ध नायिका सखी से कह रही है—

छायामात्रं पश्यन्नधोमुखोऽप्युद्गतेन धैर्येण।
तुदति मम हृदयनिपुणा राधाचक्रं किरीटीव॥ २३४॥

पदार्थ—छायामात्रं पश्यन्—छायामात्र देखता हुआ। अधोमुखः अपि—नीचे मुख किये भी। उद्गतेन धैर्येण—प्रकट धैर्य से। मम हृदयम्—मेरे हृदय को। किरीटी—अर्जुनः। इपुणा—बाणेन—बाणों से। राधाचक्रमिव—राध्नोति साधयति कार्याणि इति राधा—(मत्स्यः) तस्याः चक्रम् इव—मण्डलमिव। तुदति—पीडयति—वेधता है।

सरलार्थ—(गुरुजन के समक्ष) मेरी छायामात्र देखते हुए (साक्षात् मेरा अवलोकन न कर मेरी लाज रख ली) नीचे मुख किये (नायक ने) तथापि अपने (इस) प्रकट धैर्य से मेरे हृदय को वेध दिया जैसे (द्रौपदी के स्वयवर में ध्वजाग्रस्थित चञ्चल) मीन की छाया को देखकर नीचे मुख किये हुए भी अर्जुन ने उस मीन के नेत्र को बाण से वेध दिया था॥ २३४॥

इति विभाव्याख्यासमेता छकारव्रज्या।

जकारव्रज्या

विदेशगमन के अवसर पर नायक नायिका से कह रहा है—

जलबिन्दवः कतिपये नयनाद् गमनोद्यमे तव स्खलिताः।
कान्ते मम गन्तव्या भूरेतैरेव पिच्छिलिता॥ २३५॥

पदार्थ—गमनोद्यमे—प्रस्थानकाले—प्रस्थान के समय। तव नयनात्—तेरे नेत्र से। कतिपये जलबिन्दवः—कतिपय जल की बूँदें। स्खलिताः—टपक पड़ीं। कान्ते—सुन्दरि! एतैः एव—इन्हीं से ही। मम गन्तव्या भूः—मेरी गन्तव्य भू अर्थात् मार्ग। पिच्छिलिता—फिसलन वाला, चरण रखने अयोग्य।

सरलार्थ—मेरे प्रस्थान के समय तेरे नेत्र से कतिपय जल की बूँदें (मङ्गला-भाव की शङ्का से रोकने पर भी रुकीं नहीं) जो टपक पड़ीं : उन्हीं आँसू की बूँदों से मेरा मार्ग पिच्छिल हो गया (उस पर मुझ से चरण नहीं रखते बनता) ॥ २३५ ॥

नायक नायिका के मुख का वर्णन अपने मित्र से कर रहा है—

जृम्भोत्तम्भितदोर्युगयन्त्रितताटङ्कपीडितकपोलम् ।
तस्याः स्मरामि जलकणलुलिताञ्जनमलसदृष्टि मुखम् ॥२३६॥

पदार्थ—जृम्भोत्तम्भितदोर्युगयन्त्रितताटङ्कपीडितकपोलम्—जृम्भया उत्तम्भितम् ऊर्ध्वीकृतं दोर्युगम् हस्तद्वयम् तेन यन्त्रिताभ्यां ताटङ्काभ्यां पीडितौ कपोलौ यस्य तत्—जमुहाई से दोनों हाथों को ऊपर उठाने से दबे कान के बालों से जिसके कपोल पीडित हो उठे । जलकणलुलिताञ्जनम्—जलकणैः लुलितं विस्तृतमञ्जनं यस्य तत्—जलकणों से जिसका अञ्जन फैल गया । अलसदृष्टि—अलसा दृष्टिः यस्य तत्—जिसकी दृष्टि अलस है । तस्याः मुखं स्मरामि—उसके मुख का मैं स्मरण करता हूँ ।

सरलार्थ—जमुँहाई लेते समय ऊपर उठे दोनों हाथ कान के कुण्डल में जाकर लगे जिससे दब कर उन्होने कपोलो को पीड़ित किया, आँखों में आये जलकणो से अञ्जन फैल गया, नेत्र अलसाये हुए हैं—इस प्रकार का उस सुन्दरी का मुख, मैं स्मरण किया करता हूँ ॥ २३६ ॥

वन में परपुरुष के साथ रात बिता कर प्रातः लज्जा का अभिनय करती नायिका से कोई स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

जागरयित्वा पुरुषं परं वने सर्वतो मुखं हरसि ।
अयि शरदनुरूपं तव शीलमिदं जातिशालिन्याः ॥२३७॥

पदार्थ—अयि शरद् ! जातिशालिन्याः—(१) मालतीशालिनी का, (२) विपरीतलक्षणा से अधम जाति वाली का । इदं शीलम्—यह स्वभाव । तव अनुरूपम्—तुम्हारे अनुरूप है । वने—(१) जल में, (२) वन में । परं पुरुषम्—(१) परमपुरुष विष्णु को, (२) पराये पुरुष को । जागरयित्वा—जगा कर । (देवोत्थानी एकादशी शरद् ऋतु में पड़ती है और उसी दिन विष्णु जी जागते हैं) । सर्वतः—(१) सर्वत्र, (२) सब से । मुखं—(१) जलम्, (२) वदनं—(१) जल को, (२) वदन को । हरसि—(१) हरती है, (२) छिपाती है ।

सरलार्थ—अयि शरद् ! तुझ जातिशालिनी (मालतीशालिनी) का यह

स्वभाव तेरे अनुरूप है। जल में (शयित) परमपुरुष विष्णु को जगा कर सर्वत्र जल का शोषण करती है। (अयि शरद् ऋतु के समान अधम जाति की, निर्लज्जे! वन में परपुरुष को जगा कर (रात भर उसके साथ सुरतक्रीडा कर प्रातः) सबसे मुख चुराती है, तू जैसी अधम जाति की है, तेरा स्वभाव भी उसी के अनुरूप है) ॥ २३७ ॥

कोई सखा से कह रहा है—

जीवामि लंघितावधिदिनेति लज्जावशेन गेहिन्या ।
मयि निह्नुतोऽपि बाष्पैरसंवरैर्व्यञ्जितो मानः ॥ २३८ ॥

पदार्थ—लंघितम् अवधिदिनं यया सा—जिसने अवधिदिन को पार कर दिया। जीवामि—जी रही हूँ। इति लज्जावशेन—इस लज्जावश। गेहिन्या—गृहिणी ने। निह्नुतः अपि—गोपितः अपि—छिपाये गये भी। मयि—मद्-विषयक। मानः—मान। असंवरैः—संवरीतुमशक्यैः—संवरण न किये जा सकने वाले। बाष्पैः—अश्रुभिः—अश्रुओं से। व्यञ्जितः—ज्ञापितः—प्रकट किया।

सरलार्थ—(तुम्हारे निश्चित समय पर न आने पर) मैं अवधिदिन बिता कर भी जी रही हूँ (मुझ सी अधम कौन होगी) इस लज्जावश गृहिणी ने यद्यपि बहुत छिपाया तथापि मद्विषयक उसका मान, आँसुओं से, जो किसी प्रकार रोके नहीं जा सके, प्रकट हो गया ॥ २३८ ॥

कोई स्त्री किसी पुरुष से अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

जाल्मो गुरुः सुधृष्टो वामेतरचरणभेद उपदेशः ।
ख्यातिर्गुणधवल इति भ्रमसि सुखं वृषभ रथ्यासु ॥२३९॥

पदार्थ—सुधृष्टः—अत्यन्त अशिष्ट। जाल्मः—अविवेकी। गुरुः—उपदेशकः। वामेतरचरणभेदः उपदेशः—(१) वामे, इतरे दक्षिणे चरणम् तस्य भेदः उपदेशः—बायें चलना, दायें चलना इसी का भेद जानना उपदेश है, (२) वामेतरेण दक्षिणेन चरणेन भेदः ताडनम्—दक्षिण चरण से प्रहार करना तुम्हारे लिए उपदेश है। गुणधवलः—गुणेन—(१) रज्जुना, नासारज्जुना धवलः उज्ज्वलः—नासारज्जु (नाथ) से धवल अर्थात् सुशोभित, (२) गुणैः चातुर्यादिभिः विपरीतलक्षणया अवगुणैः धवलः सुशोभितः। ख्यातिः—प्रसिद्धिः। इति—इस प्रकार। वृषभ! रथ्यासु—सड़कों पर, गलियों में। भ्रमसि—घूमते हो।

सरलार्थ—तुम्हारा उपदेशक अत्यन्त अशिष्ट एवम् अविवेकी है, बायें-दायें चलना इसी का भेद जान लेना ही तुम्हारे लिए उपदेश है, गुण (नासा-

रज्जु) से सुशोभित हो यही तुम्हारी ख्याति है। इस प्रकार हे वृषभ ! तुम सड़कों पर, गलियों में इधर-उधर घूम रहे हो।

(तेरा उपदेशक अत्यन्त अशिष्ट एवम् अविवेकी है, तुझे और कोई उपदेश, ज्ञान कराने के लिए उपयुक्त नहीं है, दाहिने चरण से तुझ पर प्रहार किया जाय—यही तेरे लिए उपदेश है, अपने अवगुणो से तू जगत्-प्रसिद्ध हो रहा है, बैल की तरह सड़कों पर, गलियो में मारा मारा फिर रहा है (तू मेरे घर आने योग्य नहीं है) ॥ २३९ ॥

वैद्य में आसक्त कोई तरुणी ज्वर को सम्बोधित करके कह रही है—

ज्वर वीतौपधबाधस्तिष्ठ सुखं दत्तमङ्गमखिलं ते।
असुलभलोहाकर्पणपाषाण सखे न मोक्ष्यसि माम् ॥२४०॥

पदार्थ—ज्वर ! वीतौषधबाधः—वीता अपगता औषधस्य बाधा यस्य सः—जिसकी औषध-बाधा दूर हो गयी। अखिलम् अङ्गम्—पूरा शरीर। ते—तव—तुम्हें। सुखम्—सुख से (क्रिया-विशेषण)। दत्तम्—दे दिया। असुलभलोहा-कर्षणपाषाण—असुलभः दुर्लभः यः (वैद्यरूपः) लोहः तस्य आकर्षण-पाषाण (चुम्बकः इति लोके कथ्यते)—दुर्लभ वैद्यरूप लोहे को खींचकर लाने वाले चुम्बक पाषाण ! सखे ! माम् न मोक्ष्यसि—(आगे भी) मुझे न छोड़ना।

सरलार्थ—हे ज्वर ! (तुम सदा बने रहो—इसलिए मैं औषध-सेवन नही करूँगी) तुम्हारी औषध-बाधा हट गयी। मैंने अपना सारा शरीर बड़ी प्रसन्नता से तुम्हें समर्पित कर दिया। दुर्लभ वैद्यरूप लोहे को खींचकर लाने वाले चुम्बक ! सखे ! आगे भी तुम मुझे कभी न छोड़ना (दुर्लभ परमप्रिय वैद्य का आना-जाना तुम्हारे ही बहाने हुआ करे) ॥ २४० ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

जीवनहेतोर्मिलिता मुञ्चति करकर्पणेन न खलु त्वाम्।
नौरिव निम्नं सुन्दर मुग्धा तद्विरसतां मा गाः ॥ २४१ ॥

पदार्थ—जीवनहेतोः मिलिता—(१) जीवनात् हेतोः मिलिता—जीवनार्थ-मागता। मुग्धा—सुन्दरी। करकर्पणेन—(१) करस्य हस्तस्य कर्पणेन—हाथ के कर्षण से, (२) करेण कर्षणेन—कर द्वारा खींचने से। त्वाम्—तुमको। नौः—नौका। निम्नम् इव—(१) नीचे—ढालू प्रदेश को,(२) नीच को जैसे। न मुञ्चति—नहीं छोड़ती है। सुन्दर ! तद्विरसताम्—तस्या विरसताम्—(१)उसके विषय में निष्ठुरता को, (२) जलाभाववत्ता को। मा गाः—मत प्राप्त हो।

सरलार्थ—जीवनार्थ आई सुन्दरी हस्तकर्पण से तुम नीच को नहीं छोड़ती जैसे कर द्वारा खींचने से नौका नीचे ढालू प्रदेश को नहीं छोड़ती। अतः हे सुन्दर ! उसके विषय में निष्ठुर एवं रसहीन (जलाभाववान्) मत बनो ॥२४१॥

नायिका नायक से कह रही है—

जघनेन चापलं तव वितन्वतेयं तनूकृतापि तनुः ।
शाणेनेव क्षीणा स्मरासिपुत्री मनो विशति ।। २४२ ।।

पदार्थ—चापलं वितन्वता—चाञ्चल्यं विस्तारयता—चञ्चलता अधिक बढ़ाता । जघनेन—अन्य अङ्गनाओं के जघन प्रदेश से । तनूकृता अपि—दुर्बल बना दिया गया । तव इयं तनुः—तुम्हारा यह शरीर । शाणेन—सान द्वारा । क्षीणा—घिसी अतएव क्षीण । स्मरासिपुत्री—स्मरस्य असिपुत्री छुरिका इव—कामदेव की छूरी-सी । मनो विशति—मन में घुस जाती है ।

सरलार्थ—अन्य अंगनाओं के (विपरीतरत के समय) अत्यन्त चञ्चल जघन प्रदेश से दुर्बल कर दिया गया भी तुम्हारा यह शरीर, सान से घिसी क्षीण कामदेव की छुरी सा (मेरे) मन में घुस जाता है (विपरीत सुरतातिशय से क्षीण भी तुम्हारा शरीर मेरे मन को मुग्ध कर लेता है, तुम्हारे ऐसे शरीर को देखकर भी मै मान नहीं करती) ।। २४२ ।।

नायक नायिका से कह रहा है—

ज्योत्स्नाभिसारसमुचितवेषे व्याकोशमल्लिकोत्तंसे ।
विशसि मनो निशितेव स्मरस्य कुमुदत्सरुच्छुरिका ।।२४३।।

पदार्थ—ज्योत्नाभिसारसमुचितवेषे—ज्योत्स्नायां चन्द्रिकायाम् अभिसारः तत्र समुचितः वेषः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—चाँदनी में अभिसार के अनुकूल वेष है जिसका । व्याकोशमल्लिकोत्तंसे—व्याकोशा विकसिता मल्लिका तद्रूप उत्तंसः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—विकसित मल्लिका ही सीसफूल है जिसका । निशिता—सान पर चढ़ाई गई अतएव तीक्ष्ण । स्मरस्य—कामदेव की । कुमुदत्सरुच्छुरिका इव—कुमुदरूपः त्सरुः मुष्टिः यस्याः एतादृशी छुरिका इव—कुमुदरूप मूठवाली छुरिका सी । मनो विशसि—तू मन में घुस जाती है ।

सरलार्थ—हे चाँदनी में अभिसार के अनुकूल वेषवाली ! विकसित मल्लिका का सीसफूल रखने वाली । सान पर चढ़ाई गई अतएव तीक्ष्ण, कुमुदरूप मूठवाली, कामदेव की छुरी-सी तू मेरे मन मे घुस जाती है—मन को मुग्ध कर लेती है ।। २४३ ।।

कोई किसी को उपदेश दे रहा है—

जड सुखयसि परतरुणीं गृहिणीं कारयसि केवलं सेवाम् ।
आलिङ्गति दिशमिन्दुः स्वां तु शिलां वारि वाहयति ।।२४४।।

पदार्थ—जड !—(१) अविवेकिन् ! (२) जलमय होने से जड । परतरुणीम्—

परायी युवती को। सुखयसि—सुख देते हो। गृहिणीं केवलं सेवां कारयसि—गृहिणी से केवल सेवा कराते हो। इन्दुः—चन्द्रः। दिशम्—आलिङ्गति—दिशा का (जिसका स्वामी वह नहीं है) आलिङ्गन करता है। स्वां शिलां तु वारि वाहयति—अपनी शिला (चन्द्रकान्त) से जल गिरवाता है (रुलाता है)। चन्द्रोदय होने पर चन्द्रकान्त मणि से जल की बूँदे टपकने लगती हैं।

सरलार्थ—हे जड ! परयुवती को तो आनन्द देते हो और अपनी गृहिणी से केवल सेवा कराते हो। जैसे जलमय होने से जड चन्द्रमा दिशा (जिसका वह स्वामी नहीं) का तो आलिङ्गन करता है किन्तु अपनी शिला चन्द्रकान्तमणि से जल (आँसू) गिरवाता है ॥ २४४ ॥

नायक नायिका से मिलने के लिए उपयुक्त संकेतस्थल बता रहा है—

ज्योत्स्नागर्भितसैकतमध्यगतः स्फुरति यामुनः पूरः।
दुग्धनिधौ नागाधिपतल्पतले सुप्त इव कृष्णः ॥ २४५ ॥

पदार्थ—ज्योत्स्नागर्भितसैकतमध्यगतः—ज्योत्स्नायां गर्भितं यत् सैकतं तस्य मध्यगतः—चाँदनी के गर्भमध्यस्थित रेतीले तट के मध्य में स्थित। यामुनः पूरः—यमुना का जलप्रवाह। दुग्धनिधौ—क्षीरसागर में। नागाधिपतल्पतले—शेषशय्या पर। सुप्तः कृष्ण इव—सोये कृष्ण के समान। स्फुरति—शोभित हो रहा है। चन्द्रिका का उपमान, क्षीरसागर। सैकत का उपमान, लम्बा और श्वेत होने के कारण शेष। जलपूर का उपमान, श्याम और निश्चल होने के कारण कृष्ण है।

सरलार्थ—चाँदनी के गर्भ के मध्य में स्थित, रेतीले तट के बीच यमुना का निश्चल जलप्रवाह, क्षीरसागर में शेषशय्या पर सोये कृष्ण के समान शोभित हो रहा है (अतः यमुनातट-सा अन्य स्थल उपयुक्त नहीं है, वहीं मिलने के लिए आओ) ॥ २४५ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता जकारव्रज्या।

झकारव्रज्या

नायक नायिका से कह रहा है—

झंकृतकङ्कणपाणिक्षेपैः स्तम्भावलम्बनैर्मौनैः।
शोभयसि शुष्करुदितैरपि सुन्दरि मन्दिरद्वारम् ॥ २४६ ॥

पदार्थ—हे सुन्दरि ! झंकृतकङ्कणपाणिक्षेपैः—झंकृतः कङ्कणः यस्मिन् एतादृशः पाणिः तस्य क्षेपः येषु तैः—झनकारयुक्त कङ्कणवाला हाथ, जिनमें बार-

बार उछाला जाता है। स्तम्भावलम्बनैः—स्तम्भः एव अवलम्बनं येषु तैः—खम्भा ही अवलम्बन है जिनमें। मौनैः शुष्करुदितैः अपि—मौन शुष्करुदनों से भी। मन्दिरद्वारम्—केलिमन्दिर के द्वार को। शोभयसि—शोभित करती हो।

सरलार्थ—हे सुन्दरि! (नवोढे!) [केलिमन्दिर में सखियाँ द्वारा बलपूर्वक प्रवेश कराते समय] बार-बार तू हाथों को बाधा डालने के लिए इधर-उधर चलाती है जिससे कङ्कण झंकृत हो उठते हैं, मन्दिरद्वार का स्तम्भ पकड़ लेती है, मौन शुष्क-रुदन करती है—इस प्रकार भी तू मन्दिरद्वार की शोभा बढ़ाती है (तेरी ऐसी अवस्थिति भी मुझे सुखद होती है) ॥ २४६ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता झकारव्रज्या।

ढकारव्रज्या

नायक की दुःशीलता एवम् उन्माद आदि की प्रतिक्रिया में स्वयं भी दुःशीलता करने की इच्छुक नायिका से सखी कह रही है—

ढक्कामाहत्य मदं वितन्वते करिण इव चिरं पुरुषाः।
स्त्रीणां करिणीनामिव मदः पुनः स्वकुलनाशाय ॥ २४७ ॥

पदार्थ—ढक्काम्—यशःपटहम्—यश का नगाड़ा। आहत्य—वादयित्वा—बजाकर। करिणः इव—गजाः इव—गज की तरह। पुरुषाः—पुरुष। चिरं—बहुत काल तक। मदं वितन्वते—मद (१—अभिमान, २—दान-जल) बढ़ाते हैं। करिणीनाम् इव—हथिनियों का-सा। स्त्रीणां मदः—स्त्रियों का मद। पुनः स्वकुलनाशाय—अपने कुल के नाश के लिए होता है।

सरलार्थ—यश का नगाड़ा बजाकर गजों की भाँति पुरुष मद (१—अभिमान, २—दान-जल) बढ़ाते हैं अर्थात् पुरुषों का मद उनके यश के लिए होता है। हथिनियों का-सा स्त्रियों का मद अपने कुल के नाश के लिए होता है (अतः तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए) ॥ २४७ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता ढकारव्रज्या।

तकारव्रज्या

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

तां तापयन्ति मन्मथबाणास्त्वां प्रीणयन्ति बत सुभग।
तपनकरास्तपनशिलां ज्वलयन्ति विधुं मधुरयन्ति ॥२४८॥

सरलार्थ—हे सुभग! कामदेव के बाण उस नायिका को तो सन्ताप

देते हैं किन्तु तुम्हें सुखी बनाते हैं; जैसे सूर्य की किरणें सूर्यकान्त-मणि को तो जलाती है किन्तु चन्द्रमा को परिपुष्ट करती हैं ॥ २४८ ॥

नायक नायिका से कह रहा है—

तव सुतनु सानुमत्या बहुधातुजनितनितम्बरागायाः ।
गिरिवरभुव इव लाभेनाप्नोमि द्व्यंगुलेन दिवम् ॥ २४९ ॥

पदार्थ—हे सुतनु—सुन्दरि ! सानुमत्याः—(१) अनुमत्या सह इति सानुमतिः तस्याः—कथनानुसार मैं आचरण करूँगी इस अनुमतिसहित, (२) सानुः अस्ति अस्याः इति सानुमती तस्याः शिखरवत्याः—शिखरवती । बहुधातु-जनितनितम्बरागायाः—(१) (बहुधा + तु + जनित) तु निश्चयेन बहुधा बहुप्रकारम् जनितः उत्पादितः नितम्बे रागः प्रीतिः यया तस्याः—जिसने बहुत प्रकार से नितम्बविषयक प्रीति उत्पन्न कीया, (२) (बहु + धातु) बहुभिः धातुभिः गैरिकादिभिः जनितः नितम्बे कटकप्रदेशे रागः लौहित्यादिः यस्याः तस्याः—जिसके कटक प्रदेश मे गैरिक (गेरू) आदि धातुओं ने लाल आदि रङ्ग पैदा कर दिया । गिरिवरभुवः—हिमालयवसुधायाः इव—हिमालय-भूमि का-सा । लाभेन—प्राप्ति से । द्व्यंगुलेन स्वर्गं प्राप्नोमि—दो अंगुल से स्वर्ग प्राप्त करता हूँ अर्थात् स्वर्ग मुझसे दो ही अंगुल दूर है ।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! कथनानुसार आचरण की अनुमतिसहित जिसने अनेक प्रकार से नितम्बविषयक प्रीति उत्पन्न कर दी, इस प्रकार की तुझे, शिखरवती, अनेक गैरिकादि धातुओं से उत्पन्न किये गये विविध राग वाले कटक प्रदेश से युक्त हिमालय-भूमि सी, पाकर मैं स्वर्ग को अपने से दो ही अंगुल दूर समझता हूँ (स्वर्ग-सुख भी मेरे निकट है) ॥ २४९ ॥

नायिका सखी से कह रही है—

त्यक्तो मुञ्चति जीवनमुज्झति नानुग्रहेऽपि लोलत्वम् ।
किं प्रावृषेव पद्माकरस्य करणीयमस्य मया ॥ २५० ॥

पदार्थ—त्यक्तः—त्याग कर दिया गया । जीवनम्—(१) प्राणनम्, (२) जलं—(१) प्राण (२) जल । मुञ्चति—छोड़ देगा । अनुग्रहे—अनुग्रह करने पर । लोलत्वम्—(१) चाञ्चल्यम्, (२) उच्छलद्वीचिकत्वम्—लहरों का उछलना । न मुञ्चति—नहीं छोड़ता है । प्रावृषा—वर्षाऋतु के द्वारा । पद्माकरस्य—तडागस्य इव—सरोवर का-सा । मया अस्य किं करणीयम्—मेरे द्वारा इसका क्या किया जा सकता है ।

सरलार्थ—यदि इसे त्याग देती हूँ तो यह अपना जीवन (प्राण) त्याग देगा और यदि अनुग्रह करती हूँ तो अपनी यह चञ्चलता नहीं छोड़ता। (इस प्रकार दोनों ओर से मुझे कठिनाई है), तो मैं इसका क्या करूँ? जैसे वर्षा ऋतु यदि नहीं बरसती है तो सरोवर का जल सूख जाय और यदि बरसती है तो जल-पूर्ण हो लहरों का उछालना बन्द नहीं करता—तो दोनों प्रकार से कठिनाई में पड़ी वह सरोवर का क्या करे? ॥ २५० ॥

नायिका की विरहावस्था का वर्णन सखी नायक से कर रही है—

त्वद्विरहापदि पाण्डुस्तन्वङ्गी छाययैव केवलया।
हंसीव ज्योत्स्नायां सा सुभग प्रत्यभिज्ञेया ॥ २५१ ॥

पदार्थ—सा तन्वङ्गी—वह दुर्बल शरीर वाली। त्वद्विरहापदि—तेरे विरह रूप आपद् में। पाण्डुः—पीली। केवलया छायया एव—केवल छाया (१—कान्ति, २—छाया) से ही। ज्योत्स्नायाम्—चाँदनी में। हंसी इव—हंसी की भाँति। सुभग! सुन्दर! प्रत्यभिज्ञेया—पहिचानी जा सकती है।

सरलार्थ—हे सुभग! वह दुर्बल शरीरवाली तुम्हारे विरहरूप आपद् में (इतनी) पाण्डु (पीली) हो गयी है कि चाँदनी में हंसी के समान केवल छाया (१—कान्ति, २—छाया) से ही पहिचानी जा सकती है। (ऐसी नायिका को अब अपने विरह से दुःखित न करो) ॥ २५१ ॥

यहाँ से यह चली क्यों गयी—ऐसा कहते नायक से सखी कह रही है—

त्वयि विनिवेशितचित्ता सुभग गता केवलेन कायेन।
घनजालरुद्धमीना नदीव सा नीरमात्रेण ॥ २५२ ॥

पदार्थ—हे सुभग! त्वयि विनिवेशितचित्ता—विनिवेशितम् स्थापितं चित्तं यया सा—जिसने तुझमें चित्त स्थापित कर दिया। केवलेन कायेन—केवल शरीर से। घनजालरुद्धमीना—घनं निविडं यत् जालं तस्मिन् रुद्धः मीनः यया सा—निविड जाल मे मीन जिससे रुक गया है। नीरमात्रेण—जलमात्र से। नदी इव—नदी की भाँति। गता—गयी है।

सरलार्थ—हे सुभग! तुझी में चित्त स्थापित कर केवल शरीरमात्र से, निविड जाल में मीन को रोक, केवल नीरमात्र से नदी की भाँति वह गई है (अभी पुनः आयेगी) ॥ २५२ ॥

नायकविषयक नायिका की आसक्ति का वर्णन, नायक से सखी कर रही है—

त्वयि संसक्तं तस्याः कठोरतर हृदयमसमशरतरलम्।
मारुतचलमञ्चलमिव कण्टकसंपर्कतः स्फुटितम् ॥ २५३ ॥

पदार्थ—हे कठोरतर! त्वयि संसक्तम्—तुझमें आसक्त। असमशरतरलम्—असमशरेण कामदेवेन तरलम् चञ्चलम्—कामदेव से चञ्चल। तस्याः हृदयम्—उसका हृदय। मारुतचलम्—मारुतेन वायुना चलम्—वायु से चञ्चल। कण्टक-संपर्कतः—काँटे से उलझ जाने के कारण। अञ्चलमिव—वस्त्रांचल सा। स्फुटि-तम्—विदीर्णम्—विदीर्ण हो गया।

सरलार्थ—हे निष्करुण! तुझमें आसक्त, मदन से चञ्चल उसका हृदय, वायु से चञ्चल, काँटे से उलझे वस्त्रांचल की भाँति विदीर्ण हो गया॥ २५३॥

यद्यपि तू बहुत लज्जा करती है तथापि बहुत से लोग तुझमें आसक्त हैं—ऐसा सखी नायिका से अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

त्वमसूर्यंपश्या सखि पदमपि न विनापवारणं भ्रमसि।
छाये! किमिह विधेयं मुञ्चन्ति न मूर्तिमन्तस्त्वाम्॥२५४॥

पदार्थ—हे छाये!—छायारूपे सखि! त्वम् असूर्यंपश्या—सूर्यदर्शन नहीं करती है (छाया अधोमुखी होने से सूर्यदर्शन नहीं कर पाती)। अपवारणं विना—बिना व्यवधान के। पदमपि न भ्रमसि—एक पग भी नहीं चलती है (छाया भी विना व्यवधान के नहीं होती)। मूर्तिमन्तः—शरीरधारी लोग अर्थात् सभी। त्वां न मुञ्चन्ति—तुझे नहीं छोड़ते हैं। इह—इस विषय में। किं विधे-यम्—क्या किया जाय, कुछ सुझाई नहीं देता।

सरलार्थ—हे छायारूपे सखि! तू सूर्य का भी दर्शन नहीं करती, विना व्यवधान (परदा) के एक पग भी नहीं चलती; तथापि तुझे सभी नहीं छोडते। इस विषय में क्या किया जाय? (कोई प्रतीकार मुझे सूझता नहीं है)॥२५४॥

नायिका के विरह का वर्णन सखी नायक से कर रही है—

तव विरहे विस्तारितरजनौ जनितेन्दुचन्दनद्वेषे।
बिसिनीव माघमासे विना हुताशेन सा दग्धा॥२५५॥

पदार्थ—विस्तारितरजनौ—विस्तारिता रजनिः येन तस्मिन्—जिसने रात लम्बी कर दी। जनितेन्दुचन्दनद्वेषे—जनितः इन्दुचन्दनयोः द्वेषः येन तस्मिन्—जिसने चन्द्रमा और चन्दन से द्वेष पैदा कर दिया। तव विरहे—तेरे विरह में। माघमासे—माघमास में। बिसिनी इव—कमलिनी के समान। हुताशेन विना—आग के विना ही। दग्धा—जल गयी—नष्ट हो गयी।

सरलार्थ—(नींद न आने से) जिसने रात लम्बी कर दी, (उद्दीपक होने से) चन्द्रमा और चन्दन से जिसने द्वेष पैदा कर दिया, ऐसे तेरे विरह मे, रात लम्बी कर देने वाले, (शीतल होने से) चन्द्रमा और चन्दन से घृणा

उत्पन्न कर देने वाले माघमास में कमलिनी की भाँति, वह विना आग के ही भस्म हो गयी (सन्तप्त हो उठी, नष्ट हो गयी) ॥ २५५ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

तरुणि त्वच्चरणाहतिकुसुमितकङ्केल्लिकोरकप्रकरम् ।
कुटिलचरिता सपत्नी न पिबति बत शोकविकलापि ॥२५६॥

पदार्थ—हे तरुणि ! त्वच्चरणाहतिकुसुमितकङ्केल्लिकोरकप्रकरम्—तव चरणस्य आहतिः प्रहारः तया कुसुमितः यः कङ्केल्लिः अशोकवृक्षः तस्य कोरकाणाम् कलिकानाम् प्रकरम् समूहम्—तेरे चरणप्रहार से कुसुमित अशोकवृक्ष की कलियों को । कुटिलचरिता—कुटिलं चरितं यस्याः सा—कुटिल आचरण है जिसका । सपत्नी । शोकविकला अपि—शोक से विकल भी । बत—खेदे—खेद है । न पिबति—नहीं पीती है ।

सरलार्थ—हे तरुणि ! तेरे चरण-प्रहार से कुसुमित अशोकवृक्ष की कलियो को दुष्ट तेरी सपत्नी, खेद है—कि शोक से विकल होती भी नहीं पीती है [शोक के समय भी तुझ से इतना द्वेष करती है, स्वस्थ एवं प्रसन्न रह कर तो न जाने क्या करेगी, अतः तू मान छोड़ कर नायक को प्रसन्न रख] ।

(अशोक-कलिका का रसपान करने से शोक नष्ट होता है । सुन्दरी के चरण-प्रहार से अशोकवृक्ष में पुष्प आते हैं—ये लोकप्रसिद्ध बातें हैं) ॥२५६॥

नायक, नायिका की प्रशंसा कर रहा है—

तल्पे प्रभुरिव गुरुरिव मनसिजतन्त्रे श्रमे भुजिष्येव ।
गेहे श्रीरिव गुरुजनपुरतो मूर्तेव सा व्रीडा ॥ २५७ ॥

पदार्थ—तल्पे—शय्या पर । प्रभुः इव—प्रभु-सी । मनसिजतन्त्रे—कामशास्त्रे । गुरुः इव—गुरु-सी । श्रमे—श्रम में । भुजिष्या—स्वाम्युच्छिष्टं भुङ्क्ते या—स्वामी का उच्छिष्ट जो भोजन करती है अर्थात् दासी । इव—समान । गेहे—घर में । श्रीः इव—लक्ष्मी-सी । गुरुजनपुरतः—गुरुजन के सामने । मूर्ता—मूर्तिमती । व्रीडा इव—लज्जा-सी ।

सरलार्थ—शय्या पर नायिका (प्रौढ़ होने के कारण) प्रभु-सी, (मन्मथ-कलाकलापोपदेशक होने से) कामशास्त्र में गुरु-सी, श्रम मे दासी-सी, घर मे लक्ष्मी-सी, गुरुजनो के आगे मूर्तिमती लज्जा-सी है (ऐसी नायिका पाकर मैं भी सर्वोत्कृष्ट हूँ) ॥ २५७ ॥

नायक रजोधर्मयुक्त नायिका से कह रहा है—

त्वमलभ्या मम तावन्मोक्तुमशक्तस्य संमुखं व्रजतः ।
छायेवापसरन्ती भित्त्या न निवार्यसे यावत् ॥ २५८ ॥

पदार्थ—संमुखं व्रजतः—गच्छतः—संमुख जाते हुए। मोक्तुमशक्तस्य—छोड़ने में असमर्थ। मम—मेरी। अपसरन्ती—दूर भागती। भित्त्या यावत् न निवार्यसे—दीवाल आदि आगे पड़ जाने से जब तक रोक नहीं ली जाती है। तावत्—तब तक। छाया इव अलभ्या—छाया की भाँति अलभ्य। त्वम्—तू है।

सरलार्थ—(चुम्बनार्थ) संमुख जाते हुए, छोड़ने में असमर्थ मेरी भागती छाया-सी, जब तक बीच में दीवाल आदि पड़ जाने से तू रोक नहीं ली जाती तब तक ही तू मुझे अलभ्य है (बीच मे दीवाल आदि पड़ने से तेरा अपसरण अवश्य रुकेगा और मै बिना चुम्बन लिए तुझे नही छोड़ूँगा) २५८ ॥

वसन्त में मदन-वेदना असह्य होती है—ऐसा कोई कह रहा है—

तपसा क्लेशित एष प्रौढबलो न खलु फाल्गुनेऽप्यासीत् ।
मधुना प्रमत्तमधुना को मदनं मिहिरमिव सहते ॥२५९ ॥

पदार्थ—तपसा—(१) तप से, (२) माघमास से। क्लेशिते—दौर्बल्यं गमिते—(१) दुर्बल किया गया, (२) क्लेश दिया गया। फाल्गुने—(१) अर्जुने, (२) तन्नाम्नि मासि—(१) अर्जुन में, (२) फाल्गुन मास में। खलु—निश्चयेन। प्रौढबलोऽपि—प्रौढबल भी। न आसीत्—नही था। अधुना—इस समय। मधुना—(१) वसन्तेन, (२) चैत्रेण—(१) वसन्त, (२) चैत्र द्वारा। प्रमत्तम्—उत्कृष्टोउन्मादशालिन—उत्कृष्टो उन्मादशाली। मदनं—मदन को। सूर्यमिव—सूर्य की भाँति। कः सहते—कौन सहता है।

सरलार्थ—जैसे सूर्य, माघ मास से निस्तेज किये गये फाल्गुन में भी अपने प्रौढ बल का प्रभाव नहीं दिखा पाता ठीक उसी तरह तपश्चर्या से दुर्बल अर्जुन में कामदेव अपना कोई बल नहीं दिखा सका था किन्तु जैसे इस समय चैत्र से उत्कृष्ट तेज का सूर्य सहा नहीं जाता, उसी प्रकार वसन्त से उत्कृष्ट उन्मादशाली मदन को इस समय कौन सह सकता है अर्थात् कोई नही ॥२५९॥

सखी नायिका के विरह का वर्णन नायक से कर रही है—

त्वद्गमनदिवसगणनावलक्षरेखाभिरङ्किता सुभग ।
गण्डस्थलीव तस्याः पाण्डुरिता भवनभित्तिरपि ॥ २६० ॥

पदार्थ—हे सुभग ! त्वद्गमनदिवसगणनावलक्षरेखाभिः—तव गमनदिव-

साना गणना तया वलक्षाः धवलाः रेखा. ताभि—तेरे जाने के दिनों की गणना के उद्देश्य से धवल रेखाओं से। अङ्किता—चिह्नित। तस्या—उसकी। भवनभित्तिः अपि—घर की दीवाल भी। गण्डस्थली इव—कपोलस्थली की भाँति ही। पाण्डुरिता—पाण्डुर भाव को प्राप्त हो गयी।

सरलार्थ—हे सुभग! तुम्हें गये इतने दिन हो गये—इस बात की जानकारी रखने के लिए उज्ज्वल रेखाओं से चिह्नित, उसके घर की दीवाल भी, उसकी गण्डस्थली की भाँति ही धवलता को प्राप्त हो गयी (अब चलने में और विलम्ब न करो)॥ २६०॥

अपने गृहस्वामी के अतिरिक्त अन्य में क्यों अनुराग कर रही है—ऐसा कहती सखी से नायिका कह रही है—

तस्याग्राम्यस्याहं सखि! वक्रस्निग्धमधुरया दृष्ट्या।
विद्धा तदेकनेया पोत्रिण इव दंष्ट्रया धरणी॥ २६१॥

पदार्थ—हे सखि! तस्य अग्राम्यस्य—(१) उस नागरिक की, (२) उस वन्य की। वक्रस्निग्धमधुरया—तिरछी, प्रेमार्द्र एवं सुन्दर दृष्टि से। विद्धा—बिंधी। अहम्—मैं। पोत्रिणः—वराहस्य—वराह की। दंष्ट्रया—दंष्ट्रा से। धरणी—पृथिवी। इव। तदेकनेया—तस्य एकस्य नेतुं योग्या—उसी एक के पास पहुँचाने योग्य (हूँ)।

सरलार्थ—हे सखि! उस नागरिक की तिरछी, प्रेमार्द्र एवं स्निग्ध मधुर दृष्टि से बिंधी मैं, वराह की दंष्ट्रा से (विद्ध), पृथिवी की भाँति, केवल उसी के वहन करने योग्य हो गयी—उसी में अनुरक्त हूँ॥ २६१॥

अत्यन्त सम्पन्न गाँव में भी रहने पर केवल चण्डाल के अनुग्रह से तुम अभय रह सकते हो—ऐसा, कोई किसी से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

त्वयि कुग्रामवटद्रुम वैश्रवणो वसतु वा लक्ष्मीः।
पामरकुठारपातात्कासरशिरसैव ते रक्षा॥ २६२॥

पदार्थ—कुग्रामवटद्रुम—हे निन्दित ग्राम के वटवृक्ष! वैश्रवणः—कुवेरः—कुवेर। वसतु—रहे। लक्ष्मीः वा वसतु—अथवा लक्ष्मी रहे। पामरकुठारपातात्—पामरस्य मूर्खस्य कुठारपातात्—मूर्ख के कुठारपात से। ते रक्षा—तुम्हारी रक्षा। कासरशिरसा एव—कासरस्य महिषस्य—महिष के सिर से ही।

सरलार्थ—हे कुग्रामवटवृक्ष! (यहाँ) चाहे कुवेर, चाहे लक्ष्मी ही क्यो न वसती हो किन्तु तेरी, दुष्टों के कुठारपात से रक्षा, केवल भैंसे के सिर से ही है। (चण्डाल द्वारा काटे गये सिर के तुममें टँगे रहने से ही लोगों द्वारा अपवित्र समझे गये तुम काटे नहीं जाते हो)॥ २६२॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

तव मुखर वदनदोषं सहमाना मोक्तुमक्षमा सुतनुः ।
सा वहति विट भवन्तं घुणमन्तः शालभञ्जीव ॥२६३॥

पदार्थ—हे मुखर!—कटुभाषिन् !—तीक्ष्णमुखवाले! तव वदनदोषम्—(१) तुम्हारे कटुभाषण को, (२) मुख से भीतर-भीतर काटना। सहमाना—सहती हुई। मोक्तुम् अक्षमा—तुम्हें छोड़ने मे असमर्थ। सा सुतनुः—वह सुन्दरी। विट !—वेश्यासक्त ! भवन्तम्—तुमको। शालभञ्जी—काठ की पुतली। घुणम् इव—घुन की भाँति। अन्त—(१) अपने हृदय में, (२) अपने भीतर। वहति—रखती है।

सरलार्थ—हे कटुभाषिन् ! तुम्हारे कटु भाषण को सहती, तुम्हें छोड़ने में असमर्थ वह सुन्दरी, हे वेश्यासक्त ! तुमको उसी तरह अपने हृदय में रखती है जैसे काठ की पुतली, तीक्ष्णमुखवाले घुन (कीटविशेष) की भीतर-भीतर काटे जाने की पीडा को सहती, उसे छोड़ने में असमर्थ, अपने भीतर ही उसे रखती है ॥ २६३ ॥

निरपराध, दुष्टों से पीडित किये जाते व्यक्ति से कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

तृणमुखमपि न खलु त्वां त्यजन्त्यमी हरिण वैरिणः शबराः ।
यशसैव जीवितमिदं त्यज योजितशृङ्गसङ्ग्रामः ॥२६४॥

पदार्थ—हे हरिण ! तृणमुखमपि—तृणं मुखे यस्य तम्—जिसके मुख में तृण है, मुख में तिनका लिए शरणागत। त्वाम्—तुझे। अमी वैरिण शबरा—ये वैरी शबर। खलु न त्यजन्ति—निश्चय नहीं छोड़ते हैं। योजितशृङ्गसङ्ग्राम—योजितः शृङ्गै सङ्ग्राम येन—जिसने सींगो से सङ्ग्राम की योजना बनाई। यशसा एव—यशःपूर्वक। इदं जीवितम्—यह जीवन। त्यज—छोड़।

सरलार्थ—हे हरिण ! मुख में तृण लिये (शरणागत भी) तुझे ये वैरी भील नहीं छोड़ेंगे अत तू सींगों से सङ्ग्राम की योजना कर यशःपूर्वक इस जीवन को त्याग।

(प्रबल शत्रु से युद्ध करके मरना अच्छा है, भागना अथवा शरणागत होना नहीं) ॥ २६४ ॥

मानिनी के चरणो पर मस्तक रक्खे, किन्तु केश पकड़ कर दूर कर दिए गये नायक की उक्ति, मानिनी के प्रति—

त्रिपुररिपोरिव गङ्गां मम मानिनि जनितमदनदाहस्य ।
जीवनमर्पितशिरसो ददासि चिकुरग्रहेणैव ॥ २६५ ॥

पदार्थ—हे मानिनि ! जनितमदनदाहस्य—(१) जनितः मदनेन दाह यस्य तस्य—मदन ने जिसे दग्ध किया। (२) जनित. मदनस्य दाहः येन तस्य—जिसने काम देव को भस्म किया, अर्पितशिरस.—अर्पितं शिर. येन तस्य—जिसने (१—चरणों पर प्रणाम करने के लिए, २—प्रवाह ग्रहण करने के लिए) मस्तक अर्पित कर दिया। मम—मेरा । त्रिपुररिपो.—शिवस्य—शिव का। गङ्गा इव—गङ्गा की भाँति। चिकुरग्रहेण एव—केशों को पकड़ने से ही। जीवनम् (१—जीवितम्, २—जलम्)। ददासि—देती हो।

सरलार्थ—हे मानिनि ! मदनद्वारा दग्ध, प्रणामार्थ चरणो में नतमस्तक मेरा केश पकड़ कर, कामदेव को दग्ध करने वाले, प्रवाह ग्रहण के लिए सिर अर्पित किये शिवजी के केश पकड़ कर (जटाओं में उलझ कर) जल (जीवन) प्रदान करने वाली गङ्गा की भाँति तू मुझे जीवन प्रदान कर रही है ॥ २६५ ॥

सखियों से छिपा कर, किसी से संभोग करने पर नायिका से सखी कह रही है—

त्वत्संकथासु मुखरः सनिन्दसानन्दसावहित्थ इव ।
स खलु सखीनां निभृतं त्वया कृतार्थीकृतः सुभगः ॥२६६॥

पदार्थ—सः सुभगः नायकः—वह सौभाग्यशाली नायक । खलु—निश्चयेन—निश्चय। सखीनां निभृतम्—सखियों से छिपा कर। त्वया कृतार्थीकृतः—तूने कृतार्थ किया। त्वत्संकथासु—तुम्हारे विषय में चलायी गयी बातो में । मुखरः—उत्तर-प्रत्युत्तरकारी । सनिन्दसानन्दसावहित्थः इव—सनिन्द, सानन्द, सावहित्थ (आकार गोपन करता हुआ) सा।

सरलार्थ—वह सौभाग्यशाली नायक, सखियों से छिपा कर तेरे द्वारा कृतार्थ किया गया, कहीं तेरी चर्चा चलने पर सनिन्द, सानन्द, आकारगोपवान् सा, बार-बार उत्तर-प्रत्युत्तर करता है (यदि वह तेरी सङ्गति न प्राप्त किये होता तो कैसे ऐसा व्यवहार करता ?) ॥ २६६ ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

त्वयि सर्पति पथि दृष्टिः सुन्दर वृतिविवरनिर्गता तस्याः ।
दरतरलभिन्नशैवलजाला शफरीव विस्फुरति ॥ २६७ ॥

पदार्थ—हे सुन्दर ! त्वयि पथि सर्पति—त्वयि मार्गे चलति—जब तू रास्ते पर चलता रहता है। वृतिविवरनिर्गता—वृत्याः आवरणस्य विवरेण छिद्रेण निर्गता—परदे के छेद से निकली। तस्याः दृष्टिः—उसकी दृष्टि। दरतरलभिन्नशैवलजाला—दरतरला ईषचञ्चला अत एव भिन्नं शैवालजालं यया सा—

जिससे सेवार-समूह फट गया। शफरी इव—शफरी (छोटी मछली जिसके शरीर में चमक होती है) के समान। विस्फुरति—विशेष शोभित हो रही है।

सरलार्थ--हे सुन्दर! जब तू रास्ते पर चलता रहता है (तो तुझे देखने के लिए) परदे के छिद्र से निकली उसकी दृष्टि, थोड़ी-सी चंचल, शैवालजाल को भेदकर बाहर उछलती मछली की भाँति शोभित होती रहती है ॥ २६७ ॥

नायक नायिका से कह रहा है—

ते सुतनु शून्यहृदया ये शङ्खं शून्यहृदयमभिदधति।
अङ्गीकृतकरपत्त्रो यस्तव हस्तग्रहं कुरुते ॥ २६८ ॥

पदार्थ—हे सुतनु!—सुन्दरि! ये—जो लोग। शङ्खम्—शङ्ख को। शून्यहृदयम्—हृदयविहीन अथवा प्राणशून्य। वदन्ति—कहते हैं। ते शून्यहृदयाः—वे मूर्ख हैं। यः शङ्खः—जो शङ्ख। अङ्गीकृतकरपत्रः—अङ्गीकृतं करपत्रं येन सः—जिसने करपत्र (क्रकच) अङ्गीकृत किया। (क्रकच—लोक में 'आरा' कहा जाता है, शङ्ख को परिष्कृत एवं सुन्दर बनाने के लिए आरा या आरी आदि से काटते-छीलते हैं। तव हस्तग्रहं—हाथ का पकड़ना (पाणिग्रहण)। कुरुते—करता है।

सरलार्थ—हे सुन्दरि! जो लोग शङ्ख को हृदयविहीन अथवा प्राणशून्य कहते हैं वे मूर्ख हैं क्योंकि यदि ऐसी बात होती तो आरे से अपना शरीर कटाकर (चूड़ियों के रूप में होकर) वह तुम्हारा हाथ क्यो ग्रहण करता (पाणिग्रहण क्यों करता)। (वह वास्तव में बड़ा सहृदय है, आरे से अपना शरीर कटा कर भी तुम्हारा करग्रह करता है) ॥ २६८ ॥

किसी महान् गुणी को कष्ट झेलते देख कर कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

ते श्रेष्ठिनः क्व संप्रति शक्रध्वज यैः कृतस्तवोच्छ्रायः।
ईषां वा मेढिं वाऽधुनातनास्त्वां विधित्सन्ति ॥ २६९ ॥

पदार्थ—हे शक्रध्वज—इन्द्रध्वज! यैः तव उच्छ्रायः कृतः—जिन्होंने तुझे ऊँचा उठाया था, ऊँचे फहराया था। संप्रति—इस समय। ते श्रेष्ठिनः—वे सेठ लोग। क्व—कुत्र, कहाँ है। अधुनातनाः—आज-कल के लोग। ईषां, मेढिं वा—हल का बाँस, हरिस अथवा खम्भा। विधित्सन्ति—विधातुमिच्छन्ति—बनाना चाहते हैं।

सरलार्थ—हे इन्द्रध्वज! जिन्होंने तुझे ऊँचे फहराया था, अब वे सेठ लोग नहीं रह गये हैं। आज-कल के लोग तो तुझे हल की हरिस अथवा खम्भा बनाना चाहते हैं ॥ २६९ ॥

प्रेम के भङ्ग होने पर पुनः जोड़ने से वह पूर्ववत् शोभित नहीं होता—ऐसा कोई स्त्री अन्य स्त्री से कह रही है—

तानवमेत्य च्छिन्नः परोपहितरागमदनसंघटितः ।
कर्ण इव कामिनीनां न शोभते निर्भरः प्रेमा ॥ २७० ॥

पदार्थ—तानवम्—(१) स्वल्पत्वम्, (२) कार्श्यं च, एत्य—(१) कम होकर, (२) कृश होकर, शिथिल कर । छिन्नः—टूट गया । परोपहितरागमदनसंघटितः—(१) परेण अन्येन उपहितः कृतः रागः अनुरागः यस्य स चासौ मदनेन संघटितः—किसी के करने से और मन्मथ-विकार से पुनः किया गया, (२) परेण अन्येन द्रव्येण उपहितः कृतः रागः रञ्जनं यस्य तथाभूतः, मदनेन मधूच्छिष्टेन (मोम इति लोके प्रसिद्धम्) संघटितः संघानं नीतः—अन्य पदार्थ से रंग दिया गया और मोम से पुनः जोड़ दिया गया । कामिनीनां प्रेमा—कामिनियों का प्रेम । कर्णः इव—बड़े-बड़े कड़ाह, हण्डा आदि बरतनों में उठाने के लिये लगा हुआ कड़ा जिसे किसी किसी प्रदेश में 'कान' कहते हैं,—के समान । निर्भरः—(१) आधिक्यशाली, (२) भारसहः—(१) आधिक्ययुक्त, (२) पहिले की भाँति अब भार न सह सकने वाला । न शोभते—नहीं शोभित होता है ।

सरलार्थ—(धीरे-धीरे) स्वल्प होकर टूट गया, दूसरे के करने से पुनः किया गया और मदन-विकार से पुनः जोड़ा गया कामिनियों का प्रेम, पहिले सा अतिशयित न होने के कारण उसी प्रकार नहीं शोभित होता है जैसे घिसते-घिसते कमजोर होने से टूट गया, दूसरी वस्तु से रँग दिया और मोम से जोड़ दिया गया, बड़े-बड़े बरतनों का कड़ा (कान) पहिले-सा भार न सह सकने के कारण शोभित नहीं होता (अतः तुम्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जिससे प्रेम भग्न हो जाय) ॥ २७० ॥

नाम महान् रखना, किन्तु वैसा गुण न होना विडम्बनामात्र है—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

तस्मिन्गतार्द्रभावे वीतरसे शुण्ठिशकल इव पुरुषे ।
अपि भूतिभाजि मलिने नागरशब्दो विडम्बाय ॥ २७१ ॥

पदार्थ—तस्मिन्, गतार्द्रभावे—गतः आर्द्रभावः (१—करुणा, २—आर्द्रता) यस्य तस्मिन्—जिसकी करुणा, आर्द्रता चली गई । वीतरसे—वीतः रसः (१—शृङ्गारादिः, २—तिक्तादिरसः) यस्य तस्मिन्—(१) जिसका शृङ्गारादि, (२) तिक्त आदि रस नष्ट हो गया । भूतिभाजि—(१) ऐश्वर्यवति, (२) भस्मादिवत्—(१) ऐश्वर्यवान्, (२) भस्मादियुक्त । मलिने—(१) पापी

(२) मलिन, मटमैला। पुरुषे शुण्ठिशकले इव—पुरुष के विषय में सोठ के टुकड़े की भाँति। नागरशब्दः—(१) नगरे भवः नागरः, (२) शुण्ठ्याः अपरं नाम। 'अथ शुण्ठी महौषधम्। स्त्री नपुंसकयोर्विश्वं नागरं विश्वभेषजम्॥' इत्यमरः। विडम्बाय—विडम्बना के लिए होता है।

सरलार्थ—जिसमें करुणा आदि आर्द्रभाव, शृङ्गार आदि रस नहीं है, जो पापयुक्त है, ऐश्वर्यशाली होते हुए भी ऐसे पुरुष के लिए नागर (नगरजन्य) शब्द का प्रयोग विडम्बनाजनक मात्र है, जैसे सूखी, तिक्त आदि रसरहित, मटमैली सोठ के टुकड़े को 'नागर' (सोठ का दूसरा नाम) कहना उपयुक्त नहीं होता॥ २७१॥

कोई आदमी, अपने ऊपर आपत्ति आने पर किसी के पास गया, किन्तु उसने उससे बात भी नहीं की,—यही बात वह आपत्तिग्रस्त, अन्योक्ति द्वारा किसी दूसरे से कह रहा है—

तमसि घने विषमे पथि जम्बुकमुल्कामुखं प्रपन्नाः स्मः।
किं कुर्मः सोऽपि सखे! स्थितो मुखं मुद्रयित्वैव॥२७२॥

पदार्थ—घने—निविडे तमसि, निविड अन्धकार में। विषमे पथि—अत्यन्त कठिन मार्ग में। उल्कामुखम्—उल्का मुखे यस्य तम्—जिसके मुख में उल्का (प्रकाश) है। जम्बुकं प्रपन्नाः स्मः—स्यार के पास हम पहुँचे। हे सखे! सोऽपि—वह भी। मुखं मुद्रयित्वा एव—मुख बन्द कर के ही। स्थितः—स्थित रहा। किमत्र कुर्मः—इस विषय मे हम क्या करें।

सरलार्थ—घने अन्धकार में, अत्यन्त कठिन मार्ग में, उल्कामुख शृगाल के पास हम पहुँचे (और सोचा कि इसके मुख के प्रकाश से यह मार्ग तय कर लेंगे) किन्तु हे सखे! दैवाधीन विषय में क्या किया जाय! उस शृगाल ने अपना मुख ही बन्द कर लिया॥ २७२॥

मानिनी पराङ्गना से नायक कह रहा है—

त्वामभिलषतो मानिनि! मम गरिमगुणोऽपि दोषतां यातः।
पङ्किलकूलां तटिनीं यियासतः सिन्धुरस्येव॥ २७३॥

पदार्थ—हे मानिनि! त्वामभिलषतः मम—तुझे पाने की अभिलाषा रखते हुए मेरा। पङ्किलकूलां—पङ्किलं कूलं यस्याः ताम्—जिसका तटप्रदेश पङ्किल है। तटिनीम्—नदीम्—नदी को। यियासतः सिन्धुरस्य इव—जाने को इच्छुक गज की भाँति। गरिमगुणोऽपि—गौरवरूपगुणः। दोषतां यातः—दोषत्वं प्राप्तः—दोष-रूप हो गया।

सरलार्थ—जिस नदी का तट प्रदेश पङ्किल है उस नदी तक जाने की इच्छा रखता हुआ गज (फिसल कर गिर जाने की शङ्का से) जैसे अपने दीर्घकायत्व गुण को दोष मानता है उसी प्रकार दुष्ट पड़ोसियों से परिवृत तुझे पाने की कामना रखता हुआ मै अधम व्यक्तियो की भाँति तुम्हारे यहाँ आने में असमर्थ अपनी प्रतिष्ठा एवं महत्त्व को महान् दोष समझता हूँ (अतः तू ही मान छोड़कर मेरे घर आ जा—यही प्रार्थना है) ॥ २७३ ॥

परपुरुषसंयोगाभिलाषिणी से कोई स्त्री कह रही है—

तिमिरेऽपि दूरदृश्या कठिनाश्लेषे च रहसि मुखरा च ।
शङ्खमयवलयराजी गृहपतिशिरसा सह स्फुटतु ॥ २७४ ॥

पदार्थ—तिमिरे अपि—अन्धकार में भी । दूरदृश्या—दूर से दिखाई पड़ने योग्य । आश्लेषे—आलिङ्गन में । कठिना—कठोर । रहसि—एकान्त में । मुखरा—शब्दायमान । शङ्खमयवलयराजी—शङ्ख के बने कङ्कणों की पंक्ति । गृहपतिशिरसा सह—गृहस्वामी (जो प्रिय नहीं है) के मस्तक के साथ । स्फुटतु—फूट जाय ।

सरलार्थ—अन्धकार में भी दूर से ही दिखाई पड़ने वाली, आलिङ्गन में कठोर, एकान्त में शब्दायमान ये शङ्ख की बनी चूड़ियाँ (कङ्कण) गृहस्वामी के मस्तक के साथ (कपालक्रिया के साथ—दाह-संस्कार के समय बाँस से मस्तक फोड़ा जाता है) फूट जाये । (पति मर जाता और ये चूड़ियाँ फूट जातीं तो मैं स्वेच्छा विहार करती) ॥ २७४ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

तव वृत्तेन गुणेन च समुचितसंपन्नकण्ठलुठनायाः ।
हारस्रज इव सुन्दरि कृतः पुनर्नायकस्तरलः ॥ २७५ ॥

पदार्थ—समुचितसम्पन्नकण्ठलुठनायाः—(१) समुचितं सम्पन्नं कण्ठलुठनं यया तस्याः—जिसने समुचित आलिङ्गन प्राप्त कर लिया, (२) समुचितं सम्पन्नस्य धनिनः कण्ठलुठनं यस्याः तस्याः—धनी का समुचित आलिङ्गन जिसे (प्राप्त) है । हारस्रजः इव—मुक्तमालायाः इव—मोतियो की माला का-सा । तव, वृत्तेन—(१) शीलेन, (२) वर्तुलेन—(१) तुम्हारे शील, (२) वर्तुलाकार । गुणेन—(१) चातुर्यादिगुणेन, (२) सूत्रेण—(१) चातुर्य आदि गुण से, (२) सूत्र से । नायकः—(१) कान्तः—प्रिय, (२) मुख्यमणिः—माला के बीच का दाना जिसे मेरु या सुमेरु भी कहा जाता है । तरलः—(१) चञ्चल, (२) हारमध्यवर्ती । पुनः—वारं वारम् । कृतः ।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! समुचित आलिङ्गन प्राप्त कर तूने वृत्त (शील) और गुण (चातुर्य आदि) से नायक (प्रियकान्त) को बार-बार तरल (चञ्चल बना दिया; जैसे धनी व्यक्ति का आलिङ्गन पाकर मुक्तामाला, वर्तुलाकार गुण (सूत्र) से नायक (मुख्यमणि) को तरल (हार-मध्यवर्ती) बना देती है। (तेरे शील एवं गुणों में आसक्त नायक तेरा ही चिन्तन करता रहता है) ॥ २७५ ॥

इति विमान्याख्यासमेता तकारव्रज्या।

दकारव्रज्या

नायक अभी गृहिणी का मान दूर करने के लिए प्रणामादि करेगा—यह सोचकर दुःखित सपत्नी से उसकी सखी कह रही है—

दर्शनविनीतमाना गृहिणी हर्षोल्लसत्कपोलतलम् ।
चुम्बननिषेधमिषतो वदनं पिदधाति पाणिभ्याम् ॥२७६॥

पदार्थ—दर्शनविनीतमाना—दर्शनेन विनीतः मानः यस्याः सा—दर्शन मात्र से जिसका मान हट गया। गृहिणी—प्रथमपत्नी। हर्षोल्लसत्कपोलतलम्—हर्षेण उल्लसत् कपोलतलम् यस्य तत्—हर्ष से जिसका कपोलतल प्रसन्न हो रहा है। वदनम्—मुख को। चुम्बननिषेधमिषतः—चुम्बन-निषेध के बहाने। पाणिभ्याम्—दोनो हाथो से। पिदधाति—ढक रही है।

सरलार्थ—(नायक को) देखते ही उसका मान चला गया है, (बहुत दिनो के बाद प्राप्त) दर्शन के हर्ष से उसके मुख-मण्डल में कपोल-तल प्रसन्न हो रहा है। (केवल इस भाव को छिपाने के लिए ही) चुम्बन-निषेध के बहाने वह गृहिणी हाथो से मुख को ढक रही है (उसमे मानादि का लेश भी नही है) ॥ २७६ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

देहस्तम्भः स्खलनं शैथिल्यं वेपथुः प्रियध्यानम् ।
पथि पथि गगनाश्लेषः कामिनि कस्तेऽभिसारगुणः ॥२७७॥

पदार्थ—हे कामिनि ! देहस्तम्भः—गतिनिरोधः। स्खलनम्—लड़खड़ाना। शैथिल्यम्—शिथिलता। वेपथुः—कम्पनम्। प्रियध्यानम्—प्रिय का चिन्तन। पथि-पथि—मार्ग मार्ग में। गगनाश्लेषः—आकाशालिङ्गन। ते—तुम्हारा। कः अभिसारगुणः—अभिसार का क्या गुण ?

सरलार्थ—दक्षिण दिशा से सम्बन्ध होने से सन्तापाभाव को धारण करते भानु का अवमान मत करो। ईशान दिशा को प्राप्त करने पर कोई इसकी ओर दृष्टि भी डाल नहीं सकता। (चातुर्यवश साधुता अपनाये हुए इस सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का अवमान मत करो, नहीं तो रोषवृत्ति अपनाने पर इसकी ओर दृष्टि उठा कर देखने का भी साहस तुममें से कोई नहीं कर सकेगा) ॥२८२॥

कोई पथिक मार्ग में व्याध-बाण से आहत मरती हुई हरिणी को देखकर सखा से कह रहा है—

दृष्ट्यैव विरहकातरतारकया प्रियमुखे समर्पितया।
यान्ति मृगवल्लभायाः पुलिन्दबाणार्दिताः प्राणाः ॥२८३॥

पदार्थ—मृगवल्लभायाः—हरिण्याः—मृग की प्रिया हरिणी के। विरहकातरतारकया—विरहेण कातरः तारकः कनीनिका यस्याः तया—विरह से जिसकी पुतली कातर है। प्रियमुखे समर्पितया—प्रियमृग के मुख पर गड़ायी गयी। दृष्ट्या एव—दृष्टि से ही। पुलिन्दबाणार्दिताः प्राणाः—पुलिन्दस्य भिल्लस्य बाणेन अर्दिताः पीडिताः—व्याध के बाण से पीडित। प्राणाः—प्राण। यान्ति—जा रहे हैं।

सरलार्थ—मृग की प्रिया हरिणी के, व्याधबाण से पीडित प्राण, (मरण-भय से नहीं) विरह-भय से कातर पुतली वाली, प्रिय मृग के मुख पर गड़ायी गयी दृष्टि के मार्ग से ही जा रहे हैं। (मृगाङ्गना की यह दशा है, तो मदन-शरविद्धा विरहकातरा प्रोषितपतिका नायिका की अवस्था का अनुमान लगाइए) ॥ २८३ ॥

दुष्ट की संगति नहीं करनी चाहिए—ऐसा कोई उपदेश दे रहा है—

दूरस्थापितहृदयो गूढरहस्यो निकाममाशङ्कः।
आश्लेषो बालानां भवति खलानां च संभेदः ॥ २८४ ॥

पदार्थ—दूरस्थापितहृदयः—दूरे स्थापितं हृदयं (१—वक्षःस्थलम्, २—अन्तःकरणम्) येन सः—जिसने हृदय को दूर रक्खा है। गूढरहस्यः—गूढं रहस्यम् यस्य सः—जिसका रहस्य छिपा हुआ है। निकामम् आशङ्कः—(१) भीतियुक्त, (२) विश्वास न करने वाला। बालानाम्—मुग्धाङ्गनानाम्, आश्लेषः आलिङ्गनम्—मुग्ध अङ्गनाओं का आलिङ्गन। च—और। खलानां, संभेदः—सङ्गः—दुष्टों का सङ्ग। भवति—होता है।

सरलार्थ—मुग्ध अङ्गनाओं का आलिङ्गन और दुष्टों का सङ्ग, दोनों समान हैं। दोनों हृदय को दूर रखते हैं (एक वक्षःस्थल को, दूसरा अन्तःकरण

को)। दोनों अपने-अपने रहस्य को गुप्त रखते है। दोनों अत्यन्त सशङ्कित रहते है (एक भीति से, दूसरा अविश्वास से) ॥ २८४ ॥

असमयरताभिलाषी नायक से नायिका कह रही है—

द्वारे गुरवः कोणे शुकः सकाशे शिशुर्गृहे सख्यः ।
कालासह क्षमस्व प्रिय प्रसीद प्रयातमहः ॥ २८५ ॥

पदार्थ—द्वारे—द्वार पर। गुरवः—गुरुजन (है)। कोणे—कोने में। शुकः—तोता है। सकाशे—मेरे निकट। शिशुः—बच्चा है। गृहे—घर में। सख्यः—सखियाँ है। कालासह—कालं विलम्बं न सहते इति—और विलम्ब न सह सकने वाले! प्रिय! प्रसीद—प्रसन्न हो। क्षमस्व—क्षमा करो। अहः प्रयातम्—दिन बीत ही रहा है।

सरलार्थ—द्वार पर गुरुजन हैं (बाहर निकल कर गुप्तस्थान तक जाने में असमर्थ हूँ)। कोने में शुक है (वचनरचनाशील शुक के रहने से यह स्थान भी उपयुक्त नहीं है)। मेरे समीप यहाँ बच्चा है (उसे हटाने से उसका रोदन सुनकर गुरुजन के आने की संभावना है)। घर में सखियाँ हैं (उनसे भी लज्जा करना उचित है)। हे विलम्ब न सह सकने वाले प्रिय! कृपा करो। क्षमा करो—दिन गतप्राय ही है। (रात आ ही रही है—वही उपयुक्त होगी)॥२८५॥

सखी नायिका को उपदेश दे रही है—

दधिकणमुक्ताभरणश्वासोत्तुङ्गस्तनार्पणमनोज्ञम् ।
प्रियमालिङ्गति गोपी मन्थश्रममन्थरैरङ्गैः ॥ २८६ ॥

पदार्थ—दधिकणमुक्ताभरणश्वासोत्तुङ्गस्तनार्पणमनोज्ञम्—दधिकणरूपमुक्तानाम् आभरणं ययोस्तौ श्वासेन उत्तुङ्गौ उन्नतौ यौ स्तनौ तयोः अर्पणेन मनोज्ञं यथा स्यात्तथा—दधिकणरूप मोतियों का आभरण है जिनका और श्वास से उन्नत स्तनों के अर्पण से मनोहर। गोपी—गोपवधूटी। मन्थश्रममन्थरैः—मन्थस्य श्रमेण मन्थरैः निश्चलैः—मथने के श्रम से निश्चल। अङ्गैः—अङ्गों से। प्रियम् आलिङ्गति—प्रिय का आलिङ्गन करती है।

सरलार्थ—गोपी दधिमन्थनजन्य श्रम से निश्चल अङ्गों से, दधिकणरूप मुक्ताओं के आभरण वाले एवं श्रमजन्य श्वास से उन्नत स्तनो के समर्पण से मनोहर आलिङ्गन अपने प्रिय का कर रही है। (शृंगारादि के विना भी, श्रम की उपेक्षा कर, एक कार्य में लगी हुई भी ग्रामीण गोपी स्वयं प्रिय का आलिङ्गन करती है, तुझे भी ऐसा ही करना चाहिये)॥ २८६ ॥

नायिका सखी से कह रही है—

दलितोद्वेगेन सखि प्रियेण लग्नेन रागमावहता ।
मोहयता शयनीयं ताम्बूलेनेव नीतास्मि ॥ २८७ ॥

पदार्थ—दलितोद्वेगेन—दलितः भञ्जितः उद्वेगः क्लेशः येन तेन—(१) जिसने क्लेश को भग्न किया; (२) उद्वेगः पूगफलम्—जिसने सुपारी को टुकड़ों में भग्न किया। लग्नेन—कण्ठ में लगा। रागम्—(१) प्रीतिम्, (२) लौहित्यम्, आवहता—प्रीति रखते हुए; लाली रखते हुए। मोहयता—(१) अन्य विषयों के ज्ञान से रहित करता, (२) भ्रान्ति उत्पन्न करता। प्रियेण—प्रिय द्वारा। ताम्बूलेन इव—ताम्बूल के समान। शयनं नीता अस्मि—शय्या पर लायी गयी।

सरलार्थ—हे सखि ! क्लेश को भग्न करने वाले, कण्ठ में लग्न, प्रीति रखने वाले, अन्य विषयों के ज्ञान से रहित करते हुए, सुपारी को खण्ड-खण्ड करने वाले, कण्ठ में लग्न, लाली रखने वाले तथा भ्रान्ति उत्पन्न करते हुए ताम्बूल के समान प्रिय के द्वारा मैं शयनतल पर लायी गयी ॥ २८७ ॥

किसी नायिका की चेष्टा का वर्णन एक पुरुष दूसरे से कर रहा है—

दृष्टमदृष्टप्रायं दयितं कृत्वा प्रकाशितस्तनया ।
हृदयं करेण ताडितमथ मिथ्या व्यञ्जितत्रपया ॥ २८८ ॥

पदार्थ—दृष्टम्—देख पड़ते हुए। दयितम्—प्रिय को। अदृष्टप्रायं कृत्वा—अनदेखा-सा कर। प्रकाशितस्तनया—प्रकाशितौ स्तनौ यया तया—जिसने स्तनों को प्रकट किया। अथ—अनन्तर। मिथ्याव्यञ्जितत्रपया—मिथ्या व्यञ्जिता त्रपा लज्जा यया तया—जिसने मिथ्या लज्जा व्यक्त की। हृदयम्—हृदय को। करेण ताडितम्—कर से पीटा।

सरलार्थ—नायिका ने प्रिय को देख कर भी अनदेखा सा कर स्तनो को प्रकट प्रदर्शित किया और इसके अनन्तर मिथ्या लज्जा व्यक्त कर (मैंने अनुचित किया—यह दिखाने के लिये) छाती हाथ से पीटी ॥ २८८ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

दर्शितयमुनोच्छ्राये भ्रूविभ्रमभाजि वलति तव नयने ।
क्षिप्तहले हलधर इव सर्वं पुरमर्जितं सुतनु ॥ २८९ ॥

पदार्थ—हे सुतनु ! सुन्दरि ! दर्शितयमुनोच्छ्राये—(१) दर्शितः यमुनातः उच्छ्रायः आधिक्यं यस्य तस्मिन्—जिसका यमुना से आधिक्य दिखायी दिया, (२) दर्शितः यमुनायाः उच्छ्रायः येन तस्मिन्—जिन्होंने यमुना का आधिक्य

प्रदर्शित किया। भ्रूविभ्रमभाजि—भ्रुवोः विभ्रमं भजते इति तस्मिन्—(१) कटाक्षशालिनि, कटाक्षशाली, (२) कोपवश वक्र भ्रुकुटिवाले। तव नयने—तेरे नेत्र। क्षिप्तहले—क्षिप्तं हलं येन तस्मिन्—जिसने हल डाल दिया। हलधरे—बलदेवे इव—बलदेव के समान। वलति सति—चलते हुए। सर्वं पुरम् अर्जितम्—समग्र नगर को स्वाधीन कर लिया।

सरलार्थ—हे सुतनु! (श्याम होने के कारण) यमुना से बढ़कर कटाक्षशाली तेरे नेत्र ने, यमुना का आधिक्य (मथुरामण्डल में हल से प्रवाह को विपरीत कर) प्रदर्शित करने वाले, (युधिष्ठिर के प्रति कोप कर हस्तिनापुर को विपरीत कर देने को उद्यत) हल डाले हुए बलदेव के समान, चलते समय समग्र नगर को स्वाधीन कर लिया ॥ २८९ ॥

विरहिणी सखी से कह रही है—

दयितप्रार्थितदुर्लभमुखमदिरासारसेकसुकुमारः।
व्यथयति विरहे बकुलः क्व परिचयः प्रकृतिकठिनानाम्॥२९०॥

पदार्थ—दयितप्रार्थितदुर्लभमुखमदिरासारसेकसुकुमारः—दयितेन प्रार्थितः दुर्लभः मुखमदिरासारसेकः तेन सुकुमारः संजातपल्लवादिः—प्रियद्वारा प्रार्थना करने पर भी उसे दुर्लभ मुखमदिराकणों के सिञ्चन से जन्य पल्लवादि से सुशोभित। (बकुल वृक्ष सुन्दरी की मुखमदिरा की कुल्ली पाकर प्रसन्न होता है, उसमें पल्लव आदि निकलते हैं—'शोकं जहाति बकुलो मुखसीधुसिक्तः' इति)। बकुलः—मौलसिरी का वृक्ष। विरहे—विरह में। व्यथयति—मुझको व्यथित करता है। प्रकृतिकठिनानाम्—प्रकृत्या कठिनानाम्—स्वभाव से कठोर लोगों का। परिचयः क्व—परिचय कहाँ! अर्थात् स्वभावतः जो कठोर होते हैं वे परिचय नहीं रखते।

सरलार्थ—मेरी मुखमदिरा को पाने के लिए प्रिय ने बार-बार प्रार्थना की तथापि उसे दुर्लभ रही, उसी मुखमदिरा की कुल्ली से मैंने इस बकुल को सींच कर हरा-भरा किया किन्तु आज विरह के समय यह भी (मेरा उपकार भुलाकर) मुझे व्यथा पहुँचाता है। (सच है) काठ होने से यह स्वभावतः कठोर है, जो स्वभावतः कठोर होते है वे भला परिचय कहाँ रखते है? ॥ २९० ॥

सखी नायिका से कह रही है—

द्वित्रैरेष्यामि दिनैरिति किं तद्वचसि सखि तवाश्वासः।
कथयति चिरपथिकं तं दूरनिखातो नखाङ्कस्ते ॥ २९१ ॥

पदार्थ—द्वित्रैः दिनैः एष्यामि—दो-तीन दिनो में मैं आऊँगा। तद्वचसि—

तस्य नायकस्य वचसि—नायक के इस वचन में। सखि! किम्—क्या। तव आश्वासः—तुमको भरोसा है। दूरनिखातः ते नखाङ्कः—तेरे शरीर में गहरा खोदा गया नखचिह्न। तं नायकम्—उसको। चिरपथिकम्—चिरप्रवासी—बहुत दिनों तक विदेश में रहने वाला। कथयति—बता रहा है।

सरलार्थ—दो-तीन दिनों में आऊँगा—नायक के इस वचन पर, हे सखि! क्या तुम भरोसा करती हो? तुम्हारे शरीर पर उसके द्वारा किया गया गम्भीर नखक्षत बता रहा है कि वह चिर प्रवासी रहेगा (क्योंकि चिरप्रवास में गम्भीर-नखक्षत का कामशास्त्र में विधान है; अतः उसी के भरोसे जो अन्य नायक की सङ्गति नहीं कर रही हो—यह तुम्हारी भूल है)॥ २९१॥

सखी नायिका से कह रही है—

दयितस्पर्शोन्मीलितघर्मजलस्खलितचरणनखलाक्षे।
गर्वभरमुखरिते सखि तच्चिकुरान्किमपराधयसि॥ २९२॥

पदार्थ—दयितस्पर्शोन्मीलितघर्मजलस्खलितचरणनखलाक्षे—दयितस्य प्रियस्य स्पर्शेन उन्मीलितं प्रसृतं घर्मजलं स्वेदजलं तेन स्खलिता गलिता चरणनखानां लाक्षा यस्याः तत्सम्बुद्धिः—प्रियस्पर्शजन्य स्वेदजल से जिसके चरणों के नखों की लाक्षा (महावर) धुल उठी। गर्वभरमुखरिते—गर्वस्य भरेण अतिशयेन मुखरिता तत्सम्बुद्धिः—गर्व के आधिक्य से बहुत बोलने वाली। सखि! तच्चिकुरान्—तस्य प्रियस्य चिकुरान् केशान्—प्रिय के केशों को। किम् अपराधयसि—क्यों दोष देती हो।

सरलार्थ—हे सखि! प्रिय के स्पर्श से जन्य सात्विक भावरूप स्वेद से तेरे चरणनखों की लाक्षा दूर हो गयी और तू गर्वातिशय से बढ़-बढ़ बात करने वाली (चरणों पर प्रिय के गिरने से संलग्न केशों द्वारा लाक्षा पोंछ ली गयी—ऐसा मिथ्या) दोष क्यों प्रिय के केशों को दे रही है?॥ २९२॥

दुष्टपुत्र के कारण दुःखी कोई पुरुष, गृहिणी से कह रहा है—

दुष्टग्रहेण गेहिनि तेन कुपुत्रेण किं प्रजातेन।
भौमेनेव निजं कुलमङ्गारकवत्कृतं येन॥ २९३॥

पदार्थ—हे गेहिनि! दुष्टग्रहेण—(१) दुष्टः ग्रहः यस्य तेन—जिसका आग्रह बुरा है, (२) दुष्टः ग्रहः तेन—जो दुष्ट ग्रह है। प्रजातेन—उत्पन्नेन—उत्पन्न हुए। कुपुत्रेण—(१) कुत्सितेन पुत्रेण—कुत्सित पुत्र से, (२) कुः पृथ्वी तस्याः पुत्रेण—पृथ्वी के पुत्र से। किम्—कुछ भी फल नहीं। येन—जिसने। भौमेन इव—मङ्गल की भाँति। कुलम्—कुल को। अङ्गारकवत् कृतम्—

(१) प्रज्वालितम्—जला दिया, (२) अङ्गारक वाला (मङ्गल का नाम अङ्गारक भी है) कर दिया।

सरलार्थ—दुष्टग्रह (१—बुरे आग्रह वाला, २—दुष्ट ग्रह) उत्पन्न कुपुत्र (१—कुत्सित पुत्र, २—पृथ्वी-पुत्र) से कुछ फल नही होता। जिसने मङ्गल की भाँति अपने कुल को अङ्गारकवत् (१—अङ्गारे वाला अर्थात् भस्मीभूत, नष्ट, २—अङ्गारक (नाम) वाला) कर दिया ॥ २९३ ॥

वीर पुरुष आपत्ति में भी नीच कार्य नही करते—ऐसा कोई कह रहा है—

दर्शितचापोच्छ्रायैस्तेजोवद्भिः सुगोत्रसंजातैः।
हीरैरप्स्वपि वीरैरापत्स्वपि गम्यते नाधः ॥ २९४ ॥

पदार्थ—दर्शितः प्रकटीकृतः चापवत् इन्द्रधनुर्वत् उच्छ्रायः कान्त्याधिक्यम् धनुषः औन्नत्यं च यैः तैः—जिन्होंने इन्द्रधनुष के समान कान्ति का आधिक्य और धनुष की उत्कृष्टता दिखायी। सुगोत्रसंजातैः—शोभने गोत्रे पर्वते कुले च संजातैः—अच्छे पर्वत और कुल में उत्पन्न। हीरैः—वज्रैः—हीरे। अप्सु अपि—जल में भी। वीरैः—वीर। आपत्स्वपि—आपत्तियो मे भी। अधः न गम्यते—डूबते नहीं; नीच कार्य नहीं करते।

सरलार्थ—इन्द्रधनुष के समान कान्ति का आधिक्य प्रकट करने वाले तथा धनुष की उत्कृष्टता दिखाने वाले, अच्छे पर्वत एवम् अच्छे कुल में उत्पन्न क्रमशः हीरे और वीर पुरुष, जल में भी और विपत्ति में भी नीचे नही जाते—डूबते नहीं तथा निन्दित कार्य नही करते।

(हीरे की यह परीक्षा है कि जल में डालने से डूबता नहीं। 'सर्वद्रव्याभेद्यं लघ्वम्भसि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्। तडिदनलशक्रचापोपमं च वज्रं हितायोक्तम्।' इति बृहत्संहिता ॥ ८०।१४) ॥ २९४ ॥

लज्जा-वश अन्यत्र देखती, बीच-बीच में किंचित् कटाक्षविक्षेप से नायक को भी देखती हुई नायिका से नायक कह रहा है—

दरनिद्राणस्यापि स्मरस्य शिल्पेन निर्गतासून्मे।
मुग्धे तव दृष्टिरसावर्जुनयन्त्रेषुरिव हन्ति ॥ २९५ ॥

पदार्थ—हे मुग्धे ! दरनिद्राणस्यापि—दरेण भयेन निद्राणस्य मीलितस्य—भय से निद्राण अर्थात् बन्द या छिपा हुआ। स्मरस्य—मदन के। शिल्पेन—कला-कौशल से। निर्गता—निकली। असौ तव दृष्टिः—यह तेरी दृष्टि। अर्जुन-यन्त्रेषुः इव—अर्जुन के यन्त्रबाण के समान। मे—मम। असून्—प्राणान्—प्राणो को। हन्ति—मारती है।

सरलार्थ—हे मुग्धे ! (अनिद्र मदन को कौन कहे) भय से निद्राण अर्थात् निलीन भी मदन के कला कौशल से निकली यह तेरी दृष्टि, अर्जुन के यन्त्रत्राण के समान मेरे प्राणो को मारती है
(अर्जुन ने भी अन्यत्र देखते हुए अन्य लक्ष्य को वेधा था) ॥ २९५ ॥

दारिद्र्य बड़ा दुःखद होता है—ऐसा कोई कह रहा है—

दुर्गतगृहिणी तनये करुणार्द्रा प्रियतमे च रागमयी ।
मुग्धा रताभियोगं न मन्यते न प्रतिक्षिपति ॥ २९६ ॥

पदार्थ—दुर्गतस्य गृहिणी इति दुर्गतगृहिणी—दरिद्र की कामिनी । तनये—पुत्र के विषय मे । करुणार्द्रा—(संभोग से स्तन्य हानि होने पर पुत्र को दुःख होगा— इस विचार से) करुणाशालिनी । प्रियतमे च—और प्रियतम के विषय में । रागमयी—अनुरागशालिनी । मुग्धा—किंकर्तव्यविमूढा । रताभियोगम्—रत-योजना को । न मन्यते—न स्वीकार करती है, न प्रतिक्षिपति—न अस्वीकार करती है ।

सरलार्थ—दरिद्रकामिनी (पति का सङ्ग करने से स्तन्यहानि होने पर पुत्र को दुःख होगा—ऐसा सोचकर) पुत्र पर करुणा रखती है और इधर पति पर भी अनुराग रखती है, इस प्रकार किंकर्तव्यविमूढ वह रत की योजना का न तो समर्थन ही कर पाती है और न विरोध ही कर पाती है ॥ २९६ ॥

तू घर मे ही जार का उपभोग करती है, हमारा ऐसा सौभाग्य नही—ऐसा, एक स्त्री दूसरी से अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

दुर्गतगेहिनि जर्जरमन्दिरसुप्तैव वन्दसे चन्द्रम् ।
वयमिन्दुवञ्चितदृशो निचुलितदोलाविहारिण्यः ॥ २९७ ॥

पदार्थ—दुर्गतगेहिनि—दरिद्रकामिनि ! जर्जरमन्दिरसुप्ता एव—जर्जर मन्दिरे सुप्ता एव—जीर्ण-शीर्ण घर मे सोयी हुई ही । चन्द्रं वन्दसे—चन्द्र की वन्दना करती हो, चन्द्र-दर्शन पाती हो । निचुलितदोलाविहारिण्यः—निचुलिता आच्छादिता दोला तया यो विहारः तच्छालिन्यः—आच्छादित दोला से विहार करने वाली । वयम्—हम । इन्दुवञ्चितदृशः—इन्दोः वञ्चिता दृक् यासां ताः—इन्दु से जिनकी दृष्टि वञ्चित है ।

सरलार्थ—हे दरिद्रकामिनि ! तू जर्जर गृह में सोयी हुई ही चन्द्र-वन्दन का अवसर प्राप्त करती है और हम आच्छादित डोले से विहार करने वाली है, बाहर स्वच्छन्द निकलने पर प्रतिबन्ध है, हमारी दृष्टि इन्दु दर्शन से वञ्चित रह जाती है (हमारे ऐसे भाग्य से तेरा दारिद्र्य ही प्रशंसनीय है) ॥ २९७ ॥

तू वैसी चतुर नहीं है—ऐसा कहती हुई स्त्री से कोई स्त्री कह रही है—

दीपदशा कुलयुवतिर्वैदग्ध्येनैव मलिनतामेति ।
दोषा अपि भूषायै गणिकायाः शशिकलायाश्च ॥ २९८ ॥

पदार्थ—दीपदशा—वर्तिः—दीपक की बत्ती । कुलयुवतिः—कुलाङ्गना । वैदग्ध्येन एव—(१) विशेषेण दग्धः तस्य भावेन—विशेष जलने से, (२) चातुर्येण—चातुर्य से । मलिनताम्—(१) कज्जलादिमत्त्वं, (२) पापवत्त्वं च—(१) कज्जलादिमती होना, (२) पापवती होना । एति—प्राप्नोति—प्राप्त होती है । दोषाः—अनुचित करना आदि अपराध, रात्रि । गणिकायाः—वेश्या की । शशिकलायाः च—और इन्दुकला की । भूषायै—शोभा के लिये होती है ।

सरलार्थ—दीपक की बत्ती विशेष जलने से कज्जलादिमती हो जाती है; कुलाङ्गना चातुर्य से पापवती होती है । दोष से गणिका की शोभा होती है; दोषा (रात्रि) से इन्दुकला की शोभा होती है ॥ २९८ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

दीर्घगवाक्षमुखान्तर्निपातिनस्तरणिरश्मयः शोणाः ।
नृहरिनखा इव दानववक्षः प्रविशन्ति सौधतलम् ॥२९९॥

पदार्थ—दीर्घस्य गवाक्षस्य वातायनस्य मुखेन अन्तर्निपातिनः—दीर्घ झरोखे के छिद्र से भीतर पड़ती । शोणाः—लाल । तरणिरश्मयः—सूर्य की किरणें । नृहरिनखाः—नृहरिः नृसिंहः तस्य नखाः—नृसिंह के नख । दानववक्षः—दानवस्य हिरण्यकशिपोः वक्षः—हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल में । इव—जैसे । सौधतलम्—प्रासादतल में । प्रविशन्ति—प्रविष्ट हो रही हैं ।

सरलार्थ—दीर्घ झरोखे के मार्ग से अन्दर पड़ती, सूर्य की लाल किरणें, जैसे नृसिंह के नख हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल में, प्रासादतल में प्रविष्ट हो रही हैं (सूर्योदय हो गया, अतः प्रिय को अब बाहर निकाल दो) ॥ २९९ ॥

सखी नायिका की प्रशंसा कर रही है—

दरतरलेऽक्षणि वक्षसि दरोन्नते तव मुखे च दरहसिते ।
आस्तां कुसुमं वीरः स्मरोऽधुना चित्रधनुषापि ॥ ३०० ॥

पदार्थ—दरतरले—ईषच्चञ्चले—थोड़ा-थोड़ा चञ्चल । अक्षणि—नेत्रे—नेत्र होने पर । दरोन्नते वक्षसि—ईषत् उन्नते वक्षसि—हृदय के थोड़ा ऊँचा होने पर । दरहसिते मुखे—मुख के थोड़ा सा मुस्कराने पर । कुसुमम् आस्ताम्—पुष्प कुछ नहीं है । अधुना—तेरे इस प्रकार के यौवन काल में । चित्रधनुषा अपि—चित्रगत धनुष से भी । स्मरः—मदनः । वीरः आस्ताम्—वीर हो ।

सरलार्थ—तेरा नेत्र थोडा चञ्चल हो रहा है। वक्षःस्थल कुछ ऊँचा हो रहा है। मुख थोड़ा-थोड़ा मुस्कराहटयुक्त हो रहा है। कामदेव का धनुषरूप पुष्प तो दूर रहे, तेरे इस प्रकार के यौवन काल में कामदेव चित्रगत धनुष से भी तेरे द्वारा वीर हो (उसे संसार का विजय सुकर है) ॥ ३०० ॥

नायकसखी नायक से कह रही है—

दुष्टसखीसहितेयं पूर्णेन्दुमुखी सुखाय नेदानीम् ।
राकेव विष्टियुक्ता भवतोऽभिमताय निशि भवतु ॥३०१॥

पदार्थ—पूर्णेन्दुमुखी—पूर्णः इन्दुः इव मुखं यस्याः सा—(१) पूर्णेन्दु-सा मुख है जिसका, (२) पूर्णेन्दुः एव मुखं यस्याः सा—पूर्णेन्दुरूप मुख है जिसका। दुष्टसखीसहिता—दुष्ट सखी के साथ। इयम्—यह (नायिका)। विष्टियुक्ता—भद्रायुक्त। राका—पौर्णमासी इव। इदानीम्—दिने—दिन में। सुखाय न—सुख के लिए नहीं। भवतः अभिमताय—तुम्हारे सुख के लिए। निशि—रात में। भवतु—हो।

सरलार्थ—पूर्णेन्दु के समान मुख वाली, दुष्टसखी से युक्त यह नायिका, पूर्णेन्दुरूप मुखवाली तथा भद्रा युक्त पौर्णमासी के समान दिन में सुख के लिये नहीं है, तुम्हारे अभिमत सुख के लिए रात में हो। (जैसे दिन में ही भद्रा रहने से पूर्णिमा रात मे शुभकार्य योग्य होती है उसी प्रकार सखी रात में इसके साथ न रहेगी तब तुम्हें यह सुखप्रद अवश्य होगी) ॥ ३०१ ॥

एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

दलिते पलालपुञ्जे वृषभं परिभवति गृहपतौ कुपिते ।
निभृतनिभालितवदनौ हलिकवधूदेवरौ हसतः ॥ ३०२ ॥

पदार्थ—पलालपुञ्जे दलिते—इतस्ततः कृते—पुआल का ढेर तितर-बितर होने पर। कुपिते गृहपतौ—गृहस्वामी के कुपित होने पर। वृषभं परिभवति—बैल को पीटते रहने पर। निभृतनिभालितवदनौ—निभृतं निभालिते अवलोकिते वदने याभ्यां तौ—परस्पर एक दूसरे का जिन्होने मुख देखा। हलिकवधूदेवरौ—हलिकस्य वधूः लघुभ्राता च। हसतः—हँसने लगे।

सरलार्थ—(हलिक की पत्नी तथा उसके भाई ने जहाँ सुरत क्रीडा की थी) पुआल का ढेर तितर-बितर हो गया था, हलिक गृहस्वामी कुपित होकर (बैल ने इसे अस्त-व्यस्त कर दिया होगा—यह सोचकर) बैल को पीटने लगा, (यह देखकर) हलिकवधू और देवर एक दूसरे का गुप्तरीति से मुख देखकर (वास्तविकता न जानकर यह निरपराध वृषभ को पीट रहा है—ऐसा सोचते हुए) हँसने लगे ॥ ३०२ ॥

बड़ों को अपना प्रताप दिखाना चाहिये, छोटों को नहीं—ऐसा कोई कह रहा है—

दीप्यन्तां ये दीप्त्यै घटिता मणयश्च वीरपुरुषाश्च ।
तेजः स्वविनाशाय तु नृणां तृणानामिव लघुनाम ॥३०३॥

पदार्थ—मणयः—मणियाँ। वीरपुरुषाश्च—और वीर पुरुष। ये—जो। दीप्त्यै घटिताः—दीप्ति के लिए विधाता द्वारा बनाये गये हैं। दीप्यन्ताम्—अपनी दीप्ति दिखायें। तृणानामिव नृणां तु—तृण की भाँति तुच्छ मनुष्यों का तो। लघुतेजः स्वविनाशाय—अल्पतेज उनके विनाश के लिये। नाम—संभावनायाम् कुत्सायां वा—नाम अव्यय का प्रयोग यहाँ संभावना अथवा कुत्सा में हुआ है।

सरलार्थ—मणियाँ और वीर पुरुष जिन्हें विधाता ने दीप्ति (चमक और तेज) के लिये ही बनाया है—अपनी चमक और तेज दिखाये। यदि तृण के समान तुच्छ व्यक्ति भी अपना लघु तेज दिखाते हैं तो वह उनके विनाश के लिये होता है ॥ ३०३ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता दकारव्रज्या ।

धकारव्रज्या

नायिका की सखी नायक से अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

धूमैरश्रु निपातय दह शिखया दहन मलिनयाङ्गारैः ।
जागरयिष्यति दुर्गतगृहिणी त्वां तदपि शिशिरनिशि ॥३०४॥

पदार्थ—हे दहन—(१) अग्नि, (२) जलाने वाले। धूमैः अश्रु निपातय—धुएँ से आँसू गिरवाओ। शिखया दह—लपट से जलाओ। अङ्गारैः—बुझे हुए अङ्गारो से। मलिनय—मलिन करो। तदपि—तथापि। दुर्गतगृहिणी—दरिद्र की पत्नी। शिशिरनिशि—जाड़े की रात में। जागरयिष्यति—जगायेगी (१—तापने के लिए बुझने नहीं देगी, २—सुरत चिरकाल तक चलने से सोने नहीं देगी)।

सरलार्थ—हे दहन (१—अग्नि, २—सन्ताप देने वाले) धुएँ से उसे रुला लो (जितना चाहो उससे आँसू गिरवा लो), लपट से जलाओ, (बुझे) अङ्गारो से मलिन करो तथापि जाड़े की रात में वह दरिद्र की पत्नी तुमको जगायेगी (१—तापने के लिये बुझने नहीं देगी, २—चिरकाल तक सुरत-क्रम चालू रख कर सोने नहीं देगी) ॥ ३०४ ॥

रात में नायक अन्याङ्गना के यहाँ चला गया, अतः दुःखित नायिका को सखी उपदेश दे रही है—

धैर्यं निधेहि गच्छतु रजनी सोऽप्यस्तु सुमुखि सोत्कण्ठः ।
प्रविश हृदि तस्य दूरं क्षणधृतमुक्ता स्मरेषुरिव ।। ३०५ ।।

पदार्थ—धैर्यं निधेहि—धैर्य धारण करो । गच्छतु रजनी—रात बीत जाय । सुमुखि ! शोभनं मुखं यस्याः तत्सम्बुद्धिः—सुन्दर मुख वाली ! क्षणधृतमुक्ता—क्षणं धृता ततः मुक्ता—कुछ देर रोक कर छोड़ी गयी । स्मरेषुः—स्मरस्य इषुः इव—कामदेव के बाण के समान । (यहाँ इषुशब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त है 'इषुर्द्वयोः' इत्यमरः) तस्य हृदि—उसके हृदय में । दूरम्—भीतर काफी दूर तक । प्रविश—प्रविष्ट हो जाओ । सोऽपि—वह भी । सोत्कण्ठः—अत्यन्तासक्तः—अत्यन्त आसक्त । अस्तु—हो ।

सरलार्थ—हे सुमुखि ! धैर्य धारण करो, रात बीतने दो । कुछ देर रुक कर छोड़े गये कामदेव के बाण के समान उसके हृदय में भीतर काफी दूर तक प्रविष्ट हो जाओ (धनुष पर बाण चढ़ाने के बाद कुछ देर रुक कर छोड़ने से काफी दूर तक जाता है) वह भी इस प्रकार अत्यन्त आसक्त होगा ।। ३०५ ।।

प्रवासी नायक नायिका-चिन्तन में स्वगत कह रहा है—

धवलनखलक्ष्म दुर्बलमकलितनेपथ्यमलकपिहिताक्ष्याः ।
द्रक्ष्यामि मदवलोकद्विगुणाश्रु वपुः पुरद्वारि ।। ३०६ ।।

पदार्थ—धवलनखलक्ष्म—धवलानि श्वेतानि नखानां लक्ष्माणि चिह्नानि यस्मिन् तत्—जिसमें श्वेत नखचिह्न हैं । दुर्बलम्—विरहक्षीण । अकलित-नेपथ्यम्—न कलितानि गृहीतानि नेपथ्यानि भूषणानि यस्मिन् तत्—जिसमें भूषण नहीं धारण किये गये है । अलकपिहिताक्ष्याः—अलकैः पिहिते अक्षिणी यस्याः तस्याः—अलकों से जिसकी आँखें ढकी हैं, उसका । मदवलोकद्विगुणाश्रु—मम अवलोकेन द्विगुणम् अश्रु यस्मिन् तत्—मुझे देखकर जिसमें दुगुना आँसू है । वपुः—शरीर को । पुरद्वारि—नगर के फाटक पर । द्रक्ष्यामि—देखूँगा ।

सरलार्थ—जिसमें (पुराना होने से) नख-चिह्न श्वेत पड़ गये हैं, विरह से क्षीण, जिसमें भूषण नहीं धारण किये गये है; अलकों से ढके नेत्रों वाली प्रियतमा का वह शरीर, मुझे देखकर जिसमें दूने आँसू है, (आगे सोत्कण्ठ मिलने को) नगर के फाटक पर (क्या) देखूँगा ? ।। ३०६ ।।

दुष्टों का धर्माचरण भी अनर्थकारी होता है—

धर्मारम्भेऽप्यसतां परहिंसैव प्रयोजिका भवति ।
काकानामभिषेकेऽकारणतां वृष्टिरनुभवति ।। ३०७ ।।

पदार्थ—असताम्—असाधूनां—दुष्टों के। धर्मारम्भेऽपि—धर्म का आरम्भ करने में भी। परहिंसा एव प्रयोजिका भवति—परहिंसा ही उन्हें उसमें लगाती है। काकानाम्, अभिषेके—स्नाने—कौओ के नहाने पर। वृष्टिः अकारणताम् अनुभवति—न भवतीत्यर्थः—वृष्टि नहीं होती।

सरलार्थ—दुष्टो के धर्माचरण में भी दूसरो की हिंसा मुख्य प्रयोजन होता है। कौओ के स्नान करने पर वृष्टि नहीं होती ॥ ३०७ ॥

इति विभाव्यास्यालमेता धकारव्रज्या।

नकारव्रज्या

नायक, नायिका से संकेत-स्थल को गुप्त ढंग से सूचित कर रहा है—

नीरावतरणदन्तुरसैकतसंभेदमेदुरैः शिशिरे।
राजन्ति तूलराशिस्थूलपटैरिव तटैः सरितः ॥ ३०८ ॥

पदार्थ—नीरावतरणदन्तुरसैकतसंभेदमेदुरैः—नीरस्य जलस्य अवतरणम्—जल का उतरना अर्थात् घटना या कम होना। तेन दन्तुरं यत् सैकतम्—उससे रेतीला तट कहीं तनिक ऊँचा कहीं तनिक नीचा अर्थात् लहरियादार हो गया है। तस्य संभेदेन सङ्घट्टनेन मेदुरैः मांसलैः—उसके संसर्ग से या मिलने से मांसल। तूलराशिस्थूलपटैः इव—तूलस्य कार्पासस्य राशयः येषु तैः स्थूलपटैः इव-जिनमें रुई की राशि, ढेर, है ऐसे स्थूलपट. मोटे कपड़ो अर्थात् रूईदार गद्दों के समान। तीरैः—तीरभूमि से। नद्यः—नदियाँ। शिशिरे—शिशिर में। राजन्ति—शोभित हो रही हैं।

सरलार्थ—शिशिर ऋतु में जल उतर जाने (कम हो जाने) से लहरियादार बालुराशि के सम्बन्ध से अत्यन्त गुलगुल, रुईदार गद्दो के समान तटों से नदियाँ शोभित हो रही हैं। (पानी घट जाने से ऊँचे कगार परदे की दीवार होंगे, धारा के पास की भूमि लहरियादार बालुका राशि से अत्यन्त गुलगुल, मृदुलस्पर्शवान् रुईदार गद्दे की शय्या होगी, शीतकाल के कारण अन्यजनों के आने की शङ्का नहीं रहेगी—आदि सुविधा की दृष्टि से नदीतट ही उपयुक्त संकेतस्थल समझो) ॥ ३०८ ॥

सखी परनायक से मिलाने के उद्देश्य से नायिका को उपदेश दे रही है—

निजकायच्छायायां विश्रम्य निदाघविपदमपनेतुम्।
वत विविधास्तनुभङ्गीर्मुग्धकुरङ्गीयमाचरति ॥ ३०९ ॥

पदार्थ—निजकायच्छायायाम्—निजस्य कायस्य छायायाम्—अपने शरीर

की छाया में। विश्रम्य—विश्राम कर। निदाघविपदम्—निदाघस्य विपदम्—ग्रीष्मकालीन आतप का दुःख। अपनेतुम्—दूर करने को। बत—खेद है। इयं मुग्धकुरङ्गी—यह नादान हरिणी। विविधाः तनुभङ्गीः—विविध शरीरचेष्टाओं को। आचरति—कर रही है।

सरलार्थ—अपनी शरीरच्छाया में (ही) विश्राम कर ग्रीष्मकालीन आतप के निवारणार्थ, खेद है, यह नादान हरिणी भाँति-भाँति की शारीरिक चेष्टाएँ कर रही है (स्वाधीननायकमात्र का अवलम्बन ले कर विविध चेष्टा करने पर भी तेरा मदन-सन्ताप दूर नहीं होगा अतः अन्य नायक का अवलम्बन शीघ्र ले) ॥ ३०९ ॥

सखी, नायिका को, बे-रोक टोक नायक से सम्पर्क स्थापित करने की, उदाहरण द्वारा विधि बता रही है—

न हसन्ति जरठ इति यद्बल्लववनिता नमन्ति नन्दमपि ।
सखि स यशोदातनयो नित्यं कन्दलितकंदर्पः ॥ ३१० ॥

पदार्थ—यत्—जिससे। सः—प्रसिद्धः, यशोदातनयः श्रीकृष्णः—वह प्रसिद्ध यशोदातनय श्रीकृष्ण। नित्यं कन्दलितकंदर्पः—कन्दलितः अङ्कुरितः कंदर्पः येन सः—जिससे मदन अङ्कुरित होता है अर्थात् मदन को बढ़ाने वाला। हे सखि! बल्लववनिताः—गोपवनिताः—गोपियाँ। नन्दम्—नन्द को। जरठः—बूढ़ा है। इति—ऐसा (कहकर)। हसन्ति न—हँसती नहीं हैं, अपि तु प्रणमन्ति—प्रणाम करती हैं।

सरलार्थ—क्योंकि श्रीकृष्ण जी नित्य मदनोद्दीपक हैं अतः (उनसे सम्पर्क स्थापित करने के लिये) अज्ञ गोपियाँ नन्द को बूढ़ा कहकर हँसतीं नहीं अपितु उन्हें प्रणाम करती हैं।

(अज्ञ गोपियाँ जब ऐसा चातुर्य-मय उपाय करती हैं तो तू भी चतुर है, ऐसा ही उपाय कर, नायक के हास्यार्ह गुरुजन के प्रति श्रद्धा एवम् आदर दिखा कर उनका विश्वासपात्र बन और बे-रोक टोक नायक के घर आना-जाना आरम्भ कर दे) ॥ ३१० ॥

स्त्रियों की सावधानी से देख भाल करनी चाहिये—ऐसा कोई कह रहा है—

नीता स्वभावमर्पितवपुरपि वाम्यं न कामिनी त्यजति ।
हरदेहार्धग्रथिता निदर्शनं पार्वती तत्र ॥ ३११ ॥

पदार्थ—स्वभावं नीता अपि—स्वसदृशीकृतापि—अपने सदृश कर ली गयी भी, स्वात्म्यसम्बन्ध से अपनायी गयी भी। अर्पितवपुरपि—अर्पितं वपुः यस्यै सा—जिसे अपना शरीर भी दे दिया गया। कामिनी—स्त्री। वाम्यं न

त्यजति—(१) कौटिल्य भाव, (२) वामशरीरभागिता नहीं छोड़ती है। तत्र निदर्शनम्—उक्त बात में प्रमाण। हरदेहार्धग्रथिता—हरस्य शिवस्य देहार्धे ग्रथिता—शिव के आधे शरीर में सम्बद्ध। पार्वती—गौरी हैं।

सरलार्थ—स्वात्म्यभाव से अपने समान कर ली गयी भी, (अलंकारादि देने की क्या बात) अपना शरीर भी जिसे दे दिया गया किन्तु स्त्री अपनी वामता (१—कुटिलता, २—वामशरीर का भागी होना) नहीं छोड़ती। उक्त बात में प्रमाण पार्वती जी हैं, जिन्हें शिव जी ने अपना शरीर तक दे दिया किन्तु उनकी वामता (वामशरीर का भागी होना अथवा बायें रहना) नहीं छूटा ॥३११॥

नायक से दूती कह रही है—

नागरभोगानुमितस्ववधूसौन्दर्यगर्वतरलस्य ।
निपतति पदं न भूमौ ज्ञातिपुरस्तन्तुवायस्य ॥ ३१२ ॥

पदार्थ—नागरभोगानुमितस्ववधूसौन्दर्यगर्वतरलस्य—नगरे भवः नागरः तस्य भोगः अनुमितः नखक्षतादिलक्षणेन ज्ञातः येन एतादृशः अत एव स्ववधूसौन्दर्यस्य गर्वेण तरलः तस्य—जिसने नागरव्यक्तिकृत भोग को जान लिया अतएव जो अपनी वधू के सौन्दर्य के गर्व से चंचल हो उठा। तन्तुवायस्य—जुलाहे का। ज्ञातिपुरः—अपनी जाति वालों के सामने। भूमौ पदं न निपतति—भूमि पर पाँव नहीं पड़ता।

सरलार्थ—चतुर पुरुष के द्वारा अपनी अङ्गना का भोग किया जाता हुआ जान कर पत्नी के सौन्दर्य के गर्व से चंचल जुलाहे का, अपनी जाति वालों के सामने (मारे गर्व के) पाँव भूमि पर नहीं पड़ता (अतः तुम निर्भय इसके पास आओ) ॥ ३१२ ॥

स्वयं को समझाती हुई सखी से नायिका नायकविषयक अपनी उदासीनता का कारण बता रही है—

निपतति चरणे कोणे प्रविश्य निशि यन्निरीक्षते कस्तत् ।
सखि स खलु लोकपुरतः खलः स्वगरिमाणमुद्गिरति ॥३१३॥

पदार्थ—कोणे प्रविश्य—कोने में घुस कर। निशि—रात्रौ—रात में। यत्—जो। चरणे निपतति—वह चरण पर गिरता है। तत्—उसे। कः निरीक्षते—कौन देखता है। सखि! सः खलः—वह खल। खलु—निश्चयेन। लोकपुरतः—लोगों के सामने। स्वगरिमाणम्—अपना गौरव। उद्गिरति—व्यक्त करता है।

सरलार्थ—कोने में घुसकर रात में जो वह (मेरे) चरण पर गिरता है, उसे कौन देखता है! सखि! (दिन में) वह खल लोगों के सामने डींग मारता

है (मैं ऐसा गुणवान् हूँ कि मुझ में अमुक नायिका अत्यन्त आसक्त है—आदि कहकर मुझे बदनाम करता है, अतः मैं अब ऐसे खल की सङ्गति करने को तैयार नहीं) ॥ ३१३ ॥

महान् व्यक्ति को क्रोध नहीं आता और यदि आ गया तो अनर्थकारी ही होता है—ऐसा कोई कह रहा है—

न विमोचयितुं शक्यः क्षमां महान्मोचितो यदि कथंचित्।
मन्दरगिरिरिव गरलं निवर्तते ननु समुत्थाप्य ॥ ३१४ ॥

पदार्थ—महान्—(१) श्रेष्ठ, (२) महापरिमाणशाली। क्षमाम्—(१) क्षमा को, (२) पृथ्वी को। विमोचयितुं न शक्यः—छुड़ाया नहीं जा सकता। यदि कथंचित्—यदि किसी प्रकार। मोचितः—छुड़ाया गया। मन्दरगिरिः इव—मन्दराचल के समान। गरलं समुत्थाप्य ननु—निश्चित ही समझिये, विष उठा कर, उत्पन्न कर। निवर्तते—रुकता है।

सरलार्थ—महान् (१—श्रेष्ठ, २—महापरिमाणशाली) व्यक्ति से क्षमा (१—शान्ति, २—भूमि) को छुड़ाया नहीं जा सकता और यदि किसी प्रकार छुड़ाया गया तो निश्चित समझिये कि मन्दराचल के सामान (संसार में) विष बगरा कर ही वह दम लेता है (अतः महान् को क्रुद्ध नहीं करना चाहिये) ॥ ३१४ ॥

जब तक अन्य कोई उचित अवलम्बन मिले, दुष्ट प्रभु की सेवा न करे—ऐसा कोई कह रहा है—

नियतैः पदैर्निषेव्यं स्खलितेऽनर्थावहं समाश्रयति।
संभवदन्यगतिः कः संक्रमकाष्ठं दुरीशं च ॥ ३१५ ॥

पदार्थ—नियतैः पदैः—(१) नियत व्यवहार-मार्ग से, (२) नियत-चरणविन्यास से। निषेव्यम्—(१) सेवायोग्य, (२) सेवनयोग्य। स्खलिते—(१) अपराध या त्रुटि हो जाने पर, (२) चरण डगमगा जाने पर। अनर्थावहम्—अनर्थ कर देने वाले। दुरीशं—दुष्ट प्रभु को। संक्रमकाष्ठम्—पार जाने के लिए एक तट से दूसरे तट तक रक्खी लकड़ी को। संभवदन्यगतिः—संभवन्ती अन्यस्य गतिः यस्य—जिसे अन्य का आश्रय संभव है। अन्येन मार्गेण साधनेन वा गतिः गमनं यस्य—अन्य मार्ग या साधन की जिसे प्राप्ति संभव है। कः समाश्रयति—कौन अपनाता है ?

सरलार्थ—जिसकी सेवा नियत व्यवहार-मार्ग से ही शक्य है, तनिक सी त्रुटि पर जो अनर्थ कर दे, ऐसे दुष्ट प्रभु की सेवा, अन्य कोई साधन या अवलम्ब संभव होने पर कौन करता है ? अर्थात् कोई नहीं। जिस पर नियत

चरणविन्यास से ही चला जा सके, तनिक-सा पाँव डगमग हो जाने पर जो अनर्थ कर दे—जल में डुबोकर जीवन ले ले—ऐसे संक्रमकाष्ठ के द्वारा कौन जल-प्रवाह पार करता है जब कि अन्य मार्ग या साधन से गमन संभव है ॥३१५॥

विना सज्जनों के कवियों की शोभा नहीं होती—ऐसा कोई कह रहा है—

निजपदगतिगुणरञ्जितजगतां करिणां च सत्कवीनां च ।
वहतामपि महिमानं शोभायै सज्जना एव ॥ ३१६ ॥

पदार्थ—निजपदगतिगुणरञ्जितजगताम्—(१) निजपदगत्या सुप्तिङन्त-ज्ञानेन तद्रूपेण गुणेन रञ्जितं जगत् यैः तेषाम्—जिन्होंने पदों के सम्यक् ज्ञान रूप गुण से संसार का रञ्जन किया, (२) निजपदगतिः स्वचरण-मन्दगमनम्, तद्रूपो यः गुणः तेन रञ्जितं जगत् यैः तेषाम्—अपने चरण की मन्दगति रूप गुण से जिन्होंने संसार को प्रसन्न कर लिया। महिमानम्—(१) प्रतिष्ठाम्, (२) महत् परिमाणं च—प्रतिष्ठा और बड़ा आकार, डील-डौल। वहतामपि—रखते हुए भी। सत्कवीनां च करिणां च—सत्कवियों और गजों की। शोभायै—शोभा के लिए। सज्जनाः—(१) सत्पुरुषाः, (२) भूषणसम्पादनाः—(१) सत्पुरुष, (२) सजाने की क्रियाएँ।

सरलार्थ—अपने पदविषयक सम्यक् ज्ञान से जिन्होंने संसार का रञ्जन किया, ऐसे प्रतिष्ठा को रखते हुए भी सत्कवियों की शोभा सज्जनों से ही है। अपनी मन्दगति से संसार को प्रसन्न करने वाले भारी डील-डौल रखते हुए भी गजों की शोभा भूषित करने की क्रियाओं से ही होती है ॥ ३१६ ॥

नायिका, नायक के प्रेम की प्रशंसा कर रही है—

नोत्तपते न स्नेहं हरति न निर्वाति न मलिनो भवति ।
तस्योज्ज्वलो निशि निशि प्रेमा रत्नप्रदीप इव ॥ ३१७ ॥

पदार्थ—न उत्तपते—(१) नाधिकः, सम एवेत्यर्थः, (२) न दाहकः। न स्नेहं हरति—(१) प्रीतिनाशक नहीं, (२) तैल-नाशक नहीं। न निर्वाति—नष्ट नहीं होता। न मलिनः भवति—(१) दुःखसंपादक नहीं, (२) कज्जल नहीं करता। उज्ज्वलः—मालिन्यशून्य। निशि निशि—रात्रि में उत्तरोत्तर। तस्य प्रेमा—उसका प्रेम। रत्नप्रदीपः इव—रत्नप्रदीप सा है।

सरलार्थ—उसका प्रेम प्रतिनिश सम ही रहता है, प्रीतिनाशक नहीं होता, न नष्ट होता है, न मलिन होता है, मालिन्यशून्य रहता है। जैसे रत्नप्रदीप न दाहक, न तैलनाशक, न कज्जलदायक, न नष्ट होता, रात्रि में प्रकाश देता है ॥ ३१७ ॥

नायिका, नायकविषयक अपनी आसक्ति का वर्णन सखी से कर रही है—

निहितान्निहितानुज्झति नियतं मम पार्थिवानपि प्रेम ।
भ्रामं भ्रामं तिष्ठति तत्रैव कुलालचक्रमिव ॥ ३१८ ॥

पदार्थ—मम नियतं प्रेम—मेरा नियत प्रेम । निहितान् निहितान् पार्थिवान्—(१) प्रेमारूढ भूपतियों को, (२) ऊपर निहित घट आदि को । उज्झति—छोड़ देता है । कुलालचक्रमिव—कुम्हार के चाक की भाँति । भ्रामं भ्रामम्—घूम-घूम कर । तत्रैव—उसी में । तिष्ठति—ठहरता है ।

सरलार्थ—मेरा नियत प्रेम प्रेमारूढ भूपतियों को भी त्याग देता है । ऊपर निहित घटादि को त्याग देने वाले कुम्हार के चाक की भाँति घूम-घूम कर उसी (प्रिय) में ठहरता है ॥ ३१८ ॥

नायक, नायिका की सखी से कह रहा है—

निर्भरमपि संभुक्तं दृष्ट्या प्रातः पिबन्न तृप्यामि ।
जघनमनंशुकमस्याः कोक इवाशिशिरकरबिम्बम् ॥३१९॥

पदार्थ—निर्भरम्—अत्यन्तम् , संभुक्तमपि—अत्यन्त संभोग किया गया भी । अनंशुकम्—वस्त्ररहित । अस्याः जघनम्—इसके जघन-प्रदेश को । अशिशिरकरबिम्बम्—सूर्य के बिम्ब को । कोकः इव—चक्रवाक. इव—चक्रवाक के समान । प्रातः । दृष्ट्या पिबन्—सादर अवलोकन करता । न तृप्यामि—तृप्त नहीं होता ।

सरलार्थ—अत्यन्त संभुक्त भी, वस्त्ररहित इसके जघनप्रदेश को प्रातः, सूर्यबिम्ब को चक्रवाक के समान, सादर अवलोकन करता मैं तृप्त नहीं होता हूँ ॥ ३१९ ॥

नायक सखा से कह रहा है—

निबिडघटितोरुयुगलां श्वासोत्तब्धस्तनार्पितव्यजनाम् ।
तां स्निग्धकुपितदृष्टिं स्मरामि रतनिःसहां सुतनुम् ॥३२०॥

पदार्थ—निबिडघटितोरुयुगलाम्—निबिडम् अत्यन्तम् घटितम् ऊरुयुगलम् यया ताम्—जिसने दोनों जाँघों को अत्यन्त सटा लिया है । श्वासोत्तब्धस्तनार्पितव्यजनाम्—श्वासेन उत्तब्धौ यौ स्तनौ तयोः अर्पितं व्यजनं यया ताम्—श्वास से उत्तब्ध स्तनों पर जिसने पंखा रख लिया है । स्निग्धकुपितदृष्टिम्—स्निग्धा कुपिता च दृष्टिः यस्याः ताम्—जिसकी दृष्टि स्निग्ध और कुपित है । रतनिःसहाम्—रत को न सह पाने वाली । तां सुतनुम्—उस सुन्दरी को । स्मरामि—स्मरण करता हूँ ।

सरलार्थ—(सुरतक्लेश से) जिसने दोनों जाँघों को अत्यन्त सटा लिया, (खेद दूर करने के लिये गृहीत व्यजन को चलाने में असमर्थ होने से) श्वास से उत्तब्ध स्तन पर जिसने व्यजन रख दिया, जिसकी दृष्टि (आनन्दाविर्भाव से) स्निग्ध तथा (क्लेश से) कुपित है उस रत को न सह पाने वाली सुन्दरी का मैं स्मरण करता हूँ ॥ ३२० ॥

गुणों को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त यत्न करना चाहिये—ऐसा कोई किसी को उपदेश दे रहा है—

निर्गुण इति मृत इति च द्वावेकार्थाभिधायिनौ विद्धि ।
पश्य धनुर्गुणशून्यं निर्जीवं तदिह शंसन्ति ॥ ३२१ ॥

पदार्थ—निर्गुणः—गुणरहित इति, मृतः इति च—निर्गुण है और मर गया है । द्वौ एकार्थाभिधायिनौ विद्धि—दोनों को एक ही अर्थ का वाचक समझो । पश्य—देखो । गुणशून्यम्—गुण (मौर्वी) रहित । धनुः । तत्—उसे । इह—लोक में । निर्जीवम्—निर्गता जीवा यस्मात्तत्—जिससे जीवा (मौर्वी-निकल) गयी । शंसन्ति—कहते हैं ।

सरलार्थ—निर्गुण (गुणरहित) और मृत—इन दोनों शब्दों को पर्याय समझो । गुण (मौर्वी) रहित धनुष को देखो । लोक में उसे निर्जीव (जीवा=मौर्वी-रहित) कहते हैं ॥ ३२१ ॥

सुरत के समय अतिटाल्यार्थ, नायिका नायक के चित्त को दूसरी ओर फेरने के उद्देश्य से कह रही है—

निजसूक्ष्मसूत्रलम्बी विलोचनं तरुण ते क्षणं हरतु ।
अयमुद्गृहीतवडिशः कर्कट इव मर्कटः पुरतः ॥ ३२२ ॥

पदार्थ—हे तरुण ! उद्गृहीतवडिशः—उद्गृहीतं वडिशं येन सः—जिसने वंसी (कँटिया) को पकड़ लिया । कर्कटः इव—केकड़ा के समान । पुरतः—सामने । अयं मर्कटः—लूता (मकड़ा) 'लूता स्त्री तन्तुवायोर्णनाभमर्कटकाः समाः' इत्यमरः । निजसूक्ष्मसूत्रलम्बी—अपने सूक्ष्म सूत्र से लटका । ते विलोचनम्—तुम्हारे नेत्र को । क्षणं हरतु—थोड़ी देर हरे—तुम इसे थोड़ी देर ध्यान से देखो ।

सरलार्थ—हे तरुण ! वंसी (कँटिया) में फँसा हुआ केकड़ा-सा, अपने सूक्ष्मसूत्र से लटका, यह सामने (दिखायी देता) मकड़ा तेरे नेत्र को थोड़ी देर हरे—तू थोड़ी देर इसे ध्यान से देख ॥ ३२२ ॥

गाँव की रहने वाली यह वैसी गुणशालिनी न होगी—नायिका के विषय में ऐसा सोचते हुए नायक से नायिका की सखी कह रही है—

नागर गीतिरिवासौ ग्रामस्थित्यापि भूषिता सुतनुः।
कस्तूरी न मृगोदरवासवशाद्विस्रतामेति ॥ ३२३ ॥

पदार्थ—हे नागर! असौ सुतनुः—यह सुन्दरी। गीतिः इव—गीति के समान। ग्रामस्थित्या अपि—ग्रामः (१—नगरादिभिः भिन्नः, २—स्वर-सप्तकम्), तत्र स्थित्या अपि—(१) नगर से भिन्न गाँव में रहने पर भी, (२) एक षड्ज से दूसरे षड्ज तक का स्वरसमूह—सात स्वर में रहने पर भी। भूषिता—सुशोभिता। कस्तूरी। मृगोदरवासवशात्—मृगस्य उदरे वासः तस्य वशात्—मृग के उदर मे रहने के कारण। विस्रताम्—दौर्गन्ध्यम्, न एति—दुर्गन्ध को प्राप्त नहीं होती।

सरलार्थ—हे नागर! यह सुन्दरी ग्राम (स्वर-सप्तक) में रहने वाली गीति के समान, ग्राम में रहने पर भी भूषित है। कस्तूरी मृग के उदर में रहने के कारण दुर्गन्ध को नही प्राप्त होती (अतः तू इस गुणशालिनी में आसक्ति कर) ॥ ३२३ ॥

कुरबककुसुमशय्या पर सुरत कर आयी नायिका से सखी कह रही है—

नखलिखितस्तनि कुरबकमयपृष्ठे भूमिलुलितविरसाङ्गि।
हृदयविदारणनिःसृतकुसुमास्त्रशरेव हरसि मनः ॥ ३२४ ॥

पदार्थ—नखलिखितस्तनि—नखानां लिखितानि चिह्नानि स्तनयोः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—जिसके स्तनो पर नखचिह्न है। कुरबकमयपृष्ठे—कुरबकमयं पृष्ठं यस्याः तत्सम्बुद्धिः—जिसकी पीठ मे कुरबकपुष्प लगे हैं। भूमिलुलित-विरसाङ्गि—भूमौ लुलितानि विरसानि अङ्गानि यस्याः तत्सम्बुद्धिः—भूमि पर रौंदे गये अतएव जिसके अङ्ग फीके पड़ गये है। हृदयविदारणनिःसृतकुसुमा-स्त्रशरा इव—हृदयविदारणेन (पृष्ठमार्गेण) निःसृताः कुसुमास्त्रस्य मन्मथस्य शराः यस्या तत्सम्बुद्धिः—जिसके हृदय को चीरकर पृष्ठमार्ग से आर-पार कामदेव के बाण निकले है। मनः हरसि—तू मन को हरती है।

सरलार्थ—जिसके स्तनो पर नखचिह्न है; भूमि पर रौंदे गये जिसके अङ्ग फीके पड़ गये है, जिसकी पीठ पर कुरबक के पुष्प लगे है, ऐसी तू मन को हर रही है, तेरी पीठ मे ये कुरबक के पुष्प नहीं लगे है, किन्तु हृदय को वेधकर उसपार पीठ की ओर निकले हुए कामदेव के बाण है (मुझसे छिपाना अनुचित है) ॥ ३२४ ॥

सब भार्याओं में समता का व्यवहार करना चाहिये—ऐसा, कोई किसी को उपदेश दे रहा है—

नीता लघिमानमियं तस्यां गरिमाणमधिकमर्पयसि ।
भार इव विषमभार्यः सुदुर्वहो भवति गृहवासः ॥ ३२५ ॥

पदार्थ—इयम्—यह । लघिमानं नीता—लघुतां प्रापिता—लघुता को प्राप्त करायी गयी । तस्याम्—उसमें । अधिकम् गरिमाणं—अधिक गौरव । अर्पयसि—अर्पित करते हो । विषमभार्यः—(१) विषमे परस्परविरुद्धे भार्ये यत्र सः—जहाँ दो स्त्रियाँ परस्पर विरुद्ध हों, (२) विषमधृतश्च—एक ओर अधिक दूसरी ओर कम रक्खा गया । गृहवासः—घर में रहना—गृहस्थ आश्रम । भारः इव—भार के समान । सुदुर्वहः भवति—अत्यन्त दुर्वह होता है ।

सरलार्थ—इसे लघुता, उसे गौरव देते हो । इस प्रकार जहाँ दो स्त्रियाँ परस्पर-विरुद्ध हों वह गृहस्थ आश्रम, एक ओर कम दूसरी ओर अधिक—इस प्रकार विषम रूप से रक्खे गये भार की तरह अत्यन्त दुर्वह हो जाता है ॥३२५॥

नायक ने आकर अकस्मात् मेरे केशों को क्यों पकड़ा—इस प्रकार कहती नायिका से सखी कह रही है—

न च दूती न च याच्ञा न चाञ्जलिर्न च कटाक्षविक्षेपः ।
सौभाग्यमानिनां सखि कचग्रहः प्रथमसमभियोगः ॥ ३२६ ॥

पदार्थ—न च दूती—न दूती भेजना । न याच्ञा च—और न याच्ञा करना । न च अञ्जलिः—और न हाथ जोड़ना । न च कटाक्षविक्षेपः—और न कटाक्षविक्षेप करना । हे सखि ! सौभाग्यमानिनां—सुभग एवम् अभिमानशाली नायकों द्वारा । कचग्रह—केशों का ग्रहण । प्रथमम्—प्रथम । अभियोगः—अध्यवसाय, उपाय है ।

सरलार्थ—दूतीप्रेषण, प्रार्थना करना, हाथ जोड़ना, कटाक्ष विक्षेप आदि अपेक्षित नहीं है । नायिका को स्वाधीन करने के लिये सुभग एवम् अभिमानी नायकों का प्रथम उपाय है—नायिका के केशों को पकड़ना ॥ ३२६ ॥

मदनावस्था में कुछ नहीं सूझता—ऐसा, कोई कह रहा है—

निशि विषमकुसुमविशिखप्रेरितयोर्मौनलब्धरतिरसयोः ।
मानस्तथैव विलसति दंपत्योरशिथिलग्रन्थिः ॥ ३२७ ॥

पदार्थ—निशि—रात में । विषमकुसमविशिखप्रेरितयोः—विषमकुसुमविशिखः दुःसहः मदनः अथवा विषमः असह्यः (कामदेवस्य) कुसुमरूपविशिखः बाणः तेन प्रेरितयोः रतौ नियोजितयो—कामदेव के असह्य कुसुमरूप बाण से रति

में नियोजित। मौनलब्धरतिरसयो —मौनं लब्धः प्राप्तः रतेः रसः याभ्यां तयोः— जिन्होंने मौन रति का आनन्द प्राप्त किया। दम्पत्योः—जाया च पतिश्च इति दम्पती तयोः—पत्नी और पति का। मानः। तथैव—पूर्ववत्। अशिथिलग्रन्थिः— न शिथिलो ग्रन्थिः यस्य सः—जिसकी गाँठ ढीली नहीं हुई। विलसति—बना हुआ है।

सरलार्थ—रात में कामदेव के असह्य कुसुमशर से प्रेरित दोनों ने मौन रति का आनन्द लूटा और उनका मान पूर्ववत् ज्यों का त्यों बना रहा, उसकी गाँठ तक भी ढीली नहीं हुई ॥ ३२७ ॥

वारवनिता की संगति अनुचित है—ऐसा, कोई किसी को उपदेश दे रहा है—

निजगात्रनिर्विशेषस्थापितमपि सारमखिलमादाय ।
निर्मोकं च भुजंगी मुञ्चति पुरुषं च वारवधूः ॥ ३२८ ॥

पदार्थ—निजगात्रनिर्विशेषस्थापितम् अपि—निजगात्रस्य निर्विशेषेण स्थापितम्—अपने शरीर के समान ही रक्खा गया भी। अखिलम्—समग्र। सारम्—सारभूत वस्तु। आदाय—लेकर। निर्मोकम् कञ्चुकम्—केंचुल को। भुजंगी—सर्पिणी। पुरुषं च—और पुरुष को। वारवधूः—वेश्या। मुञ्चति— छोड देती है।

सरलार्थ—अपने शरीर के समान ही रख कर भी, समग्र सारभूत वस्तु को ले लेने के बाद सर्पिणी केंचुल को और वेश्या पुरुष को त्याग देती है (केंचुल की तरह निःसार बनाकर वेश्या छोड़ देती है अतः उसकी संगति उचित नहीं है)॥ ३२८ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

नृत्यश्रमघर्मार्द्रं मुञ्चसि कृच्छ्रेण कञ्चुकं सुतनु ।
मकरन्दोदकजुष्टं मदनधनुर्वल्लिरिव चोलम् ॥ ३२९ ॥

पदार्थ—नृत्यश्रमेण यः घर्मः स्वेदः तेन आर्द्रम्—नृत्यश्रम से जन्य स्वेद से आर्द्र। कञ्चुकम्—चोली को। हे सुतनु—सुन्दरि! कृच्छ्रेण—क्लेश से। मुञ्चसि—छोड़ रही हो, निकाल पा रही हो। मकरन्दोदकजुष्टम्—मकरन्दोदकम् पुष्परस. तेन जुष्टम्—मकरन्द से ओत-प्रोत। मदनधनुर्वल्लिः—कामदेव की धनुर्लता। चोलम् इव—जैसे चोल (ऊपरी आवरण को)।

सरलार्थ—नृत्यश्रमजन्य स्वेद से आर्द्र कञ्चुक को तू, मकरन्द से ओत-प्रोत मदनधनुर्लता जैसे चोल (ऊपर के आवरण) को, कठिनाई से निकाल पा रही है।

(सखी परिहास के रूप में कह रही है जिसका आशय है यह तो कृत्रिम स्वेद है जिससे कञ्चुक (पुंल्लिङ्ग होने से) आर्द्र (सरस) बनकर तेरे शरीर से ऐसा चिपक गया है और तू भी इतनी इस पर स्निग्ध है कि वह न तो निकल पा रहा है और न तू उसे निकाल ही पा रही है; भला सात्त्विक स्वेद के होने पर तेरी और तेरे नायक की क्या दशा होगी—कह नहीं सकती) ॥३२९॥

नायिका का दुश्चरित जान कर सखी कह रही है—

नाहं वदामि सुतनु त्वमशीला वा प्रचण्डचरिता वा ।
प्रेमस्वभावसुलभं भयमुदयति मम तु हृदयस्य ॥ ३३० ॥

पदार्थ—हे सुतनु ! सुन्दरि ! त्वम् अशीला वा—तू शीलशून्या है । प्रचण्डचरिता वा—अथवा तेरा चरित दूषित है । इति नाहं वदामि—ऐसा मैं नहीं कह रही हूँ । मम तु हृदयस्य—मेरे हृदय को तो । प्रेमस्वभावसुलभम्—प्रेम के कारण जैसा होना स्वाभाविक है । भयम् उदयति—भय पैदा होता है ।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! तू शीलशून्य है अथवा दुश्चरित है—यह मैं नहीं कह रही हूँ । बल्कि मेरे हृदय को भय हो रहा है जैसा कि प्रेम के कारण होना स्वाभाविक है (कदाचित् किसी ने यह बात जान ली तो क्या होगा ? अत. अब आगे ऐसा न होने पावे) ॥ ३३० ॥

दूती नायिका से मिलाने के लिये नायक से कह रही है—

न निरूपितोऽसि सख्या नियतं नेत्रत्रिभागमात्रेण ।
हारयति येन कुसुमं विमुखे त्वयि कण्ठ इव देवे ॥ ३३१ ॥

पदार्थ—सख्या—नायिकया—नायिका द्वारा। नेत्रत्रिभागमात्रेण, कटाक्षमात्रेण—कटाक्ष मात्र से। नियतम्—निश्चित । न निरूपितोऽसि—नहीं देखे गये हो । येन—जिस कारण से । देवे इव त्वयि विमुखे—तुम्हारे विमुख होने से जैसे देव विमुख हो गया । कण्ठे—कण्ठ में । कुसुमं हारयति—(स्थित) फूल को (सखी से) हटवाती है (क्षीणतावश स्वयं नही हटा पाती) अथवा एक फूल हार के बराबर भारी मालूम करती है ।

सरलार्थ—यह निश्चित समझिये—सखी (नायिका) ने तुम्हे कटाक्ष से भी नहीं देखा है । (अन्तःकरण से तुममें अनुरागवती है) जिससे तुम्हारे मुँह फेर लेने पर मानो देव ने मुँह फेर लिया है (तुम्हारे केवल मुँह फेरने से ही यह दशा है कि क्षीणतावश) कण्ठ में (स्थित) एक फूल को (सखी से) हटवाती है अथवा एक फूल को हार के बराबर भारी अनुभव करती है (अतः तुम्हें उसकी उपेक्षा कदापि नहीं करनी है) ॥ ३३१ ॥

नायिका ने तुझे क्यों पीटा—इस प्रकार पूछते हुए व्यक्ति से नायक कह रहा है—

नखदशनमुष्टिपातैरदयैरालिङ्गनैश्च सुभगस्य ।
अपराधं शंसन्त्यः शान्तिं रचयन्ति रागिण्यः ॥ ३३२ ॥

पदार्थ—नखदशनमुष्टिपातैः—नखानां, दशनानां, मुष्टीनां च पातैः अभिपातैः—नखक्षत, दशनपीडन, मुष्टिक-प्रहार से। अदयैः—न दया येषु तैः—जिसमें दया नहीं अर्थात् गाढ। आलिङ्गनैः—आलिङ्गनों से। सुभगस्य—सुभग के। अपराधं शंसन्त्यः—अपराध को कहती हुई। रागिण्यः—अनुरागवती कामिनियाँ। शान्तिम् रचयन्ति—क्रोधोपशमं कुर्वन्ति—क्रोध के शान्त्यर्थ विधान कर लेती हैं।

सरलार्थ—नखाङ्क, दशनाङ्क, मुष्टिप्रहार आदि से, निर्दय आलिङ्गन से सुभग (अभागे के नहीं) के अपराध को कहती हुई (वास्तव में अपराध लगाती नहीं) अनुरागवती नायिकाएँ अपने क्रोध के उपशमार्थ विधान बना लेती हैं (नायक को उनके क्रोध के शान्त्यर्थ कुछ करना नहीं रहता) ॥३३२॥

किसी की आसक्ति से गर्वित तरुणी से अन्योक्ति द्वारा कोई स्त्री कह रही है—

न गुणे न लक्षणेऽपि च वयसि च रूपे च नादरो विहितः ।
त्वयि सौरभेयि घण्टा कपिलापुत्रीति बद्धेयम् ॥ ३३३ ॥

पदार्थ—न गुणे—न गुणविषयक। न लक्षणे—सामुद्रिकशास्त्रोक्त लक्षणविषयक नहीं। वयसि—तारुण्यविषयक। रूपे च—रूपविषयक। आदरो न विहितः—आदर नहीं किया। सौरभेयि—सुरभि की वत्से ! कपिलापुत्री—तू कपिला की पुत्री है—यह सोचकर। त्वयि—तुझमें। इयं घण्टा—यह घण्टी। निबद्धा—बाँधी गई। (तेरी माता गुणवती थी—इस प्रसिद्धि के कारण, तू उसी की सन्तति है—केवल यही सोचकर वह आसक्त है, तू व्यर्थ गर्व कर रही है।)

सरलार्थ—हे सौरभेयि ! कपिला की पुत्री होने के कारण ही यह घण्टी तुझमें बाँधी गई है। इससे तेरे गुण, लक्षण, तारुण्य और रूप का आदर नहीं किया गया है ॥ ३३३ ॥

तुम्हारे घर में अकारण ही कलहादिक क्यों ? ऐसा कहते व्यक्ति से कोई कह रहा है—

निष्कारणापराधं निष्कारणकलहरोपपरितोषम् ।
सामान्यसरणजीवनसुखदुःखं जयति दांपत्यम् ॥ ३३४ ॥

पदार्थ—निष्कारणं कारणं विनैव अपराधः यस्य तत्—जिसका अपराध

बिना कारण। निष्कारणं कलहः रोषः परितोषश्च यस्य तत्—जिसका बिना कारण कलह, क्रोध, सन्तोष। सामान्यमरणजीवन-सुखदुःखम्—सामान्यं मरणं जीवनं सुखं दुःखं वा यस्य तत्—जिसका साधारण मरण, जीवन, सुख, दुख है। दांपत्यम्—जाया च पतिश्च इति दम्पती तयोः भावः—पति पत्नी का सम्बन्ध। जयति—सर्वोत्कृष्ट है।

सरलार्थ—जिसका अकारण ही अपराध होता है, अकारण ही कलह, क्रोध और सन्तोष होता है, जिसका साधारण मरण, जीवन, सुख, दुःख है, ऐसा पति पत्नी का सम्बन्ध सर्वोत्कृष्ट है (यदि ऐसा नहीं होता है तो वह दांपत्य अपकृष्ट है।) ॥ ३३४ ॥

एक बार सङ्गति कर पुनः दुबारा न मिल सकी नायिका से नायक कह रहा है—

न प्राप्यसे कराभ्यां हृदयान्नापैपि वितनुषे बाधाम् ।
त्वं मम भग्नावस्थितकुसुमायुधविशिखफलिकेव ॥३३५॥

पदार्थ—भग्नावस्थितकुसुमायुधविशिखफलिका इव—भग्ना सती अवस्थिता कुसुमायुधस्य मदनस्य विशिखफलिका इव—टूटकर स्थित रह गयी कामदेव के तीर की गाँसी के समान। त्वम्—तू। कराभ्यां न प्राप्यसे—हाथों से पकड़ में नहीं आती। मम हृदयात् न अपैषि—मेरे हृदय से नहीं निकल पाती। बाधाम् वितनुषे—पीडा और बढ़ाती है।

सरलार्थ—तू (मेरे हृदय में) कामदेव के तीर की गाँसी के समान (घुसी और) टूट कर रह गयी (निकल नही सकी), हाथों से पकड़ में नही आती (अतः इस ढंग से भी तुझे निकालना असंभव है), हृदय से (किसी भी उपाय द्वारा) नही निकलती है, (निरन्तर) पीडा और बढाती जाती है ॥३३५॥

मेरा नायक आज्ञाकारी है, ऐसा कहती नायिका से दूसरी स्त्री कह रही है—

नाथेति परुषमुचितं प्रियेति दासेत्यनुग्रहो यत्र ।
तद्दांपत्यमितोऽन्यन्नारी रज्जुः पशुः पुरुषः ॥ ३३६ ॥

पदार्थ—नाथ इति—'नाथ' यह सम्बोधन। परुषम्—कठोर। प्रिय इति उचितम्—'प्रिय' यह सम्बोधन उचित है। यत्र दास इति अनुग्रहः—जहाँ 'दास' यह सम्बोधन अनुग्रह है। तद् दांपत्यम्—वह पति-पत्नी भाव है। इतः अन्यत्—इससे विपरीत। नारी रज्जुः—नारी रस्सी है। पशुः पुरुषः—पुरुष पशु है।

सरलार्थ—जहाँ 'नाथ' सम्बोधन कठोर है, 'प्रिय' सम्बोधन उचित है। जहाँ 'दास'—ऐसा सम्बोधन अनुग्रह है (अभिन्नता इतनी है कि कृत्रिमता

नाममात्र नहीं) वही तो दांपत्य है। अन्यथा ऐसा समझो कि नारी रस्सी और पुरुष पशु है ॥ ३३६ ॥

प्रथमनायिका की सखी से नायक कह रहा है—

निहितायामस्यामपि सैवैका मनसि मे स्फुरति ।
रेखान्तरोपधानात्पत्त्राक्षरराजिरिव दयिता ॥ ३३७ ॥

पदार्थ—अस्यां निहितायामपि—इस (द्वितीय नायिका) के, मन में निहित रहने पर भी। सा एव एका दयिता—केवल वही। मे मनसि स्फुरति—मेरे मन में स्फुरित होती है। रेखान्तरोपधानात् पत्त्राक्षरराजिः इव—रेखान्तरविधान से पत्र की अक्षर-पंक्ति के समान।

सरलार्थ—यद्यपि मन में यह द्वितीय नायिका निहित है तथापि वही एक प्रिया स्फुरित होती है—उसी की शोभा इससे बढ़ती है—उसी में मेरी आसक्ति है। जैसे पत्राक्षर की पङ्क्ति के ऊपर रेखान्तर-विधान से उसी पत्राक्षरपंक्ति की शोभा बढ़ती है, लेखक या पाठक का ध्यान भी रेखान्तर पर नहीं अक्षरपंक्ति पर ही रहता है ॥ ३३७ ॥

नायिका से देखा गया नायक, सपरिहास नायिका से कह रहा है—

निधिनिक्षेपस्थानस्योपरि चिह्नार्थमिव लता निहिता ।
लोभयति तव तनूदरि जघनतटादुपरि रोमाली ॥ ३३८ ॥

पदार्थ—निधिनिक्षेपस्थानस्य—निधि रखने के स्थान के ऊपर। चिह्नार्थमिव—स्थान भूल न जाय इसलिये। निहिता लता—निहित लता। हे तनूदरि—कृशोदरि! तव जघनतटात् उपरि—तेरे जघनतट से ऊपर। रोमाली—रोमराजिः—रोमपंक्ति। लोभयति—मन लुभा लेती है।

सरलार्थ—जैसे लोग जहाँ निधि स्थापित करते हैं वहाँ लता आदि चिह्न-स्वरूप निहित कर देते हैं जिससे वह स्थान भूला न जा सके उसी प्रकार हे कृशोदरि! तेरे जघनतट से ऊपर रोमाली मन को हर रही है (तेरे जघनतट के नीचे निधिनिक्षेप स्थान है—यह परिहास है) ॥ ३३८ ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

निहितार्धलोचनायास्त्वं तस्या हरसि हृदयपर्यन्तम् ।
न सुभग समुचितमीदृशमङ्गुलिदाने भुजं गिलसि ॥ ३३९ ॥

पदार्थ—निहितार्धलोचनायाः—निहितं लोचनस्य अर्धम् यया तस्याः—जिसने तुझमें किंचित् कटाक्ष-पात किया। तस्याः—उसका। त्वं हृदयपर्यन्तं हरसि—तू हृदय तक हरता है। हे सुभग! ईदृशम्—ऐसा। समुचितं न—समुचित

नहीं। अङ्गुलिदाने भुजं गिलसि—अङ्गुली पकड़ाने पर भुजा पकड़ते हो (थोड़ा दिये जाने पर सभी ले लेते हो)।

सरलार्थ—हे सुभग ! उसने तुझ पर केवल कटाक्ष-पात किया था (तो तुझे उसे ही हरना था किन्तु), तूने तो उसके हृदय तक को हर लिया। यह उचित नहीं है (जितना दिया जाय उतना ही लेना उचित है), अङ्गुली पकड़कर भुजा पकड़ना उचित नहीं। तुझे अंगुली दी गयी तो तू भुजा तक पकड़ने लगा ॥ ३३९ ॥

मुझे बहुत से युवक चाहते हैं—ऐसा गर्व करती नायिका से कोई स्त्री कहती है—

नीत्वागारं रजनीजागरमेकं च सादरं दत्त्वा ।
अचिरेण कैर्न तरुणैर्दुर्गापत्रीव मुक्तासि ॥ ३४० ॥

पदार्थ—अगारं—गृहं, नीत्वा—अपने घर ले जाकर। सादरम्—आदर सहित। एकं रजनीजागरं दत्त्वा—एक रात का जागरण देकर। दुर्गापत्री—बिल्वपत्री इव—बेलवृक्ष की टहनी की भाँति। कैः तरुणैः—किन युवकों द्वारा। अचिरेण—शीघ्र। न मुक्ता असि—नहीं छोड़ दी गयी।

सरलार्थ—अपने घर ले जाकर, आदरसहित एक रात का जागरण देकर (और कुछ न देकर) अर्थात् रातभर जागकर और तुझे जगाकर, बिल्वपत्री की भाँति तुझे किन युवकों ने शीघ्र त्याग नहीं दिया ! (एक दिन से अधिक किसी की आसक्ति तुझमें नहीं)।

(नवरात्र में अष्टमी को बेल की टहनी लाकर उसे पूज कर, रातभर जागरण आदि कर नवमी को उसे विसर्जित कर देते हैं) ॥ ३४० ॥

जहाँ जहाँ जो जो सामर्थ्य है, वहाँ वहाँ वह तुम्हारा ही सामर्थ्य है—ऐसा अन्योक्ति द्वारा कोई किसी से कह रहा है—

नक्षत्रेऽग्नाविन्दावुदरे कनके मणौ दृशि समुद्रे ।
यत्खलु तेजस्तदखिलमोजायितमब्जमित्त्रस्य ॥ ३४१ ॥

पदार्थ—नक्षत्रे—नक्षत्र में। अग्नौ—अग्नि में। इन्दौ—चन्द्र में। उदरे—उदर में। कनके—सुवर्ण में। मणौ—मणि में। दृशि—नेत्र में। समुद्रे—समुद्र में। यत् तेजः—जो तेज है। तत् अखिलम्—वह सब। खलु—निश्चित। अब्जमित्रस्य—कमलमित्रस्य, सूर्यस्य—सूर्य का। ओजायितम्—सामर्थ्य है।

सरलार्थ—नक्षत्र में, अग्नि में, चन्द्र में, इन्द्र में (अर्थात् चमकने वाला), सुवर्ण में, मणि में, नेत्र में, समुद्र में (रत्नाकर रूप) जो तेज है, वह सब निश्चित सूर्य का सामर्थ्य है ॥ ३४१ ॥

नायिका की दूती नायक से कह रही है—

न सवर्णो न च रूपं न संस्क्रिया कापि नैव सा प्रकृतिः ।
बाला त्वद्विरहापदि जातापभ्रंशभाषेव ॥ ३४२ ॥

पदार्थ—न सवर्णः—(१) सः पूर्वानुभूतः वर्णः कान्तिः न—पहिले जैसी कान्ति नहीं, (२) सवर्ण कार्य नहीं। न च रूपम्—(१) रूप, (२) प्रकृति-प्रत्ययनिष्पन्नशब्दस्वरूप, नहीं। न संस्क्रिया—(१) संस्कार, (२) साधुता नहीं। सा—पूर्वानुभूता। कापि—स्वल्पापि। प्रकृतिः—स्वभावः, नैव—(१) पहिले का-सा तनिक भी स्वभाव नहीं, (२) प्रातिपदिक। बाला। त्वद्विरहापदि—त्वत्सम्बन्धि-वियोगविपत्तौ—तेरे विरह की विपत्ति में। अपभ्रंशभाषा इव—अपभ्रंश भाषा-सी। जाता—हो गयी है।

सरलार्थ—उसकी, पहिले जैसी कान्ति नहीं, रूप नहीं, संस्कार नहीं, यहाँ तक कि पहिले का-सा स्वभाव तनिक भी नहीं रह गया; वह बाला तेरे विरह की विपत्ति में अपभ्रंश-भाषा-सी हो गयी। अपभ्रंश भाषा में भी सवर्ण-कार्य, साधुता, प्रकृति-प्रत्यय-निष्पन्न शब्दस्वरूप, प्रातिपदिक आदि का अभाव होता है ॥ ३४२ ।'

अलंकारादि करने में ही अधिक समय लगा देने पर नायिका से, संकेतस्थान पर शीघ्र पहुँचने के लिये सखी कह रही है—

न विभूषणे तवास्था वपुर्गुणेनैव जयसि सखि यूनः ।
अवधीरितास्त्रशस्त्रा कुसुमेषोर्मल्लविद्येव ॥ ३४३ ॥

पदार्थ—हे सखि ! विभूषणे विशिष्टभूषणे, तव आस्था आसक्तिः न (उचिता)—विशिष्ट भूषण में तेरी आसक्ति उचित नहीं। वपुर्गुणेनैव—शरीर-कान्त्या एव—शरीर के सौन्दर्य से ही। यूनः जयसि—युवकों को स्वाधीन करती है। कुसुमेषोः—मदनस्य—मदन की। अवधीरितास्त्रशस्त्रा—अवधीरितं तिरस्कृतम् अस्त्रं शस्त्रं च यया सा—जिसने अस्त्र-शस्त्र को तिरस्कृत कर दिया। मल्लविद्या इव—मल्लविद्या के समान।

सरलार्थ—हे सखि ! विशिष्टभूषण में तेरी आसक्ति उचित नहीं। तू तो, अस्त्र-शस्त्र को तिरस्कृत करने वाली कामदेव की मल्ल-विद्या-सी, अपने शरीर की कान्ति से ही युवकों को स्वाधीन कर लेती है ॥ ३४३ ॥

नायिका सखी से कह रही है—

नेत्राकृष्टो भ्रामं भ्रामं प्रेयान्यथा यथास्ति तथा ।
सखि मन्थयति मनो मम दधिभाण्डं मन्थदण्ड इव ॥३४४॥

पदार्थ—नेत्राकृष्टः—(१) नेत्रेण चक्षुषा, (२) गुणेन, आकृष्टः—(१) नेत्र से आकृष्ट, (२) गुण (रस्सी) से खींचा गया। भ्रामं भ्रामम्—घूम-घूम कर। प्रेयान्—अत्यन्त प्रिय। यथा यथा अस्ति—ज्यों-ज्यों रहता है। तथा—त्यों। हे सखि! मन्थदण्डः—मथने का दण्ड (रई)। दधिभाण्डम् इव—दही के पात्र को जैसे। मम मनः—मेरे मन को। मन्थयति—मथता है।

सरलार्थ—हे सखि! मेरे नेत्र से आकृष्ट प्रिय (मेरे समीप) घूम-घूम कर ज्यों-ज्यों रहता है त्यों-त्यों वह मन्थदण्ड (रई) जैसे दधि-पात्र को, मेरे मन को मथता रहता है (अतः उससे शीघ्र मिलाओ) ॥ ३४४ ॥

नायक-विषयक नायिका की आसक्ति का वर्णन, दूती नायक से कर रही है—

नानावर्णकरूपं प्रकल्पयन्ती मनोहरं तन्वी ।
चित्रकरतूलिकेव त्वां सा प्रतिभित्ति भावयति ॥ ३४५ ॥

पदार्थ—चित्रकरतूलिका इव—करोतीति करः, चित्रस्य करः चित्रकरः, तस्य तूलिका इव—चित्रकार की हस्तगत तूलिका के समान। तन्वी—(१) कृशाङ्गी, (२) सूक्ष्मा। मनोहरम्—मनोज्ञ। नानावर्णकरूपम्—(१) नानाप्रतिमारूपम्, (२) नाना वर्णकैः रूपं यस्य तत्—नानावर्ण रंगों से जिसका रूप है ऐसे चित्र को। प्रकल्पयन्ती—भावयन्ती—(१) देखती हुई, (२) बनाती हुई। सा—वह। प्रतिभित्ति—प्रत्येक दीवाल पर। त्वां भावयति—तुझे ही देखती है, तेरा ही ध्यान करती है।

सरलार्थ—प्रत्येक दीवाल पर नाना रङ्गों से रूपवान् चित्रों को बनाती हुई मनोगत का ही चित्र बना देने वाली चित्रकार की तूलिका के समान वह कृशाङ्गी नाना प्रतिमाओं के रूप को देखती हुई (मन में तेरे ही बसने से) सब में तुझे ही देखती है, तेरा ही ध्यान करती है ॥ ३४५ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता नकारव्रज्या ।

पकारव्रज्या

किसी स्त्री के वचनमात्र से डरे हुए व्यक्तियों से कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

पथिकासक्ता किंचिन्न वेद घनकलमगोपिता गोपी ।
केलिकलाहुंकारैः कीरावलि मोघमपसरसि ॥ ३४६ ॥

पदार्थ—पथिकासक्ता—पथिके आसक्ता—पथिक में आसक्त। घनकलमगोपिता—घनैः कलमैः गोपिता आच्छादिता—घने कलमों (धान्य-विशेष) से आच्छादित (अतएव किसी का आना-जाना न देख पाने वाली)। गोपी। किंचित् न वेद—कुछ नहीं जानती। केलिकलाहुङ्कारैः—केलिकला-सम्बन्धी हुङ्कारों से। कीरावलि!—शुकों की पंक्ति! मोघम्—वृथा। अपसरसि—भाग रही है।

सरलार्थ—पथिक में आसक्त गोपी (उसके साथ कलम के खेत में सुरत सलग्न होने से) घने कलमों से आच्छादित (तुम्हारे आने तथा कलम-भक्षण के विषय में) कुछ नहीं जानती है। हे कीरावलि! उसकी केलिकला-सम्बन्धी हुङ्कृति से (जो तुम्हारे निवारणार्थ नहीं है) वृथा तू भाग रही है॥ ३४६॥

नायिका की सखी दूती से कह रही है—

प्रणमति पश्यति चुम्बति संश्लिष्यति पुलकमुकुलितैरङ्गैः।
प्रियसङ्गाय स्फुरितां वियोगिनी वामबाहुलताम्॥३४७॥

पदार्थ—प्रियसङ्गमाय—प्रियसङ्गम के लिये। स्फुरिताम्—स्फुरणशालिनीम्—फड़कती हुई। वामबाहुलताम्—बायीं भुजा को। वियोगिनी। प्रणमति—प्रणाम करती है। पश्यति—देखती है। चुम्बति—चूमती है। पुलकमुकुलितैः—पुलकेन रोमाञ्चेन मुकुलितैः—रोमाञ्च से मुकुलित, रोमाञ्च रूप मुकुलों (कलियों) से युक्त। अङ्गैः—अङ्गों से। संश्लिष्यति—आलिङ्गन करती है।

सरलार्थ—प्रियसगमसूचक स्फुरणशील वाम बाहुलता को वियोगिनी प्रणाम करती है, देखती है, चूमती है, रोमाञ्चित अङ्गों से उसका आलिङ्गन करती है (तो सद्यः प्रिय समागम कराने वाली दूती का कितना समादर करेगी—कहा नहीं जा सकता)॥ ३४७॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

प्रविशसि न च निर्गन्तुं जानासि व्याकुलत्वमातनुषे।
बालक चेतसि तस्याश्चक्रव्यूहेऽभिमन्युरिव॥ ३४८॥

पदार्थ—हे बालक!—अज्ञ! चक्रव्यूहे अभिमन्युरिव—चक्रव्यूह में अभिमन्यु की भाँति। तस्याः चेतसि—उसके चित्त में। प्रविशसि—तू प्रविष्ट होता है। व्याकुलत्वम्—पीडाम्—पीडा को। आतनुषे—बढ़ाता है। निर्गन्तुं न च जानासि—किन्तु निकलना नहीं जानता है।

सरलार्थ—हे बालक (अज्ञ!) चक्रव्यूह में (बालक) अभिमन्यु की भाँति तू उसके हृदय में घुस गया; पीड़ा बढ़ा रहा है; पर निकलना नहीं जानता॥ ३४८॥

महान् लोगों का आश्रय महान् और तुच्छ जनों का आश्रय तुच्छ होता है--ऐसा कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

पश्यानुरूपमिन्दिन्दिरेण माकन्दशेखरो मुखरः ।
अपि च पिचुमन्दमुकुले मौकुलिकुलमाकुलं मिलति ॥३४९॥

पदार्थ—इन्दिन्दिरेण—भ्रमर से । माकन्दशेखरः—माकन्दः सहकारः तस्य शेखरः अग्रभाग—आम का अग्रभाग । मुखरः—ध्वनिमयः—ध्वनि-मय है । अपि च—और दूसरी ओर । पिचुमन्दमुकुले—पिचुमन्दस्य निम्बस्य 'पिचुमन्दश्च निम्बः' इत्यमरः, मुकुले—नीम के फूल पर या कली पर । मौकुलिकुलम् —मौकुलीनां काकाना 'एकदृष्टिश्चिरंजीवी मौकुलिर्द्विक इत्यपि' इति क्षीरस्वामी, कुलम् समूहः—कौओं का समूह । आकुलम् मिलति—सङ्कुलरूप से मिलता है । अनुरूपं पश्य—यह अनुरूप बात देखो ।

सरलार्थ--आम्र वृक्ष का शिरोभाग भ्रमर से गुञ्जित है और दूसरी तरफ नीम की कली पर कौओं का समूह सङ्कुल रूप से मिल रहा है । यह अनुरूप बात देखो ॥ ३४९ ॥

सखी वचनभङ्गिमा द्वारा नायक के सामने नायिका की प्रशंसा कर रही है—

प्रतिबिम्बसंभृताननमादर्शं सुमुख मम सखीहस्तात् ।
आदातुमिच्छसि मुधा किं लीलाकमलमोहेन ॥ ३५० ॥

पदार्थ--हे सुमुख ! प्रतिबिम्बसम्भृताननम्—प्रतिबिम्बेन संभृतं व्याप्तम् आननं यस्मिन् तम्—प्रतिबिम्ब से जिसमें आनन व्याप्त है । आदर्शम्—दर्पण को । मम सखीहस्तात्—मेरी सखी के हाथ से । लीलाकमलमोहेन—लीला-कमल के भ्रम से । मुधा—वृथा । किम्—किमिति—क्यों । आदातुमिच्छसि—लेना चाहते हो ?

सरलार्थ—हे सुमुख ! सखी (नायिका) के वदन-प्रतिबिम्ब से भरित आदर्श (दर्पण) को लीला-कमल समझ कर, सखी के हाथ से क्यो वृथा लेने की इच्छा करते हो ?

(नायिका के सौन्दर्य का अनुमान लगाओ, उसके करतल पर शोभित आदर्श को, उसके मुखारविन्द के प्रतिबिम्बित होने से ही तुम लीला-कमल समझ बैठे) ॥ ३५० ॥

सखी मानिनी नायिका से कह रही है—

प्राचीनाचलमौलेर्यथा शशी गगनमध्यमधिवसति ।
त्वां सखि पश्यामि तथा छायामिव संकुचन्मानाम् ॥३५१॥

पदार्थ—हे सखि ! प्राचीनाचलमौलेः—प्राक् (प्राच्यां) भवः प्राचीनः यः अचलः पूर्वाचलः इत्यर्थः, तस्य मौलेः—पूर्वाचल के मस्तक से । यथा—ज्यों-ज्यों । शशी—चन्द्र । गगनमध्यम् अधिवसति—आकाश के मध्य चढ़ता जा रहा है । तथा—त्यों-त्यों । छायामिव—छाया की भाँति । त्वाम्—तुमको । संकुचन्मानाम्—संकुचन् मानः यस्याः ताम्—(१) जिसका मान संकुचित हो रहा है, (२) जिसका परिमाण संकुचित हो रहा है । पश्यामि—देख रही हूँ ।

सरलार्थ—हे सखी ! पूर्वाचल के मस्तक से चन्द्रमा ज्यों-ज्यों आकाश में ऊपर चढ़ रहा है त्यों-त्यों छाया की भाँति तुझे संकुचित होते हुए मानवाली देख रही हूँ (ज्यों-ज्यों चन्द्रमा का प्रकाश बढ़ रहा है त्यों-त्यों तेरा मान, चन्द्रमा के उद्दीपन होने से घटता जा रहा है अतः तू मान छोड़कर नायक के साथ रमण कर । ज्यों-ज्यों चन्द्रमा ऊपर चढ़ता है त्यों-त्यों छाया भी संकुचित होती जाती है) ॥ ३५१ ॥

आये नायक से स्थानाभाव के कारण क्यों सङ्गति नहीं हुई—ऐसा कहती सखी से नायिका कह रही है—

प्राङ्गणकोणेऽपि निशापतिः स तापं सुधामयो हरति ।
यदि मां रजनिज्वर इव सखि स न निरुणद्धि गेहपतिः ॥३५२॥

पदार्थ—हे सखि ! प्राङ्गणकोणेऽपि—विस्तृत आँगन के एक कोने में भी । सः—वह । सुधामयः—अमृतमय । निशापतिः—चन्द्रः (निशाया पतिः—उपपतिरित्यर्थः) । तापं हरति—सन्ताप दूर करता । यदि । माम्—मुझको । रजनिज्वरः इव—रात के ज्वर के समान । सः गेहपतिः—वह दुष्ट गृहस्वामी । न निरुणद्धि—न बाधा डालता ।

सरलार्थ—हे सखि ! यदि उस दुष्ट रात्रिज्वर की भाँति गेहपति (जो मुझे प्रिय नहीं है और गृह की वस्तुओं का ही रक्षक है, मेरा नहीं अतः रात में किवाड़ बन्द करते समय संयोग से मुझे भी कमरे में बन्द कर दिया) ने निरोध न किया होता तो (स्थानाभाव होने पर भी) इस विशाल आँगन में एक ओर सुधामय चन्द्र और वह उपपति प्रिय मेरे सन्ताप को हरता—उसके साथ अवश्य रति की गयी होती (ज्वर वाले को रात में बाहर निकलना मना है) ॥ ३५२ ॥

सखी नायकविषयक नायिका के प्रेमाधिक्य का वर्णन नायक से कर रही है—

पतिपुलकदूनगात्री स्वच्छायावीक्षणेऽपि या सभया ।
अभिसरति सुभग सा त्वां विदलन्ती कण्टकं तमसि ॥३५३॥

पदार्थ—पत्युः पुलकेन दूनानि खिन्नानि गात्राणि यस्याः सा—पति के पुलक से जिसके गात्र दुखते हैं। स्वच्छायावीक्षणेऽपि या सभया—स्वस्य छायायाः वीक्षणे विलोकने भयेन सहिता या—जो अपनी छाया भी देख कर डरती है। सा—वह। कण्टकं विदलन्ती—काँटों को रौंदती। तमसि—अँधेरे में। हे सुभग! त्वाम् अभिसरति—तेरे पास आती है, तुझसे मिलने के लिये अभिसार करती है।

सरलार्थ—(जो इतनी कोमलाङ्गी है) आलिङ्गन के समय पति के पुलक (शरीर के रोंगटे खड़े होने) से जिसके गात्र दुखने लगते हैं और (जो इतनी भीरु है) अपनी छाया देख कर जिसे डर लगता है, हे सुभग! वह तुझसे मिलने के लिये अँधेरे में (पैरों से) काँटो को रौंदती हुई अभिसार करती है ॥ ३५३ ॥

अक्षक्रीडा की जाय—ऐसा कहती नायिका से नायक कह रहा है—

प्रतिभूः शुको विपक्षे दण्डः शृङ्गारसंकथा गुरुषु ।
पुरुषायितं पणस्तद्बाले परिभाव्यतां दायः ॥३५४॥

पदार्थ—शुकः। प्रतिभूः—जो जमानत करे। गुरुषु शृङ्गारकथा—गुरुजन से शृङ्गार की चर्चा। विपक्षे—कहे हुए को न करने पर। दण्डः—सजा। पुरुषायितम्—विपरीत रत। पणः—पराजय में देय वस्तु। बाले! दायः परिभाव्यताम्—पासा डालना आरम्भ करो।

सरलार्थ—(हमारे तुम्हारे बीच में) शुक प्रतिभू रहे। जो कही हुई बात न करे उसे, गुरुजन से शृंगार की चर्चा—यही दण्ड मिले। विपरीत रत, पण (दाँव पर लगाया गया धन) रहे। हे बाले! (यदि यह शर्त स्वीकार हो तो) पासा डालना आरम्भ करो ॥ ३५४ ॥

नायिका द्वारा देखा गया नायक, नायिका से कह रहा है—

परमोहनाय मुक्तो निष्करुणे तरुणि तव कटाक्षोऽयम् ।
विशिख इव कलितकर्णः प्रविशति हृदयं न निःसरति॥३५५॥

पदार्थ—परमोहनाय—उत्कृष्टसुरताय—(१) उत्कृष्ट सुरत के लिये, (२) शत्रु की मूर्च्छा के लिये। मुक्तः—छोड़ा गया। कलितकर्णः—कलितः कर्णः येन सः—(१) कान तक विस्तृत, (२) कान तक खींचा गया। अयं तव कटाक्षः—तुम्हारा यह कटाक्ष। हे तरुणि! निष्करुणे! विशिखः इव—बाणः इव—बाण की भाँति। हृदयं प्रविशति—हृदय में घुस जाता है। न निःसरति—निकलता नही।

सरलार्थ—हे निष्करुण तरुणी ! उत्कृष्ट सुरत के लिये डाला गया, कर्ण पर्यन्त विस्तृत तेरा यह कटाक्ष, शत्रु की मूर्च्छा के लिये डाले गये, कानों तक खींचे गये बाण की भाँति हृदय में घुस तो गया, अब निकलता नहीं ॥ ३५५ ॥

सखी नायक से कह रही है—

प्रपदालम्बितभूमिश्चुम्बन्ती प्रीतिभीतिमधुराक्षी ।
प्राचीराग्रनिवेशितचिबुकतया न पतिता सुतनुः ॥३५६॥

पदार्थ—प्रपदालम्बितभूमिः—प्रपदः पदाग्रभागः (पञ्जा इति भाषायाम्) आलम्बितः धृतः भूमौ यस्याः यया वा सा—जिसने पैर का पंजा भूमि पर टिका दिया । प्रीतिभीतिमधुराक्षी—प्रीत्या भीत्या च मधुरे अक्षिणी यस्याः सा—प्रीति और भय से जिसके नेत्र मनोज्ञ हैं । चुम्बन्ती—चूमती हुई । सुतनुः—सुन्दरी । प्राचीराग्रनिवेशितचिबुकतया—प्राचीरस्य अग्रे अग्रभागे निवेशितं चिबुकं यया तस्याः भावः तया—परकोटे के अग्रभाग पर ठोढ़ी रख देने से । न पतिता—गिरी नहीं (गिरने से बच गयी) ।

सरलार्थ—प्रीति और भय से मनोज्ञ नेत्र वाली, पंजों को पृथ्वी पर टिका कर (तुम्हें) चूमती हुई वह सुन्दरी, परकोटे के अग्रभाग पर चिबुक (ठोढ़ी) को टेक देने से गिरी नहीं (गिरने से बच गयी) ॥ ३५६ ॥

खण्डिता नायिका, प्रातः आये नायक के सामने ही सखी से उसके विषय में कह रही है—

प्रातरुपागत्य मृषा वदतः सखि नास्य विद्यते व्रीडा ।
मुखलग्नयापि योऽयं न लज्जते दग्धकालिकया ॥३५७॥

पदार्थ—प्रातः । उपागत्य—पास आकर । मृषा वदतः—झूठ बोलते । अस्य—इसे । हे सखि ! व्रीडा न विद्यते—लज्जा नहीं आती । यः अयम्—जो यह । मुखलग्नया अपि—मुख में लगी, दग्धकालिकया—जली (यह द्वेष-आवेदक रूप में प्रयुक्त है) स्याही के कारण भी । न लज्जते—नहीं लज्जित होता ।

सरलार्थ—हे सखि ! प्रातः पास आकर (मैं अन्यत्र नहीं गया था) झूठ बोलते इसे लज्जा नहीं है । जो (नेत्र चूमने से) मुख में लगी जली स्याही (कज्जल की) से भी लज्जित नहीं होता ॥ ३५७ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

पश्योत्तरस्तनूदरि फाल्गुनमासाद्य निर्जितविपक्षः ।
वैराटिरिव पतङ्गः प्रत्यानयनं करोति गवाम् ॥ ३५८ ॥

पदार्थ—तनूदरि—कृशोदरि ! उत्तरः—उत्तरा दिक् अस्ति अस्य इति उत्तरः, अर्शआदित्वादच्—(१) उत्तरदिक्सम्बन्धी, (२) उत्तर इति नाम। निर्जितविपक्षः—निर्जितः विपक्षः (१—हिमादिः, २—सुयोधनादिः) येन सः—जिसने हिम आदि (सुयोधनादि) शत्रु को जीत लिया। पतङ्गः—सूर्य। वैराटिः इव—विराटस्य अपत्यं पुमान् वैराटिः स इव—विराट के पुत्र उत्तर की तरह। फाल्गुनम् आसाद्य—(१) फाल्गुन मास को, (२) अर्जुन को, पाकर। गवाम्—(१) किरणानाम्—किरणो का, (२) धेनूनाम्—गायो का। प्रत्यानयनम् करोति—परावृत्तिं करोति—परावर्तन कर रहा है, पुनः लौटा रहा है। पश्य—देखो।

सरलार्थ—हे कृशोदरि ! जैसे विराट् के पुत्र उत्तर ने फाल्गुन (अर्जुन) को पाकर सुयोधन आदि शत्रु को जीत कर गायो को लौटा लिया था; ठीक वैसे ही उत्तर दिक् सम्बन्धी सूर्य फाल्गुन (मास) को पाकर हिमादि शत्रु को जीत कर अपनी किरणों को पुनः वापस लौटा रहा है। यह देखो। (तू भी इसी तरह ऐसे समय की सहायता से अन्य अङ्गनाओ को परास्त कर नायक के चित्त को अपने पास वापस लौटा ले) ॥ ३५८ ॥

नायक, नायिका से कह रहा है—

प्रमदवनं तव च स्तनशैलं मूलं गभीरसरसां च।
जगति निदाघनिरस्तं शैत्यं दुर्गत्रयं श्रयति ॥ ३५९ ॥

पदार्थ—प्रमदवनम्—अन्तःपुरसमीपवन। तव च स्तनशैलम्—और तुम्हारा स्तनरूप शैल। गभीरसरसां च मूलम्—और गहरे तालावो का अन्तस्तल। इति दुर्गत्रयम्—इन तीन दुर्गो को। जगति—संसार में। निदाघनिरस्तम्—निदाघेन ग्रीष्मेण निरस्तम् जितम्—ग्रीष्म से जीत लिया गया। शैत्यम्—शीतलता। श्रयति—अधिवसति—रहता है।

सरलार्थ—ससार मे ग्रीष्म से जीता गया शैत्य, अन्तःपुरसमीपवन, तुम्हारा स्तनरूपशैल और गहरे तालावो का अन्तस्तल, इन दुर्गो का आश्रय लेता है—इन्हीं में रहता है (मदनसंतापसंतप्त मेरे लिये भी तुम्हारे दोनो कुच ही शरण हैं) ॥ ३५९ ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

प्रोञ्छति तवापराधं मानं मर्दयति निर्वृतिं हरति।
स्वकृतान्निहन्ति शपथाञ्जागरदीर्घा निशा सुभग ॥ ३६० ॥

पदार्थ—हे सुभग ! तवापराधम्—तुम्हारे किये अपराध को। प्रोञ्छति—पोछती है, मिटाती है अर्थात् भूल जाती है। मानम् मर्दयति—मान को भग्न

कर डालती है। निर्वृतिं हरति—सुख को हरती है अर्थात् दुःखित होती है। स्वकृतान् शपथान् निहन्ति—अपने किये शपथों को नष्ट करती है। जागरदीर्घा—जागरेण दीर्घा—जागने से लम्बी। निशा—रात। होती है।

सरलार्थ—(मदन पीडित वह) तुम्हारे किये अपराध को दूर करती है, अपने किये मान को नष्ट करती है, दुःख का अनुभव करती है; अपने किये शपथों को सर्वथा नष्ट करती है, आकुल होने से नींद नहीं आती—जागने से रात उसे लम्बी लगती है—रात काटना दूभर हो जाता है (अतः तुम अब उससे शीघ्र मिलो) ॥ ३६० ॥

सखी, नायिका के विषय में, सखी से कह रही है—

प्रिय आयाते दूरादभूत इव संगमोऽभवत्पूर्वः ।
मानरुदितप्रसादाः पुनरासन्नपरसुरतादौ ॥ ३६१ ॥

पदार्थ—प्रिये दूरात् आयाते—प्रिय के दूर से आने पर। पूर्वः सङ्गमः—प्रथम सङ्गम। अभूतः इव—असंजात सा। अभवत्—हुआ। पुनरासन्न-परसुरतादौ—द्वितीय सुरत के आरम्भ में। मानरुदितप्रसादा—मान, रुदन एवं प्रसन्न होना। (अभवन्—हुए)।

सरलार्थ—प्रिय के दूर से आने पर नायिका मन्मथविकारशालिनी होने से प्रिय के प्रथम सङ्गम को जान ही नहीं सकी—दोनों का मौन सङ्गम हुआ। द्वितीय सुरत के आरम्भ में (जब मदन का आवेश कुछ मन्द पड़ गया) नायिका द्वारा मान, रुदन एवं प्रसाद (प्रसन्न होना) आदि हुआ ॥ ३६१ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

पूर्वमहीधरशिखरे तमः समासन्नमिहिरकरकलितम् ।
शूलप्रोतं सरुधिरमिदमन्धकवपुरिवाभाति ॥ ३६२ ॥

पदार्थ—पूर्वमहीधरशिखरे—उदयाचल के मस्तक पर। समासन्नमिहिरकरकलितम्—समासन्नः निकटवर्ती, मिहिरः सूर्यः, तस्य करेण [illegible]न—समीपवर्ती सूर्य की किरण से। कलितम्—गृहीत। इदं तमः—यह अन्धकार। शूलप्रोतम्—शूलेन प्रोतम्—शूल से अन्तर्व्याप्त। सरुधिरम्—रुधिर समेत। अन्धकवपुः इव—अन्धक नामक दैत्य के शरीर की भाँति। आभाति—सुशोभित होता है।

सरलार्थ—उदयाचल के मस्तक पर, निकटवर्ती सूर्य की किरण से गृहीत यह अन्धकार (शिव के) शूल से अन्तर्व्याप्त (विंधा) रुधिरसहित अन्धक शरीर सा शोभित हो रहा है (प्रातःकाल हो गया, अतः उपपति को बाहर कर दो) ॥ ३६२ ॥

सखी गर्भवती नायिका को शिक्षा दे रही है—

परिवृत्तनाभि लुप्तत्रिवलि श्यामस्तनाग्रमलसाक्षि ।
बहुधवलजघनरेखं वपुर्न पुरुषायितं सहते ॥ ३६३ ॥

पदार्थ—अलसाक्षि—अलसे अक्षिणी यस्यास्तत्सम्बुद्धिः—हे अलस नेत्रों वाली ! परिवृत्तनाभि—परिवृत्ता नाभिः यस्मिन् तत्—जिसमें नाभि बदल गयी (पहिले की भाँति गम्भीर नहीं रह गयी) । लुप्तत्रिवलि—लुप्ता त्रिवलिः यस्मिन् तत्—जिसमें त्रिवलि लुप्त हो गयी । श्यामस्तनाग्रम्—श्यामः स्तनाग्रः यस्मिन् तत्—जिसमें स्तनों का अग्रभाग श्याम हो गया । बहुधवलजघनरेखम्—बह्व्यः धवलाः जघने रेखाः यस्मिन् तत्—जिसमें जघन में बहुत सी धवल रेखाएँ हो गयीं । वपुः—शरीर । पुरुषायितं न सहते—विपरीत रत को करने में समर्थ नहीं है ।

सरलार्थ—हे अलसनयने ! नाभि की गभीरता पहिले सी नहीं रह गयी, त्रिवलि नहीं दिखायी देती—मिट गयी, स्तनों का अग्रभाग श्याम हो गया, जघन में बहुत सी धवल रेखायें पड़ गयीं—(ऐसे परिपक्व गर्भलक्षणों से युक्त) तेरा ऐसा शरीर विपरीत रत करने में समर्थ नहीं है (अतः अब इसे मत कर) ॥ ३६३ ॥

नायक, नायिका से कह रहा है—

प्रारब्धनिधुवनैव स्वेदजलं कोमलाङ्गि किं वहसि ।
ज्यामर्पयितुं नमिता कुसुमास्त्रधनुर्लतेव मधु ॥ ३६४ ॥

पदार्थ—प्रारब्धनिधुवना एव—प्रारब्धम् निधुवनं विपरीतरतं यया सा—जिसने विपरीतरत अभी आरम्भ ही किया । हे कोमलाङ्गि ! स्वेदजलं—स्वेद की बूँदे । ज्याम् अर्पयितुम्—डोरी चढ़ाने के लिए । नमिता—झुकायी गयी । कुसुमास्त्रधनुर्लता—कुसुमास्त्रस्य मदनस्य धनुर्लता—मदन की धनुर्लता । मधु इव—मकरन्द को जैसे । किं वहसि—क्यों वहन कर रही हो ? (पसीना क्यों आ रहा है ?)

सरलार्थ—जैसे डोरी चढ़ाने के लिये झुकायी गयी कामदेव की धनुर्लता मकरन्द से युक्त हो जाती है । ठीक उसी प्रकार अभी तूने विपरीत रत आरम्भ ही किया, फिर स्वेद की बूँदे क्यों आ गयीं ? ॥ ३६४ ॥

स्त्रीजित रूप कलङ्क सहता हुआ, नायिका में आसक्त नायक नायिका से कह रहा है—

पुंसां दर्शय सुन्दरि मुखेन्दुमीषत्त्रपामपाकृत्य ।
जायाजित इति रूढा जनश्रुतिर्मे यशो भवतु ॥ ३६५ ॥

पदार्थ—हे सुन्दरि ! त्रपाम् अपाकृत्य—लज्जाम् विहाय—लज्जा त्याग कर। मुखेन्दुम्—मुख चन्द्र को। पुंसाम्—अन्य नायकों को। ईषत्—थोड़ा सा। दर्शय—दिखा दो। जायाजितः—जायया जितः—स्त्री द्वारा जीत लिया गया है। इति—यह। रूढा—ख्यात। जनश्रुतिः—जनवाद। मे यशः भवतु—मेरा यश हो जाय।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! लज्जा त्याग कर अपने मुख चन्द्र को अन्य नायकों को दिखा दो जिससे स्त्रीजित होने का मेरा कलङ्क यश हो जाय (ऐसी नायिका के वश में नायक का हो जाना अत्यन्त सौभाग्य का विषय है—मेरे विषय में लोग ऐसा कहने लगें) ॥ ३६५ ॥

सन्तापहारी नायक के रहते हुए भी, निरोधातिशय से सुखवञ्चित नायिका के विषय में कोई स्त्री कह रही है—

प्रसरतु शरत्त्रियामा जगन्ति धवलयतु धाम तुहिनांशोः ।
पञ्जरचकोरिकाणां कणिकाकल्पोऽपि न विशेषः ॥ ३६६ ॥

पदार्थ—शरत्त्रियामा—शरदः त्रियामा—शरत्कालीन रात्रि। प्रसरतु—विस्तृत हो। तुहिनांशोः—चन्द्रस्य—चन्द्र का। धाम—किरण। जगन्ति—जगत को। धवलयतु—उज्ज्वल बना दे। पञ्जरचकोरिकाणाम्—पञ्जरस्थ चकोरियों को। कणिकाकल्पः अपि—कण बराबर भी। न विशेषः—अन्तर नहीं।

सरलार्थ—शरत्कालीन रात विस्तृत रहे, चन्द्रमा की किरण संसार को प्रकाशमय बना दे (परन्तु) पञ्जरस्थ चकोरियों को कण बराबर भी विशेष नही अर्थात् उन्हें चन्द्रमा और रात्रि का कुछ भी आनन्द नहीं ॥ ३६६ ॥

नायिका आने में विलम्ब क्यों कर रही है—ऐसा कहते नायक से नायिका की सखी कह रही है—

प्रथमागत सोत्कण्ठा चिरचलितेयं विलम्बदोषे तु ।
वक्ष्यन्ति साङ्गरागाः पथि तरवस्तव समाधानम् ॥ ३६७ ॥

पदार्थ—हे प्रथमागत !—पहिले आ गये !। सोत्कण्ठा—उत्कण्ठया सह वर्तमाना—उत्कण्ठा के साथ। इयम्—यह। चिरचलिता—(घर से) बहुत समय हुआ, चली थी। विलम्बदोषे तु—उसके विलम्बरूप अपराध के विषय में। तव समाधान—तेरा शङ्कानिवारण। साङ्गरागाः—अङ्गरागेण सह वर्तन्ते—अङ्गराग से लिप्त। पथि तरवः—मार्गस्थ वृक्ष। वक्ष्यन्ति—कहेंगे।

सरलार्थ—हे प्रथमागत ! यह (नायिका) बड़ी उत्कण्ठा से, बहुत

समय हो गया, घर से चल चुकी थी। (किन्तु अभी तक यहाँ नहीं पहुँची) उसके विलम्ब रूप अपराध के विषय में (उसके) अङ्गराग से (तेरे भ्रम-वश प्रतिपद पादपों का आलिङ्गन करने से) लिप्त मार्गस्थ वृक्ष, तेरा समाधान करेंगे (वे वृक्ष तुझे बतायेंगे कि तेरे विरह से भ्रान्त वह, प्रतिपद पर मार्गस्थ वृक्षों को तुझे ही समझ कर आलिङ्गन करती आ रही है अतः अभी तक यहाँ नहीं पहुँची)॥ ३६७॥

नायक, अपने सखा से कह रहा है—

पतितेऽशुके स्तनार्पितहस्तां तां निबिडजघनपिहितोरुम्।
रदपदविकलितफूत्कृतिशतधुतदीपां मनः स्मरति॥ ३६८॥

पदार्थ—अंशुके पतिते—वस्त्र खिसक जाने पर। स्तनार्पितहस्ताम्—स्तनयोः अर्पितौ हस्तौ यया ताम्—जिसने स्तनों पर हाथों को रख लिया। निबिडजघनपिहितोरुम्—निबिडम् अत्यन्तम्, जघनं पिहितम् ऊरुभ्याम् यया ताम्—जिसने जाँघों को समेट कर जघनप्रदेश को अत्यन्त ढक लिया। रदपदविकलितफूत्कृतिशतधुतदीपाम्—रदपदयोः ओष्ठयोः विकलिता या फूत्कृतिः तस्याः शतेन धुतः कम्पितः दीपः यया ताम्—होंठों की सैकड़ों विकल फूँकों से जो दीप को कँपा सकी (बुझा न सकी)। ताम्—उसे। मनः—(मेरा) मन। स्मरति—स्मरण कर रहा है।

सरलार्थ—(मुग्धा नायिका जब रति-सदन में पहुँची, मैं (नायक) ने संभोगादि प्रारम्भ करने के उद्देश्य से उसे पकड़ा; अपने को मुझ से छुड़ाने की चेष्टा में) शरीर से वस्त्र गिर जाने पर (भय और लज्जा वश) उसने (ढकने के लिये) स्तनों पर हाथों को रख लिया, समेट कर जाँघों से जघन प्रदेश को अत्यन्त आच्छादित कर लिया; होठों की विकल (अतएव प्रभावहीन) सैकड़ों फूँक से जो दीप को केवल कम्पित भर कर सकी (बुझा न सकी); ऐसी उस नायिका को मेरा मन स्मरण कर रहा है॥ ३६८॥

संकेतस्थलरूप क्रीडाचल के अग्रभाग के कुञ्ज में नायक स्थित है, शीघ्र तुझे भी पहुँचना चाहिये तथा दूसरों को वहाँ जाने पर भय है—ऐसा वचन-भङ्गिमा से दूती नायिका से कह रही है—

परितः स्फुरितमहौषधिमणिनिकरे केलितल्प इव शैले।
काञ्चीगुण इव पतितः स्थितैकरत्नः फणी स्फुरति॥ ३६९॥

पदार्थ—केलितल्पे इव—केलिशय्या पर जैसे। परितः—समन्तात्—चारों ओर। स्फुरितमहौषधिमणिनिकरे—(१) स्फुरितानां सप्रकाशानां महौ-

षधीनाम् मणीनाम् निकरः यत्र तस्मिन्—जहाँ सप्रकाश महौषधि एवं मणियों का समूह है, (२) स्फुरितानां महौषधीनाम् इव मणीनां निकरः यत्र—जहाँ सप्रकाश महौषधियों की भाँति मणियों का समूह है। शैले—केलिपर्वत पर। काञ्चीगुणः—रशनासूत्रम् इव—करधनी के सूत्र सा। पतितः—पड़ा हुआ। स्थितैकरत्नः—(१) स्थितम् एकम् रत्नं यस्मिन् सः—जिसके (फण में) एक रत्न है अर्थात् मणिधर, (२) स्थितः सकलनायकेषु एकरत्नम् इव—सकलनायकशिरोरत्नरूप। फणी—सर्प। स्फुरति—सुशोभित है।

सरलार्थ—जहाँ सप्रकाश महौषधियों की भाँति मणियों का समूह है—ऐसे केलिशयन पर काञ्चीसूत्र के समान, सप्रकाश महौषधि एवं मणियों के समुदाय से पूर्ण क्रीडाचल पर पडा हुआ—अलसाया सा, मणिधर सर्प शोभित हो रहा है (विना दीप के भी ओषधियों एवम् मणियों से सप्रकाश, विविधपल्लवादिमृदुशय्याशाली क्रीडाशैल पर निरन्तर जवनयोग्य, आये हुये देर हो गयी अतः सालस, सकलनायकशिरोमणि, अन्यजनों से निर्भय नायक उपस्थित है, जाने के लिये तू शीघ्रता कर)॥ ३६९॥

अन्याङ्गनाविषयक आसक्ति से इधर-उधर घूमते हुए नायक से नायिका अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

प्रावृषि शैलश्रेणीनितम्बमुज्झन्दिगन्तरे भ्रमसि।
चपलान्तर घन किं तव वचनीयं पवनवश्योऽसि॥ ३७०॥

पदार्थ—प्रावृषि—वर्षाकाल में। शैलश्रेणीनितम्बम्—शैलश्रेण्याः नितम्बम् कटकप्रदेशम्—(१) पर्वतश्रेणी के कटकप्रदेश को, (२) स्वनितम्बिनी के स्तन-नितम्ब को। उज्झन्—परित्यजन्—त्यागते हुए। दिगन्तरे—इधर-उधर। भ्रमसि—घूमते हो। चपलान्तर—(१) चपला विद्युत् अन्तरे मध्ये यस्य तत्सम्बुद्धिः—जिसके मध्य में बिजली है, (२) चपलम् अन्तरम् यस्य तत्सम्बुद्धिः—जिसका हृदय चपल (पराङ्गनासक्त) है। घन! तव किं वचनीयम्—अपराधः, दोषः—तेरा क्या अपराध। पवनवश्यः—पवनस्य वायोः वश्यः अधीनः—वायु के अधीन। असि—हो।

सरलार्थ—वर्षाकाल में पर्वतश्रेणी के कटक प्रदेश को त्याग कर तू इधर-उधर घूमता है, हे चपलान्तर (मध्य भाग में विद्युत् शालिन्) घन! तेरा क्या अपराध है—अर्थात् तेरा दोष नहीं है क्योंकि तू वायु के अधीन है। (वर्षाकाल में जब कि बाहर निकलना कठिन है, तू अपनी नायिका को छोड़ इधर-उधर अन्तःकरण को पराङ्गनासक्त कर वातूल पिशाच की भाँति घूमा करता है—इसमें तेरा अपराध नहीं है किन्तु तेरी मूढता है)॥ ३७०॥

मानिनी नायिका से सखी कह रही है—

प्रतिदिवसक्षीणदशस्तवैष वसनाञ्चलोऽतिकरकृष्टः ।
निजनायकमतिकृपणं कथयति कुग्राम इव विरलः ॥ ३७१ ॥

पदार्थ—प्रतिदिवसक्षीणदशः—प्रतिदिवसम् क्षीणा दशा (१—प्रान्त भाग, किनारा, २ अवस्था—) यस्य सः—जिसका (१) प्रान्तभाग (२) अवस्था, क्षीण है। अतिकरकृष्टः—(१) अत्यन्तं करेण हस्तेन कृष्टः आकृष्टः—हाथ से अत्यन्त खींचा गया, (२) करेण राजदण्डेन पीडितः—राजदण्ड से अत्यन्त पीडित। विरलः—(१) शिथिल तन्तुओं वाला, (२) स्वल्पजनों की आबादी वाला। तव एषः वसनाञ्चलः—तेरा यह वस्त्राञ्चल। निजनायकम्—अपने स्वामी को। कुग्रामः इव—कुग्राम की भाँति। अतिकृपणम् कथयति—अति कृपण कह रहा है।

सरलार्थ—जैसे अत्यन्त क्षीण अवस्था को प्राप्त, राजदण्ड से पीडित स्वल्पजनसंख्यक कुग्राम, अपने गाँव के स्वामी को (द्रव्य का लोभ करने से) अत्यन्त कृपण कहता है ठीक उसी प्रकार जिसका प्रान्तभाग क्षीण हो गया है, जो हाथ से बहुत खींचा गया है अतएव शिथिल तन्तुओं वाला तेरा यह वस्त्रांचल, अपने स्वामी को (अन्यवस्त्र ग्रहण करने का सामर्थ्य न होने से) अत्यन्त कृपण कह रहा है (ऐसा मान कर नायक की बार-बार प्रार्थना का तिरस्कार करना नायिका को सुखप्रद नहीं होता अतः मान करना त्याग दो) ॥ ३७१ ॥

कोई स्त्री, पथिक से कह रही है—

पथिक कथं चपलोज्ज्वलमम्बुदजलबिन्दुनिवहमविषह्यम् ।
मयपुरकनकद्रवमिव शिवशरशिखिभावितं सहसे ॥ ३७२ ॥

पदार्थ—हे पथिक! चपलोज्ज्वलम्, (१) चपलाभिः उज्ज्वलम्, (२) चपलावत् उज्ज्वलम्—बिजली से उज्ज्वल। अविषह्यम्—असह्य। अम्बुदजलबिन्दुनिवहम्—अम्बुदस्य मेघस्य जलबिन्दूनां निवहम् समुदायम्—मेघजलबिन्दुओं का समुदाय। शिवशरशिखिभावितम्—शिवस्य शरशिखिना बाणानलेन भावितम् सन्तापितम्—शिव के बाणाग्नि से सन्तापित। मयपुरकनकद्रवम् इव—मयनामक दैत्य के नगर के सुवर्णद्रव की भाँति। कथं सहते—कैसे सहता है।

सरलार्थ—हे पथिक! बिजली से उज्ज्वल अत्यन्त (उद्दीपक होने से) असह्य, मेघजलबिन्दुसमुदाय को; जो बिजली के समान उज्ज्वल (उष्ण होने से) अत्यन्त असह्य, शंकर के बाणाग्नि से संतापित, मयनामक दैत्य के नगर

के सुवर्णद्रव के समान है, कैसे सह रहे हो ? (वर्षा की झड़ी में बाहर क्यों हो, यहाँ अन्दर आ जाओ) ॥ ३७२ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

पथिकं श्रमेण सुप्तं दरतरला तरुणि सुमधुरच्छाया ।
व्यालम्बमानवेणिः सुखयसि शाखेव सारोहा ॥ ३७३ ॥

पदार्थ—हे तरुणि ! दरतरला—ईषच्चंचला—कुछ चंचल। सुमधुरच्छाया—सुष्ठु मधुरा छाया यस्याः—जिसकी छाया मधुर है। व्यालम्बमानवेणिः—विशेषेण विपरीतम् वा आलम्बमाना वेणिः यस्याः सा—विशेष अथवा विपरीत-रत के सविधान से, विपरीत (मुख की ओर) जिसकी वेणी लटक रही है)। सारोहा—आरोहेण सह वर्तते इति—(१) रेशेदार जड़ से युक्त, (२) आरोहण युक्त। शाखा इव—शाखा के समान। श्रमेण सुप्तम् पथिकम्—श्रम से सुप्त पथिक को। सुखयसि—सुखी बनाती हो।

सरलार्थ—हे तरुणि ! थोड़ी-सी चञ्चल, विशेष अथवा (विपरीत रत के संविधान से) मुख की ओर लटकती वेणी से युक्त, सुमधुर छाया वाली तू, किञ्चित् चंचल, शीतलच्छाया, लटकती शिफा (जटा) वाली शाखा की भाँति, थके सोते पथिक को (विपरीतरत सम्बन्धी) आरोहण कर (मदनानल सन्ताप का निवारण कर) सुखी बनाती है (इसके साथ तूने विपरीत रत किया है) ॥ ३७३ ॥

अन्य अङ्गना में आसक्त नायक से नायिका की सखी कह रही है—

प्रददाति नापरासां प्रवेशमपि पीनतुङ्गजघनोरूः ।
या लुप्तकीलभावं याता हृदि बहिरदृश्यापि ॥ ३७४ ॥

पदार्थ—या—जो। हृदि—हृदय में। बहिः अदृश्या अपि—बाहर से अदृश्य भी। लुप्तकीलभावं याता—कील की भाँति लुप्त हो गयी है। पीनतुङ्ग-जघनोरूः—पीनं तुङ्गं च जघनम् ऊरू च यस्याः सा—जिसका जघन और जङ्घ भाग पीन, मांसल एवम् तुङ्ग (उन्नत) है। अपरासाम्—अन्य नायिकाओं को। प्रवेशमपि—प्रवेश भी। न प्रददाति—नही देती है।

सरलार्थ—जो तुम्हारे हृदय में लोह-कील की भाँति घुसकर लुप्त हो गयी है, बाहर से दिखाई भी नहीं देती है, वह पीन और उन्नत जघन और जङ्घ भाग वाली (अब) अन्य नायिकाओ को (तुम्हारे हृदय में बसना तो दूर रहा) प्रवेश करने का भी अवसर नहीं देती। (कोई तुम्हारे हृदय में है अतः अन्य नायिका में चित्त नहीं देते हो। एक कील जहाँ घुस जाती है उस पर दूसरी कील नहीं घुस पाती—ऐसा लोक मे देखा जाता है) ॥ ३७४ ॥

सास हम पर स्नेह क्यों नहीं करती—ऐसा कहते हुए अनभिज्ञ नायक से नायिका की सखी कह रही है—

प्रातर्निद्राति यथा यथात्मजा लुलितनिःसहैरङ्गैः ।
जामातरि मुदितमनास्तथा तथा सादरा श्वश्रूः ।। ३७५ ।।

पदार्थ--यथा यथा—ज्यों ज्यों । लुलितनिःसहैः---लुलितानि श्रान्तानि निःसहानि अङ्गानि तैः—श्रान्त सुरतक्लेशों को न सह पाने वाली सालस्य अङ्गों से । आत्मजा—पुत्री । प्रातः निद्राति--सोती है । मुदितमनाः—मुदितं प्रसन्नं मनः यस्याः सा--जिसका मन मुदित होता है । श्वश्रूः—सास । जामातरि—जामाता के विषय में । तथा तथा--त्यों-त्यों । सादरा (भवति)—आदर करती है ।

सरलार्थ—(रात में रतातिशय होने से) ज्यों ज्यों थके अलसाये अङ्गों से पुत्री सोती है, (पुत्री के सुखवती होने से स्वयं सुखवती हो) प्रसन्नचित्त सास जामाता का त्यों त्यों अधिक आदर करती है (तुम आज रात में इतना रतातिशय करो जिससे थक कर मेरी सखी प्रातः गाढ़ी नींद में मग्न रहे) ॥३७५॥

नायिका सखी से कह रही है—

प्रणयचलितोऽपि सकपटकोपकटाक्षैर्मयाहितस्तम्भः ।
त्रासतरलो गृहीतः सहासरभसं प्रियः कण्ठे ।। ३७६ ।।

पदार्थ—प्रणयचलितोऽपि—प्रणयेन चलितः अपि—प्रणय से चञ्चल भी । मया—मेरे द्वारा । सकपटकोपकटाक्षैः—सकपटः कोपः येषु तैः कटाक्षैः--मिथ्या-कोपकटाक्षों से । आहितः सम्पादितः स्तम्भः स्थैर्यं यस्य सः—जिसका स्थैर्य रक्खा गया । त्रासतरलः—त्रासेन तरलः—त्रास से कम्पित । प्रियः--प्रिय । सहासरभसम्--हासेन रभसेन सह—हास और वेग के साथ । कण्ठे गृहीतः--आलिङ्गितः—कण्ठाश्लेष किया ।

सरलार्थ--प्रणय-व्यापार से चञ्चल भी प्रिय का स्थैर्य मैं मिथ्याकोप-कटाक्षों से बनाये रही । वह (मेरे मिथ्याकोप कटाक्ष के) त्रास से काँप उठा (उसकी यह सरलता देख कर) मैं प्रिय के कण्ठ में लग गयी ॥ ३७६ ॥

एक नायिका नायक में आसक्त है किन्तु वह नायक किसी दूसरी नायिका में आसक्त है—ऐसा जानकर वह प्रथम नायिका दुःखी होकर अपने हृदय से कह रही है—

प्रियदुर्नयेन हृदय स्फुटसि यदि स्फुटनमपि तव श्लाघ्यम् ।
तत्केलिसमरतल्पीकृतस्य वसनाञ्चलस्येव ।। ३७७ ।।

पदार्थ—हे हृदय ! प्रियदुर्नयेन—प्रिय की दुर्नीति से। यदि स्फुटसि—यदि फट जाते हो। तव स्फुटनमपि—तुम्हारा फटना भी। तत्केलिसमरतल्पीकृतस्य—तस्य केलिसमरे तल्पीकृतस्य—उसके केलि सङ्ग्राम में बिछौना बनाये गये। वस्त्राञ्चलस्य इव—वस्त्राञ्चल की भाँति। श्लाघ्यम्—प्रशंसनीय है।

सरलार्थ—हे हृदय ! प्रिय के दुश्चेष्टित से यदि फट जाते हो तो तुम्हारा फटना भी, (शय्यादि के अभाव में) उसके साथ अतिदुःसह रतसङ्ग्राम में (मेरे द्वारा) बिछौना बनाये गये वस्त्राञ्चल के फटने की भाँति प्रशंसनीय है (जिसने पहिले ऐसा संभोग सुख दिया उसी की आज ऐसी उदासीनता होने पर मर जाना ही अच्छा है) ॥ ३७७ ॥

किसी से नायिका का गुण सुन कर ही उसे प्राप्त करने को उद्यत किसी व्यक्ति के विषय में अन्योक्ति द्वारा कोई अन्य व्यक्ति से कह रहा है—

पवनोपनीतसौरभदूरोदकपूरपद्मिनीलुब्धः।
अपरीक्षितस्वपक्षो गन्ता हन्तापदं मधुपः॥ ३७८ ॥

पदार्थ—पवनोपनीतसौरभदूरोदकपूरपद्मिनीलुब्धः—पवनेन समीरणेन उपनीतः आहृतः सौरभः यस्याः सा, दूरोदकपूरे या पद्मिनी तस्यां लुब्धः—जिसका सौरभ वायु ने आहृत किया, दूर गहरे जल में वर्तमान ऐसी कमलिनी में लुब्ध। अपरीक्षितस्वपक्षः—न परीक्षितः विचारितः स्वपक्षः स्वपक्षबल येन—जिसने अपने पङ्खबल का विचार नहीं किया। मधुपः—भ्रमरः। हन्त—खेद है। आपदं गन्ता—विपत्ति को प्राप्त होगा।

सरलार्थ—पवन ने जिसका सौरभ दूर-दूर पहुँचा दिया, दूर देश सरोवर में स्थित ऐसी पद्मिनी में लुब्ध और अपने पङ्खबल का विचार न कर (उसके पास पहुँचने का प्रयत्न करने वाला) मधुप, खेद है, विपत्ति में पड़ जायगा। (किसी चञ्चलस्वभाव वाले ने उस पद्मिनी नायिका की कीर्ति का वर्णन कर दिया, बस, उसकी प्राप्ति की कठिनाई तथा अपने सहायकों के विषय में विचार न कर, सचेष्ट यह अविवेकी अवश्य क्लेशभागी बनेगा) ॥ ३७८ ॥

प्रेमवश लघुता अपनाये नायक की भी अवमानना नहीं करनी चाहिये—ऐसा, सखी नायिका से कह रही है—

प्रेमलघूकृतकेशववक्षोभरविपुलपुलककुचकलशा।
गोवर्धनगिरिगुरुतां मुग्धवधूर्निभृतमुपहसति॥ ३७९ ॥

पदार्थ—प्रेमलघूकृतकेशववक्षोभरविपुलपुलककुचकलशा—प्रेम्णा लघूकृतः यः केशवः तस्य वक्षसि भरेण धारणेन विपुलपुलकौ कुचकलशौ यस्याः

सा—(नायिकाविषयक) प्रेम से लघु किये गये केशव को वक्षःस्थल पर धारण करने से अत्यन्त पुलकित है कुचकलश जिसके। मुग्धवधूः—मुग्धा सुन्दरी मूढ़ा च। वधूः। गोवर्धनगिरिगुरुताम्—गोवर्धन गिरि की गुरुता को। निभृतम्—गुप्त। हसति—हसती है।

सरलार्थ—प्रेम से लघु बने केशव को वक्षःस्थल पर धारण कर अत्यन्त पुलकित कुचकलश वाली सुन्दरी मूढ वधू अथवा मूढ़ की वधू (जिसने गोवर्धन को धारण किया, उसी को मैं बड़ी आसानी से वक्षःस्थल पर धारण किये हूँ ऐसा सोच कर) गोवर्धन गिरि के गौरव को गुप्त ढंग से हँसती है (इसमें केशव का भी उपहास सिद्ध है)। (तू ऐसी मूर्खता कदापि न करना)॥३७९॥

प्रिय अनुकूल रहे तो कोई कुछ नहीं कर सकता—ऐसा एक स्त्री अन्य स्त्री से कह रही है—

प्रियविरहनिःसहायाः सहजविपक्षाभिरपि सपत्नीभिः।
रक्ष्यन्ते हरिणाक्ष्याः प्राणा गृहभङ्गभीताभिः॥ ३८०॥

पदार्थ—प्रियविरहनिःसहायाः—प्रियस्य विरहं न सहते इति प्रियविरह-निःसहा तस्याः—प्रिय के विरह को न सह पाने वाली का। सहजविपक्षाभिः अपि—स्वाभाविक शत्रुभूत भी। सपत्नीभिः—सपत्नियाँ। गृहभङ्गभीताभिः—घर नष्ट हो जाने से भीत। हरिणाक्ष्याः—मृगनयनी के। प्राणाः रक्ष्यन्ते—प्राण बचाती हैं।

सरलार्थ—स्वाभाविक शत्रु सपत्नियाँ भी (इसके मर जाने पर प्रिय भी प्राण त्याग देगा, ऐसा सोच कर) घर ही नष्ट हो जाने के भय से डर कर, प्रिय के विरह को न सह पाने वाली उस सुन्दरी के प्राणों की रक्षा कर रही हैं॥ ३८०॥

नायिका दूती से कह रही है—

प्रकटयति रागमधिकं लपनमिदं वक्रिमाणमावहति।
प्रीणयति च प्रतिपदं दूति शुकस्येव दयितस्य॥ ३८१॥

पदार्थ—हे दूति! शुकस्य इव—शुक का-सा। दयितस्य—प्रियस्य—प्रिय का। लपनम्—(१) संभाषणम्—संभाषण, (२) मुखम्—मुख। अधिकं रागं—(१) प्रीति, (२) लालिमा। प्रकटयति—प्रकट करता है। वक्रिमाणम्—(१) वक्रोक्तिमत्त्वम्—वक्रोक्तिमत्ता, (२) वक्रता। आवहति—रखता है। प्रतिपदम्—(१) प्रतिशब्द, (२) प्रतिक्षण। प्रीणयति—प्रसन्न करता है।

सरलार्थ—हे दूति ! नायक का यह संभाषण और शुक का मुख दोनों समान हैं। एक प्रीति प्रकट करता है, दूसरा लाली। एक वक्रोक्तिमान् है, दूसरा वक्र। एक प्रत्येक शब्द पर प्रसन्न करता है, दूसरा प्रत्येक क्षण पर। (जो अनुरागशाली वह वक्र नहीं होता, जो वक्र होता है वह प्रीतिकारक नहीं होता—यह अनुरागशाली होते हुए भी वक्र और वक्र होते हुए भी प्रसन्नतादायक, यही आश्चर्य है)। (अतः शीघ्र मुझ से प्रिय को मिलाओ) ॥ ३८१ ॥

स्वकटाक्षविक्षेपादि से नायक को स्वाधीन करना चाहिये, ऐसा सखी नायिका को सिखा रही है—

प्रविशन्त्याः प्रियहृदयं बालायाः प्रबलयौवतव्याप्तम् ।
नवनिशितदरतरङ्गितनयनमयेनासिना पन्थाः ॥ ३८२ ॥

पदार्थ—प्रबलयौवतव्याप्तम्—प्रबलेन रूपादिसंपत्तिशालिना यौवतेन युवतीनां समुदायेन व्याप्तम्—रूपादि संपत्तिशालिनी युवतियों से व्याप्त। प्रियहृदयं प्रविशन्त्याः—प्रिय के हृदय में प्रवेश करती हुई। बालायाः—बाला का। नवनिशितदरतरङ्गितनयनमयेन—नवः नूतनः, निशितः तीक्ष्णः, दरम् ईषत् तरङ्गितम् उत्तरोत्तराधिक्यं तच्छालि नयनमयः तेन—नूतन तीक्ष्ण एवम् कुछ चंचल कटाक्षरूप। असिना—खड्ग से। पन्थाः—मार्गः—मार्ग (विधेय है)।

सरलार्थ—प्रबल रूपादि सपत्तिशालिनी युवतियों से व्याप्त प्रिय के हृदय में प्रवेश करती बाला का नूतन, तीक्ष्ण, ईषच्चचल कटाक्षरूप खड्ग से मार्ग विधेय है।

(ऐसे कटाक्ष से विलोकित नायक अन्य स्त्रियों को छोड़ कर तुझ मे आसक्त होगा। भीड-भाड में खड्ग की सहायता से प्रवेश मिल जाता है—ऐसा लोकसिद्ध है) ॥ ३८२ ॥

नायक, नायिका की सखी से कह रहा है—

प्रणयापराधरोषप्रसादविश्वासकेलिपाण्डित्यैः ।
रूढप्रेमा ह्रियते किं बालाकुतुकमात्रेण ॥ ३८३ ॥

पदार्थ—प्रणयापराधरोषप्रसादविश्वासकेलिपाण्डित्यैः—प्रणयापराधेन रोषः, प्रसादः, विश्वासः, केलिपाण्डित्यम् एतैः—प्रणयसम्बन्धी अपराध से रोष, प्रसन्नता, विश्वास, क्रीडाविषयक पाण्डित्य आदि से। रूढप्रेमा—रूढं प्रेम यस्याः एतादृशी नायिका—जम चुका है प्रेम जिसका ऐसी नायिका। बालाकुतुकमात्रेण—बाला के कुतुकमात्र से। किं ह्रियते—क्या हटायी जा सकती है ? अर्थात् नहीं।

सरलार्थ—[वास्तव में मेरा अनुराग उसी (तेरी सखी) में है, यह (जो कुछ तुमने देखा) तो बाला के साथ कौतूहल मात्र है] तुम्हीं सोचो, प्रणयसम्बन्धी अपराध से रोष, प्रसाद, विश्वास, क्रीडाविषयक पाण्डित्य आदि से जिसका प्रेम प्ररूढ हो चुका है ऐसी नायिका को क्या बाला का कौतूहल मात्र दूर कर सकता है ? ॥ ३८३ ॥

एक वृद्ध जो पहिले नायिका में आसक्त था, अब उपेक्षित होने से अन्य कामुकों से द्वेष करता है; उसीसे वह नायिका अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

पूर्वैरेव चरित्रैश्चरितैर्जरतोऽपि पूज्यता भवतः ।
मुञ्च मदमस्य गन्धाद्युवभिर्गज गञ्जनीयोऽसि ॥ ३८४ ॥

पदार्थ—हे गज ! मदम् मुञ्च—मद छोड़ दे । पूर्वैः एव चरितैः चरित्रैः—पहिले के अद्भुत किये गये चरित्रों से । जरतोऽपि भवतः पूज्यता—तुझ बूढ़े की पूज्यता है । अस्य गन्धात्—मद के गन्ध से । युवभिः गञ्जनीयः असि—युवकों द्वारा तिरस्करणीय है ।

सरलार्थ—हे गज ! तुम मद छोड़ दो । अपने किये गये पहिले के अद्भुत चरित्रों से, बूढ़े भी तुम पूज्य हो; किन्तु मद की गन्ध से तो युवको द्वारा तिरस्करणीय हो (वे तुम्हारे मद को न सह सकेंगे) ॥ ३८४ ॥

नायक की सङ्गति का सुख अभी न पाने से ही यह नकारात्मक वचनं कह रही हो, उसके बाद तो नायक में आसक्त ही रहोगी अतः इस समय मेरी बात मान कर नायक के शयनसदन मे चलो—ऐसा, एक सखी नवोढा से कह रही है—

प्रथमं प्रवेशिता या वासागारं कथंचन सखीभिः ।
न शृणोतीव प्रातः सा निर्गमनस्य संकेतम् ॥ ३८५ ॥

पदार्थ—प्रथमम्—पहिले । या—जो । सखीभिः—सखियों से । कथंचन—बड़ी कठिनाई से । वासागारम् प्रवेशिता—शयनगृह में प्रविष्ट करायी गयी । सा—वह । प्रातः । निर्गमनस्य संकेतम्—निकलने के संकेत को । न शृणोति इव—मानो सुन ही नहीं रही है ।

सरलार्थ—पहिले जिसे सब सखियों ने मिल कर बड़ी कठिनाई से शयन-सदन मे प्रवेश कराया वही (अब) प्रातः (रात में प्रिय के अङ्गसुख का अनुभव कर इतनी आसक्त हो गयी है कि) सखियो द्वारा किये जाते निकलने के संकेत को नहीं सुन रही है (निकलने का नाम नहीं लेती है) (ऐसा ही तुम भी करोगी) ॥ ३८५ ॥

मन्त्रवत्ता आवश्यक है, ऐसा कोई कह रहा है—

पूजा विना प्रतिष्ठां नास्ति न मन्त्रं विना प्रतिष्ठा च।
तदुभयविप्रतिपन्नः पश्यतु गीर्वाणपाषाणम् ॥ ३८६ ॥

पदार्थ—प्रतिष्ठां विना—विना प्रतिष्ठा के। पूजा नास्ति—पूजा नहीं होती। मन्त्रं विना—मन्त्र के विना। न प्रतिष्ठा च—प्रतिष्ठा नहीं होती। (पूजा—(१) सम्मान, (२) अर्चा। प्रतिष्ठा—(१) कीर्ति, (२) प्राणप्रतिष्ठा। मन्त्र—(१) मन्त्रणा, (२) शब्दसमूह जिससे किसी देवता की सिद्धि हो या वेदवाक्य)। तदुभयविप्रतिपन्नः—मन्त्र और प्रतिष्ठा का विरोधी। गीर्वाण-पाषाणम्—देवता की प्रतिमा को। पश्यतु—देखे।

सरलार्थ—विना प्रतिष्ठा (कीर्ति) के, पूजा (सम्मान) नहीं होती; विना मन्त्र (गुप्त मन्त्रणा) के प्रतिष्ठा (कीर्ति) नहीं होती। जो इन दोनों का विरोधी है वह देवता की प्रतिमा को देखे (तो विवाद का निर्णय हो जायगा। देवता की प्रतिमा में मन्त्रों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा की जाती है तभी उनकी अर्चा होती है। जो मन्त्र और प्रतिष्ठा पत्थर को भी देव-तुल्य कर पूज्य बना देती है वह मनुष्यों के लिये तो और भी उपयोगी है) ॥ ३८६ ॥

गृहिणी में अत्यधिक मानादि उपचार का प्रदर्शन करते हुए नायक से, गृहिणी की सखी कह रही है—

पूर्वाधिको गृहिण्यां बहुमानः प्रेमनर्मविश्वासः।
भीरधिकेयं कथयति रागं बालाविभक्तमिव ॥ ३८७ ॥

पदार्थ—गृहिण्याम्—गृहिणी में। पूर्वाधिकः—पहिले की अपेक्षा अधिक। बहुमानः—अत्यन्त आदर। प्रेमनर्मविश्वासः—प्रेम, क्रीडा, विश्वास। इयम् अधिका भीः—यह अधिक भीति। रागम्—अनुराग। बालाविभक्तम् इव—बालया विभक्तम् इव—बाला द्वारा बाँटा गया सा। कथयति—कह रही है।

सरलार्थ—गृहिणी में पहिले की अपेक्षा अधिक (तुम्हारे द्वारा प्रदर्शित) अत्यन्त आदर, प्रेम, क्रीडा, विश्वास और यह अधिक भीति कह रहा है कि (गृहिणीविषयक तुम्हारा अखण्ड) अनुराग, बाला द्वारा बाँट लिया गया है (अब अखण्ड नहीं रह गया है)।

(जब तक गृहिणी में तुम्हारा अनुराग स्थित था तब तक ऐसा आदर आदि नही दिखाते थे और न इतनी भीति ही तुममें थी, अब आदर आदि केवल इस विचार से दिखा रहे हो कि कहीं यह (गृहिणी) तिरस्कृत न कर दे। जहाँ असाधारण प्रेम होता है वहाँ इन बाह्य एवं कृत्रिम उपचारो की क्या आवश्यकता?) ॥ ३८७ ॥

अपने को पीड़ा न पहुँचे—इस उद्देश्य से लोग अपने स्वामी का अनिष्ट चिन्तन करते है—ऐसा कोई किसी व्यक्ति से कह रहा है—.

पुलकितकठोरपीवरकुचकलशाश्लेपवेदनाभिज्ञः ।
शंभोरुपवीतफणी वाञ्छति मानग्रहं देव्याः ॥ ३८८ ॥

पदार्थ—पुलकितकठोरपीवरकुचकलशाश्लेषवेदनाभिज्ञः—पुलकितौ कठोरौ पीवरौ यौ कुचकलशौ तयोः आश्लेपेन जन्यां पीडाम् अभिजानातीति—पुलकित कठोर पीन कुचकलश की आलिङ्गनजन्य पीडा का अनुभव करने वाला। शम्भोः उपवीतफणी—शङ्करजी का उपवीत रूप सर्प । देव्याः—पार्वती का। मानग्रहं वाञ्छति—मान करना चाहता है, पार्वती जी सदा शंकर से मान किये रहे तो अच्छा है, यही चाहता है ।

सरलार्थ—(पार्वती और शंकर के पारस्परिक आलिङ्गन के समय) शकर का उपवीतरूप सर्प (मध्यगत होने से) पार्वती के पुलकित कठोर पीवर कुचकलश से दब कर पीडा का अनुभव कर यही चाहता है कि पार्वती जी सदा शकर से मान किये रहें (जिससे ऐसा अवसर न आये) ।

अथवा जो स्वयं दुःख का अनुभव करता है वही दूसरे के दुःख को दूर करना चाहता है—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—उपवीत रूप सर्प स्वयं वेदना का अनुभव कर, स्वामी शंकर को कठोर कुचकलश की वेदना न हो—इस आशय से पार्वती का मानग्रह चाहता है ।

अथवा अपने को, मनाने के कष्ट से बचाने के लिये ही प्रयत्न में उदासीन दूती को समझ, सखी नायक से कह रही है—शङ्कर का उपवीत रूप सर्प अपने को आलिङ्गनजन्य पीडा से बचाने के लिये ही चाहता है कि पार्वती जी सदा मान बनाये रहें इसी प्रकार तुम दोनो की मध्यस्थ यह दूती अपने को नायिका के मनाने आदि के कष्टो से बचाने के लिये ही तुमसे कहती है कि नायिका का दुःस्वभावजन्य कोप असाध्य है अतः वह नहीं आयेगी ॥ ३८८ ॥

अन्य पथिकों से पहिले अपने प्रिय के, घर पहुँच जाने से प्रसन्न नायिका के विषय में एक सखी दूसरी से कह रही है—

प्रिय आयातो दूरादिति या प्रोतिर्बभूव गेहिन्याः ।
पथिकेभ्यः पूर्वागत इति गर्वात्सापि शतशिखरा ॥ ३८९ ॥

पदार्थ—प्रियः दूरात् आयातः—प्रिय दूर से आया। इति—इस कारण से। गेहिन्याः—गृहिणी को। या प्रीतिः बभूव—जो प्रसन्नता हुई। पथि-

केभ्यः पूर्वागतः—अन्य पथिकों से पहिले आ गया। इति गर्वात्—इस गर्व से। सापि—वह भी। शतशिखरा—शतानि शिखराणि यस्यां सा—(१) जिसमें सैकड़ो शिखर हैं, (२) जिसमें सैकड़ों रोमाञ्च हैं, ऐसी हो गयी।

सरलार्थ—दूर से (चिरविरहशाली एवं प्रीतिकारक) प्रिय आ गया इस कारण से गृहिणी को जो प्रीति हुई वह, (प्रिय से पहिले चले) अन्य पथिकों को पीछे छोड़ उनसे पहिले पहुँच गया इस कारण गर्व से सैकड़ो रोमाञ्च युक्त, सैकड़ो शिखर वाली पहाड़ी सी उत्कृष्ट हो गयी (मुझ सी सौभाग्य-शालिनी कोई नही है) ॥ ३८९ ॥

नायिका की सखी नायक से अन्योक्ति द्वारा नायिका के प्रेम का वर्णन कर रही है—

पृष्ठं प्रयच्छ मा स्पृश दूरादपसर्प विहितवैमुख्य ।
त्वामनुधावति तरणिस्तदपि गुणाकर्षतरलेयम् ॥ ३९० ॥

पदार्थ—विहितवैमुख्य—विहितं वैमुख्यं येन तत्सम्बुद्धिः—मुँह फेर लेने वाले! पृष्ठं प्रयच्छ—पीठ दो—नौका की अथवा नायिका की ओर पीठ करो। मा स्पृश—(१) (हाथ से) मत छुओ। (२) मत देखो, और आलिङ्गन मत करो। दूरादपसर्प—(१) दूर से जाओ, (२) निकट-वर्ती न बनो। तदपि—तथापि। गुणाकर्षतरला—गुणैः (१—तृणरचितैः, २—चातुर्यादिभिः) आकर्षः तेन तरला—(१) रज्जु से खींची जाने से चञ्चल, (२) चातुर्यादि गुणो से आकृष्ट होने के कारण चञ्चल। इयं तरणिः—नौका। त्वामनुधावति—तुम्हारा अनुसरण करती है।

सरलार्थ—हे मुँह फेर लेने वाले! नौका की ओर तुम चाहे पीठ करो, चाहे हाथ से उसे न छुओ, दूर से जाओ तथापि गुण (रज्जु) के आकर्षण से नौका चञ्चल हो तुम्हारा अनुसरण करती है। (रस्सी पकड़ कर नौका खीचने वाला, अधिक बल लगा सके—अतः नौका की ओर पीठ करके खीचता है, नौका से दूर ही रहता है, हाथ से उसे छूता भी नही और नौका उसके पीछे लगी चली आती है; तुम नायिका के विषय में उदासीन रहो, उसकी ओर चाहे देखो तक नही, आलिङ्गन भी न करो, दूर से ही जाओ किन्तु तुम्हारे गुणो से आकृष्ट यह चञ्चल तुम्हारा ही अनुसरण करती है ॥ ३९० ॥

नायक सखा से कह रहा है—

प्रियया कुङ्कुमपिञ्जरपाणिद्वययोजनाङ्कितं वासः ।
प्रहितं मां याच्ञाञ्जलिसहस्रकरणाय शिक्षयति ॥ ३९१ ॥

पदार्थ—प्रियया—प्रिया के द्वारा। कुंकुमपिञ्जरपाणिद्वययोजनाङ्कितं—कुंकुमेन पिञ्जरं पाणिद्वयम् तस्य योजनेन अङ्कितम्—कुंकुम से भूरे दोनों हाथों के जोड़ से अङ्कित। प्रहितम्—भेजा गया। वासः—वस्त्र। याच्ञाञ्जलिसहस्र-करणाय—हजार प्रार्थनाञ्जलि करने के लिए। माम्—मुझको। शिक्षयति—शिक्षा देता है।

सरलार्थ—प्रिया ने कुंकुम से भूरे दोनो हाथो को जोड़कर उससे चिह्नित कर जो वस्त्र भेजा वह मुझे हजार प्रार्थना की अञ्जलि करने की शिक्षा देता है। (वह वस्त्र उसके कोप का द्योतक है अतः मुझे अनेक प्रार्थनाञ्जलि करनी चाहिये, अथवा उसकी एक प्रार्थनाञ्जलि स्वीकार कर मुझे अनेक प्रार्थनाञ्जलि करनी है; अथवा उसने मुझे पाने के लिए एक अञ्जलि की है, मुझे उसे प्राप्त करने के लिए उसके गुरुजनों से अनेक अञ्जलि करनी है अथवा वह रजःशालिनी आने में असमर्थ एक अञ्जलि द्वारा क्षमायाचना कर मुझे सहस्रअञ्जलि कर रत के लिए अभ्यर्थना करने का संकेत करती है) ॥ ३९१ ॥

किसी का साहस-वर्णन कर, नायिका में साहस उत्पन्न करने के लिये दूती कह रही है—

प्राचीरान्तरितेयं प्रियस्य वदनेऽधरं समर्पयति।
प्राग्गिरिपिहिता रात्रिः संध्यारागं दिनस्येव ॥ ३९२ ॥

पदार्थ—इयं—तव प्रतिवेशिनी—तुम्हारी पड़ोसिन। प्राचीरेण अन्तरिता व्यवहिता—परकोटे से व्यवहित। प्रियस्य वदने—प्रिय के मुख पर। अधरं—अधर को। प्राग्गिरिपिहिता—पूर्वाचल मे आच्छादित। रात्रिः। दिनस्य—दिन को। सन्ध्यारागमिव—सन्ध्याराग की भाँति। समर्पयति—समर्पित करती है।

सरलार्थ—यह तुम्हारी पड़ोसिन, दीवाल से छिपी हुई (ऊपर मुख उठा कर) प्रिय के मुख पर, पूर्वाचल से आच्छादित रात्रि जैसे दिन को सन्ध्याराग समर्पित करती है उसी भाँति अपने (लाल) अधर को समर्पित करती है (ऐसा ही तू भी भय त्यागकर कर)॥ ३९२ ॥

नायिका, नायक से कह रही है—

परपतिनिर्दयकुलटाशोषित शठ नेर्ष्यया न कोपेन।
दग्धममतोपतप्ता रोदिमि तव तानवं वीक्ष्य ॥ ३९३ ॥

पदार्थ—परपतिनिर्दयकुलटाशोषित!—परस्याः पत्यौ निर्दयाभिः कुलटाभिः शोषित—हे परपति पर निर्दय कुलटाओ द्वारा शोषित। शठ। न ईर्ष्यया—न उन कुलटाओं की ईर्ष्या से। न कोपेन—न कोप से। दग्धममतोपतप्ता—दग्धया

ममतया उपतप्ता—जली ममता से संतप्त। तव तानवम्—तेरी कृशता को। वीक्ष्य—देखकर। रोदिमि—रोती हूँ।

सरलार्थ—अरे शठ! अन्य स्त्री के पति पर दया न करने वाली कुलटाओं से तेरे शरीर का सार हर लिया गया। उन कुलटाओं की ईर्ष्या से नहीं, और न कोप से ही, अपितु जली ममता से संतप्त मैं तेरी कृशता देख कर रोती हूँ॥ ३९३॥

पथिक स्वगत कह रहा है—

प्राङ्गण एव कदा मां श्लिष्यन्ती मन्युकम्पिकुचकलशा।
अंसनिषण्णमुखी सा स्नपयति बाष्पेण मम पृष्ठम्॥ ३९४॥

पदार्थ—प्राङ्गणे एव—आँगन में ही। मां श्लिष्यन्ती—मेरा आलिङ्गन करती। मन्युकम्पिकुचकलशा—मन्युना कोपेन कम्पिनौ कुचकलशौ यस्याः सा—कोप से जिसके कुचकलश काँप रहे हैं। अंसनिषण्णमुखी—अंसे स्कन्धप्रदेशे निषण्णं स्थितं मुखं यस्याः सा—जिसका मुख स्कन्ध पर स्थित है। सा—वह। बाष्पेण—अश्रु से। मम पृष्ठम्—मेरी पीठ को। कदा स्नपयति—स्नपयिष्यतीत्यर्थः—कब नहलायेगी।

सरलार्थ—प्राङ्गण में ही मेरा आलिङ्गन करती, (विदेश में ही क्यों इतने दिन लगा दिये) कोप से काँपते कुचकलश वाली, मेरे स्कन्ध पर मुख रखकर, वह आँसू से मेरी पीठ को कब नहलायेगी॥ ३९४॥

प्रेम में भय नहीं अतः निर्भय अभिसार करो, ऐसा दूती नायिका से कह रही है—

प्रेतैः प्रशस्तसत्त्वा साश्रु वृकैर्वीक्षिता स्खलद्ग्रासैः।
चुम्बति मृतस्य वदनं भूतमुखोल्केक्षितं बाला॥ ३९५॥

पदार्थ—प्रेतैः—प्रेतों द्वारा। प्रशस्तसत्त्वा—प्रशस्तं सत्त्वं यस्याः सा—जिसके सामर्थ्य की प्रशंसा की गयी। स्खलद्ग्रासैः—स्खलन् ग्रासः येषां तैः—जिनका ग्रास मुख से गिर रहा है। वृकैः—भेड़ियों द्वारा। साश्रु—अश्रुपूर्वक। वीक्षिता—देखी गयी। बाला। भूतमुखोल्केक्षितम्—भूतमुखस्य या उल्का तया ईक्षितम्—भूतों के मुख की मसाल से दिखायी देता। मृतस्य वदनम्—मृत प्रिय का। वदनं चुम्बति—मुख चूमती है।

सरलार्थ—प्रेतों ने जिसके सामर्थ्य की प्रशंसा की, (विस्मय से) गिरते ग्रास वाले भेड़ियों ने जिसे आँखों में आँसू भर कर देखा, वह बाला, भूतों के मुख के मसाल के प्रकाश में दिखायी देते मृत प्रिय के मुख को चूमती है॥ ३९५॥

कोई, किसी को उपदेश दे रहा है—

पिशुनः खलु सुजनानां खलमेव पुरो विधाय जेतव्यः ।
कृत्वा ज्वरमात्मीयं जिगाय बाणं रणे विष्णुः ।। ३९६ ।।

पदार्थ—सुजनानां—सुजनों को । पिशुनः जेतव्यः—दुष्टों को जीतना है । खलु—निश्चयेन । खलमेव पुरः विधाय—किसी दुष्ट को आगे करके । विष्णुः । आत्मीयं ज्वरं कृत्वा—ज्वर को आत्मीयता से सम्पन्न कर । रणे—संग्राम में । बाणम्—बाणासुर को । जिगाय—जीता ।

सरलार्थ—यदि सुजन दुष्ट को जीतना चाहता है तो निश्चय खल को ही आगे कर जीते । विष्णु ने ज्वर को आत्मीय बना कर रण मे बाणासुर को जीता ।

(बाणासुर का वध करने के लिये उद्यत बलदेव जी पर कालाग्नि रुद्र ने माहेश्वर ज्वर छोड़ा था, इससे श्रीहरि के अतिरिक्त अन्य सभी यादव आक्रान्त हो गये थे । उस माहेश्वर ज्वर का विनाश करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर की सृष्टि की थी तब जाकर बाणासुर पराजित हुआ था—ब्रह्म-वैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अध्याय १२०) ।। ३९६ ।।

सखी नायक से अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

पिब मधुप बकुलकलिकां दूरे रसनाग्रमात्रमाधाय ।
अधरविलेपसमाप्ये मधुनि मुधा वदनमर्पयसि ।। ३९७ ।।

पदार्थ—हे मधुप ! दूरे—दूर से । रसनाग्रमात्रम् आधाय—जिह्वाग्र मात्र रखकर । बकुलकलिकां पिब—बकुलकली का रस-पान कर । अधरविलेप-समाप्ये—अधरस्य विलेपेन समाप्तियोग्ये, मधुनि—अधर मे लगने से ही समाप्त हो जाने योग्य मकरन्द पर । मुधा—व्यर्थ । वदनमर्पयसि—मुख लगाते हो ।

सरलार्थ—हे मधुप, दूर से जिह्वाग्र भाग मात्र रखकर बकुलकली का रसपान करो । अधरसंपर्क में ही समाप्त हो जाने योग्य (अल्प) मकरन्द पर व्यर्थ मुँह न लगाओ (यह नायिका अत्यन्त सुरतक्लेश को न सह सकेगी) ।। ३९७ ।।

कोई किसी से कह रहा है—

प्रायेणैव हि मलिना मलिनानामाश्रयत्वमुपयान्ति ।
कालिन्दीपुटभेदः कालियपुटभेदनं भवति ।। ३९८ ।।

पदार्थ—प्रायेणैव—प्रायः। हि—निश्चयेन। मलिनाः—मलिन। मलिनानामा-

श्रयत्वम् उपयान्ति—मलिनों का ही आश्रय प्राप्त करते हैं। कालिन्दीपुटभेदः—कालिन्दी यमुना, तस्याः पुटभेदः चक्राणि—यमुना की भँवर। कालियपुटभेदनं—कालिय नाग का नगर। 'चक्राणि पुटभेदाः स्युः', 'पत्तनं पुटभेदनम्' इत्यमरः। भवति—होता है ॥ ३९९ ॥

सरलार्थ—मलिन ही मलिन का आश्रय होता है। यमुना की भँवर, कालिय नाग का नगर होती है (सज्जन दुष्टों को आश्रय न दें)। अर्थान्तरन्यास ॥ ३९८ ॥

प्रिय की प्रसन्नता के लिये सपत्नी का भी संमान करना चाहिये—ऐसा सखी नायिका को शिक्षा दे रही है—

पश्य प्रियतनुविघटनभयेन शशिमौलिदेहसंलग्ना ।
सुभगैकदैवतमुमा शिरसा भागीरथीं वहति ॥ ३९९ ॥

पदार्थ—शशिमौलिदेहसंलग्ना—शशी मौलौ यस्य सः (शिवः)—जिसके मस्तक में चन्द्रमा है। तस्य देहे संलग्ना—उनके शरीर में संलग्न। अर्धनारीश्वरत्वात् इति भावः। उमा—पार्वती। प्रियतनुविघटनभयेन—प्रियस्य शिवस्य तनोः शरीरात् विघटन विश्लेषः तस्माद् भयेन—शिव के शरीर से वियुक्त हो जाने के भय से। सुभगैकदैवतम्—सुभगस्य प्रियस्य एकदैवतम्—प्रिय की देवतामात्र। भागीरथीम्—गङ्गा को। शिरसा वहति—शिर पर वहन करती है। पश्य—देखो।

सरलार्थ—(अर्धनारीश्वर होने से) शिव के शरीर में संलग्न पार्वती, प्रिय के शरीर से वियुक्त होने के भय से, प्रिय की देवतामात्र गंगा को सिर पर वहन करती हैं। इसे तुम देखो ॥ ३९९ ॥

कोई पथिकों की अङ्गनाओं का दुःख-वर्णन कर रही है—

पथिकवधूजनलोचननीरनदीमातृकप्रदेशेषु ।
घनमण्डलमाखण्डलधनुषा कुण्डलितमिव विधिना ॥४००॥

पदार्थ—पथिकवधूजनलोचननीरनदीमातृकप्रदेशेषु—पथिकवधूजनस्य लोचननीरैः नदीमातृकाः—नद्यम्बुपालिताः प्रदेशाः तेषु—पथिकों की स्त्रियों के नयनाश्रुओं से नदी के जल से सींचे जाने वाले प्रदेशों में। विधिना—विधाता ने। आखण्डलधनुषा—इन्द्रधनुष द्वारा। घनमण्डलम्—मेघमण्डल को। कुण्डलितमिव—कुण्डलित सा कर दिया।

सरलार्थ—(पथिक जनों की स्त्रियों के आँसू से ही सस्योत्पादन हो जाने से मेघमण्डल अनर्थक है अतः) पथिकों की स्त्रियों के आँसू से, नद्यम्बुपालित

प्रदेशों में मानो विधाता ने इन्द्रधनुष द्वारा मेघमण्डल को कुण्डलित कर दिया ॥ ४०० ॥

किसी गृहिणी की केलिलम्पटता का वर्णन एक सखी दूसरी से कर रही है—

प्रतिवेशिमित्त्रबन्धुषु दूरात्कृच्छ्रागतोऽपि गेहिन्या ।
अतिकेलिलम्पटतया दिनमेकमगोपि गेहपतिः ॥ ४०१ ॥

पदार्थ—गेहिन्या—गृहिणी से । दूरात्—दूर देश से । कृच्छ्रागतोऽपि—कृच्छ्रेण क्लेशेन आगतोऽपि—क्लेश से आया भी । गेहपतिः—गृहस्वामी । अतिकेलिलम्पटतया—अत्यन्तं या केलिलम्पटता क्रीडासक्तिः तया—अत्यन्त क्रीडासक्ति के कारण । प्रतिवेशिमित्त्रबन्धुषु—पड़ोसियों, मित्रों, बन्धुओं में । एकं दिनम्—एक दिन तक । अगोपि—छिपा लिया गया, अर्थात् उसका घर आना किसी को ज्ञात न हो सका ।

सरलार्थ—गृहिणी, दूर देश से बड़ी कठिनाई से आये हुये गृहस्वामी को अत्यन्त क्रीडासक्ति के कारण एक दिन तक पड़ोसियों, मित्रों और बन्धुओं से छिपाये रही अर्थात् वे लोग एक दिन तक ज्ञान नहीं पाये कि वह घर आ गया है ॥ ४०१ ॥

नायिका, नायक से कह रही है—

परपट इव रजकीभिर्मलिनो भुक्त्वापि निर्दयं ताभिः ।
अर्थग्रहणेन विना जघन्य मुक्तोऽसि कुलटाभिः ॥ ४०२ ॥

पदार्थ—जघन्य—निन्द्य ! रजकीभिः—रजकीजन द्वारा । परपटः इव—दूसरे के वस्त्र के समान । ताभिः कुलटाभिः—उन प्रसिद्ध कुलटाओं द्वारा । मलिनः त्वम्—मलिन तू । निर्दयं भुक्त्वा—निर्दयता से भुक्त होकर । अर्थग्रहणेन विना—विना द्रव्यग्रहण के । मुक्तः असि—मुक्त कर दिया गया ।

सरलार्थ—हे निन्द्य ! रजकी जन द्वारा दूसरे के वस्त्र के समान, उन प्रसिद्ध कुलटाओं द्वारा, मलिन तू (परकीय होने के कारण) निर्दयतापूर्वक भुक्त होकर, विना द्रव्यग्रहण के मुक्त कर दिया गया ॥ ४०२ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता पकारव्रज्या ।

बकारव्रज्या

किसी नायिका का वृत्त, एक सखी दूसरी से कह रही है—

बहुयोषिति लाक्षारुणशिरसि वयस्येन दयित उपहसिते ।
तत्कालकलितलज्जा पिशुनयति सखीषु सौभाग्यम् ॥ ४०३ ॥

पदार्थ—बहुयोषिति—बह्वयः योषितः नायिकाः यस्य तस्मिन्—जिसके बहुत नायिकाएँ हैं। लाक्षारुणशिरसि—लाक्षया अरुणं शिरः यस्य तस्मिन्—जिसका मस्तक महावर से लाल है। प्रियतमे—प्रियतम। वयस्येन सख्या—सखा द्वारा। उपहसिते—हँसे जाने पर। तत्कालकलितलज्जा—तत्काले तस्मिन् क्षणे कलिता कृता लज्जा यया सा—जिसने उसी समय लज्जा का अनुभव किया। सखीषु—सखियों के बीच। सौभाग्यम् पिशुनयति—सौभाग्य प्रकट करती है।

सरलार्थ—अनेक नायिकाओ वाला, महावर से लाल मस्तक वाला प्रियतम, सखा द्वारा जब हँसा गया, उसी समय लज्जा का अनुभव कर (अन्य अङ्गनाओं को छोड़ कर मुझ में ही आसक्त होने से, मेरे ही चरणो में प्रणाम करने से इसके सिर में लाली है—ऐसा द्योतित कर) सखियो में अपना सौभाग्य प्रकट करती है (ऐसे समय पर भी मन मे खेद न कर हर्ष ही करना चाहिये और ऐसे ही ढंग से अपना सौभाग्य प्रदर्शित करना चाहिये) ॥ ४०३ ॥

नायक, नायिका के केशकलाप का वर्णन किसी से कर रहा है—

बन्धनभाजोऽमुष्याश्चिकुरकलापस्य मुक्तमानस्य ।
सिन्दूरितसीमन्तच्छलेन हृदयं विदीर्णमिव ॥ ४०४ ॥

पदार्थ—बन्धनभाजः—बन्धनवतः—बँधा हुआ। मुक्तमानस्य—मुक्तः मानः यस्य तस्य—जिसका परिमाण मुक्त हो गया अर्थात् अत्यन्त दीर्घ। अमुष्याः—इसके। चिकुरकलापस्य—केशकलाप का। सिन्दूरितसीमन्तच्छलेन—सिन्दूरितः सिन्दूरयुक्तः यः सीमन्तः तस्य छलेन व्याजेन—सिन्दूरयुक्त (सिर की) माँग के बहाने। हृदयं विदीर्णमिव—मानो हृदय (दो भागो में) फट गया है।

सरलार्थ—इसके अत्यन्त दीर्घ, बंधन को प्राप्त, केशकलाप का हृदय मानो सिन्दूरयुक्त शिर की माँग के बहाने (दो भागो मे) फट गया है (लोक में भी देखा जाता है कि जो बन्धन को प्राप्त होता है उस विगतमान का हृदय विदीर्ण हो जाता है) ॥ ४०४ ॥

किसी श्रेष्ठी की पत्नी से मिलाने के लिये, किसी युवक से दूती कह रही है—

बलमपि वसति मयीति श्रेष्ठिनि गुरुगर्वगद्गदं वदति ।
तज्जायया जनानां मुखमीक्षितमावृतस्मितया ॥ ४०५ ॥

पदार्थ—बलमपि—बल भी। मयि वसति—मुझ में बसता है। इति—ऐसा। गुरुगर्वगद्गदम्—गुरुणा अधिकेन गर्वेण गद्गदम्—अतिगर्व से गद्गद। श्रेष्ठिनि वदति सति—सेठ के कहते समय। आवृतस्मितया—आवृतम् स्मितम् यया तया—जिसने अपनी मुस्कराहट छिपा ली। तज्जायया—उसकी पत्नी ने। जनानाम्—सुनने वाले लोगों के। मुखम् ईक्षितम्—मुख को देखा।

सरलार्थ—मुझ में बल भी बसता है—ऐसा अत्यन्त गर्व से गद्गद, जब सेठ कह रहा था तो उसकी स्त्री ने अपनी हँसी छिपा कर या रोक कर सुनने वालों के मुख को देखा (मुझे तनिक भी सन्तुष्ट नहीं कर पाता और तुम लोगों से ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करता है)।

(इस प्रकार वह सेठ पुंस्त्वहीन है और उसकी स्त्री में मदन पूर्ण विकसित है अतः तुम्हारे चलने से तुममें उसकी आसक्ति अवश्य होगी) ॥ ४०५ ॥

किसी नायिका के सौन्दर्यादि गुण को किसी के मुख से सुनकर, उसमें आसक्त मनुष्य के विषय में एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

बलवदनिलोपनीतस्फुटितनवाम्भोजसौरभो मधुपः ।
आकृष्यते नलिन्या नासानिक्षिप्तबडिशरज्जुरिव ॥ ४०६ ॥

पदार्थ—बलवान् यः अनिलः तेन उपनीतम् सकाशमानीतम् स्फुटितस्य अम्भोजस्य सौरभम् यस्य सः—प्रबल वायु ने जिसके पास विकसित कमल की सुगन्ध को पहुँचा दिया। मधुपः—भ्रमरः। नलिन्या—कमलिनी द्वारा। नासा-निक्षिप्तबडिशरज्जुः इव—नासायां निक्षिप्ता बडिशस्य मत्स्यवेधनस्य रज्जुः यस्य सः इव—जिसकी नासिका में बंसी (कँटिया) की डोर पड़ गयी है उसके समान। आकृष्यते—खिंचा जा रहा है। 'बडिशं मत्स्यवेधनम्' इत्यमरः। बडिश को हिन्दी में बंसी या कँटिया कहते हैं जिससे मछली फँसाते हैं। श्लोक में बडिश पद अधिक प्रतीत होता है, मात्राओं की गणना करने से चतुर्थ पाद में पन्द्रह मात्राओं के स्थान पर पादान्त स्वर को दीर्घ मानने से अठारह मात्रायें होती हैं। यदि बडिश पद न हो तो पन्द्रह मात्रायें होती हैं। किसी-किसी पुस्तक में बडिशपदरहित पाठ मिलता भी है। नासा और रज्जुपद के साहाय्य से बडिश पद का अध्याहार सरलता से किया जा सकता है।

सरलार्थ—प्रबल वायु से विकसित कमल की सुगन्ध का आभास पाकर मधुप, नासिका में बंसी की डोर मानों पड़ गयी, कमलिनी के द्वारा खिंचा चला जा रहा है ॥ ४०६ ॥

सुजन गुणमात्र ग्रहण करते हैं और पिशुन दोषमात्र ग्रहण करते हैं—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

बाणं हरिरिव कुरुते सुजनो बहुदोषमप्यदोषमिव ।
यावद्दोषं जाग्रति मलिम्लुचा इव पुनः पिशुनाः ॥ ४०७ ॥

पदार्थ—हरिः—विष्णुः। बाणम्—बाणासुरमिव—जैसे बाणासुर को। सुजनः। बहुदोषमपि—(१) बहवः दोषाः यस्य तम्—जिसके बहुत दोष (गुणभिन्न)

हैं उसको, (२) बहवः दोषः भुजाः यस्य तम्—जिसके बहुत भुजाएँ हैं उसको। अदोषमिव—न दोषाः, (१—गुणभिन्नाः, २—भुजाः) यस्य तम्—दोषरहित, बाहुरहित। कुरुते—करता है। पिशुनाः—पिशुन, छिद्रान्वेषी लोग। मलिम्लुचाः इव—तस्कराः इव—चोरों की भाँति। यावद्दोषम्—(१) समग्र दोष को, (२) रात भर। जाग्रति—(१) खोज करते हैं, (२) जागते रहते हैं।

सरलार्थ—विष्णु ने बहुदोष (अनेक भुजाओं वाले) बाणासुर को अदोष (बाहुरहित) किया था, इसी तरह सुजन बहुदोषवाले को भी अदोष (दोषरहित) करता है अर्थात् दोष की तरफ ध्यान नहीं देता। चोर यावद्दोष (रात भर) जागता है (दूसरों के धन को हरने के लिये उन्हें नींद नहीं आती), इसी प्रकार पिशुन यावद्दोष (समग्र दोष) को ढूंढ़ने में लगे रहते हैं (अतः दुष्टों से सावधान रहने की आवश्यकता है) ॥ ४०७ ॥

नायिका की दूती नायक से कह रही है—

बौद्धस्येव क्षणिको यद्यपि बहुवल्लभस्य तव भावः।
भग्ना भग्ना भ्रूरिव न तु तस्या विघटते मैत्री ॥ ४०८ ॥

पदार्थ—बौद्धस्य इव—बौद्धमत की भाँति। बहुवल्लभस्य—(१) बहवः वल्लभाः नायिकाः यस्य तस्य—जिसके बहुत नायिकाएँ हैं, (२) बहूनां वल्लभः भक्तिविषयः तस्य—जो बहुतों की भक्ति का विषय है, जिसे मानने वाले लोग बहुत हैं। तव भावः—(१) तुम्हारा प्रेम, (२) पदार्थ। यद्यपि। क्षणिकः—(१) अस्थिरः, (२) बौद्धमते पदार्थस्य क्षणिकत्वादस्थिरत्वम्—बौद्धमत में पदार्थ क्षणिक हैं। भग्ना—टूटी हुई। भग्ना भ्रूः इव—कुटिल भौंह की भाँति। तस्याः मैत्री—उसकी मैत्री। न तु विघटते—विघटित नहीं होती।

सरलार्थ—बहुतों की भक्ति का जो विषय बना हुआ है उस बौद्धधर्म का पदार्थ जैसे अस्थिर एवं क्षणिक है उसी भाँति बहुतरनायिकाशाली तेरा प्रेम यद्यपि स्थिर नहीं है तथापि उसकी भग्न मैत्री, भग्न भ्रू की भाँति विघटित नहीं होती (जैसे भग्न भ्रू चमत्कारविधायिनी होती है उसी प्रकार उसका कलह प्रीतिकारक है) ॥ ४०८ ॥

विदेश को प्रस्थित नायक को, नायिका विदा करती, पहुँचाने के लिये सरोवर तक (जैसा विधान है कि प्रिय को सरोवर तक पहुँचाना चाहिये) आयी और दोनों का सारा दिन वहीं बीत गया—इस पारस्परिक आसक्ति का वर्णन एक सखा दूसरे से कर रहा है—

बाष्पाकुलं प्रलपतोर्गृहिणि निवर्तस्व कान्त गच्छेति।
यातं दंपत्योर्दिनमनुगमनावधि सरस्तीरे ॥ ४०९ ॥

पदार्थ—वाष्पाकुलम्—अश्रु-व्याकुल। गृहिणि! निवर्तस्व—लौट जाओ। कान्त! गच्छ—जाओ। इति प्रलपतोः—अनर्थक कहते हुये। दंपत्योः—दम्पती का। दिनम्—दिन। अनुगमनावधिसरस्तीरे—साथ जाने की अवधि (सीमा) तालाब के तीर पर। यातम्—बीत गया।

सरलार्थ—प्रिय कहता है—गृहिणी, लौट जाओ, किन्तु वह लौटती नहीं और कहती है—कान्त! जाओ, परन्तु प्रिय नहीं जाता। इस प्रकार बार-बार अश्रु-पूर्ण एक दूसरे से वृथा ही कहते-कहते उन दोनो का सारा दिन अनुगमन की सीमा सरोवर के तीर पर बीत गया (प्रेम में किसी बात का ध्यान नहीं रहता) ॥ ४०९ ॥

नायक सखा से कह रहा है—

बालाविलासबन्धानप्रभवन्मनसि चिन्तयन् पूर्वम्।
संमानवर्जितां तां गृहिणीमेवानुशोचामि ॥ ४१० ॥

पदार्थ—अप्रभवन्—प्रथमकान्ताधीनत्वात् किमपि कर्तुमसमर्थः—प्रथम पत्नी के अधीन होने से कुछ करने में असमर्थ। पूर्वम्—पहिले। मनसि—मन में। बालाविलासबन्धान्—बालायाः द्वितीयकान्तायाः विलासानां बन्धान्—द्वितीय नायिका के विलासबन्धों को। चिन्तयन्—सोचता हुआ (स्थितः) रहा। (अधुना) संमानवर्जिताम्—द्वितीयकामिन्याः प्राबल्यात् संमानरहिताम्, तां—पूर्वानुभूताम्—संमानरहित उस पूर्वानुभूत। गृहिणीमेव—प्रथम पत्नी को ही। अनुशोचामि—शोकपूर्वक सोचता रहता हूँ।

अथवा—बालायाः विलासबन्धान्—बाला के विलासबन्धो को। मनसि चिन्तयन्—मन मे सोचता हुआ। पूर्वम्—पहले। समानवर्जिताम् तां गृहिणीमेव—संमानरहित उस गृहिणी के विषय में। अनुशोचामि—शोकान्वित हुआ करता हूँ।

सरलार्थ—आज से पहिले (प्रथम पत्नी के अधीन होने के कारण) कुछ करने मे असमर्थ, मैं द्वितीय कान्ता के विलासो के प्रदर्शन को मन में सोचता (इस विलासविशेषशालिनी बाला का कैसे उपभोग करूँ—ऐसी चिन्ता से युक्त) रहता था। अब (द्वितीय पत्नी के प्रबल पड़ जाने से) संमानरहित उस प्रथम-गृहिणी के विषय में (जिसके भय से पहिले मैं कुछ कर नही सकता था, आज उसी की यह दशा है—ऐसा सोच कर) शोकान्वित रहा करता हूँ (इस प्रकार न मुझे पहिले ही चिन्ता से मुक्ति मिली थी और न इस समय ही)।

अथवा—(विवशता के कारण, कठिन समस्या को सुलझाने में) असमर्थ मैं, प्रथम पत्नी के विलासबन्धो को सोचता हुआ (अभी अप्रगल्भ अवस्था मे

ही इसने अपने विलासों से मुझे अपने अधीन बना लिया है तो आगे क्या होगा ? आगे चलकर मेरी परतन्त्रता की यह अवस्था देख कर प्रथम पत्नी को महान् दुःख होगा) सबसे पहिले संमानरहित उस प्रथम पत्नी के विषय में ही दुःखी होता हूँ ॥ ४१० ॥

इति विभाव्याख्यासमेता बकारव्रज्या ।

भकारव्रज्या

दैन्य प्रकट करने वाले स्थूलकाय व्यक्ति से कोई अन्योक्ति द्वारा कहता है—

भ्रमसि प्रकटयसि रदं करं प्रसारयसि तृणमपि श्रयसि ।
धिङ्मानं तव कुञ्जर जीवं न जुहोषि जठराग्नौ ॥ ४११ ॥

पदार्थ—हे कुञ्जर ! भ्रमसि—इधर-उधर घूमते हो । रदम् प्रकटयसि—दाँत दिखाते हो । करम् (१—शुण्डाम्, २—हस्तं च)—सूँड़ अथवा हाथ । प्रसारयसि—फैलाते हो । तृणमपि श्रयसि—तृण का भी सहारा लेते हो । तव मानम् (१—महापरिमाणम्, २—अभिमानम्) धिक्—तुम्हारे इस भारी डील-डौल को, अभिमान को धिक्कार । जठराग्नौ—उदरानल में । जीवं न जुहोषि—जीव को होम नहीं कर देते ।

सरलार्थ—हे कुञ्जर ! इधर-उधर घूमते हो । दाँत दिखाते हो । सूँड फैलाते हो । तृण का भी सहारा लेते हो । तुम्हारे इस महापरिमाण को धिक्कार है । उदरानल में जीव को होम नहीं कर देते ॥ ४११ ॥

लघु का अपकार यह तुरन्त कर सकता है, गौरवशाली का नही—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

भूतिमयं कुरुतेऽग्निस्तृणमपि संलग्नमेनमपि भजतः ।
सैव सुवर्ण दशा ते शङ्के गरिमोपरोधेन ॥ ४१२ ॥

पदार्थ—अग्निः । संलग्नमपि—तनिक देर उससे संलग्न हुआ तो भी । तृणम्—तृण को । भूतिमयं—भस्मरूपं, कुरुते—भस्म कर देता है । हे सुवर्ण ! एनम् भजतः अपि—इसका चिरकाल तक संसर्ग रखता । ते—तेरी । सैव दशा—वही पूर्ववत् अवस्थिति । गरिमोपरोधेन—गरिम्णः गुरुत्वस्य उपरोधेन अनुरोधेन—गौरवशालिता के अनुरोध से । शङ्के—तर्कयामि—सोचता हूँ ।

सरलार्थ—अग्नि, (लघु) तृण तनिक देर संलग्न हुआ तो तुरन्त उसे भस्म कर देता है । परन्तु हे सुवर्ण ! तुम इससे चिरकाल तक संसर्ग बनाये रखते हो तथापि तुम्हारी वही पूर्णवत् अवस्थिति है—इसका एक मात्र कारण

तुम्हारा गौरवशाली होना है—उसी के अनुरोध से यह तुम्हें भस्म नहीं कर रहा है—ऐसा मेरा विचार है। (यह अपकारकारी है, तुम जो वच रहे हो, अपने गौरवबल से ही, अतः इसका सेवन न करो)।

अथवा औद्धत्यविहीन, सेवा कर प्रचुर धन इससे प्राप्त कर सकता है, ऐसा, अन्योक्ति द्वारा कोई कह रहा है—

भूतिमयम्—ऐश्वर्यप्रचुरम्।

औद्धत्यविहीन तृण जरा सा संलग्न रह कर इससे ऐश्वर्यप्रचुर हो जाता है किन्तु उद्धत होने से सुवर्ण! तेरी पूर्ववत् अवस्थिति है, तू इससे कुछ नहीं प्राप्त कर सका ॥ ४१२ ॥

नायक, नायिका से संकेतस्थल बता रहा है—

भवति निदाघे दीर्घे यथेह यमुनेव यामिनी तन्वी।
द्वीपा इव दिवसा अपि तथा क्रमेण प्रथीयांसः ॥ ४१३ ॥

पदार्थ—इह निदाघे दीर्घे—इस निदाघ के बढ़ने पर। यमुना इव—यमुना की भाँति। यामिनी—रात। तन्वी—स्वल्पा—छोटी। भवति—हो जाती है। तथा क्रमेण—तथा क्रम से। द्वीपाः इव—द्वीपों (स्थल का वह भाग जिसके चारो ओर पानी हो) की भाँति। दिवसा अपि—दिन भी। प्रथीयांसः—महत्तराः भवन्ति—लम्बे होते हैं।

सरलार्थ—निदाघ के बढ़ने पर यमुना की भाँति रात तन्वी (स्वल्प) हो जाती है तथा द्वीपों की भाँति दिन बड़े होते हैं (रात छोटी होने से क्रीडायोग्य नहीं अतः दिन में ही, यमुना तन्वी है अतः सरलता से पार की जा सकती है,—उसे पार कर क्रीडायोग्य द्वीप ही संकेतस्थल समझ लो) ॥ ४१३ ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

भवता महति स्नेहानलेऽर्पिता पथिक हेमगुटिकेव।
तन्वी हस्तेनापि स्प्रष्टुमशुद्धैर्न सा शक्या ॥ ४१४ ॥

पदार्थ—भवता—तुम्हारे द्वारा। स्नेहानले—(१) प्रीतिरूप अग्नि मे, (२) तैल की अग्नि में, अग्नि से तप्त तैल में। अर्पिता—डाली गयी। हेमगुटिका इव—सुवर्ण की गोली की भाँति। हे पथिक! प्रवासशालिन्। सा तन्वी—उस सुन्दरी को। अशुद्धैः—अशुद्ध जन। हस्तेन स्प्रष्टुमपि—हाथ से स्पर्श भी। न शक्या—नहीं कर सकते।

सरलार्थ—तुमने अपनी प्रीतिरूप अग्नि में, तप्त तैल मे सुवर्णगुटिका की भाँति डाल दिया और वह तप्त हो उठी। हे प्रवासशालिन्! उस सुन्दरी को

अशुद्धजन हाथ से स्पर्श भी नहीं कर सकते (वह तुझ में आसक्त, किसी अन्य को मन में भी नहीं लाती)।

(कहा जाता है कि तप्त तेल में डाली गयी सुवर्णादि गुटिका को सदोष व्यक्ति हाथ से नहीं छू सकता—ऐसा अपराधी की परीक्षा का प्राचीन ढंग है) ॥ ४१४ ॥

नायक सखा से कह रहा है—

भूमिलुलितैककुण्डलमुत्तंसितकाण्डपटमियं मुग्धा ।
पश्यन्ती निःश्वासैः क्षिपति मनोरेणुपूरमपि ॥ ४१५ ॥

पदार्थ—भूमौ लुलितं संलग्नम् एकं कुण्डलं यत्र यथा स्यात्तथा—भूमि पर एक कुण्डल लगा है जिसमें। उत्तंसितकाण्डपटम्—उत्तंसितः काण्डपटः यत्र—जिसमें कनात उत्तंस कर्णभूषण हो गया। इयं मुग्धा—यह मुग्धा। पश्यन्ती—देखती हुई। निःश्वासैः—निःश्वासों से। मनोरेणुपूरम् अपि—मन के रेणुपूर को भी। क्षिपति—दूर फेंक देती है।

सरलार्थ—(मैं जा रहा था, नायिका भूमि पर कनात के पास कनात की ओर मुँह करके करवट लेट गयी और नीचे से कनात उभार कर मुझे देखने लगी) एक कुण्डल भूमि में संलग्न है (करवट लेटने पर ऐसा होता है), दूसरे कान पर कनात का भाग कर्णभूषण बना हुआ है (नीचे का भाग उभार कर कान पर रोक लिया गया है) इस प्रकार अवलोकन करती वह मुग्धा क्लेशजन्य निःश्वासों से (मनःपुष्प को ऐसा झकझोर देती है) मनःपुष्प रेणु-राशि को भी दूर फेंक देती है (मेरा मन मुझमें नहीं रह जाता) ॥ ४१५ ॥

मूर्ख अङ्गना की अभिलाषा करने वाले व्यक्ति से कोई स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

भवतालिङ्गि भुजंगी जातः किल भोगिचक्रवर्ती त्वम् ।
कञ्चुक वनेचरीस्तनमभिलषतः स्फुरति लघिमा ते ॥४१६॥

पदार्थ—हे कञ्चुक ! भवता—तूने। भुजङ्गी—(१) सर्पिणी, (२) वेश्या। आलिङ्गि—आलिङ्गित किया। किल—निश्चयेन। भोगिचक्रवर्ती—भोगिनां (१—सर्पाणाम्, २—भोगोपचारशालिनाम्) समूहवर्ती राजा वा—सर्प-समूहवर्ती और भोगियो का राजा। त्वं जातः—तू हुआ। वनेचरीस्तनमभिलषतः—वनेचरी भिल्लकान्ता तस्याः स्तनम् अभिलषतः—भीलनी के स्तन की अभिलाषा करते। ते लघिमा—तेरी लघुता। स्फुरति—स्पष्ट प्रत्यक्ष प्रकट हो रही है।

सरलार्थ—हे कञ्चुक (केंचुल) तूने जो सर्पिणी का आलिङ्गन किया, इससे सर्प-समुदायवर्ती हुआ किन्तु अब (आभूषण बनने के लिये) भिल्लस्त्री के स्तन की अभिलाषा करते हुए तेरी लघुता स्पष्ट प्रत्यक्ष हो रही है।

(हे केंचुल सदृश नायक ! तू वेश्या का आलिङ्गन कर निश्चय भोगियों में राजा हो गया किन्तु भिल्लकान्ता-सी मूर्ख अङ्गना के स्तन की अभिलाषा करने से तेरी लघुता प्रत्यक्ष प्रकट हो रही है, चतुर अङ्गना की सङ्गति त्याग कर मूर्ख अङ्गना की सङ्गति की इच्छा लाघवकारिणी होती है) ॥ ४१६ ॥

किसी नायक ने नायिका से जो संकेत किया उसी का वर्णन कोई किसी से कर रहा है—

भैक्षभुजा पल्लीपतिरिति स्तुतस्तद्वधूसुदृष्टेन ।
रक्षक जयसि यदेकः शून्ये सुरसदसि सुखमस्मि ॥ ४१७ ॥

पदार्थ—तद्वधूसुदृष्टेन—तस्य पल्लीपतेः वध्वा सुदृष्टेन—पल्लीपति (गाँव के मालिक) की पत्नी से सकाम दृष्टि से देखे गए। भैक्षभुजा—भिक्षा सम्बन्धी अन्न खाने वाले अर्थात् भिक्षुक ने। रक्षक ! जयसि—तू सर्वोत्कृष्ट है। यत्—जो, तुम्हारे रक्षण सामर्थ्य से। शून्ये सुरसदसि—शून्य देवालय में। एकः—मैं अकेला। सुखम् अस्मि—सुख से हूँ। इति—ऐसा, पल्लीपति की प्रशंसा की।

सरलार्थ—भिक्षुक को पल्लीपति की पत्नी ने सकामदृष्टि से देखा तो उसने पल्लीपति की यो प्रशंसा कर मिलने का संकेतस्थल उसे बता दिया कि हे रक्षक ! तू सर्वोत्कृष्ट है, तेरे रक्षण सामर्थ्य से मै निर्जन देवालय में अकेले सुख से रहता हूँ (मैं देवालय में अकेले रहता हूँ, वहाँ तुम आना) ॥ ४१७ ॥

वृद्ध को स्त्रीसंग्रह या धनसंग्रह नही करना चाहिये—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

भोगाक्षमस्य रक्षां दृङ्मात्रेणैव कुर्वतोऽनभिमुखस्य ।
वृद्धस्य प्रमदापि श्रीरपि भृत्यस्य भोगाय ॥ ४१८ ॥

पदार्थ—भोगाक्षमस्य—भोगे अक्षमः—(१) रत में, (२) उपयोग में असमर्थ। दृङ्मात्रेणैव रक्षां कुर्वतः—दृष्टिमात्र से रक्षा करता हुआ। अनभिमुखस्य—(१) सामर्थ्य न होने से उसकी ओर कटाक्षो से भी न देख सकने वाला, (२) याचक की ओर मुँह न करने वाला। वृद्धस्य प्रमदापि श्रीरपि—वृद्ध की पत्नी और लक्ष्मी दोनो। भृत्यस्य भोगाय—भृत्य के भोग के लिये होती हैं।

सरलार्थ—प्रमदा के साथ रत करने में असमर्थ वृद्ध, केवल दृष्टिमात्र

से उसकी रक्षा करता रहता है, कभी उसकी ओर मुख कर के कटाक्षों से भी नहीं देखता। लक्ष्मी का उपभोग करने में असमर्थ केवल दृष्टि मात्र से देख-भाल करता रहता है, याचकों के कुछ माँगने पर उनकी ओर मुख उठाकर भी नहीं देखता—इस प्रकार वृद्ध की प्रमदा और लक्ष्मी का उपभोग भृत्य ही करते हैं ॥ ४१८ ॥

पथिक की अङ्गना अपने मन में मनोरथ करती हुई, रात्रि को सम्बोधित करके कह रही है—

भवितासि रजनि यस्यामध्वश्रमशान्तये पदं दधतीम् ।

स बलाद्वलयितजङ्घाबद्धां मामुरसि पातयति ॥ ४१९ ॥

पदार्थ—हे रजनि ! (एतादृशी) भवितासि—क्या तू ऐसी कभी होगी ? यस्याम्—जिसमें। स—वह। अध्वश्रमशान्तये—अध्वनः मार्गस्य यः श्रमः तस्य शान्तये—मार्ग की थकावट दूर करने के लिये। पदं दधतीम्—पाँव रखती हुई। बलात्—बलपूर्वक। वलयितजङ्घाबद्धाम्—वलयिता वेष्टिता या जङ्घा तया बद्धाम्—एक जाँघ को दूसरी पर रख दोनों जाँघों से बाँध कर। माम्—मुझको। उरसि—अपने वक्षःस्थल पर। पातयति—पातयिष्यतीत्यर्थः—गिरायेगा।

सरलार्थ—हे रजनी, तू ऐसी कब होगी, जिसमें वह प्रिय (घर आकर) मार्ग की थकावट दूर करने के लिये, मेरे पैर धरते ही बलपूर्वक एक जाँघ को दूसरी पर रख इस प्रकार अपनी जाँघों से मुझे बाँधकर अपने वक्षःस्थल पर गिरा लेगा ॥ ४१९ ॥

नायक का गौरव तू क्यों नहीं करती—इस प्रकार कहती सखी से नायिका कह रही है—

भूषणतां भजतः सखि कषणविशुद्धस्य जातरूपस्य ।

पुरुषस्य च कनकस्य च युक्तो गरिमा सरागस्य ॥ ४२० ॥

पदार्थ—हे सखि ! भूषणताम्—(१) सर्वोत्कृष्टताम्, (२) कटकादि-रूपताम्, च भजतः—(१) सर्वोत्कृष्टता को, (२) कटकादि भूषणता को प्राप्त करता। कषणविशुद्धस्य—कषणेन (१—चिरकालीनसंगत्या, २—निकषोपलेन) विशुद्धस्य (१—विज्ञातसकलस्वभावस्य, २—विज्ञातशुद्धेश्च)—(१) चिर-कालीन संगति से जिसका स्वभाव भली भाँति जान लिया गया, (२) कसौटी पर जिसकी शुद्धता परख ली गयी। जातरूपस्य—(१) सुन्दरस्य, (२) सुवर्णस्य—(१) सुन्दर, (२) सुवर्ण। सरागस्य—(१) प्रीतिमतः, (२) ईषत् लौहित्यवतः—

(१) प्रीतिमान्, (२) हल्के लाल रंग का। पुरुषस्य च कनकस्य च—पुरुष का और कनक का। गरिमा—(१) गौरवम्, (२) परिमाणम्। युक्तः—युक्त है।

सरलार्थ—हे सखि! सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त, चिरकालीन संगति से ज्ञात-स्वभाव वाले, सुन्दर, प्रीतिमान् पुरुष एवम् कटकादि भूषण-भाव को प्राप्त, कसौटी पर शुद्ध जाना गया, हल्के लाल रंग का सोना—इन दोनों का गौरव उचित है, अन्य का नहीं ॥ ४२० ॥

नायक को अपने गुणों से अधीन करने वाली नायिका को "मन्त्र-तन्त्र से प्रिय को वश में कर लिया"—इस लोकवाद से खिन्न देखकर सखी अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

भस्मपरुषेऽपि गिरिशे स्नेहमयी त्वमुचितेन सुभगासि।
मोघस्त्वयि जनवादो यदोषधिप्रस्थदुहितेति ॥ ४२१ ॥

पदार्थ—भस्मपरुषेऽपि—भस्ममलिनेऽपि, गिरिशे—गिरौ शेते इति गिरिशः शिवः तस्मिन्—भस्ममलिन शिव में। स्नेहमयी—प्रीतिस्वरूपा। उचितेन सुभगा असि—तू उचित ही सुभगा है। यत्—जो। ओषधिप्रस्थदुहिता—ओषधीनां प्रस्थानि शिखराणि यस्मिन् सः ओषधिप्रस्थः हिमालयः तस्य दुहिता—ओषधि के शिखर वाले हिमालय की कन्या है। इति—ऐसा। त्वयि जनवादः—तुम्हारे विषय में जनवाद। मोघः—मिथ्या है।

सरलार्थ—भस्म से मलिन (दुराराध्य) शिव में तू साक्षात् प्रीतिस्वरूपा है अतः तू सुभगा है ऐसा उचित ही है। ओषधि के शिखर वाले हिमालय की कन्या है (अतः जादू-टोना, ओषधि आदि उपचारों से पति को अधीन बना लिया) यह तेरे विषय में लोकवाद मिथ्या है ॥ ४२१ ॥

निकटस्थ भी नवोढा का उपभोग दुःसाध्य होता है—ऐसा कोई कह रहा है—

भयपिहितं बालायाः पीवरमूरुद्वयं स्मरोन्निद्रः।
निद्रायां प्रेमार्द्रः पश्यति निःश्वस्य निःश्वस्य ॥ ४२२ ॥

पदार्थ—बालायाः—बाला के। भयपिहितम्—भय से ढके। पीवरम्—पीनम्—मांसल। ऊरुद्वयम्—दोनों जंघाओं को। स्मरोन्निद्रः—स्मरेण उन्निद्रः—काम से जिसकी नींद उचट गयी है। प्रेमार्द्रः। निद्रायाम्—नायिका की नींद में—उसके सोते समय। निःश्वस्य निःश्वस्य—संभोग न होने से बार-बार लम्बी साँसे भर कर। पश्यति—देखता है।

सरलार्थ—नवोढा के, भय से ढके पीन दोनों जङ्घप्रदेश को, मदन से उचटी नींद वाला प्रेमार्द्र प्रिय (संभोग न होने से) बार-बार लम्बी साँसें भरता देख रहा है ॥ ४२२ ॥

नायिका की सखी, नायक से कह रही है—

भ्रमरीव कोषगर्भे गन्धहृता कुसुममनुसरन्ती त्वाम् ।
अव्यक्तं कूजन्ती संकेतं तमसि सा भ्रमति ॥ ४२३ ॥

पदार्थ—गन्धहृता—गन्धेन हृता, स्वाधीनीकृतचित्ता—गन्ध से जो अधीन कर ली गयी । कुसुमम् अनुसरन्ती—कुसुम का अनुसरण करती । कोषगर्भे—कोष-गर्भ में । भ्रमरी इव—भ्रमरी की भाँति । त्वाम् अनुसरन्ती—तुम्हें खोजती । अव्यक्तं कूजन्ती—अव्यक्त कूजती । तमसि—अँधेरे में । संकेतं भ्रमति—संकेत-स्थल में इधर-उधर घूमती है ।

सरलार्थ—गन्ध से अधीन कर ली गयी, कुसुम का अनुसरण करती, कोषगर्भ में भ्रमरी की भाँति तुम्हें खोजती, (लोकभय से) अव्यक्त कूजती (शब्द करती) वह अँधेरे में संकेतस्थल में इधर-उधर घूमती है ॥ ४२३ ॥

इस नायिका का अनुराग मुझमें चिरकाल तक स्थायी रहेगा या नहीं, इस संशय में पड़े नायक से नायिका की सखी कह रही है—

भ्रामं भ्रामं स्थितया स्नेहे तव पयसि तत्र तत्रैव ।
आवर्तपतितनौकायितमनया विनयमपनीय ॥ ४२४ ॥

पदार्थ—तत्र तत्रैव—वहीं वहीं । तव स्नेहे पयसि—(१) तेरे स्नेह रूप जल में, (२) स्नेहयुक्त जल में । भ्रामं भ्रामम्—घूम-घूम कर । स्थितया अनया—स्थित इसने । विनयम्—(१) नम्रता अथवा विशिष्ट नीति को, (२) विशिष्ट नयन (ले जाना; प्राप्त कराना) । अपनीय—त्याग कर । आवर्तपतितनौका-यितम्—आवर्ते पतिता या नौका तद्वद् आचरितम्—भँवर में पडी नौका का सा आचरण किया ।

सरलार्थ—तेरे लोकोत्तर स्नेह रूप जल में घूम-घूमकर स्थित यह (नायिका) नम्रता अथवा विशिष्ट नीति को त्याग कर, जल में घूम-घूम कर अन्यत्र गमन त्याग कर भँवर मे पड़ी नौका की भाँति आचरण करती है (अतः तू अन्यथा न सोच । जैसे जल में स्थित नौका भँवर में पड़ कर अन्यत्र नहीं जाती, उसी प्रकार तेरे स्नेह में स्थित, अन्य नायक में अपना चित्त नहीं लगायेगी) ॥ ४२४ ॥

एक स्त्री किसी अविवाहित तरुणी से कह रही है—

भ्रमयसि गुणमयि कण्ठग्रहयोग्यानात्ममन्दिरोपान्ते ।
हालिकनन्दिनि तरुणान्ककुद्मिनो मेढिरज्जुरिव ॥ ४२५ ॥

पदार्थ—हे हालिकनन्दिनि ! गुणमयि—(१) सौन्दर्यादिगुणप्रचुरे, (२) तन्तुमयि ! आत्ममन्दिरोपान्ते—आत्मनः स्वस्य मन्दिरस्य सदनस्य उपान्ते समीपे—अपने सदन के समीप । कण्ठग्रहयोग्यान्—(१) आलिङ्गन-योग्य, (२) कण्ठबन्धन योग्य । तरुणान्—युवकों को । मेढिरज्जुः—मेढिः (पशुओं के बाँधने के लिये गाड़ी गयी लकड़ी) तस्य रज्जुः इव—पशु के बाँधने के खूँटे की रस्सी की भाँति । 'पुंसि मेढिः खले दारु न्यस्तं यत् पशुबन्धने' इत्यमरः । ककुद्मिनः—वृषभान्—बैलों को । भ्रमयसि—घुमाया करती है, चक्कर लगवाया करती है ।

सरलार्थ—हे सुन्दरि हालिकनन्दिनि (हलवाहा किसान की पुत्रि !) आलिङ्गन योग्य तरुणों को बैलों को खूँटे की रस्सी की भाँति घुमाया करती है, चक्कर लगवाती रहती है (घर के भीतर ही उन्हें क्यों नहीं ले जाती ?)॥४२५॥

कोई किसी से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

भालनयनेऽग्निरिन्दुर्मौलौ गात्रे भुजंगमणिदीपाः ।
तदपि तमोमय एव त्वमीश कः प्रकृतिमतिशेते ॥ ४२६ ॥

पदार्थ—भालनयने—मस्तकनेत्रे—मस्तकवाले नेत्र में । अग्निः । मौलौ—मस्तक मे । इन्दुः—चन्द्रमा । गात्रे—शरीर मे । भुजंगमणिदीपाः—भुजंगानां सर्पाणाम् मणयः एव दीपाः—सर्पमणि रूप दीप । तदपि—ऐसी प्रकाशक सामग्री के होते भी । त्वम्—तू । तमोमयः एव—(१) तमोगुण-शाली, (२) अन्धकारप्रचुर । ईश ! प्रकृतिम्—स्वभाव को । कः अतिशेते—कौन उल्लङ्घित कर सकता है ।

सरलार्थ—हे ईश ! तुम्हारे भालनेत्र में अग्नि, मस्तक में चन्द्रमा, शरीर मे भुजंगमणिरूप दीप हैं । ऐसी प्रकाशक सामग्री के होते भी तुम तमोमय (१—तमोगुणशाली, २—अन्धकारप्रचुर) हो, स्वभाव का उल्लङ्घन कौन कर सकता है ? (यद्यपि तुम्हारी सात्त्विक जनों से सङ्गति है तथापि तुम्हारी तमोगुणी प्रकृति नहीं जाती) ।

प्रकाशक सामग्री के होते भी अन्धकारप्रचुरता—यह विरोध है । तमः पद गुणविशेषवाचक है—यह विरोध का परिहार है; अतः यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है ॥ ४२६ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता भकारव्रज्या ।

मकारव्रज्या

औद्धत्यपूर्ण नायिका के वचनों से कुपित एवं दुःखी नायक से सखी कह रही है—

मधुमदवीतव्रीडा यथा यथा लपति संमुखं बाला ।
तन्मुखमजाततृप्तिस्तथा तथा वल्लभः पिबति ॥ ४२७ ॥

पदार्थ—मधुमदवीतव्रीडा—मधुना मदः यस्याः सा मधुमदा अत एव वीता गता व्रीडा लज्जा यस्याः सा—मद्य से मतवाली अतएव निर्लज्ज । बाला । यथा यथा— ज्यों ज्यों । संमुखम्—सामने । लपति—वक्ति—वचन बोलती है । वल्लभः—रसिकः । अजाततृप्तिः—न जाता तृप्तिः यस्य सः—जिसे तृप्ति नहीं है । तन्मुखम्—तस्याः मुखम्—उसके मुख को । तथा तथा—त्यो त्यो । पिबति—सादर देखता है ।

सरलार्थ—मद्य पीकर मतवाली अतएव निर्लज्ज बाला, नायक के सामने ज्यों-ज्यो वचन बोलती है, वह रसिक अतृप्त होता हुआ, बाला के मुख को त्यो-त्यो सादर देखता रहता है (अतः तुम दुःख का अनुभव न करो) ॥ ४२७ ॥

सखी नायिका को, मान स्थिर रखने की शिक्षा दे रही है—

मित्त्रैरालोच्य समं गुरु कृत्वा कदनमपि समारब्धः ।
अर्थः सतामिव हतो मुखवैलक्ष्येण मानोऽयम् ॥ ४२८ ॥

पदार्थ—मित्रैः समम्—मित्रो के साथ । विचार्य—विचार कर । गुरु—महत्तरम् । कदनम्—कलहमपि । कृत्वा—करके । आरब्धः—आरम्भ किया गया । सताम्—समीचीन, सज्जनो का । अर्थः—मामला, काम । इव—समान । अयं मानः—(तेरा) यह मान । मुखवैलक्ष्येण—मुख की अस्वाभाविकता से । हतः—विनष्टः ।

सरलार्थ—मित्रों के साथ विचार कर, महत्तर कलह भी करके आरम्भ किया गया सज्जनो का मामला अथवा काम, (उनके) मुख की अस्वाभाविकता के कारण (अन्यथा समझ लिये जाने से) नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सखियो के साथ विचार कर, महत्तर कलह भी करके आरम्भ किया गया तेरा मान, (तेरे) मुख वैलक्षण्य (आन्तरिक प्रसन्नतासूचक चिह्न अथवा प्रिय को समाहित करने आदि की चिन्ता से उत्पन्न मलिनता) से नष्ट हो जाता है (अतः कुछ समय तक तो मुख की स्वाभाविकता मान के अनुरूप बनाये रख) ।

अथवा नायक मानिनी नायिका से कह रहा है—

मित्रैः समम्—मित्रतुल्य (उपकारक) । कदनम्—(१) क्लेश, (२) कलह । मुखवैलक्ष्येण—(यह उचित नहीं है ऐसा सोचकर) दुःख की मुद्रा से । हतः—अनादरणीय ।

मित्र के समान उपकारक समझकर, महान् क्लेश भी उठाकर अर्जित किया धन, विवेकियों को दुःखद होने से अनादरणीय होता है; तथा मित्र के समान उपकारक समझ, कलहादि करके भी तूने जो मान किया है वह मुझे दुःखद होने से तू उसमें सादर मत बन—उसे छोड़ दे ॥ ४२८ ॥

लज्जावश, नायक के हाथ बढ़ाने पर, दूसरी ओर मुँह फेर लेने वाली नायिका से नायक कह रहा है—

मम रागिणो मनस्विनि करमर्पयतो ददासि पृष्ठमपि ।
यदि तदपि कमलबन्धोरिव मन्ये स्वस्य सौभाग्यम् ॥४२९॥

पदार्थ—हे मनस्विनि—प्रशस्त अन्तःकरण वाली ! मम, रागिणः—(१) अनुरागवतः, (२) लौहित्यवतः—(१) मुझ अनुरागी, (२) लोहित को । करम्—(१) हस्तम्, (२) किरणम् । समर्पयतः—देते हुये । पृष्ठमपि—पीठ भी । यदि ददासि—जो देती हो । तदपि—तो भी । कमलबन्धोः इव—सूर्य के समान । स्वस्य सौभाग्यम्—अपना सौभाग्य । मन्ये—समझता हूँ ।

सरलार्थ—जैसे रागी (लोहित) सूर्य जब अपना कर (किरण) ऊपर डालता है तो उसकी ओर (पृष्ठतः सेवयेदर्कम्—सूर्य का सेवन पीठ की ओर करना चाहिये—इस उक्ति के अनुसार) तुम पीठ कर लेती हो, ठीक उसी तरह अनुरागवान् मैंने जब (कुचस्पर्श के लिये) कर (हाथ) बढ़ाया तो तुमने मेरी ओर पीठ कर दिया, तथापि (इतने से भी) मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ (क्योंकि इस प्रकार तुमने चोली के बन्द खोलने का मुझे अवसर प्रदान किया) ॥ ४२९ ॥

नायक सखा से रजस्वला का वृत्त बता रहा है—

मा स्पृश मामिति सकुपितमिव भणितं व्यञ्जिता न च व्रीडा ।
आलिङ्गितया सस्मितमुक्तमनाचार किं कुरुषे ॥ ४३० ॥

पदार्थ—मां मा स्पृश—मुझे स्पर्श न करो । इति सकुपितमिव भणितम्—ऐसा सकोप सी उसने कहा । व्रीडा च न व्यञ्जिता—और लज्जा व्यक्त नहीं की । आलिङ्गितया—आलिङ्गित उसने । सस्मितम्—मुस्कराहट के साथ । उक्तम्—कहा । अनाचार !—आचारहीन ! किं कुरुषे—यह क्या कर रहे हो ?

सरलार्थ—(आलिङ्गन करते समय) मुझे स्पर्श न करो—ऐसा मिथ्या कोप-युक्त वचन उसने कहा; किन्तु आलिङ्गन कर लेने पर मुस्कराती हुई बोली कि हे आचारहीन, यह क्या रहे हो ? (कामिनियों को सर्वदा रत में सुख मिलता है) ॥ ४३० ॥

मुहल्ले की कुलटाओ के प्रीति-पात्र उपजीवियों को, लम्पट पुरुष से प्राप्त द्रव्य के गर्व से अपने यहाँ से निकालती स्त्री से कोई स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

मूलानि च निचुलानां हृदयानि च कूलवसतिकुलटानाम् ।
मुदिरमदिराप्रमत्ता गोदावरि किं विदारयसि ॥ ४३१ ॥

पदार्थ—गोदावरि—गां ददाति (गो + दा + वनिप्—ङीप्, नस्य रः)—(१) नदीविशेष, (२) तन्नाम्नी स्त्री का सम्बोधन। मुदिरमदिराप्रमत्ता—मुदिरः (१—मेघः, २—लम्पटपुरुषः) तद्रूपा या मदिरा तया प्रमत्ता—(१) मेघरूप, (२) लम्पट पुरुष रूप मद्य से प्रमत्त। निचुलानां—तटस्थवृक्षाणाम्, मूलानि—तटस्थ वृक्षो के मूल को। कूलवसतिकुलटानाम्—कूले वसतिः आवासः यासां तासां कुलटानाम्—तट पर बसने वाली कुलटाओं के। हृदयानि च—हृदयो को। किं विदारयसि—क्यो विदीर्ण कर रही है ?

सरलार्थ—हे गोदावरि ! मेघरूप मद्य से प्रमत्त तू तटस्थ वृक्षो के मूल को तथा (उनकी छाया में सुख लूटने वाली) कुलटाओ के हृदयों को क्यो विदीर्ण कर रही है (नाम से तो तू गोदावरी—गोदान करने वाली—है, फिर यह अधर्म आचरण क्यो कर रही है !) ।

(कुछ विद्वान् तटस्थ वृक्ष और कुलटाओ में सम्बन्ध का कारण, वृक्षों का सकेतस्थल होना मानते है परन्तु प्रस्तुत पक्ष में कोई पुरुष कुलटा का संकेतस्थल कैसे होगा—यह विचारणीय है) ॥ ४३१ ॥

अनाचारप्रविष्ट किसी गुणशाली व्यक्ति से कोई कह रहा है—

मलयद्रुमसाराणामिव धीराणां गुणप्रकर्षोऽपि ।
जडसमयनिपतितानामनादरायैव न गुणाय ॥ ४३२ ॥

पदार्थ—जडसमयनिपतितानाम्—जडस्य समये आचारे निपतितानाम्—(१) मूर्ख के आचार में पतित, मूर्ख का सा आचार करने वाला, (२) शीतकाल में प्राप्त। 'समयाः शपथाचार'—इत्यमरः । मलयद्रुमसाराणाम् इव—चन्दनसार की भाँति। धीराणाम्—धीर व्यक्तियों का। गुणप्रकर्षः—गुणानां (१—पाण्डित्यादीनाम्, २—सौगन्ध्यादीनाम्)प्रकर्षः—पाण्डित्य आदि,

सौगन्ध्यादि गुणों का आधिक्य। अनादराय एव—अनादर के लिये ही। न गुणाय—गुण के लिये नहीं होता।

सरलार्थ—मूर्ख का आचार करने वाले धीर व्यक्तियों का गुणाधिक्य, शीतकाल में प्राप्त चन्दन के सौगन्ध्यादि गुण की भाँति अनादर के लिए ही होता है, गुण के लिये नहीं ॥ ४३२ ॥

किसी विशिष्ट नायिका से अपनी समता करती किसी स्त्री से एक स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

मधुमथनमौलिमाले सखि तुलयसि तुलसि किं मुधा राधाम्।
यत्तव पदमदसीयं सुरभयितुं सौरभोद्भेदः ॥ ४३३ ॥

पदार्थ—मधुमथनमौलिमाले!—मधुमथनस्य श्रीकृष्णस्य मौलेः माले—श्रीकृष्ण के मस्तक पर माला रूप। सखि! तुलसि!—तुलसी नाम्नी सखी का सम्बोधन। राधाम्—राधा को। वृथा—बेकार। किम्—क्यों। तुलयसि—अपने समान समझती है। यत्—क्योंकि। तव सौरभोद्भेदः—तेरा परिमलोद्रेक। अदसीयं पदम्—उसके चरण को। सुरभयितुम्—सुरभित करने को है।

सरलार्थ—श्रीकृष्ण के मस्तक पर मालारूप सखि तुलसि! तू राधा को अपने समान क्यों समझती है? क्योंकि (श्रीकृष्ण सर्वदा राधा के चरणों पर प्रणाम करते है अतः मस्तकमाला होने से) तेरे परिमल का उद्रेक राधा के चरण को सुरभित करने के लिये ही है (इस प्रकार जो गौरव उसे प्राप्त है, वह तुझे नहीं) ॥ ४३३ ॥

कोई, नायिका के विषय में सखा से कह रहा है—

मयि यास्यति कृत्वावधिदिनसंख्यं चुम्बनं तथाश्लेषम्।
प्रिययानुशोचिता सा तावत्सुरताक्षमा रजनी ॥ ४३४ ॥

पदार्थ—यास्यति मयि—जब मैं बाहर जाने वाला था। अवधिदिन-संख्यं—जितने दिन मुझे बाहर रहना था उतनी संख्या में। चुम्बनम् तथा आश्लेषम्—चुम्बन तथा आलिङ्गन कर। तावत् सुरताक्षमा—उतनी संख्या में सुरत-सम्पादन में असमर्थ। रजनी। तया—उसने। अनुशोचिता—जिस पर शोक किया गया।

सरलार्थ—जब मैं बाहर जा रहा था, प्रिया ने मेरे बाहर रहने के दिनो की संख्या के बराबर चुम्बन तथा आलिङ्गन कर, उतनी संख्या में सुरत का सम्पादन न कर सकने वाली रात पर खेद प्रकट किया ॥ ४३४ ॥

कोई वेश्या की प्रशंसा कर रहा है—

मृगमदनिदानमटवी कुङ्कुममपि कृषकवाटिका वहति ।
हट्टविलासिनि भवती परमेका पौरसर्वस्वम् ॥ ४३५ ॥

पदार्थ—अटवी—वन । मृगमदनिदानम्—कस्तूरी की उत्पत्ति का स्थान । कुङ्कुममपि—कुङ्कुम को । कृषकवाटिका वहति—किसान की वाटिका रखती है अर्थात् किसान की वाटिका में होता है । हे हट्टविलासिनि । भवती एका—केवल तुम । परम्—अत्यन्त । पौरसर्वस्वम्—पुर के लोगों का सर्वस्व हो ।

सरलार्थ—कस्तूरी वन में, कुङ्कुम किसान की वाटिका में होता है (अतः ये नागरिकों को साधारणतः स्पृहणीय होते हैं), हे वाराङ्गने ! एक तुम पुर के लोगो का परम सर्वस्व हो (नगरमात्र में वास होने से तुम नागरिकों को असाधारण स्पृहणीय हो) ॥ ४३५ ॥

वसन्त-काल में नायक के विना नहीं रहा जाता—ऐसा, नायिका सखी से कह रही है—

मधुदिवसेषु भ्राम्यन्यथा यथा विशति मानसं भ्रमरः ।
सखि लोहकण्टकनिभस्तथा तथा मदनविशिखोऽपि ॥४३६॥

पदार्थ—हे सखि ! मधुदिवसेषु—वसन्त समय में । भ्राम्यन्—घूमते हुए । यथा यथा—ज्यो ज्यो । लोहकण्टकनिभः—लोहे के काँटे के समान । मानसम्—मन में । भ्रमरः विशति—भ्रमर प्रविष्ट होता है । तथा तथा—त्यों त्यों । मदन-विशिखः अपि—कामदेव का बाण भी ।

सरलार्थ—हे सखि ! वसन्त के दिनो मे, लोहे के काँटे के समान भ्रमर ज्यो-ज्यो चित्त मे प्रविष्ट होता है, त्यो-त्यो कामदेव का बाण भी (अतएव किसी से मुझे मिलाओ) अथवा चित्त में ज्यो-ज्यों इधर-उधर मेरे लिये ही घूमता हुआ भ्रमर सा नायक प्रविष्ट होता है त्यो-त्यो लोहे के काँटे के समान (दुःखद) मदन-बाण भी हृदय में प्रविष्ट होता है (इसके दर्शन से मैं मदन शरपीडित हूँ, उसके विना मैं रह नहीं सकती, अतः शीघ्र मिलाओ) ॥ ४३६ ॥

नायक नायिका से कह रहा है—

मयि चलिते तव मुक्ता दृशः स्वभावात्प्रिये सपानीयाः ।
सत्यममूल्याः सद्यः प्रयान्ति मम हृदयहारत्वम् ॥ ४३७ ॥

पदार्थ—प्रिये ! मयि चलिते—प्रस्थिते—मेरे प्रस्थित होने पर । मुक्ताः—(१) त्यक्त, (२) मुक्ताफल । स्वभावात्—स्वभाव से । सपानीयाः—(१)

अश्रुजलवाली, (२) तेजोविशेषशालिनी । अमूल्याः—(१) उत्कृष्ट, (२) बहुतर द्रव्य से लभ्य। तव दृशः—तेरी दृष्टि। मम हृदयहारत्वम्—हृदयस्य (१—चित्त का, २—वक्षःस्थल का) हारत्वम्—(१) अपहारकत्व, (२) हारभाव। सद्यः प्रयान्ति—तत्काल प्राप्त होती हैं। सत्यम्—यह सत्य है।

सरलार्थ—हे प्रिये ! सत्य समझो। मेरे चलते समय तेरी मुक्त, स्वभावतः अश्रुजलवती उत्कृष्ट दृष्टि मेरे चित्त को हर लेती है जैसे विशेष चमकते अमूल्य मुक्ताफल, वक्षःस्थल का हार बन जाते हैं (तुम्हारे इस प्रकार विलोकन से मैंने अपना गमन स्थगित कर दिया) ॥ ४३७ ॥

मैं अत्यन्त मदनपीडित हूँ—ऐसा, नायक नायिका से कह रहा है—

मुग्धे मम मनसि शराः स्मरस्य पञ्चापि संततं लग्नाः ।
शङ्के स्तनगुटिकाद्वयमर्पितमेतेन तव हृदये ॥ ४३८ ॥

पदार्थ—हे मुग्धे ! स्मरस्य पञ्चापि शराः—कामदेव के पाँचो बाण। मम मनसि—मेरे मन में। संततं लग्नाः—निरन्तर लगे है। एतेन—इसने, कामदेव ने। तव हृदये—तेरे हृदय में। स्तनगुटिकाद्वयम्—स्तनरूप दो गोली। अर्पितम्—डाल दिया। शङ्के—मैं सोचता हूँ।

सरलार्थ—हे मुग्धे ! कामदेव के पाँचो बाण मेरे मन में निरन्तर लगे (मेरे मन को भली भाँति विद्ध किया और अभी तक निकले नही , उसके पास इस प्रकार बाणो का अभाव हो जाने से) उसने तेरे हृदय में दो गोलियो का प्रहार किया—वे गोलियाँ तुम्हारे वक्ष स्थल पर दिखायी पड़ते यही दोनो स्तन हैं (तभी तो गोली की वेदना स्वल्प होने से तुझमें धैर्य है, बाणों की वेदना अधिक होने से मुझमें धैर्य नहीं है) ॥ ४३८ ॥

नायिका (गोपी) श्रीकृष्णविषयक आसक्ति का कारण बताती हुई, सखी से कह रही है—

मधुमथनवदनविनिहितवंशीसुपिरानुसारिणो रागाः ।
हन्त हरन्ति मनो मम नलिकाविशिखाः स्मरस्येव ॥ ४३९ ॥

पदार्थ—मधुमथनवदनविनिहितवंशीसुपिरानुसारिणः—श्रीकृष्णमुखे विनिहिता धृता या वंशी तस्याः रन्ध्रानुसारिणः—श्रीकृष्णके अधर पर रक्खी मुरली के छिद्रो से निकले। रागाः—राग। स्मरस्य—कामदेव के। नलिका बाणाः इव—नलिका के बाण के समान। हन्त—खेद है। मम मनः हरन्ति—मेरे मन को हर लेते है।

सरलार्थ—खेद का विषय है कि श्रीकृष्ण के अधर पर रक्खी वंशी के छिद्र

से निकले राग नावक के तीरो की भाँति मेरे मन को हर लेते हैं, बेधते हैं (अतः उनसे मुझे शीघ्र मिलाओ) ॥ ४३९ ॥

इस दोनो मित्रो में जिसके प्रति तुम्हारा अनुराग हो, उसकी सङ्गति करो और एक की सङ्गति करने में दूसरे से भय है—यह शङ्का मत करो—ऐसा, दूती नायिका से कह रही है—

महतोः सुवृत्तयोः सखि हृदयग्रहयोग्ययोः समुच्छ्रितयोः ।
सज्जनयोः स्तनयोरिव निरन्तरं संगतं भवति ॥ ४४० ॥

पदार्थ—महतोः—(१) श्रेष्ठयोः अत एव परच्छिद्रप्रेषणदोषरहितयोः—श्रेष्ठ अतएव परच्छिद्रान्वेषणरूपदोषरहित, (२) महापरिमाणशालिनोः—महापरिमाण के । सुवृत्तयोः—(१) समीचीनाचरणयोः—समीचीन आचरण के, (२) समीचीन—वर्तुल । हे सखि ! हृदयग्रहयोग्ययोः—(१) चित्ते स्थापयितुं योग्ययोः—चित्त में बसाने योग्य अथवा आलिङ्गनयोग्य, (२) वक्षःस्थलस्थितिशालिनोः—वक्षःस्थल पर रहने वाले । समुच्छ्रितयोः—(१) उन्नतयोः नवीनयौवनभाग्योदयादिशालिनोः—उन्नत अर्थात् नवीन यौवन एवं भाग्योदय वाले, (२) नवीनोदयवतोः—नवीन उदय जिनका हो रहा है । सज्जनयोः—दो सज्जनो का । स्तनयोः इव—दो स्तनो का सा । संगतम्—साथ, मैत्री । निरन्तरम्—नास्ति अन्तरं यस्मिन् तत्—जिसमें अन्तर नहीं है, अविच्छिन्न, गहरा । भवति—होता है ।

सरलार्थ—श्रेष्ठ अतएव परच्छिद्रप्रेषणरूप दोष से रहित, समीचीन आचरण वाले, चित्त में बसाने योग्य अथवा आलिङ्गन योग्य, नवीन यौवन एवं भाग्योदय वाले दो सज्जनो का परस्पर साथ अथवा मैत्री ; महापरिमाणशाली, अच्छे गोल, वक्षःस्थल पर रहने वाले, नवीनोदय वाले दो स्तनो के साथ अथवा सङ्गति की भाँति अविच्छिन्न अथवा गहरी होती है (अतः दोनो में जिसके प्रति अनुराग हो उसकी संगति करो और दोनो मे किसी से भय मत करो) ॥ ४४० ॥

किसी नायिका में आसक्त नायक, अपने उपदेश देने वाले मित्र को समझा रहा है—

मम वारितस्य बहुभिर्भूयो भूयः स्वयं च भावयतः ।
जातो दिशीव तस्यां सखे न विनिवर्तते मोहः ॥ ४४१ ॥

पदार्थ—बहुभिः वारितस्य—अनेक विवेकशील और सुहृज्जनो से रोका गया । भूयो भूयः—बार-बार । स्वयं च भावयतः—स्वयं विचार करता । मम—मेरा । दिशि इव—जैसे दिशा में । तस्यां जातः मोहः—उसमे हो गया मोह (१—प्रीति, २—भ्रम) । न निवर्तते—नहीं दूर होता ।

सरलार्थ—अनेक विवेकशील और सुहृज्जनों से रोका गया, स्वयं भी मैंने बार-बार विचार किया किन्तु जैसे दिशा में हुआ मोह (भ्रम) दूर नहीं होता उसी प्रकार उस नायिका में हो गया मोह (प्रीति) दूर नहीं हो रहा है (जैसे दिग्भ्रम की निवृत्ति नहीं की जा सकती उसी प्रकार तद्‌विषयक मेरे अनुराग की भी निवृत्ति नहीं की जा सकती अतः तुम्हारा यह उपदेश कि उससे प्रीति छोड़ दो—व्यर्थ है) ॥ ४४१ ॥

पराङ्गनालम्पट अतएव स्वजनों से परित्यक्त किसी व्यक्ति के प्रति कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

मग्नोऽसि नर्मदाया रसे हृतो वीचिलोचनक्षेपैः ।
यद्युच्यसे तरुवर भ्रष्टो भ्रंशोऽपि ते श्लाघ्यः ॥ ४४२ ॥

पदार्थ—तरुवर !—तरुश्रेष्ठ ! नर्मदायाः—(१) नर्मदा नदी (यह नदी विन्ध्यगिरि से निकलकर खंभात की खाड़ी में गिरती है) के, (२) नर्म क्रीडाम् मनोरंजनं वा ददाति इति तस्याः—मनोरंजन देने वाली, कलाकलापवती के । वीचिलोचनक्षेपैः—(१) वीचयः एव लोचनक्षेपाः तैः—तरङ्गरूप कटाक्षों से, (२) वीचितुल्यैः लोचनक्षेपैः—तरंगो के समान कटाक्षों से । हृतः—आकृष्ट । रसे—(१) जले, (२) शृंगारादौ—(१) जल में, (२) शृंगारादि में । मग्नः असि—तू मग्न है । भ्रष्टः यद्युच्यसे—यदि तू भ्रष्ट कहा जाता है । ते भ्रंशः अपि—तेरा भ्रष्ट होना भी । श्लाघ्यः—प्रशंसनीय है ।

सरलार्थ—हे तरुवर ! नर्मदा नदी के तरङ्गरूप कटाक्षों से आकृष्ट तू जल में निमग्न है और लोग यदि तुझे भ्रष्ट (पतित) कहते हैं तो तेरा यह पतन भी श्लाघ्य है ।

(तरुणश्रेष्ठ, कलाकलापवती नायिका के, तरङ्गों के समान (चंचल) कटाक्षों से आकृष्ट तू शृंगारादि रस में मग्न है (अतएव लोकनिन्दा का ज्ञान नहीं रखता) । लोग तुझे पतित कहते है, (वास्तव में) तेरा यह पतन भी प्रशंसनीय ही है (यदि ऐसा निन्द्यकर्म भी किया जाय तो ऐसी ही नायिका के साथ) ॥ ४४२ ॥

पाणिग्रहण के अवसर पर सात्विक भावों के उदय हो जाने से सलज्ज व्यक्ति से कोई कह रहा है—

मेनामुल्लासयति स्मेरयति हरिं गिरिं च विमुखयति ।
कृतकरबन्धविलम्बः परिणयने गिरिशकरकम्पः ॥ ४४३ ॥

पदार्थ—परिणयने—विवाहकार्य में । कृतकरबन्धविलम्बः—कृतः करबन्धे

पाणिग्रहणे विलम्बः येन सः—जिससे पाणिग्रहण में विलम्ब हुआ। गिरिशकरकम्पः—गिरौ शेते इति गिरिशः तस्य करकम्पः—पर्वत पर सोते हैं अतएव गिरिश-संज्ञक शिवजी के कर का कम्पन। मेनाम्—पार्वतीमातरम्—मेनानाम्नीं पार्वती की माता को। उल्लासयति (स्म)—हर्षित करता था। हरिम्—विष्णुम्—विष्णु को। स्मेरयति—हँसाता था। गिरिम्—हिमालय को। विमुखयति—(लज्जा-वश) विमुख करता था।

सरलार्थ—(विवाह के अवसर पर सात्विकभाव का उदय होना स्वाभाविक है, ऐसा हो ही जाता है, इसमें लजाने की कोई बात नहीं, बड़े-बड़े लोगों की भी यह अवस्था हो जाती है) शंकर और पार्वती के विवाह के अवसर पर शंकर जी का कर कम्पित हो गया जिससे पाणिग्रहण में विलम्ब हो गया, उस सात्विक भाव का उदय देखकर पार्वती की माता मेना (कामोद्रेकयुक्त जामाता पाने से) प्रसन्न हो उठीं; श्रीविष्णुजी (अत्यन्त वैराग्यशाला की ऐसी अवस्था है—इस कौतुक से) मुस्कराने लगे; हिमालय ने (जामाता के इस भाव को देखना अनुचित है—इसलिये) उधर से मुख फेर लिया॥ ४४३॥

पथिक स्वगत कह रहा है—

मधुगन्धि घर्मतिम्यत्तिलकं स्खलदुक्ति घूर्णदरुणाक्षम्।
तस्याः कदाधरामृतमाननमवधूय पास्यामि॥ ४४४॥

पदार्थ—मधुगन्धि—मधुनः गन्धः अस्ति अस्येति मधुगन्धि—मद्य गन्ध वाला। घर्मतिम्यत्तिलकम्—घर्मेण प्रस्वेदेन तिम्यत् आर्द्रतां गच्छत् तिलकं यस्य तत्—प्रस्वेद से जिसका तिलक आर्द्र हो रहा है। स्खलदुक्ति—स्खलन्ती उक्तिः यस्य तत्—जिसका वचन अस्फुट है। घूर्णदरुणाक्षम्—घूर्णती अरुणे अक्षिणी यस्य तत्—जिसके नेत्र घूम रहे हैं। तस्याः—उसके। आननम्—मुख को। अवधूय—तिरस्कृत कर। अधरामृतम्—अधररूप अमृत को। कदा—कब। पास्यामि—पीऊँगा।

अथवा—अवधूय—कम्पयित्वा, स्थितायाः इति शेषः—मुख कँपाकर खड़ी नायिका का।

सरलार्थ—उस मनोवर्तिनी नायिका के मद्यगन्धवाले, प्रस्वेद से आर्द्र होते हुये तिलक वाले, अस्फुट वचन वाले, घूमते लाल नेत्र वाले मुख का तिरस्कार कर मैं उसके अधरामृत का कब पान करूँगा! अथवा एतादृश मुख को कँपाकर स्थित उसके अधरामृत का पान कब करूँगा॥ ४४४॥

बहुतों को प्रिय लगने वाली अतएव गर्विता नायिका के प्रति कोई स्त्री कह रही है—

मेदिन्यां तव निपतति न पदं बहुवल्लभेति गर्वेण ।
आश्लिष्य कैर्न तरुणैस्तुरीव वसनैर्विमुक्तासि ॥ ४४५ ॥

पदार्थ—बहुवल्लभा—मैं बहुतों की वल्लभा हूँ । इति गर्वेण—इस गर्व से । तव पदं—तेरा पैर । भूमौ न निपतति—भूमि पर नहीं पड़ रहा है । कैः तरुणैः—किन तरुणों ने । आश्लिष्य—आलिङ्गन कर । वसनैः—वस्त्र । तुरी इव—जैसे तुरी (जुलाहों का एक प्रकार का औजार जिससे बाने का सूत भरा जाता है) को । न विमुक्ता असि—तुझे नहीं छोड़ दिया ।

सरलार्थ—मैं बहुतों की वल्लभा हूँ इस गर्व से तेरा पैर भूमि पर नहीं पड़ रहा है । जैसे वस्त्र तुरी को वैसे ही किन तरुणों ने आलिङ्गन कर तुझे नहीं छोड़ दिया (तेरा गर्व करना उचित नहीं, अपितु जिस नायिका में कलाकलाप से आकृष्ट नायक निमग्न रहे, उसी नायिका को गर्व करना उचित है) ॥ ४४५ ॥

परपुरुषों में अनुराग उत्पन्न करने के लिये दूती नायिका से कह रही है—

मूले निसर्गमधुरं समर्पयन्तो रसं पुरो विरसाः ।
इक्षव इव परपुरुषा विविधेषु रसेषु विनिधेयाः ॥ ४४६ ॥

पदार्थ—मूले—आनन्दनिदाने, रहसि, सुरते इत्यर्थः—(१) सुरत में, (२) मूल में । निसर्गमधुरम्—स्वभाव से मधुर । रसम्—(१) रत्यादि, (२) ईख का रस । समर्पयन्तः—समर्पित करते हुए । पुरः—(१) लोगों के सामने, (२) अग्रभाग में । विरसाः—रसहीन । परपुरुषाः—परपुरुष । इक्षवः इव—ईख के समान । विविधेषु रसेषु—(१) विविध रतादि, (२) अनेकविध मधुर प्रकारादि में । विनिधेयाः—विशेषेण स्थाप्याः—विशेष रूप से स्थापित करने योग्य हैं ।

सरलार्थ—मूल (आनन्दनिदान सुरत) में स्वभावतः मधुर रत्यादि रस समर्पित करने वाले, (लोकभीति से) लोगों के सामने नीरस (बने) परपुरुष, मूल में मधुर, अग्रभाग में नीरस ईख की भाँति विविध रसों में स्थापित करने योग्य होते हैं (परपुरुष में अभिरुचि अत्यन्त उचित है) ।

अथवा कोई स्त्री परपुरुषविषयक अनुराग की निन्दा कर रही विविध—है रसों में स्थापित करने योग्य परपुरुष, ईख की भाँति प्रथमतः मूल में स्वभाव से मधुर रस प्रीत्यादि समर्पित करते, आगे विरस होते हैं ॥ ४४६ ॥

नायिका, सखी से नायक को अपमानित करने का कारण बता रही है—

महति स्नेहे निहितः कुसुमं बहु दत्तमर्चितो बहुशः ।
वक्रस्तदपि शनैश्चर इव सखि दुष्टग्रहो दयितः ॥ ४४७ ॥

पदार्थ—महति स्नेहे—(१) बहुतरे प्रेम्णि—बहुत अधिक प्रेम में, (२) तैले—अत्यधिक तैल में । निहितः—रक्खा । कुसुमम् बहु दत्तम्—बहुत बार फूल दिया । सखि ! तदपि—तो भी । दुष्टग्रहः—(१) दुष्टः ग्रहः आग्रहः यस्य—जिसका आग्रह दुष्ट है, (२) दुष्टश्चासौ ग्रहश्च—दुष्ट ग्रह । शनैश्चरः इव—शनैश्चर की भाँति । दयितः—नायकः । वक्रः—ऋजुः न—अनुकूल नहीं ।

सरलार्थ—जैसे दुष्ट ग्रह शनैश्चर की अनुकूलता के लिये उसकी प्रतिमा अत्यधिक तैल में स्थापित की जाती है, बहुत प्रकार से पूजा की जाती है, हे सखि, तदपि वह अनुकूल नहीं होता, उसी प्रकार नायक में बहुत प्रेम किया, बहुत प्रकार से सम्मान किया तदपि दुष्ट आग्रह वाला वह अनुकूल नहीं होता (अतः मेरा अपराध नहीं है) ॥ ४४७ ॥

नीच जनों से सेवित यौवनगर्विता तरुणी से अन्यस्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

मा शबरतरुणि पीवरवक्षोरुहयोर्भरेण भज गर्वम् ।
निर्मोकैरपि शोभा ययोर्भुजंगीभिरुन्मुक्तैः ॥ ४४८ ॥

पदार्थ—शबरतरुणि—शबर की पत्नी । पीवरवक्षोरुहयोः—पीवरौ वक्षोरुहौ स्तनौ तयोः—मांसल स्तनों के । भरेण—भार से । गर्वं मा भज—गर्व मत कर । भुजंगीभिः—(१) सर्पिणीभिः, (२) वेश्याभिः—(१) सर्पिणियों द्वारा, (२) वेश्याओं द्वारा । उन्मुक्तैः—परित्यक्तैः—छोड़े गये । निर्मोकैः—केंचुलों से । अपि—भी । ययोः शोभा—जिनकी शोभा है ।

सरलार्थ—हे शबर तरुणि ! मांसल उरोजों पर गर्व मत कर; जिनकी शोभा सर्पिणियों द्वारा त्यक्त केंचुलों से भी होती है (जिनकी शोभा वेश्याओं द्वारा त्यक्त सारहीन पुरुषों से भी होती है, अतः नीच व्यक्तियों से सेवित तुझे गर्व न करना चाहिये) ॥ ४४८ ॥

नायिका, सखी से मानभङ्ग का कारण बता रही है—

मम कुपितायाश्छायां भूमावालिङ्ग्य सखि मिलत्पुलकः ।
स्नेहमयत्वमनुज्झन्करोति किं नैष मामरुषम् ॥ ४४९ ॥

पदार्थ—हे सखि ! कुपितायाः मम—कुपित मेरी । छायाम् भूमौ आलिङ्ग्य—छाया को भूमि पर आलिङ्गित कर । मिलत्पुलकः—मिलन् पुलकः यस्य

सः—जिसे रोमाञ्च प्राप्त हो रहा है। स्नेहमयत्वम्—स्नेह की प्रचुरता को। अनुज्झन्—न त्यागता हुआ। एषः—यह प्रिय। किं—क्या। माम्—मुझे। अरुषम्—क्रोधरहिताम्—क्रोधरहित। न करोति अपि तु करोत्येव—नहीं करता है अर्थात् करता है।

सरलार्थ—हे सखि! कुपित मेरी छाया का भूमि पर आलिङ्गन कर रोमांच को प्राप्त हुआ, स्नेहमयता के भाव को न छोड़ता यह प्रिय मुझे कोपरहित क्या नहीं बना देता है अर्थात् बना देता है (उसका ऐसा आचरण देखकर मैंने मान परित्यक्त कर दिया)।

अथवा नायिका, जिसका मान कुछ शिथिल पड़ चुका है और नायक से मिलने को उत्कंठित हो रही है, सखी से कह रही है—कुपित मेरी छाया का भूमि पर आलिङ्गन कर, संजातरोमाञ्च, प्रीतिमयता को न छोड़ता यह, मुझे रोषरहित क्या नहीं करेगा?

('वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इससे भविष्यत्काल में भी लट्लकार है)। (हे सखि ऐसा करो जिससे वह मेरा अनुगमन करे) ॥ ४४९ ॥

कोई, सखा से कह रहा है—

मुषित इव क्षणविरहे रिपुरिव कुसुमेषुकेलिसङ्ग्रामे।
दास इव श्रमसमये भजन्नताङ्गीं न तृप्यामि ॥ ४५० ॥

पदार्थ—क्षणविरहे—क्षण भर के विरह में। मुषितः इव—हरा हुआ सा अर्थात् अविद्यमान सा। कुसुमेषुकेलिसङ्ग्रामे—कुसुमेषुः कामः तस्य केलिः एव सङ्ग्रामः तस्मिन्—कामकेलिसङ्ग्राम में। रिपुः इव—शत्रु सा। श्रम-समये—श्रम के समय में। दासः इव—दास की भाँति। नताङ्गीं—नतानि अङ्गानि यस्याः ताम्—जिसके अङ्ग नत हैं अर्थात् सुन्दरी को। भजन्—सेवित करता। न तृप्यामि—तृप्त नहीं होता हूँ।

सरलार्थ—उसके क्षण भर के भी विरह में (अपनी असहिष्णुता के कारण) अविद्यमान सा; कामकेलिसङ्ग्राम मे (कामकलाशालिता के कारण) शत्रु सा, श्रम के समय दास सा (तदाज्ञानुवर्ती) मैं उस सुन्दरी का सेवन करता, तृप्त नहीं होता हूँ ॥ ४५० ॥

अनुनय-विनय से मानवती का मान और बढ़ते ही रहने से खिन्नहृदय नायक के प्रति सखी कह रही है—

मुञ्चसि किं मानवतीं व्यवसायाद्द्विगुणमन्युवेगेति।
स्नेहभवः पयसाग्निः सान्त्वेन च रोष उन्मिषति ॥ ४५१ ॥

पदार्थ—व्यवसायात्—मान दूर करने के उद्योग से। द्विगुणमन्युवेगा—द्विगुणः मन्युवेगः कोपवेगः यस्याः सा—जिसका कोपवेग दूना हो गया। इति—इसलिये। मानवतीम्—मानिनी को। किं मुञ्चसि—क्यों छोड़ते हो? स्नेहभवः—(१) प्रीतिजन्यः, (२) तैलजन्यः। अग्निः—आग। पयसा—जलेन—जल से। उन्मिषति—अधिक होती है। सान्त्वेन—अनुनयेन—अनुनय से। रोषः—कोप। उन्मिषति—बढ़ता है।

सरलार्थ—मान दूर करने के लिये किये गये अनुनय-विनयादिरूप उद्योग से उसका कोपवेग दूना हो गया—इसी कारण से मानिनी को क्यों छोड़ते हो? (जानते नहीं हो) स्नेहजन्य (प्रीतिजन्य) कोप अनुनय से और स्नेहजन्य (तैलजन्य) आग, पानी से और बढ़ती है॥ ४५१॥

अन्य सन्तापों से मदनसन्ताप ही बढ़कर है—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

मलयजमपसार्य घनं वीजनविघ्नं विधाय बाहुभ्याम्।
स्मरसंतापादगणितनिदाघमालिङ्गते मिथुनम्॥ ४५२॥

पदार्थ—बाहुभ्याम्—हाथों से। मलयजम्—चन्दनम्—चन्दन को। अपसार्य—दूर कर। घनम् वीजनविघ्नं विधाय—पङ्खे का अत्यन्त विघ्न कर अर्थात् पङ्खा डुलाना बिल्कुल बन्द कर। स्मरसन्तापात्—मदनसन्तापवशात्—मदन के सन्तापवश। अगणितनिदाघम्—न गणितः निदाघः येन तत्—जिसने ग्रीष्मकालीन गर्मी का तिरस्कार किया। मिथुनम्—स्त्री-पुरुष का जोड़ा। आलिङ्गते—आलिङ्गन करता है।

सरलार्थ—हाथों से चन्दन दूर कर, पङ्खा डुलाना बिल्कुल बन्द कर, मदन-सन्तापवश स्त्री-पुरुष, ग्रीष्मकालीन गर्मी की परवाह न कर परस्पर आलिङ्गन करते हैं॥ ४५२॥

किसी की शरण में गया, परन्तु अरक्षित रहा व्यक्ति कह रहा है—

महतोऽपि हि विश्वासान्महाशया दधति नाल्पमपि लघवः।
संवृणुतेऽद्रीनुदधिर्निदाघनद्यो न भेकमपि॥ ४५३॥

पदार्थ—महाशयाः—(१) श्रेष्ठाः, (२) गभीराः—(१) श्रेष्ठ, (२) गभीर। विश्वासात्—विश्वास से। महतोऽपि हि दधति—महान् (१—श्रेष्ठ, २—महापरिमाण) को धारण करते है। लघवः—(१) नीच, (२) स्वल्पपरिमाणशाली। अल्पमपि—अल्प को भी। न दधति—नहीं स्थापित करते है। उदधिः—समुद्र। अद्रीन्—पर्वतान्—पर्वतों को। संवृणुते—गोपयति—रक्षित

करता है, छिपा लेता है। निदाघनद्यः—ग्रीष्मकाल की नदियाँ। भेकमपि—मण्डूक को भी। न गोपयन्ति—नहीं रख पाती हैं।

सरलार्थ—श्रेष्ठ पुरुष विश्वास से श्रेष्ठ को रख लेते हैं। लघु (नीच) छोटे को भी नहीं रख पाते हैं। गभीर समुद्र, महापरिमाणशाली बड़े पर्वतों को (समुद्र को मथने वाले मन्दराचल के सजातीय होने से पर्वतों की द्वेषवत्ता तथा पर्वतों के शत्रु इन्द्रजन्य भय की परवाह न कर) रख लेता है, किन्तु ग्रीष्मकालीन नदियाँ, (अपने ही आश्रित एवं शत्रुताभावशून्य) एक मेढक की भी रक्षा नहीं कर पातीं ॥ ४५३ ॥

मानारम्भ करती नायिका से नायक कह रहा है—

मधुधारेव न मुञ्चसि मानिनि रूक्षापि माधुरीं सहजाम् ।
कृतमुखभङ्गापि रसं ददासि मम सरिदिवाम्भोधेः ॥ ४५४ ॥

पदार्थ—हे मानिनि ! मधुधारा इव—मधुधारा के समान। रूक्षापि—रूखी भी, स्नेहाभाववती भी। सहजाम् माधुरीम्—स्वाभाविकी माधुरी को। न त्यजसि—नही छोड़ती हो। कृतमुखभङ्गा अपि—कृत मुखभङ्गः यया सा—मुख को जिसने वक्र कर लिया है। अम्भोधेः—जलधेः—समुद्र को। नदी इव—नदी के समान। मम—मुझे। रसम्—(१) प्रीति (२) जल। ददासि—देती हो।

सरलार्थ—हे मानिनि ! माक्षिक-मधुधारा के समान स्नेहाभाववती भी तुम स्वाभाविकी माधुरी को नहीं छोडती हो। मुख को वक्र किये भी तुम मुझे प्रीति देती हो, जैसे नदी समुद्र को जल देती है ॥ ४५४ ॥

सुरतोत्कण्ठित नायक, वीणा बजाती नायिका को, बजाना बन्द करने के लिये कह रहा है—

मदनाकृष्टधनुर्ज्याघातैरिव गृहिणि पथिकतरुणानाम् ।
वीणातन्त्रीक्वाणैः केषां न विकम्पते चेतः ॥ ४५५ ॥

पदार्थ—हे गृहिणि ! मदनाकृष्टधनुर्ज्याघातैरिव—मदनेन आकृष्टस्य धनुषः ज्याघातैः इव—कामदेव द्वारा आकृष्ट धनुष की प्रत्यंचा के प्रहारो के समान। वीणातन्त्रीक्वाणैः—वीणा के तारो के शब्दो से। केषां पथिकतरुणानाम्—किन पथिकतरुणो का। चेतः न विकम्पते—चित्त विकम्पित नही होता।

सरलार्थ—हे गृहिणि ! कामदेव द्वारा आकृष्ट धनुष की प्रत्यञ्चा के प्रहारों के समान, वीणा के तारों के शब्दो से किन पथिकतरुणो का चित्त विकम्पित

नहीं हो जाता अर्थात् सभी का चित्त विकम्पित हो जाता है (तेरा यह वीणा-वादन सुनकर पथिकों के प्राण चले जायेंगे अतः वीणावादन बन्द कर) ॥४५५॥

नायक सखा से कह रहा है—

मम भयमस्याः कोपो निर्वेदोऽस्या ममापि मन्दाक्षम् ।
जातं क्व चान्तरिक्षे स्मितसंवृतिनमितकंधरयोः ॥ ४५६ ॥

पदार्थ—क्व च अन्तरिक्षे—कहीं मार्ग के बीच। स्मितसंवृतिनमितकन्धरयोः—स्मितस्य संवृत्या संगोपनेन नमितौ कन्धरौ ययोः तयोः—मुस्कुराहट छिपाने के लिये जिनकी ग्रीवा झुकी है (हम दोनों में)। मम भयम्—मुझे भय। अस्याः कोपः—इसे कोप। अस्याः—इसे। निर्वेदः—आत्मग्लानि। ममापि—और मुझे। मन्दाक्षम्—लज्जा का भाव। जातम्—हुआ।

सरलार्थ—कहीं मार्ग के बीच (परस्पर दर्शन हो जाने से रात के अनुभूत विलास के स्मरण से जन्य) मुस्कुराहट को छिपाने के लिये झुकी ग्रीवा वाले हम दोनो (नायक-नायिका) में, मुझे (मैंने प्रेम को प्रकट कर देने वाला स्मित क्यो किया—यह सोचकर) भय हुआ। इसे (नायिका को) मुझ पर (इसने पहिले ऐसा अहितकारक स्मित क्यो किया—यह सोचकर) कोप हुआ। तदनन्तर इसे (नायिका को) (अति स्निग्ध ऐसे विदग्ध नायक पर मैंने कोप क्यो किया—यह सोचकर) आत्मग्लानि हुई और मुझे (मैं भी कैसा मूर्ख हूँ जो ऐसी नायिका को भी कुपित कर दिया—यह सोचकर) लज्जा का भाव हुआ ॥

नायक, अपने सखा से, एक नायिका में तनिक भी नहीं, दूसरी में अधिक आसक्ति रखने का कारण बता रहा है—

मुक्ताम्बरैव धावतु निपततु सहसा त्रिमार्गगा वास्तु ।
इयमेव नर्मदा मम वंशप्रभवानुरूपरसा ॥ ४५७ ॥

पदार्थ—मुक्ताम्बरा—(१) मुक्तम् अम्बरं वसनं, (२) मुक्तम् अम्बरम् आकाश यया सा—(१) जिसने वस्त्र मुक्त कर दिया, (२) जिसने आकाश छोड़ दिया। धावतु—दौड़े। निपततु—(चरणो पर, भूमि मे) गिरे। त्रिमार्गगा वा अस्तु—त्रिभिः मार्गैः गच्छति इति—(१) त्रिमार्ग (अनेक मार्ग) पर गमन करे, (२) स्वर्ग-मृत्यु-पाताल में गमन करे, अथवा त्रिमार्गगा (अनेकमार्गगामिनी) है। अतः अस्तु—तिष्ठतु इत्यर्थः—वह रहे, मुझे उससे प्रयोजन नहीं, वह मुझे सुखदा नहीं। वंशप्रभवा—(१) सत्कुल मे उत्पन्न, (२) वंश (वेणु) से उत्पन्न (नर्मदा को उत्पत्ति वेणु से है)। अनुरूप-रसा—अनुरूपः रसः (प्रीतिः, जलं) यस्याः सा—(१) अनुकूल प्रीतिमती,

(२) अनुकूल जल वाली। इयमेव—यही। मम—मुझे। नर्मदा—(१) सुखदा, (२) नदी विशेष का नाम, है।

सरलार्थ—आकाश को मुक्त कर दौड़ने वाली, भूमि पर गिरने वाली, आकाश-मृत्युलोक-पाताल तीनो लोक में गमन करने वाली गङ्गा की भाँति, चाहे वह वस्त्र छोड़कर दौड़े, चरणों पर गिरे, अनेकमार्गगामिनी बन जाय अथवा विविध प्रकार से अपनी आसक्ति प्रदर्शित करे किन्तु अनेकमार्गगामिनी होने के कारण, वह रहे, अर्थात् मुझे वह सुखदा नहीं है। सत्कुल में उत्पन्न, अनुकूल प्रीति(रति)मती यही, वंश (वेणु) से उत्पन्न, अनुकूल जल वाली नर्मदा-सी मुझे सुखदा है ॥ ४५७ ॥

अभिसार के समय नायिका को नीला परिधान धारण करने का निर्देश देती हुई दूती कह रही है—

मृगमदलेपनमेनं नीलनिचोलैव निशि निषेव त्वम् ।
कालिन्द्यामिन्दीवरमिन्दिन्दिरसुन्दरीव सखि ॥ ४५८ ॥

पदार्थ—हे सखि ! मृगमदलेपनम्—कस्तूरीलेपवन्तम्—अङ्ग में कस्तूरी का लेप किये। एनम्—नायक को। नीलनिचोला एव—नीलः निचोलः यस्याः सा, नीलवस्त्रा एव—नील परिधान धारण कर। निशि—रात में। त्वम् निषेव—तू सेवन कर। कालिन्द्याम्—यमुना में। इन्दीवरम्—नीलकमल को। इन्दिन्दिर-सुन्दरी इव—इन्दिन्दिरस्य भ्रमरस्य सुन्दरी भ्रमरी इव—जैसे भ्रमरी।

सरलार्थ—हे सखि ! कस्तूरी का लेप किये हुए नायक का, नील परिधान ही धारण कर रात में तू सेवन कर, जैसे कालिन्दो में नीलकमल का भ्रमरी उप-भोग करती है।

(नायक, रात्रि और तू तीनों का इस प्रकार एक वर्ण होने से कोई कुछ जान नहीं सकेगा) ॥ ४५८ ॥

सखी, किसी पथिक को नायिका से मिलने के लिए चातुर्यपूर्ण वचन से संकेत कर रही है—

मम सख्या नयनपथे मिलितः शक्तो न कश्चिदपि चलितुम् ।
पतितोऽसि पथिक विषमे घट्टकुटीयं कुसुमकेतोः ॥ ४५९ ॥

पदार्थ—हे पथिक ! मम सख्याः—मेरी सखी के। नयनपथे मिलितः—कटाक्ष का विषय बना हुआ। कश्चिदपि—कोई भी। चलितुं न शक्तः—जा नहीं सका। विषमे पतितः असि—तुम आपत्ति में पड़ गये हो। इयम्—यह। कुसुमकेतोः—कुसुमम् केतुः यस्य तस्य (मदनस्य)—जिसका केतु (पताका अथवा चिह्न) कुसुम है। घट्टकुटी—महसूल उगाहने की चौकी।

सरलार्थ—हे पथिक ! मेरी सखी के कटाक्ष जिस पर पड़ गये (आज तक) उनमें कोई जा नहीं सका (उसका सौन्दर्य देखकर कौन नहीं आसक्त हो गया) अतः तू आपत्ति में पड़ गया है। यह मदनराज की महसूल उगाहने की चौकी है (जैसे घट्टकुटी पर पहुँचकर विना कुछ दिये पथिक आगे नहीं जा पाता उसी प्रकार यहाँ जब आ गये हो तो कुछ देकर ही आगे जा सकोगे अतः तुम्हें यहाँ ठहर जाना चाहिये) ॥ ४५९ ॥

अपने अपराध के कारण भीत अतएव उदासीन नायक से नायिका की सखी कह रही है—

महता प्रियेण निर्मितमप्रियमपि सुभग सह्यतां याति ।
सुतसंभवेन यौवनविनाशनं न खलु खेदाय ॥ ४६० ॥

पदार्थ—महता प्रियेण—अत्यन्त प्रिय द्वारा। निर्मितम्—कृतम्—किया गया। अप्रियमपि—अप्रिय भी। सुभग ! सह्यतां याति—सह लिया जाता है, दुःखद नहीं होता। सुतसंभवेन—पुत्रोत्पत्ति से। यौवनविनाशनम्—तारुण्य का नाश। खेदाय न—खेद के लिये नहीं होता। खलु—निश्चितम्।

सरलार्थ—हे सुभग ! प्रिय से कुछ अप्रिय भी हो गया तो वह सह्य होता है—उससे दुःख नहीं होता। पुत्रोत्पत्ति से यौवन का विनाश होने पर खेद नहीं होता ऐसा निश्चित है।

(अतः तुम अन्यथा न सोचो, तुम भय छोड़कर उसके पास चलो) ॥४६०॥

नायक, नायिका की सखी से कह रहा है—

मानग्रहगुरुकोपादनु दयितात्येव रोचते मह्यम् ।
काञ्चनमयी विभूषा दाहाञ्चितशुद्धभावेव ॥ ४६१ ॥

पदार्थ—मानग्रहगुरुकोपादनु—मानग्रहेण गुरुः महान् यः कोपः तस्मादनु—मान अङ्गीकार करने से उत्पन्न महान् कोप के बाद। दयिता—प्रिया। मह्यम्—मुझे। अत्येव—अत्यन्त ही। रोचते—रुचती है। दाहाञ्चितशुद्धभावा—दाहेन अञ्चितः प्रकटितः शुद्धभावः यया सा—दाह से जिसने शुद्ध भाव प्रकट किया। काञ्चनमयी—सुवर्णनिर्मिता। विभूषा—विशिष्टभूषा इव—जैसे विशिष्ट भूषा।

सरलार्थ—मान करने से महान् कोप के बाद, प्रिया मुझे, अग्नि में तपकर शुद्धरूप सुवर्ण की विभूषा (भूषण) के समान सुन्दर लगती है (जैसे दाह से सुवर्ण-भूषण निर्मल हो जाता है वैसे ही मान के पश्चात् नायिका निर्मल हो जाती है) ॥ ४६१ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता मकारव्रज्या ।

यकारव्रज्या

दूती नायक से, तद्विषयक नायिका की आसक्ति का वर्णन कर रही है—

यूनः कण्टकविटपानिवाञ्चलग्राहिणस्त्यजन्ती सा ।
वन इव पुरेऽपि विचरति पुरुषं त्वामेव जानन्ती ॥ ४६२ ॥

पदार्थ—सा—नायिका । कण्टकविटपान् इव—काँटेदार वृक्षो की भाँति । अञ्चलग्राहिणः—अञ्चल पकड़ लेने वाले । यूनः—युवकों को । त्यजन्ती—त्याग करती । त्वामेव पुरुषम्—तुम्ही को केवल पुरुष जानती । वने इव—जैसे वन में । पुरेऽपि—नगर में भी । विचरति—विचरण करती है ।

सरलार्थ—जैसे वह वन में अञ्चल फँसा लेनेवाले कण्टक-वृक्षो को छोड़ती चलती है, उसी प्रकार नगर मे भी काँटेदार वृक्षों की भाँति अञ्चल पकड़ लेने वाले (स्पृहणीय) युवकों को (उनके स्वाभाविक बलात्कार का तिरस्कार कर) छोड़ती तुमको ही (मन्मथकलाकलापकुशल) पुरुष (दूसरों को स्त्रीतुल्य) समझती (सावधानी से) विचरती रहती है (सभी उसमें आसक्त हैं किन्तु वह तुममें ही आसक्त है) ॥ ४६२ ॥

कोई गुणी दरिद्र, किसी समुदाय में गया, वहाँ ठिकाना न पाकर उन लोगो से कहता है—

युष्मास्वुपगताः स्मो विबुधा वाङ्मात्रपाटवेन वयम् ।
अन्तर्भवति भवत्स्वपि नाभक्तस्तन्न विज्ञातम् ॥ ४६३ ॥

पदार्थ—विबुधाः— भोः पण्डिताः । वाङ्मात्रपाटवेन—पाण्डित्यमात्र के बल से । वयम्—हम । युष्मासु उपगताः—आप लोगों के पास आये । भवत्स्वपि—आप लोगो में भी । अभक्तः—अन्नरहितः—दरिद्र । न अन्तर्भवति—नहीं प्रवेश पाता । तत् न विज्ञातम्—वह ज्ञात नहीं था ।

सरलार्थ—पण्डित जन ! हम पाण्डित्य मात्र के बल से आप लोगो के पास आये थे (सोचा था कि आप सब पाण्डित्य-ग्राहक होंगे, क्योकि कहा गया है—'विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्') किन्तु आप लोगो में भी दरिद्र लीन नहीं हो सकता—प्रवेश नहीं पा सकता—हमें ज्ञात नहीं था ।

अथवा 'अभक्तः'—भक्तिरहितः (जो आपकी भक्ति अर्थात् सेवा नही कर सकता वह पाण्डित्यमात्र-शाली समावेश नहीं पा सकता) ॥ ४६३ ॥

नायक, नायिका के नैपुण्य की प्रशंसा कर रहा है—

यत्र न दूती यत्र स्निग्धा न दृशोऽपि निपुणया निहिताः ।
न गिरोऽप्यापि व्यक्तीकृतः स भावोऽनुरागेण ॥ ४६४ ॥

पदार्थ—यत्र न दूती (प्रेषिता)—जिसमें दूती नहीं भेजी गयी। स्निग्धाः—प्रेमार्द्राः, दृशः—कटाक्षाः अपि न निहिताः—प्रेमार्द्र कटाक्ष भी नहीं किये गए। गिरः अपि—वचन भी नहीं बोले गये। सः भावः अद्य—वह भाव आज। निपुणया—उस निपुण नायिका द्वारा। अनुरागेण—प्रीत्या, प्रीति से। व्यक्तीकृतः—व्यक्त किया गया।

सरलार्थ—निपुण नायिका ने अपने भाव को अनुकूल समय पर स्वयं अनुराग द्वारा प्रकट कर दिया। इस कार्य में न दूती, न स्निग्ध दृष्टि, न वाणी ही का उपयोग किया क्योंकि प्रिया के अनुराग में जैसी भावप्रकाशिका शक्ति निहित है, वैसी इन सबमें नहीं है।

कहीं-कहीं 'स भावोऽनुगमनेन' ऐसा पाठ मिलता है—उस नायक के मरने के बाद प्राण-परित्याग से ज्ञात हुआ कि यह उसमें आसक्त थी।

कहीं 'स जारोऽनुमरणेन' ऐसा पाठ मिलता है—नायिका के अनुसरण से ज्ञात हुआ कि वह मृत इसका जार था ॥ ४६४ ॥

सपत्नी के अधीन रहना बहुत निन्द्य है—ऐसा कोई स्त्री दूसरी से कह रही है—

या नीयते सपत्न्या प्रविश्य यावर्जिता भुजंगेन ।
यमुनाया इव तस्याः सखि मलिनं जीवनं मन्ये ॥ ४६५ ॥

पदार्थ—सपत्न्या—(१) सपत्नी के द्वारा, (२) गङ्गा के द्वारा। या नीयते—जो पति (समुद्र) के पास पहुँचायी जाती है। भुजंगेन—(१) जारेण, (२) सर्पेण—(१) जार द्वारा, (२) साँप द्वारा। प्रविश्य—प्रवेश कर। या—जो। आवर्जिता—स्वाधीनीकृता—स्वाधीन कर ली गयी। यमुनायाः इव—यमुना की भाँति। तस्याः जीवनम्—(१) उसका जीवन, (२) जल। हे सखि ! मलिनम्—(१) निन्द्यम्, (२) श्यामम्। मन्ये—मानती हूँ।

सरलार्थ—सपत्नी के द्वारा जो पति तक पहुँचती है, जार द्वारा प्रवेश कर स्वाधीन कर ली गयी, उसका जीवन हे सखि ! निन्द्य है, जैसे गङ्गा के द्वारा समुद्र तक पहुँचायी गयी, सर्प द्वारा प्रवेश कर स्वाधीन कर ली गयी यमुना का जल श्याम है। (नायिका को इस तरह रहना चाहिये जिससे घर में सर्वोच्च स्थान प्राप्त रहे) ऐसी मेरी मान्यता है ॥ ४६५ ॥

किसी नायक से मिलाने के लिये दूती, नायिका से नायक की प्रशंसा कर रही है—

यस्मिन्नयशोऽपि यशो ह्रीर्विघ्नो मान एव दौःशील्यम् ।
लघुता गुणज्ञता किं नवो युवा सखि न ते दृष्टः ॥ ४६६ ॥

पदार्थ—यस्मिन्—जिसके विषय में। अयशः अपि यशः—अयश भी यश है। ह्रीः—लज्जा। विघ्नः—विघ्न है। मानः एव—मान ही। दौःशील्यम्—दुःशीलता। लघुता। गुणज्ञता—गुणप्रवणता है। सखि! किम्—क्या। नवः युवा—वह नवयुवक! ते न दृष्टः—तेरे द्वारा नहीं देखा गया?

सरलार्थ—जिसके विषय में तेरी अपकीर्ति भी कीर्ति है, लज्जा विघ्न है, मान करना दुःशीलता है, लघुता दिखाना गुणप्रवणता है; ऐसा नव तरुण हे सखि! क्या तूने देखा है? (यदि नहीं तो इसके दर्शनार्थ शीघ्रता कर) ॥ ४६६ ॥

खलो द्वारा माहात्म्य प्रदर्शन किये जाने पर भी, उन पर विश्वास नहीं करना चाहिये—ऐसा कोई कह रहा है—

यद्वीक्ष्यते खलानां माहात्म्यं क्वापि दैवयोगेन।
काकानामिव शौक्ल्यं तदपि हि नचिरादनर्थाय ॥ ४६७ ॥

पदार्थ—दैवयोगेन—अदृष्टवश। क्वापि—कहीं। खलानाम्—दुष्टो का। यत्—जो। माहात्म्यं वीक्ष्यते—माहात्म्य दिखायी देता है। काकानां शौक्ल्यमिव—कौओ की शुक्लता, श्वेतता के समान। न चिरात्—शीघ्र। अनर्थाय—अनर्थ के लिये होता है।

सरलार्थ—यदि दैववश, कहीं दुष्टो का महत्त्व दिखायी देता है तो कौओ की श्वेतता के समान शीघ्र अनर्थकारी होता है (दुष्ट, सज्जनो का-सा स्वभाव प्रकट करते हैं, तो किसी अकार्य के उद्देश्य से ही) ॥ ४६७ ॥

खलों से ही प्रेम का विघटन होता है—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—

यत्खलु खलमुखहुतवहविनिहितमपि शुद्धिमेव परमेति।
तदनलशौचमिवांशुकमिह लोके दुर्लभं प्रेम ॥ ४६८ ॥

पदार्थ—यत्—जो। खलमुखहुतवहविनिहितम् अपि—खलानां मुखरूपो यो हुतवहोऽग्निः तत्र विनिहितमपि क्षिप्तमपि—दुष्टो के मुखरूप अग्नि मे पड़कर भी। शुद्धिम् एति—शुद्धता को प्राप्त होता है। तत्—वह। परम्—उत्कृष्ट। प्रेम। अनलशौचम्—अनले शौचं शुद्धिः यस्य तत्—जिसकी अग्नि में शुद्धि हुई हो। अंशुकम् इव—वस्त्र के समान। इह लोके—इस लोक में। दुर्लभम्—दुष्प्राप्य है।

सरलार्थ—जो दुष्टो के मुखरूप अग्नि में पड़कर भी शुद्ध रहे, वह उत्कृष्ट प्रेम (कौन जाने स्वर्गादि में होता होगा) इस लोक मे तो दुर्लभ है। (जैसे अग्नि मे पड़कर वस्त्र का विनाश ही होता है, उसी प्रकार खलो को

ज्ञात हो जाने पर प्रेम का विनाश अवश्य हो जाता है, अतः प्रेम इस ढंग से करना चाहिये कि दुष्टों को ज्ञात न हो सके)।

अथवा सच्चा प्रेम वही है, जिसका विघटन दुष्टों से भी न हो सके—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है। अग्नि में न जलने वाले दो वस्त्र हैं—ऐसा पुराणों में प्रसिद्ध है।

अथवा इन दोनों का प्रेम सच्चा है—ऐसी प्रशंसा जिस प्रेम की दुष्ट भी करे वही निश्चित उत्कृष्ट प्रेम है अतएव दुर्लभ है, अतः प्रेम इस ढंग से करे कि दुष्ट भी प्रशंसा करे—ऐसा एक स्त्री दूसरे से कह रही है ॥ ४६८ ॥

विदेश-प्रस्थान के स्थगन का कारण, नायक, सखा को बता रहा है—

यन्नावधिमर्थयते पाथेयार्थं ददाति सर्वस्वम् ।
तेनानयातिदारुणशङ्कामारोपितं चेतः ॥ ४६९ ॥

पदार्थ—यत्—जो। अवधिं न अर्थयते—कब लौटोगे, ऐसी अवधि को जानने के लिये नहीं कुछ कहती। पाथेयार्थम्—मार्गव्यय के लिये। सर्वस्वं ददाति—सब कुछ देती है। तेन—उससे। अनया—इस नायिका द्वारा। चेतः—चित्त। दारुणशङ्काम्—महत्तराशङ्काम्—बड़ी भारी आशङ्का को। आरोपितम्—प्रापितम्—प्राप्त करा दिया गया।

सरलार्थ—इसने (प्रस्थान के समय) मेरे लौटने की अवधि जानने की इच्छा नहीं की और जो मार्ग-व्यय के लिये सर्वस्व देने लगी उससे मेरा चित्त बहुत बड़ी शङ्का को प्राप्त हो गया (मेरे जाने के बाद अवश्य प्राण त्याग कर देगी, अतः मैंने प्रस्थान नही किया) ॥ ४६९ ॥

नायक, नायिका के जघन की प्रशंसा कर रहा है—

यूनामीर्ष्यावैरं वितन्वता तरुणि चक्ररुचिरेण ।
तव जघनेनाकुलिता निखिला पल्ली खलेनेव ॥ ४७० ॥

पदार्थ—हे तरुणि! यूनाम् ईर्ष्यावैरम्—युवकों में परस्पर ईर्ष्यावैर को। वितन्वता—विस्तारयता—बढ़ाते हुये। चक्रसुन्दरेण—(१) चक्रवत् सुन्दरेण—(गोल होने से) चक्र के समान सुन्दर, (२) चक्रेण समुदायेन सुन्दरः तेन—समुदाय से सुन्दर। तव जघनेन—तेरे जघन ने। खलेनेव—दुष्ट की भाँति। निखिला पल्ली—पूरी बस्ती को। आकुलिता—व्याकुल कर दिया। खलेनेव—खलेन—धान्यमर्दनस्थानेन—ऐसी भी व्याख्या की जा सकती है—इस पक्ष में 'चक्रसुन्दरेण'—का अर्थ 'चक्र के समान (गोल होने से) सुन्दर' होगा।

सरलार्थ—जैसे समुदाय से सुन्दर दुष्ट समस्त युवकों में ईर्ष्यावैर बढ़ाकर

सारी बस्ती को परेशान कर डालता है, अथवा गोलाकार सुन्दर धान्यमर्दन का स्थान (अहमहमिका से) युवकों में ईर्ष्यावैर बढ़ाकर सबको परेशान कर देता है उसी प्रकार चक्र के समान सुन्दर तेरा यह जघन, युवकों में (इसे प्राप्त करने की होड़ से) ईर्ष्यावैर बढ़ाकर सारी बस्ती को परेशान किये हुये है (सभी तुझमें आसक्त हैं) ॥ ४७० ॥

नायक और नायिका की मैत्री देखकर कोई कह रहा है—

यावज्जीवनभावी तुल्याशययोर्नितान्तनिर्भेदः ।
नदयोरिवैष युवयोः सङ्गो रसमधिकमावहतु ॥ ४७१ ॥

पदार्थ—यावज्जीवनभावी—(१) जीवन भर स्थित रहने वाला, (२) जब तक जल रहे तब तक स्थित रहने वाला । अत्यन्तनिर्भेदः—अत्यन्तं निर्गतः भेदः यस्मात् सः—जिससे भेदभाव बिल्कुल निकल गया है, अत्यन्त अभिन्न । तुल्याशययोः—तुल्यौ आशयौ ययोः तयोः—(१) जिनका अन्तःकरण समान है, (२) जिनकी गम्भीरता समान है । युवयोः—तुम दोनों का । नदयोः इव—नदश्च नदी च इति नदौ तयोः नदयोः इव—नद और नदी के समान । एषः सङ्गः—यह सङ्ग । अधिकम् रसम्—(१) अधिक प्रीति, (२) अधिक जल । आवहतु—रक्खे, दे ।

सरलार्थ—जीवन भर स्थित रहने वाला, अत्यन्त अभिन्न; तुल्य अन्तःकरण रखने वाले तुम दोनों का सङ्ग, समान गम्भीरताशाली नद और नदी के, जल के रहने तक स्थित तथा अत्यन्त अभिन्न सङ्ग की भाँति अधिक रस (प्रीति, जल) रखे—अधिक रसावह बने ॥ ४७१ ॥

नायक, सखा से मानिनी का वृत्त वर्णन कर रहा है—

यन्निहितां शेखरयसि मालां सा यातु शठ भवन्तमिति ।
प्रहरन्तीं शिरसि पदा स्मरामि तां गर्वगुरुकोपाम् ॥ ४७२ ॥

पदार्थ—यन्निहिताम्—यया निहिताम् दत्ताम्—जिसकी दी गयी । मालाम्—माला को । शेखरयसि—शिरोभूषण रूप में धारण कर रहे हो । शठ ! सा भवन्तं यातु—वह तेरे पास जाय । इति—ऐसा (कहकर) । शिरसि—सिर पर । पदा—चरणेन—चरण से । प्रहरन्तीम्—प्रहार करती । ताम्—उस । गर्वगुरुकोपाम्—गर्वेण गुरुः महत्तरः कोपः यस्याः ताम्—गर्व से महाकोप करने वाली को । स्मरामि—स्मरण करता हूँ ।

सरलार्थ—(मेरे मस्तक पर माला देखकर) जिसकी दी गयी माला को (इतना आदर देता है) सिर पर भूषणत्वेन धारण कर रहा है, हे शठ (अब)

वही तेरे पास जाय (मैं तो जाने से रही), ऐसा (कहकर) मेरे सिर पर चरणप्रहार करती, गर्व से महाकोप वाली उसको स्मरण करता हूँ (तत्काल चरणप्रहारादि से कोप का मार्जन कर सुरत का आनन्द देने वाली उस अनुपम नायिका में ही मेरी आसक्ति है) ॥ ४७२ ॥

कोई, हलिकवधू के चातुर्य का वर्णन, किसी से कर रहा है—

यौवनगुप्तिं पत्यौ बन्धुषु मुग्धत्वमार्जवं गुरुषु ।
कुर्वाणा हलिकवधूः प्रशस्यते व्याजतो युवभिः ॥ ४७३ ॥

पदार्थ—पत्यौ यौवनगुप्तिं कुर्वाणा—पति से यौवन के चिह्नों को छिपाती। बन्धुषु—बन्धुओ में। मुग्धत्वं कुर्वाणा—मुग्धा का भाव करती अर्थात् बन्धुओ के सामने भोली बनती। गुरुषु आर्जवम्—गुरुजन के सामने सरलता, सौम्यता करती। हलिकवधूः—हलिकस्त्री। तरुणैः—तरुण पुरुषो द्वारा। व्याजतः—बहाने से। प्रशस्यते—प्रशंसित होती है।

सरलार्थ—(पति उपभोग न करे, इस उद्देश्य से) अपने यौवन-चिह्नों को पति से छिपाती, (युवती जानकर बाहर न निकलने देगे—यह सोचकर) बन्धुओ के आगे भोली बनती, (सरल समझ लेने पर मेरी कुटिलता पर विश्वास न करेगे—यह सोचकर) गुरुजन के सामने सरलता प्रदर्शित करती हलिकस्त्री (जिससे इतने चातुर्य की आशा नहीं की जाती, अपनी चातुर्यशालिता से) युवकों द्वारा, किसी बहाने से (जिससे लोग जान न सके) प्रशंसित की जाती है ॥ ४७३ ॥

सखी, नायिका से उसकी गुणशालिता का वर्णन कर रही है—

यो न गुरुभिर्न मित्त्रैर्न विवेकेनापि नैव रिपुहसितैः ।
नियमितपूर्वः सुन्दरि स विनीतत्वं त्वया नीतः ॥ ४७४ ॥

पदार्थ—यः—जो। गुरुभिः—गुरुजन द्वारा। न—नहीं। न मित्त्रैः—न मित्रो द्वारा। न विवेकेन—न विवेक द्वारा। नैव रिपुहसितैः—न शत्रुओ के हँसने से। नियमितपूर्वः—पूर्वं नियमितः इति—पहले नियन्त्रित नही हुआ। सुन्दरि! सः—उसे। त्वया—तुमने। विनीतत्वं नीतः—विनीत बना दिया।

सरलार्थ—हे सुन्दरि! गुरुजन (जिनका वचन उल्लङ्घनीय नहीं होता) से, मित्रो (जिनका उपदेश प्रिय एवं मान्य होता है) से, विवेक (जिससे स्वभावतः दोष-परिहार होता है) से, शत्रुओ के हँसने (जो स्वभावतः दुःखद होता है) से भी, पहिले नियन्त्रित नहीं हुआ था, उसे, हे सुन्दरि तूने (अपने गुणो से) विनीत कर लिया (तेरे समान अन्य नायिकाएँ नहीं हैं) ॥४७४॥

किसी के आश्रय से संपत्तिशाली बने व्यक्ति से कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

यन्मूलमार्द्रमुदकैः कुसुमं प्रतिपर्व फलभरः परितः ।
द्रुम तन्माद्यसि वीचीपरिचयपरिणाममविचिन्त्य ॥ ४७५ ॥

पदार्थ—यत्—जो । उदकैः—जल से । मूलम्—मूल । आर्द्रम्—आर्द्र है । प्रतिपर्व—पर्वणि पर्वणि इति प्रतिपर्व—प्रत्येक काण्ड में । कुसुमानि—फूल हैं । परितः—सब ओर । फलभरः—फलाधिक्य है । द्रुम ! माद्यसि—उन्मत्तः भवसि—उन्माद को प्राप्त हो रहा है । तत्—वह । वीचीपरिचयपरिणामम् अविचिन्त्य—लहरो के सम्पर्क का परिणाम न सोचकर ।

सरलार्थ—जो जल से मूल आर्द्र है, प्रतिकाण्ड में पुष्प हैं, चारो ओर फलाधिक्य है और हे वृक्ष ! तुम उन्मत्त हो रहे हो, वह लहरों के सम्पर्क का परिणाम न सोचने से (कतिपय ही दिनों मे तुम निर्मूल हो जाओगे) ।

अथवा किसी दुष्ट नायिका की सङ्गति से सम्पत्ति प्राप्त कर उन्मत्त व्यक्ति से कोई कह रहा है—इसकी संगति से तुम्हारा अनिष्ट अवश्यंभावी है ॥ ४७५ ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

यस्याङ्के स्मरसंगरविश्रान्तिप्राञ्जला सखी स्वपिति ।
स वहतु गुणाभिमानं मदनधनुर्वल्लिचोल इव ॥ ४७६ ॥

पदार्थ—स्मरसंगरविश्रान्तिप्राञ्जला—स्मरसंगरस्य मदनयुद्धस्य या विश्रान्तिः विरामः तस्मिन् प्राञ्जला (१—प्रसन्ना, २—सरला)—कामयुद्ध के विराम होने पर प्रसन्न अथवा सरल । सखी—नायिका । यस्याङ्के—जिसके अङ्क में । स्वपिति—सोती है । सः—वह । मदनधनुर्वल्लिचोलः इव—मदनस्य या धनुर्वल्लिः तस्याः चोलः आच्छादनपटः इव—कामदेव की धनुर्लता के आच्छादनपट के समान । गुणाभिमानम्—(१) गुणानाम् कामकलाभिज्ञतादीनाम् अभिमानम्—कामकलाभिज्ञतादि गुणो का, (२) गुणानाम् तन्तूनाम् अभितः मानम् परिमाणम्—तन्तुओ के वृहत् परिमाण को । वहतु—अङ्गीकार करे ।

सरलार्थ—मदनयुद्ध के विराम पर प्रसन्न सखी (नायिका) जिसके अङ्क में सोती है वह कामदेव के युद्धविराम पर सीधी हुई उसकी धनुर्लता के आच्छादन पट के समान गुणाभिमान (१—कामकलासम्बन्धी गुणो का अभिमान, २—तन्तुओ का वृहत् परिमाण) रखे । (सुरत से इस प्रकार नायिका को आनन्द देने वाला ही गुणवान् है, अन्य पुरुष नहीं; अतः इस प्रकार के गुण की प्राप्ति का यत्न करो) ॥ ४७६ ॥

कोई कामकलावित्, नायिका से कह रहा है—

यदि दानगन्धमात्राद्वसन्ति सप्तच्छदेऽपि दन्तिन्यः ।
किमिति मदपङ्कमलिनां करी कपोलस्थलीं वहति ॥४७७॥

पदार्थ—यदि । दानगन्धमात्रात्—दानस्य मदोदकस्य यः गन्धः तादृशः इव गन्धमात्रात्—मदजल के गन्ध के समान ही गन्धमात्र से । सप्तच्छदेऽपि—सप्तच्छद (छतिवन नामक वृक्षविशेष) में भी । दन्तिन्यः—हथिनियाँ । वसन्ति—बसती है अर्थात् अनुराग रखती है । करी—गज । मदपङ्कमलिनाम्—मदपङ्केन मलिनाम्—मदपङ्क से मलिन । कपोलस्थलीम्—गण्डस्थली को । किमिति--क्यों । वहति—रखता है ।

सरलार्थ—यदि (गज के) मदजल के गन्ध के समान केवल गन्धमात्र के कारण ही हथिनियाँ सप्तच्छद (छतिवन) में अनुराग रखती है तो गज मदमलिन गण्डस्थली फिर क्यों रखता है ? (नायिका को आकृष्ट करने के लिये पुरुषार्थ अवश्य अपेक्षित है) ॥ ४७७ ॥

किसी नायिका का वृत्त, कोई कह रहा है—

यदवधि विवृद्धमात्रा विकसितकुसुमोत्करा शणश्रेणी ।
पीतांशुकप्रियेयं तदवधि पल्लीपतेः पुत्री ॥ ४७८ ॥

पदार्थ—यदवधि—जब तक । शणश्रेणी—सन की पंक्ति । विकसितकुसुमोत्करा—विकसितानां कुसुमानाम् उत्करः समूहः यस्याः सा—जिसके कुसुम-समूह विकसित हैं । विवृद्धमात्रा—संजातमात्रा । तदवधि—तब तक । पल्लीपतेः पुत्री--ग्रामाधिपति की पुत्री । इयम्—यह । पीतांशुकप्रिया--पीतम् अंशुकं प्रियं यस्याः सा—जिसे पीतवस्त्र प्रिय है ।

सरलार्थ—जब तक सन की पंक्ति के पुष्प विकसित वर्तमान हैं तब तक यह ग्रामाधिपति की पुत्री पीतवस्त्र धारण करने की अभिरुचि वाली है (जिससे सन के पीले पुष्पों में पीतवस्त्र धारण करने के कारण उसे दूसरे लोग जान न सकें और वह यथेच्छ अपने नायक से विहार कर सके) ॥ ४७८ ॥

सखी नायिका से उसके सौन्दर्यातिशय का वर्णन कर रही है—

यमुनातरङ्गतरलं न कुवलयं कुसुमलावि तव सुलभम् ।
यदि सौरभानुसारी झंकारी भ्रमति न भ्रमरः ॥ ४७९ ॥

पदार्थ—हे कुसुमलावि—कुसुमानि लुनाति इति—पुष्पों को तोड़ने वाली ! यदि । सौरभानुसारी—सुगन्ध का अनुसरण करने वाला । झंकारी—झंकार करने वाला । भ्रमरः । न भ्रमति—भ्रमण न करता । यमुनातरङ्गतरलम्—

यमुनायाः तरङ्गैः तरलम्—यमुना की लहरों से चञ्चल। कुवलयम्—नीलकमल। तव न सुलभम्—तुझे सुलभ नहीं।

सरलार्थ—हे पुष्पों का चयन करने वाली सखि! यदि सुगन्ध का अनुसरण करता एवम् झंकार करता भ्रमर चक्कर न लगाये तो (तेरे चपलतर नेत्रों के प्रतिबिम्ब से अभिन्न होने के कारण) तुझे नीलकमल (का अवचय करना) सुलभ न हो सके॥ ४७९॥

अपने द्वारा अत्यन्त लालित यदि सुख-दुःख का अनुभव नहीं करते, वे अत्यन्त मूढ हैं—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—

ये शिरसि विनिहिता अपि भवन्ति न सखे समानसुखदुःखाः।
चिकुरा इव ते बाला एव जडाः पाण्डुभावेऽपि॥ ४८०॥

पदार्थ—हे सखे! शिरसि विनिहिताः अपि—मस्तके निहिताः अपि, अत्यन्तं लालिताः अपि—(१) अत्यन्त लालित, (२) सिर पर धारण किये गये भी। ये—जो। समानसुख-दुःखाः—समानं सुखं दुःखं च येषां ते—लालन करने वाले के सुख को सुख और दुःख को दुःख समझने वाले। न भवन्ति—नहीं होते हैं। ते—वे पुरुष। चिकुराः इव—केशाः इव—केशों की भाँति। जडाः—मूढाः—मूढ। पाण्डुरभावेऽपि—वार्धकेऽपि—बुढ़ापे में भी। बालाः एव—बालक ही हैं।

सरलार्थ—अत्यन्त लालित पुरुष भी, सिर पर भी धारण किये गये केशों की भाँति, यदि लालन करने वाले के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी नहीं होते हैं तो वे पुरुष अत्यन्त मूढ, वृद्ध होते हुये भी बालक ही हैं (अतः उनके असद् व्यवहार से दुःख नहीं मानना चाहिये)॥ ४८०॥

इस कार्य के अयोग्य होते हुये भी इसे, स्वामी ने यह कार्य सौंप दिया—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—

यन्नियतनिर्गुणं यन्न वंशजं यच्च नित्यनिर्वाणम्।
किं कुर्मस्तन्निहितं धनुःपदे देवराजेन॥ ४८१॥

पदार्थ—यत्—जो। नियतनिर्गुणम्—(१) नियतं गुणेन मौर्व्या शून्यम्, (२) चातुर्यादिना शून्यम्—(१) मौर्वी (धनुष की डोरी) से रहित, (२) चातुर्यादिगुण से रहित। यत्—जो। न वंशजम्—वंशः (१—वेणुः, २—अन्वयः, सत्कुलम्) तत्र जातम्—न वेणु से उत्पन्न, न सत्कुल से उत्पन्न। यच्च—और जो। नित्यनिर्वाणम्—(१) नित्यविनाशि, (२) नित्यं निर्वाणम् विनाशः यस्मात्—जिससे नित्य विनाश होता है। तत्—वह। देवराजेन—

इन्द्र से । धनुःपदे—धनुष के स्थान पर । निहितम्—स्थापित किया गया । किं कुर्मः—हम उसमें क्या करे ।

सरलार्थ—जो मौर्वीरहित है, जो वेणु से उत्पन्न नहीं है और जो नित्य विनाशी है उसको इन्द्र ने धनुष के स्थान पर स्थापित किया है, इसमें हम क्या करे ? (जो गुणो से रहित है, जो सत्कुल से उत्पन्न नहीं हुआ और जिससे नित्य विनाश होता है, उसे स्वामी ने उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर स्थापित कर दिया है, इसमे हमारा अपराध नहीं है) ॥ ४८१ ॥

एक नायिका में आसक्त तथा दूसरी मे अनासक्त नायक से सखी कह रही है—

या दक्षिणा त्वमस्यामदक्षिणो दक्षिणस्त्वमितरस्याम् ।
जलधिरिव मध्यसंस्थो न वेलयोः सदृशमाचरसि ॥ ४८२ ॥

पदार्थ—या—जो । दक्षिणा—(१) अनुकूला, (२) दक्षिणदिक्संस्था—(१) अनुकूल, (२) दक्षिण दिशा मे स्थित । अस्याम्—इसमें । त्वम्—तू । अदक्षिणः—(१) अननुकूलः, (२) दक्षिणदिक्सस्थो न—(१) अनुकूल नहीं, (२) दक्षिण दिशा में स्थित नहीं । त्वम्—तू । इतरस्याम्—(१) दूसरी में, (२) उत्तरदिशा मे जो स्थित है उसमें । दक्षिणः—(१) अनुकूल, (२) दक्षिणदिशा में स्थित । मध्यसंस्थः—(१) समानपक्षपाती, (२) मध्यदेशस्थ । वेलयोः—(समुद्रतट की भूमि) दोनो वेला के । जलधिः इव—समुद्र की भाँति । सदृशम् न आचरसि—उचित आचरण नहीं कर रहा है ।

सरलार्थ—जैसे दोनो वेला (समुद्रतट की भूमि) के मध्यदेश में स्थित समुद्र, जो वेला दक्षिण दिशा मे स्थित है उससे दक्षिण नहीं स्थित रहता और जो वेला उत्तर दिशा में स्थित है उससे दक्षिण स्थित रहता है, उसी प्रकार तू जो नायिका तुझमें दक्षिण (अनुकूल) है तू उसमें अदक्षिण (अनुकूल नहीं) है । जो तुझमें दक्षिण (अनुकूल) नहीं उसमें तू दक्षिण (अनुकूल) है । तू यह उचित आचरण नहीं कर रहा है (वह तो जलधि, डकार और लकार में अभेद होने से जडधि है, अतः प्रतिकूल आचरण मूर्ख को उचित है, तुझ विज्ञ को ऐसा करना उचित नही) ॥ ४८२ ॥

यह नायक, विना उपभोग किये तुझे नहीं छोड़ेगा—ऐसा, सखी नायिका से कह रही है—

युगपज्जघनोरःस्तनपिधानमधुरे त्रपास्मितार्द्रमुखि ।
लोलाक्षि नैष पवनो विरमति तव वसनपरिवर्ती ॥ ४८३ ॥

पदार्थ—युगपज्जघनोरःस्तनपिधानमधुरे—युगपत् एककालं जघनं, उरः स्तनौ च एतेषां समाहारः जघनोरःस्तनम् तस्य पिधानेन आच्छादनेन मधुरा सुन्दरी तत्सम्बुद्धिः—एक ही समय में अर्थात् एकसाथ जघन, वक्षःस्थल और स्तनों को आच्छादित करने से सुन्दरी त्रपास्मितार्द्रमुखि—त्रपा लज्जा स्मितं च ताभ्याम् आर्द्रं स्निग्धं मुखं यस्याः तत्सम्बुद्धिः—लज्जा और मुस्कान से जिसका मुख स्निग्ध है। लोलाक्षि—लोले चञ्चले अक्षिणी यस्याः तत्सम्बुद्धिः—जिसके नेत्र चञ्चल हैं। तव—तेरा। वसनपरिवर्ती—वस्त्र का परिवर्तन कर देने वाला। एषः पवनः—यह पवन। न विरमति—विराम नहीं लेगा—रुकेगा नहीं। ('मधुरे' के स्थान पर 'विधुरे' पाठ भी मिलता है, वहाँ 'रहिता' यह अर्थ होगा)।

सरलार्थ—हे एक साथ जघन, वक्षःस्थल और स्तनों को ढकने से सुन्दरि! लज्जा और मुस्कान से आर्द्र (स्निग्ध) मुख वाली! चञ्चल नेत्रों वाली! यह पवन तेरे वस्त्र को बिना परिवर्तित किये (बिना हटाये) मानेगा नहीं—रुकेगा नहीं (अतः तेरा जघनादि को आच्छादित करना व्यर्थ है, तू आच्छादन हटाकर इसके साथ यथेच्छ रमण कर)॥ ४८३॥

अपकार करने वालों को भी यह शरण में ले लेता है—ऐसा कोई, किसी से कह रहा है—

यद्यपि बद्धः शैलैर्यद्यपि गिरिमथनमुषितसर्वस्वः।
तदपि परभीतभूधररक्षायां दीक्षितो जलधिः॥ ४८४॥

पदार्थ—यद्यपि। शैलैः—पर्वतों से। बद्धः—बाँधा गया। यद्यपि। गिरिमथनमुषितसर्वस्वः—गिरिकरणकमथनेन मुषितम् अपहृतं सर्वस्वं यस्य सः—पर्वत द्वारा मथने से जिसका सर्वस्व (चतुर्दश रत्न) अपहृत कर लिया गया। तदपि—तथापि। परभीतभूधररक्षायाम्—परः शत्रुः इन्द्रः तस्मात् भीताः ये भूधराः पर्वताः तेषां रक्षायाम्—इन्द्र से भीत पर्वतों की रक्षा में। जलधिः—समुद्रः। दीक्षितः—कृतनियमः—व्रत धारण किये हुये है।

सरलार्थ—यद्यपि पर्वतों से (ही) बाँधा गया, पर्वत रूप साधन से ही इसका मन्थन होने से इसका सर्वस्व (चतुर्दश रत्न) अपहृत कर लिया गया; तथापि शत्रु इन्द्र से भीत पर्वतों की रक्षा का, समुद्र व्रत लिये हुये है॥४८४॥

जहाँ जिस स्थिति में स्थित उसने तुझे देखा है, वह अभी तक वहीं उसी स्थिति में स्थित है—ऐसा, दूती नायिका से कह रही है—

यस्यां दिशि यस्य तरोर्यामेत्य शिखां यथोन्नतग्रीवम्।
दृष्टा सुधांशुलेखा निशां चकोरस्तथा नयति॥ ४८५॥

पदार्थ—यस्यां दिशि—जिस दिशा में। यस्य तरोः—जिस वृक्ष की। याम् शाखामेत्य—जिस शाखा पर आकर। उन्नतग्रीवम्—उन्नता ग्रीवा यस्मिन् कर्मणि—गरदन ऊँची कर। यथा—जिस प्रकार। सुधांशुलेखा—चन्द्रलेखा। दृष्टा—देखा। तथा—उसी प्रकार से। चकोरः। निशाम्—रात्रि। नयति—व्यतीत करता है।

सरलार्थ—चकोर ने जिस दिशा में, जिस वृक्ष की जिस शाखा पर आकर ग्रीवा ऊपर उठाकर जिस प्रकार से चन्द्रलेखा को देखा, उसी प्रकार से (स्थित) वह सारी रात व्यतीत कर रहा है (अतः तेरे अधीन जिसका जीवन है, ऐसे परमासक्त की उपेक्षा करना तुझे उचित नहीं है)॥ ४८५ ॥

संसार में अत्यन्त सरल नहीं बनना चाहिये—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

यत्रार्जवेन लघुता गरिमाणं यत्र वक्रता तनुते ।
छन्दःशास्त्र इवास्मिंल्लोके सरलः सखे किमसि ॥ ४८६ ॥

पदार्थ—यत्र—जहाँ। आर्जवेन—सरलता से। लघुता। यत्र। वक्रता—टेढ़ापन। गरिमाणं—गुरुता को। तनुते—बढ़ाती है। छन्दःशास्त्रे इव—जैसे छन्दःशास्त्र में। अस्मिन् लोके—इस संसार में। सखे! सरलः किमसि—सरल क्यों होता है?

सरलार्थ—जैसे छन्दःशास्त्र में (।) इस प्रकार की सरल रेखा लघु और (ऽ) इस प्रकार की वक्र रेखा गुरु का बोध कराती है उसी प्रकार इस संसार में सरल होने से लघुता और वक्र होने से गुरुता की वृद्धि होती है अतः हे सखे! सरल क्यों बनता है? ॥ ४८६ ॥

कोई किसी के अधिकारपद की निन्दा कर रहा है—

यन्नोपकारकं यन्न भूषणं यत्प्रकोपमातनुते ।
गुरुणापि तेन कार्यं पदेन किं श्लीपदेनेव ॥ ४८७ ॥

पदार्थ—यत्—जो। उपकारकं न—उपकारक नहीं। यत् भूषणं न—जो भूषण नहीं। यत्—जो। प्रकोपम्—प्रकृष्ट कोप को। आतनुते—बढ़ाता है। गुरुणाऽपि तेन पदेन—उस गुरु (महान् अथवा उच्च) पद से। श्लीपदेन पदेन इव—श्लीपद रोगविशेष वाले चरण जैसे। कि कार्यम्—क्या फल? अर्थात् कोई फल नहीं।

सरलार्थ—जो उपकारक नहीं, जिससे शोभा नहीं और जो प्रकोप ही बढ़ाता है, श्लीपद रोगविशेष वाले चरण के समान उस गुरु (उच्च) पद से कुछ भी फल नहीं (वही अधिकार का पद प्रशस्य है जो उपकारादि का सम्पादन करे)॥ ४८७ ॥

कोई, किसी से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

यूथपते तव कश्चिन्न हि मानस्यानुरूप इह विटपी ।
प्रेरय दिनं निदाघद्राघीयः क्व खलु ते छाया ॥ ४८८ ॥

पदार्थ—यूथपते ! तव—तेरे । हि—निश्चित । मानस्य—(१) परिमाण-विशेष के, (२) प्रतिष्ठा के । अनुरूपः—योग्य । कश्चित्—कोई । विटपी न—वृक्ष नहीं है । निदाघद्राघीयः—निदाघेन अतिदीर्घः—ग्रीष्म से अत्यन्त दीर्घ । दिनं प्रेरय—दिन बिताओ । खलु—निश्चयेन । तव छाया क्व—तेरे (आश्रय के लिये) उपयुक्त छाया कहाँ ?

सरलार्थ—हे यूथपते ! तेरे विशेष परिमाण के अनुरूप यहाँ कोई वृक्ष नहीं है, ग्रीष्मकालीन दीर्घ दिन (किसी प्रकार) व्यतीत कर । तेरे आश्रय के लिये उपयुक्त छाया यहाँ नहीं है (तुझ कुटुम्बपोषक का कोई आश्रय नहीं है, किसी प्रकार इस कठिनतर समय को व्यतीत कर) ॥ ४८८ ॥

यह संपद्विहीन भी दूसरों का उपकार करता है—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

यद्यपि चन्दनविटपी फलपुष्पविवर्जितः कृतो विधिना ।
निजवपुषैव तथापि हि स हरति संतापमपरेषाम् ॥४८९॥

पदार्थ—यद्यपि । चन्दनविटपी—चन्दनवृक्ष । विधिना—दैवेन ब्रह्मणा वा—दैव अथवा विधाता से । फलपुष्पविवर्जितः—फलपुष्परहित । कृतः—किया गया है । तथापि । हि—निश्चयेन । निजवपुषा एव—स्वशरीरमात्र से । अपरेषाम्—दूसरों के । सन्तापम्—सन्ताप को । सः—वह । हरति—दूर करता है ।

सरलार्थ—यद्यपि चन्दन वृक्ष को दैव अथवा विधाता ने फलपुष्परहित बनाया है; तथापि वह अपने शरीर मात्र से दूसरों के सन्ताप को दूर करता है (इसके समान और कोई नहीं है) ॥ ४८९ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता यकारव्रज्या ।

रकारव्रज्या

नायक के उत्कृष्ट गुणों से नायिका का उत्कर्ष बढ़ जाता है—ऐसा, सखी नायिका से कह रही है—

राज्याभिषेकसलिलक्षालितमौलेः कथासु कृष्णस्य ।
गर्वभरमन्थराक्षी पश्यति पदपङ्कजं राधा ॥ ४९० ॥

पदार्थ—राज्याभिषेकसलिलक्षालितमौलेः—राज्याभिषेकस्य सलिलेन क्षालितः मौलिः यस्य तस्य—राज्याभिषेक के जल से जिसका मस्तक धुल गया। कृष्णस्य—कृष्ण की। कथासु—वार्ता होने पर। गर्वभरमन्थराक्षी—गर्वस्य भरेण आधिक्येन मन्थरे निश्चले नेत्रे यस्याः सा—गर्वाधिक्य से जिसके नेत्र निश्चल हैं। राधा। पदपङ्कजम्—(अपने) चरणकमल को। पश्यति—देखती है।

सरलार्थ—राज्याभिषेक के जल से क्षालितमस्तक वाले कृष्ण की (प्रशंसात्मक) चर्चा चलने पर, गर्वाधिक्य से निश्चल नेत्र वाली राधा (ऐसे भी श्रीकृष्ण मेरे चरणों पर मस्तक रख देते हैं अतः मेरे चरण सर्वोत्कृष्ट हैं—ऐसा सोच कर) अपने चरणकमल को देखती है ॥ ४९० ॥

नायिका के बिना अवस्थिति सुखद नहीं होती—ऐसा कोई कह रहा है—

रतिकलहकुपितकान्ताकरचिकुराकर्षमुदितगृहनाथम् ।
भवति भवनं तदन्यत्प्राग्वंशः पर्णशाला वा ॥ ४९१ ॥

पदार्थ—रतिकलहकुपितकान्ताकरचिकुराकर्षमुदितगृहनाथम्—रतिकलहे कुपितया कान्तया कराभ्यां यः चिकुराणाम् केशानाम् आकर्षः आकर्षणम् तेन मुदितः गृहनाथः यत्र तत्—रतिकलह में कुपित कान्ता के द्वारा हाथों से केशों के खींचे जाने से जहाँ गृहस्वामी मुदित है। तद्—वह (वनादि भी)। भवनम—गृह है। अन्यत्—उससे भिन्न (बड़े-बड़े प्रासाद आदि)। प्राग्वंशः—यज्ञमण्डपविशेष, जिसके खम्भे पूर्व की ओर मुड़े हों अथवा वह कमरा जिसमें यज्ञकर्ता के मित्र और कुटुम्बी एकत्र हों। पर्णशाला वा—अथवा उटज है।

सरलार्थ—जहाँ रतिकलह में कुपित कान्ता के द्वारा हाथों से केशों के खींचे जाने से गृहस्वामी प्रसन्न रहे, वह वन भी भवन है; उससे भिन्न (बड़े-बड़े प्रासादादि भी) प्राग्वंश (यज्ञमण्डपविशेष जिसके खम्भे पूर्व की ओर मुड़े हों अथवा वह कमरा जिसमें यज्ञकर्ता के मित्र और कुटुम्बी एकत्र हों) अथवा पर्णशाला है ॥ ४९१ ॥

नायिका वैद्य से कह रही है—

रोगी राजायत इति जनवादं सत्यमद्य कलयामि ।
आरोग्यपूर्वकं त्वयि तल्पप्रान्तागते सुभग ॥ ४९२ ॥

पदार्थ—सुभग। त्वयि तल्पप्रान्तागते—शय्या के पास तुम्हारे आने पर। रोगी—रोगवान्। राजायते—राजवत् आचरति—राजा के तुल्य आचरण करने लगता है। इति जनवादम्—इस लोकप्रवाद को। आरोग्यपूर्वकम् सत्यम्—आरोग्यपूर्वक सत्य। अद्य—आज। कलयामि—समझती हूँ।

सरलार्थ—हे सुभग ! शय्या के पास तुम्हारे आने पर रोगी राजा के तुल्य आचरण करने लगता है—स्वस्थ होकर पूर्ण शोभा को प्राप्त हो जाता है—(तुम्हारे विषय में प्रचलित) इस लोकप्रवाद को मैं आरोग्यपूर्वक सत्य आज समझ रही हूँ (इस प्रकार तुम्हारे दर्शन से आज मैं अत्यन्त सौभाग्यशालिनी बन गयी, अब मन्मथरोग रूप दुःख को दूर कर मुझे विशेष आनन्द दो) ॥४९२॥

नायक के प्रणिपात से मान दूर कर देने वाली नायिका, किसी सखी से अपनी असमर्थता प्रकट कर रही है—

रुद्धस्वरसप्रसरस्यालिभिरग्रे नतं प्रियं प्रति मे ।
स्रोतस इव निम्नं प्रति रागस्य द्विगुण आवेगः ॥४९३॥

पदार्थ—आलिभिः—सखियों से । रुद्धस्वरसप्रसरस्य—रुद्धः प्रतिषिद्धः स्वरसस्य (१—स्वाच्छन्द्यस्य, २—जलस्य) प्रसरः यस्य तस्य—जिसकी स्वच्छन्दता का प्रसार अथवा जल का प्रसार रोक दिया गया । अग्रे नतम्—आगे झुका । प्रियं प्रति—प्रिय के प्रति । मे—मम । रागस्य—प्रीति का । आवेगः—(१) आधिक्य, (२) वेग । निम्नं प्रति—नीचे की ओर । स्रोतसः इव—प्रवाह का सा । द्विगुणः—दूना हो जाता है ।

सरलार्थ—जैसे रोके गये जल-प्रसार वाले प्रवाह का वेग निम्नस्थल की ओर दूना हो जाता है उसी प्रकार सखियों द्वारा रोकी गयी स्वच्छन्दता वाले, मेरे अनुराग का आधिक्य, आगे नत प्रिय के प्रति दूना हो जाता है (जैसे निरुद्ध जल का प्रवाह अधिक वेग से चलता है उसी प्रकार सखियों से निषिद्ध मेरा, प्रिय के प्रति अधिक प्रेम हो जाता है अतः सखियों के वचन का उल्लङ्घन होने में मेरा अपराध नहीं है) ॥ ४९३ ॥

दरिद्र नायक की संगति करने वाली, रूपशालिनी नायिका से, अन्योक्ति द्वारा सखी कह रही है—

रूपमिदं कान्तिरसावयमुत्कर्षः सुवर्णरचनेयम् ।
दुर्गतमिलिता ललिते भ्रमसि प्रतिमन्दिरद्वारम् ॥ ४९४ ॥

पदार्थ—ललिते !—(१) ललिता देवी की प्रतिमा, ललिता देवी दुर्गा देवी का ही एक रूप है, आश्विनशुक्ला पंचमी को ललिता देवी का पूजन होता है, (२) सुन्दरी स्त्री । इदं रूपम्—यह रूप । असौ कान्तिः—यह कान्ति । अयम् उत्कर्षः—यह प्रसिद्धि । इयं सुवर्णरचना—(१) यह सोने से तुम्हारी रचना, (२) सुष्ठु वर्णरचना । दुर्गतमिलिता—दरिद्र भिक्षु की सहचारिणी । प्रतिमन्दिरद्वारम्—प्रत्येक गृह के द्वार पर । भ्रमसि—घूम रही है ।

सरलार्थ—ललिते (ललिता देवी की प्रतिमा) ! तेरा यह रूप, यह कान्ति और यह प्रसिद्धि तथा सोने से तेरी रचना। परन्तु तू भिक्षु के हाथ में पड़कर द्वार-द्वार मारी-मारी फिर रही है (तुझे रूपशालिनी होकर दरिद्र की संगति करना उचित नहीं है) ॥ ४९४ ॥

संकेतस्थल पर नायिका के न पहुँचने से निराश नायक, वहाँ वृक्ष के पत्तों से पत्तल बनाकर उसे हाथ में लिये, अपने जाने और लौटने की सूचना देने के लिये भिक्षुक वेश में नायिका के द्वार पर आया, इस अवसर पर नायिका के वृत्त का वर्णन एक स्त्री दूसरी से कर रही है—

रचिते निकुञ्जपत्त्रैर्भिक्षुकपात्रे ददाति सावज्ञम् ।
पर्युषितमपि सुतीक्ष्णश्वासकदुष्णं वधूरन्नम् ॥ ४९५ ॥

पदार्थ—निकुञ्जपत्त्रैः—निकुञ्ज (संकेतस्थल के वृक्ष-समूह) के पत्तो से। रचिते—बने। भिक्षुकस्य पात्रे—भिक्षुक के पात्र में। सावज्ञम्—अवज्ञासहित। वधूः। पर्युषितमपि अन्नम्—बासी भोजन अथवा सड़ा गला अन्न। सुतीक्ष्ण-श्वासकदुष्णम्—सुतीक्ष्णैः श्वासैः ईषत् उष्णम्—अत्यन्त तीक्ष्ण श्वासो से कुछ गरम। ददाति—देती है।

सरलार्थ—(संकेतस्थल पर नायिका के न पहुँचने से निराश, सूचित करने के लिये द्वार पर आये) भिक्षुक रूप नायक के (संकेतस्थल के) निकुंज-पत्रो से बने पात्र में (लोग रहस्य न जान सकें अतः) अवज्ञापूर्वक बासी भोजन को भी (अपने न पहुँचने के दुःख से) अत्यन्त उष्ण साँसो से कुछ उष्ण बनाकर वधू (नायिका) दे रही है ॥ ४९५ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

रक्षति न खलु निजस्थितिमलघुः स्थापयति नायकः स यथा ।
तिष्ठति तथैव तद्गुणविद्धेयं हारयष्टिरिव ॥ ४९६ ॥

पदार्थ—(यः) अलघुः—(१) श्रेष्ठः, (२) महान्। खलु—निश्चयेन। निजस्थितिं न रक्षति—चञ्चलता को नहीं छोड़ता है, यहाँ स्थिति शब्द अवस्था अथवा दशा अर्थ का वाचक है अर्थात् नायक की चंचलता। सः नायकः—वह नायक। यथा स्थापयति—जैसा रखता है। तथैव—उसी प्रकार। तद्गुण-विद्धा—तस्य गुणैः (१—चातुर्यादिभिः, २—गुणेन सूत्रेण) विद्धा (१—आसक्तिमती, २—ग्रथिता)—(१) गुणो से आसक्त, (२) सूत्र से गुँथी। इयम्—यह (तुम्हारी पड़ोसिन)। हारयष्टिः इव—हार की लड़ी की भाँति। तिष्ठति—रहती है।

सरलार्थ—जैसे हार की लड़ी, अपनी चञ्चलता न छोड़ने वाले मध्यमणि के द्वारा जैसे रक्खी जाती है उसी प्रकार उसके सूत्र से गुँथी रहती है, वैसे ही वह नायक जो अपनी चंचलता नहीं छोड़ता, इस तुम्हारी पड़ोसिन को जैसे रखता है वैसे ही यह उसके चातुर्यादि गुणों से उसमें आसक्त रहती है (वह अपने दुःशील को नहीं छोड़ता और यह उसमें आसक्त, उसी में मन लगाये समय बिताती है—तुम्हें ऐसा आचरण नहीं करना है) ।

(अथवा जैसे हारमध्यमणि के चञ्चल होते रहते भी हारलता चंचल नहीं होती है, उसी प्रकार नायक के गुणमात्र पर ध्यान देकर, उसकी चंचलता पर विचार न कर तुम्हें क्षोभरहित रहना चाहिये) ॥ ४९६ ॥

अन्य नायक की ओर से नायिका का आकर्षण दूर करने तथा पूर्व नायक की ओर आकृष्ट करने के लिये दूती नायिका से कह रही है—

राजसि कृशाङ्गि मङ्गलकलशी सहकारपल्लवेनेव ।
तेनैव चुम्बितमुखी प्रथमाविर्भूतरागेण ॥ ४९७ ॥

पदार्थ—हे कृशाङ्गि ! प्रथमाविर्भूतरागेण—प्रथमं कौमारप्रभृति आविर्भूतः रागः (१—प्रीतिः, २—लौहित्यम्) यस्य तेन—(१) जिसे कौमारावस्था से ही प्रीति है, (२) जिसमें आरम्भ से ही लौहित्य है । तेनैव—उसी नायक से । चुम्बितमुखी—चुम्बितं मुखं यस्याः सा चुम्बितमुखी—जिसका मुख चुम्बित है । सहकारपल्लवेन—आम के पल्लव से । मङ्गलकलशी इव—मङ्गलकलशी के समान । राजसि—राजिष्यसीत्यर्थः—शोभित होगी ।

सरलार्थ—हे कृशाङ्गि ! आरम्भ से ही लौहित्य वर्ण वाले आम्रपल्लव से संसृष्ट अग्रभाग वाली मङ्गलकलशी के समान तू, कौमारावस्था से ही प्रीति रखने वाले उसी (पूर्वानुभूत) नायक से चूमे गये मुख वाली (होकर) शोभा को प्राप्त होगी (अतः अन्यत्र मन लगाना उचित नहीं) ॥ ४९७ ॥

गुणवान् की सङ्गति करना उचित है—ऐसा, सखी नायिका से कह रही है—

रूपगुणहीनहार्या भवति लघुर्धूलिरनिलचपलेव ।
प्रथयति पृथुगुणनेया तरुणी तरणिरिव गरिमाणम् ॥ ४९८ ॥

पदार्थ—रूपगुणहीनहार्या—(१) हर्तुं योग्या हार्या, रूपेण गुणैश्च हीनः तेन हार्या—रूप और गुणों से हीन व्यक्ति के द्वारा वश में करने योग्य अर्थात् रूप-गुणहीन की संगति करने वाली, (२) रूपरूपो यो गुणः तेन हीनः, तेन हार्या—रूप-रूपी गुण से हीन द्वारा उड़ाने योग्य । तरुणी—नायिका ।

अनिलचपला—अनिलेन वायुना चपला चञ्चला—वायु से चञ्चल। धूलिः इव—धूलि के समान। लघुः भवति—लघु होती है। पृथुगुणनेया—पृथवः (१—असंख्याः, २—महत्तराः) गुणाः यस्य तेन नेया—असंख्य गुण वाले व्यक्ति से संगतिमती, (२) पृथुभिः गुणैः नेया—मोटे रस्से से ले जाने योग्य। तरणिः—नौका इव—नौका के समान। गरिमाणम्—गौरव को। प्रथयति—फैलाती है।

सरलार्थ—रूप-गुणहीन की संगति करने वाली तरुणी, रूप-रूपी गुण से हीन वायु द्वारा चंचल (उड़ायी जाती हुई) धूलि के समान लघु समझी जाती है और असंख्य गुणों से युक्त पुरुष की संगति करने वाली तरुणी, असंख्य तन्तुओं वाले मोटे रस्से से खींची जाने योग्य नौका की भाँति (अपने) गौरव को फैलाती है॥ ४९८॥

सखी, नायक को आश्वासन दे रही है—

रागे नवे विजृम्भति विरहक्रममन्दमन्दमन्दाक्षे।
सस्मितसलज्जमीक्षितमिदमिष्टं सिद्धमाचष्टे॥ ४९९॥

पदार्थ—विरहक्रममन्दमन्दमन्दाक्षे—विरहक्रमेण मन्दमन्दं मन्दाक्षं ह्रीर्यत्र तस्मिन्—विरहक्रम से मन्द-मन्द लज्जा है जिसमें। नवे रागे विजृम्भति सति—नूतन प्रीति के विचेष्टित होते रहने पर, सजीव होने के लक्षण प्रदर्शित करते रहने पर। इदम्—यह। सस्मितसलज्जम् ईक्षितम्—मुस्कान और लज्जा के साथ विलोकन। इष्टं सिद्धं कथयति—मनोरथ पूर्ण हुआ, ऐसा कह रहा है।

सरलार्थ—विरहक्रम से मन्द-मन्द लज्जा वाले, (अपने) सजीव होने के लक्षण प्रदर्शित करते हुए अभिनव अनुराग में, मुस्कान और लज्जा के साथ (नायिकाकर्तृक) विलोकन, मनोरथ सिद्ध है—ऐसी सूचना दे रहा है (शीघ्र ही इससे तेरी संगति होगी)॥ ४९९॥

कुपित नायिका से दूती कह रही है—

रोषोऽपि रसवतीनां न कर्कशो वा चिरानुबन्धी वा।
वर्षाणामुपलोऽपि हि सुस्निग्धः क्षणिककल्पश्च॥ ५००॥

पदार्थ—रसवतीनाम्—(१) शृङ्गारादिमतीनाम्, (२) जलवतीनाम्—(१) शृंगारादि रसवाली, (२) जलवाली। रोषः अपि—रोष भी। कर्कशो वा न—कठोर नहीं। चिरानुबन्धी (न) वा—चिरकाल तक अवस्थित न रहने वाला। वर्षाणाम् उपलोऽपि—वर्षा का पत्थर (ओला) भी। सुस्निग्धः—अत्यन्त कोमल। क्षणिककल्पश्च—और स्वल्प काल तक अवस्थित रहता है।

सरलार्थ—(शृंगारादि) रस संभृत नायिकाओं का रोष भी न कठोर

और न चिरस्थायी ही होता है। वर्षा का पत्थर (ओला) भी अत्यन्त कोमल और क्षणिक स्थायी होता है (अर्थान्तरन्यास अलंकार) ॥ ५०० ॥

जिस नायक के कारण इतना क्लेश है उसकी उपेक्षा कर देनी ही ठीक है—ऐसा कहती सखी से नायिका कह रही है—

रोदनमेतद्धन्यं सखि किं वहु मृत्युरपि समानर्घः।
स्वप्नेनेव हि विहितो नयनमनोहारिणा तेन ॥ ५०१ ॥

पदार्थ—नयनमनोहारिणा—(१) नयन और मन को अपने अधीन कर लेने वाला, (२) नयनव्यापारविशिष्ट मनोव्यापार का अभाव कर देने वाला। स्वप्नेन इव—स्वप्न के समान। तेन नायकेन—उस नायक द्वारा। विहितः—किया गया (लिङ्गविपरिणाम कर 'रोदन' के साथ भी इसका अन्वय होगा)। हे सखि ! एतद् रोदनम्—यह रोना। धन्यम्—सर्वोत्कृष्ट। किं वहु—अधिक क्या। मृत्युः अपि—मरण भी। मम—मेरा। अनर्घः—नास्ति अर्घः (मूल्यं) यस्य सः—अमूल्य अर्थात् समीचीन।

सरलार्थ—हे सखि ! नयन-व्यापार के साथ ही मनोव्यापार का अभाव कर देने वाले स्वप्न के समान नायक द्वारा विहित मेरा यह रोदन सर्वोत्कृष्ट है, अधिक क्या कहूँ, मेरा मरण भी (यदि हो जाता है) समीचीन है। (अतः मैं उसकी उपेक्षा करने में असमर्थ हूँ)। (स्वप्न में रोना आदि शुभ माना गया है) ॥ ५०१ ॥

नायिका सखी से रोष का परिणाम बताती हुई कह रही है—

रोषेणैव मया सखि वक्रोऽपि ग्रन्थिलोऽपि कठिनोऽपि।
ऋजुतामनीयतायं सद्यः स्वेदेन वंश इव ॥ ५०२ ॥

पदार्थ—हे सखि ! वक्रः अपि—(१) कुमार्गगामी, (२) टेढ़ा भी। ग्रन्थिलः अपि—(१) असत्यभाषी, (२) गाँठो वाला भी। कठिनः अपि—निष्ठुर एवं कठोर भी। अयं नायकः—यह नायक। मया—मेरे द्वारा। रोषेण एव—क्रोध से ही। सद्यः—तत्काल। ऋजुताम् अनीयत—सरल बना दिया गया। स्वेदेन—भाप से। वंशः इव—जैसे बाँस।

सरलार्थ—इस वक्र (कुमार्गगामी) ग्रन्थिल (असत्यवादी) निष्ठुर एवं कठोर भी नायक को हे सखि ! मैंने रोष से ही, भाप से जैसे टेढ़ा, गाँठदार एवं कठोर बाँस सीधा हो जाता है—सीधा एवं सरल बना दिया ॥ ५०२ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

रजनीमियमुपनेतुं पितृप्रसूः प्रथममुपतस्थे ।
रञ्जयति स्वयमिन्दुं कुनायकं दुष्टदूतीव ॥ ५०३ ॥

पदार्थ—इयं पितृप्रसूः—यह सायंकाल की संध्या । रजनीम् उपनेतुम्—रात्रि के पास पहुँचाने के लिये । इन्दुम् प्रथमम् उपतस्थे—पहिले चन्द्रमा के समीप लेने के लिये गयी । स्वयम् इन्दुम्—स्वयम् चन्द्र को । दुष्टदूती कुनायकम् इव—जैसे दुष्ट दूती दुष्ट नायक को । रञ्जयति—(१) रक्तरूपवान् , (२) अनुरागवान् बनाती है ।

सरलार्थ—यह सायंकालीन सन्ध्या, रजनी के समीप पहुँचाने के लिए पहिले चन्द्रमा को लेने गयी परन्तु वह स्वयम् चन्द्रमा को, दुष्टनायक को दुष्ट दूती की भाँति, रञ्जित (१—रक्तरूपवान् , २—अनुरागवान्) करने लगती है (जगद्वन्द्य सन्ध्या भी ऐसा अनुचित कार्य करती है तो अन्य स्त्रियों की क्या बात; अतः स्वयम् नायक का अनुनय करना चाहिये) ॥ ५०३ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता रकारव्रज्या ।

लकारव्रज्या

पराङ्गनालम्पट तथा अस्थिरस्वभाव नायक में आसक्त नायिका से सखी अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

लग्नासि कृष्णवर्त्मनि सुस्निग्धे वर्ति हन्त दग्धासि ।
अयमखिलनयनसुभगो न भुक्तमुक्तां पुनः स्पृशति ॥ ५०४ ॥

पदार्थ—हे सुस्निग्धे—स्नेहशालिनि ! वर्ति ! कृष्णवर्त्मनि—(१) अग्नि में, (२) दुष्टमार्गशाली नायक में । लग्ना असि—(१) तत्सम्बन्धभागिनी, (२) आसक्तिमती हो चुकी हो । हन्त—खेद है । दग्धा असि—(१) जल रही हो, (२) दुःख भोग रही हो । अयम्—यह । अखिलनयनसुभगः—सबके नेत्रों को (१—प्रकाशमय होने से, २—सौन्दर्यादिगुणशाली होने से) स्पृहणीय । भुक्तमुक्ताम्—आदौ भुक्ता पश्चात् मुक्ता ताम्—भोगकर छोड़ दी गयी को । पुनः न स्पृशति—फिर स्पर्श भी नहीं करता ।

सरलार्थ—हे स्नेहशालिनि वर्ति (दीपक की बत्ती) ! अग्नि से सम्बन्ध स्थापित कर जल रही हो । खेद का विषय है । यह प्रकाशमय होने से सबके नेत्रों को स्पृहणीय है परन्तु भोगकर जिसे छोड़ दिया उसका पुनः स्पर्श भी नहीं करता ॥ ५०४ ॥

संपत्ति से गुण आते हैं और दारिद्रय से अवगुण, ऐसा कोई कह रहा है—

लक्ष्मीः शिक्षयति गुणानमून्पुनर्दुर्गतिर्विधूनयति ।
पूर्णो भवति सुवृत्तस्तुषाररुचिरपचये वक्रः ॥ ५०५ ॥

पदार्थ—लक्ष्मीः। गुणान्—गुणों को। शिक्षयति—सिखाती है। अमून्—इन गुणों को। पुनः दुर्गतिः—दारिद्रय। विधूनयति—दूर करता है। पूर्णः। तुषाररुचिः—तुषाराः शीतलाः रुचयः किरणाः यस्य सः (चन्द्रः)—जिसकी किरणे शीतल हैं। सुवृत्तः—सुन्दर गोल। अपचये—कलाओं के नष्ट हो जाने पर। वक्रः—कुटिल। भवति—होता है।

सरलार्थ—श्री गुणों को सिखाती है (श्री से मनुष्य में गुण आते हैं)। दारिद्रय गुणों को दूर कर देता है। (कलाओं से) पूर्ण चन्द्र सुवर्तुलाकार होता है और कला के विनाश से कुटिल हो जाता है ॥ ५०५ ॥

नायिका सखी से कह रही है—

लूतातन्तुनिरुद्धद्वारः शून्यालयः पतत्पतगः ।
पथिके तस्मिन्नञ्चलपिहितमुखो रोदितीव सखि ॥ ५०६ ॥

पदार्थ—हे सखि! लूतातन्तुनिरुद्धद्वारः—लूतायाः तन्तुभिः निरुद्धम् आच्छादितं द्वारं यस्य सः—जिसका द्वार मकड़ी के जालों से आच्छादित है। पतत्पतंगः—पतन्तः पतंगा यत्र—जहाँ पक्षी उड़ रहे हैं। शून्यालयः—सूना घर। तस्मिन् पथिके—विदेशस्थे सति—उस (नायक) के विदेश चले जाने पर। अञ्चलपिहितमुखः—अञ्चलेन वस्त्रेण पिहितम् आच्छादितं मुखं यस्य सः—वस्त्र से जिसका मुख आच्छादित है। रोदिति इव—मानो रो रहा है।

सरलार्थ—जिसका द्वार मकड़ी के जालों से आच्छादित है, जहाँ पक्षी उड़ रहे हैं, ऐसा सूना यह घर, उस (नायक) के विदेश चले जाने पर मानो वस्त्र से मुख ढाँक कर रो रहा है (अतः इसका रोदन निवारण करना बड़ा पुण्य-जनक होगा, उसके जाने के बाद यहाँ किसी से सङ्गति नहीं हुई; अतः अन्य नायक को लाओ) ॥ ५०६ ॥

सखा नायक से कह रहा है—

लग्नं जघने तस्याः सुविशाले कलितकरिकरक्रीडे ।
वप्रे सक्तं द्विपमिव श्रृङ्गारस्त्वां विभूषयति ॥ ५०७ ॥

पदार्थ—सुविशाले—समीचीन विस्तीर्णे। कलितकरिकरक्रीडे—कलिता अंगीकृता करिकरस्य ('तर्जन्यनामिके युक्ते मध्यमा स्याद् वहिष्कृता। करिहस्तः

समुद्दिष्टः कामशास्त्रविशारदैः ॥' इत्येतल्लक्षणलक्षितस्य) क्रीडा येन तस्मिन्— (१) जिसने कामशास्त्रोक्त 'करिहस्त' क्रीडा को अङ्गीकार किया है, (२) जिसने गज की सूँड की क्रीडा अङ्गीकार किया है। तस्याः जघने लग्नम् त्वाम्— उसके जघन में सक्त तुझे। श्रृङ्गारः। वप्रे—पर्वतशिखर की ढालू भूमि में। द्विपम् इव—गज की भाँति। विभूषयति—सुशोभित करता है। (यहाँ श्रृंगार शब्द के भी दो अर्थ है—१—मैथुन, २—हाथी के मस्तक पर बनाया गया सिन्दूर का निशान)।

सरलार्थ—अत्यन्त विस्तीर्ण, कामशास्त्रोक्त 'करिहस्त' की क्रीडा को अंगीकार करने वाले, उसके जघन में सक्त तुझे श्रृंगार (सुरत अथवा मैथुन) उसी प्रकार विशेष भूषित करता है जिस प्रकार अत्यन्त विस्तीर्ण और गज की सूँड की क्रीडा को अङ्गीकार करने वाले वप्र (पर्वत-शिखर की ढालू भूमि) में सक्त गज को श्रृंगार (उसके मस्तक में बनाया गया सिन्दूर का निशान) सुशोभित करता है ॥ ५०७ ॥

नायक ने नायिका का यो उपभोग किया कि किसी को भी ज्ञात नहीं हो सका—ऐसा, अन्योक्ति द्वारा एक सखी दूसरी से कह रही है—

लिप्तं न मुखं नाङ्गं न पक्षती न चरणाः परागेण ।
अस्पृशतेव नलिन्या विदग्धमधुपेन मधु पीतम् ॥ ५०८ ॥

पदार्थ—परागेण—पराग से। मुखं न लिप्तम्—मुख लिप्त नहीं किया। अङ्गं न—अङ्ग लिप्त नहीं किया। चरणाः न—चरणों को लिप्त नहीं किया। पक्षती न—पक्षयोः मूलं पक्षती—पंखों के मूल भाग को लिप्त नहीं किया। अस्पृशता इव—स्पर्श न करता हुआ सा। विदग्धमधुपेन—चतुर मधुप ने। नलिन्याः—कमलिनी के। मधु पीतम्—मधु को पिया।

सरलार्थ—पराग से मुख, अङ्ग, चरणों तथा पंखों के मूल भाग को लिप्त नहीं किया, स्पर्श न करते हुए से, चतुर मधुप ने कमलिनी का मधु-पान किया ॥ ५०८ ॥

नायक दूती से कह रहा है—

लग्नं जघने तस्याः शुष्यति नखलक्ष्म मानसं च मम ।
भुक्तमविशदमवेदनमिदमधिकसरागसाबाधम् ॥ ५०९ ॥

पदार्थ—तस्याः जघने—उसके जघन में। लग्नं नखलक्ष्म—लगा नख-चिह्न। मम मानसं च—और मेरा मानस। शुष्यति—सूखता है। भुक्तम्—वृद्धिशून्य। अविशदम्—अप्रकट। अवेदनम्—वेदनारहित। इदम्—मेरा

मानस। अधिकसरागसाबाधम्—अधिकम्—वृद्धिमान्, अर्थात् जघन में अत्यन्त आसक्त, सरागम्—प्रीतियुक्त, साबाधम्—पीडासहित।

सरलार्थ—उसके जघन मे लगा नखचिह्न और मेरा मानस, दोनों सूख रहे हैं; अन्तर केवल इतना है कि नखचिह्न भुक्त हो चुका है, अब उसके जघन में अधिक लग्न नही दिखाई देता और मेरा मानस अधिक अर्थात् वृद्धिमान्, उसके जघन मे अत्यन्त आसक्त है। नखचिह्न अब अविशद—चिरकालीन हो जाने से लाली दूर हो गयी और श्वेत पड गया अतः अप्रकट है जब कि मेरा मानस सराग (राग १—प्रीति, २—लौहित्य से संभृत) है। नखचिह्न वेदना-रहित किन्तु मेरा मानस सावाध—पीडासहित है (अतः जिससे शीघ्र सङ्गति हो, वैसा प्रयत्न करो) ॥ ५०९ ॥

सखी, नायिका को उपदेश दे रही है—

लज्जयितुमखिलगोपीनिपीतमनसं मधुद्विपं राधा।
अज्ञेव पृच्छति कथां शंभोर्दयितार्धतुष्टस्य ॥ ५१० ॥

पदार्थ—अखिलगोपीनिपीतमनसम्—अखिलगोपीनां निपीतं मनः येन तम्—जिसने समग्र गोपियो के मन को अपने अधीन कर लिया। मधुद्विपम्—मध्वरिम् श्रीकृष्णम्—मधुरिपु श्रीकृष्ण से। लज्जयितुम्—उनको लज्जित करने के लिये। राधा। अज्ञा इव—अनजान-सी। दयितार्धतुष्टस्य—दयितायाः अर्धेन—अर्धनारीश्वर होने के कारण प्रिया के अर्ध भाग से, तुष्टस्य—प्रसन्न, तृप्त। शम्भोः—शिव की। कथां पृच्छति—कथा पूछती है।

सरलार्थ—समग्र गोपियो के मन को अपने अधीन किये हुये श्रीकृष्ण से, उनको लज्जित करने के लिये, राधा अनजान-सी बनी, पार्वती के अर्ध भाग से तृप्त शंकरजी की कथा पूछती है। (सर्वदा कामबाधाशाली महादेव को केवल प्रिया के अर्धभाग से तुष्टि हो जाती है, किन्तु तुम इतने निर्लज्ज हो कि इतनी गोपियो से भी तुष्ट नही हो पाते। इस प्रकार अन्योक्ति से राधा ने जिस ढंग से श्रीकृष्ण का अनौचित्य उन्हें समझाया, उसी ढंग से तुम्हें भी अपने नायक से व्यवहार करना चाहिये)।

अथवा अखिलगोपीनिपीतमनसम्—अखिलगोपीभिः निपीतं मनः यस्य तम्—अखिल गोपियो ने मिलकर जिसके मन को अपने अधीन कर लिया। लज्जयितुम्—अर्थात् गोपीसमूह को लज्जित करने के लिये। प्रिया का अर्धभाग शिवजी को तुष्ट कर लेता है और तुम लोग (गोपियाँ) मिलकर श्रीकृष्ण के मन को अधीन बना पाती हो—यह तुम लोगो के लिये लज्जा का विषय है।

अथवा अखिलगोपीनां निपीतं मनः येन तम्—ऐसा पूर्वोक्त विग्रह करने से यह ध्वनित होता है कि तुम लोगों (गोपियों) के लिये लज्जा का विषय है कि पार्वती जी का अर्धभाग ही सर्वदा कामबाधाशाली शिव को सन्तुष्ट कर उनके मन को अपने अधीन कर लेता है और तुम सब मिलकर भी श्रीकृष्ण को अपने अधीन नहीं कर पाती हो, उल्टे तुम लोगों ने अपने को ही उनके अधीन कर दिया, अतः तुम सब सचमुच गोपी (गुणविहीन) ही हो ॥ ५१० ॥

सपत्नी का होना अत्यन्त असह्य है—ऐसा एक सखी दूसरी से कह रही है—

लक्ष्मीनिःश्वासानलपिण्डीकृतदुग्धजलधिसारभुजः ।
क्षीरनिधितीरसुदृशो यशांसि गायन्ति राधायाः ॥ ५११ ॥

पदार्थ—लक्ष्मीनिःश्वासानलपिण्डीकृतदुग्धजलधिसारभुजः—लक्ष्म्याः निःश्वासानलैः पिण्डीकृतः यः दुग्धजलधिः तस्य सारभुजः—लक्ष्मी के निःश्वासरूप अग्नि से गाढ़ा किये गये क्षीरसागर के सार भाग को खाने वाली। क्षीरनिधितीरसुदृशः—क्षीरसागर के तट पर बसने वाली सुन्दरियाँ । राधायाः यशं गायन्ति—राधा के यश को गाती हैं ।

सरलार्थ—(राधाविषयक विष्णु की अत्यन्त आसक्ति देखकर ईर्ष्या करती) लक्ष्मी के उष्ण निश्वासों की अग्नि से गाढ़ा बना दिये गये क्षीरसागर के सार भाग का भोजन करने वाली, क्षीरसागर के तट पर बसने वाली सुन्दरियाँ, (जिसकी कृपा से उन्हें ऐसा भोजन पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उस) राधा का यशोगान करती हैं (जब लक्ष्मी को भी सपत्नी का ऐसा दुःख है तो अन्य स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाय) ॥ ५११ ॥

नायक, अपनी नायिका के चातुर्य का वर्णन अपने सखा से कर रहा है—

लीलागारस्य बहिः सखीषु चरणातिथौ मयि प्रियया ।
प्रकटीकृतः प्रसादो दत्त्वा वातायने व्यजनम् ॥ ५१२ ॥

पदार्थ—लीलागारस्य—केलिसदन के। बहिः—बाहर। सखीषु (सतीषु)—सखियों के रहने पर। मयि चरणातिथौ—(नायिका के) चरणों पर मेरे प्रणत होने पर । अथवा सखीषु मयि चरणातिथौ (नायिका को मनाने के लिये सखियों को तैयार करने के निमित्त) सखियों के चरणों पर मेरे प्रणत होने पर। प्रियया—नायिका ने। वातायने व्यजनम् दत्त्वा—झरोखे में पङ्खा से आड़कर, परदा बना कर। प्रसादः प्रकटीकृतः—अनुग्रह एवं प्रसन्नता प्रकट की ।

सरलार्थ—सखियाँ केलिसदन से जब बाहर थीं, (एकान्त पाकर नायिका के) चरणों में मेरे प्रणत होने पर, प्रिया ने झरोखे में पङ्खे से परदा बना कर (अपना) अनुग्रह एवं प्रसन्नता प्रकट की (झरोखे से दूसरे लोग देख न सके— ऐसी स्थिति बनाकर यथेच्छ सुरत की अनुमति प्रदान की)।

अथवा (नायिका को मनाने के लिये सखियाँ तैयार हों—इस उद्देश्य से) केलिसदन के बाहर सखियों के चरणो में मेरे प्रणत होने पर (नायिका कुपित होकर झरोखे से फटकारेगी- अतः डरकर सखी-प्रसादना त्याग चला जायगा तो सखियों द्वारा मान परित्याग न कराये जाने से इसे (नायक को) दुःख होगा अतः यह यथेच्छ अबाध सखियों की प्रसादना कर ले और वे मुझसे (नायिका से) मान-परित्याग करा दे—ऐसा सोच कर) झरोखे में पंखा डालकर अपना अनुग्रह एवं प्रसन्नता उसने प्रकट की।

(ऐसा चातुर्य अन्य नायिकाओ में नहीं है) ॥ ५१२ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता लकारव्रज्या।

वकारव्रज्या

नायक ने बड़े चातुर्य से नायिका का उपभोग किया—ऐसा, प्रकारान्तर से सखी अन्य नायक से कह रही है—

वर्णहृतिर्न ललाटे न लुलितमङ्गं न चाधरे दंशः।
उत्पलमहारि वारि च न स्पृष्टमुपायचतुरेण ॥ ५१३ ॥

पदार्थ—ललाटे—ललाट में। वर्णहृतिः न—वर्णस्य मकरिकादेः हृतिः न—मकरिका आदि का वर्ण, माथे पर लगे तिलक का रंग नष्ट नही हुआ। न अङ्गं लुलितम्—न अङ्ग म्लान हुआ। अधरे दंशः अपि न—अधर पर दन्तक्षत भी नहीं हुआ। उपायचतुरेण—उपायनिपुण ने। उत्पलम् अहारि—कमल का हरण कर लिया। वारि च न स्पृष्टम्—जल का स्पर्श भी नहीं किया।

सरलार्थ—न तो ललाट में लगे तिलक का रंग नष्ट होने पाया, न अङ्ग ही म्लान होने पाया और न अधर पर दन्तक्षत ही हुआ (नायिका का उपभोग भी कर लिया), उस उपाय निपुण ने कमल का हरण भी कर लिया और जल का स्पर्श नहीं किया (तुममें भी यदि ऐसा ही चातुर्य हो तो परकीया के साथ रति करो, अन्यथा नहीं) ॥ ५१३ ॥

दूती पथिक से नायिका के दुःख का वर्णन कर रही है—

व्यालम्बिचूर्णकुन्तलचुम्बितनयनाञ्चले मुखे तस्याः।
बाष्पजलबिन्दवोऽलकमुक्ता इव पान्थ निपतन्ति ॥ ५१४ ॥

पदार्थ—हे पान्थ ! तस्याः मुखे—उसका मुख । व्यालम्बिचूर्णकुन्तल-चुम्बितनयनाञ्चले—व्यालम्बिनः विशेषेण आलम्बिनः ये चूर्णकुन्तलाः तैः चुम्बितः नयनयोः अञ्चलः यस्य तस्मिन्—विशेष लटकते हुये घुँघराले बालो से चुम्बित नयनप्रान्त वाला होने पर । बाष्पजलविन्दवः—आँसू की बूँदें । अलकमुक्ताः इव—अलक के मोतियों के समान । निपतन्ति—गिरते हैं ।

सरलार्थ—हे पान्थ ! उसके मुख का नयनप्रान्त, आगे की ओर विशेष लटकते हुए घुँघराले बालों से चुम्बित होने पर, आँसू की बूँदें, अलकों के मोतियों के समान गिर रहे है (अतः तुम्हें शीघ्र आना चाहिये) ॥ ५१४ ॥

अत्यन्त सौम्य होने के कारण नायिका को परपुरुष से विरत समझते हुये नायक से सखी अथवा उसका सखा कह रहा है—

विनयविनता दिनेऽसौ निशि मदनकलाविलासलसदङ्गी ।
निर्वाणज्वलितौषधिरिव निपुण प्रत्यभिज्ञेया ॥ ५१५ ॥

पदार्थ—हे निपुण ! असौ—नायिका । दिने—दिन मे । विनयविनता—विनयेन विनता नम्रा—विनय से नम्र । निशि—रात मे । मदनकलाविलास-लसदङ्गी—मदनकलायाः विलासैः लसन्ति अङ्गानि यस्याः सा—कामकला की क्रीडाओ से जिसके अङ्ग सुशोभित हैं । निर्वाणज्वलितौषधिः इव—(दिवा) निर्वाणा, (रात्रौ) ज्वलिता ओषधिः इव—दिन में बुझी (सौम्य) रात मे प्रज्वलित ओषधि के समान । प्रत्यभिज्ञेया—समझी जाने योग्य है । अथवा निपुणप्रत्यभिज्ञेया समस्त पद है । निपुणैः प्रत्यभिज्ञेया—निपुणो को ऐसा समझ लेना चाहिये· मूर्ख तो उसे सौम्य ही समझेंगे ।

सरलार्थ—हे ... के विषय मे निपुण ! जैसे ओषधि-विशेष दिन में बुझी (सौम्य) और र... प्रज्वलित होती है उसी प्रकार यह दिन में अत्यन्त सौम्य और रात में अपनी ... क्रीडाओं से सुशोभित अङ्गो वाली हो जाती है—ऐसा तुम्हारे को ... समझ लेना चाहिये (मूर्खों को ही सौम्य ज्ञात होगी, निपुणो को ... प्रसादो पसे तुम्हें विरत नहीं होना चाहिये) ॥ ५१५ ॥

सखी ... कारण निराश नायक को सान्त्वना देती हुई कह रही है— ... देखकर ... चर...

विहितव... बोधैर्यदसमातनुते ।
रागातिकाकु... रहसि पुनरेषा ॥ ५१६ ॥

पदार्थ—विहितब... सखीप्र... विहितं बहुमानेन मौनं यया सा—जिसने मानाधिक्य से मौन धारण ... किया । सखीप्रबोधैः—सखियो के समझाने-

बुझाने से। यत् अस्रम्—जो आँसू। आतनुते—विस्तारयति—विस्तृत करती है, आँसू बहाती है। एपा पुनः—यह। रहसि—एकान्ते—एकान्त में। रागार्तिकाकुयाच्ञालघुवीक्षा—रागे या आर्तिः काकुः वक्रोक्तिः, याच्ञा प्रार्थना तैः लघुः वीक्षः दर्शनं दृष्टिः वा यस्याः सा—राग जन्य पीडा, वक्रोक्ति, प्रार्थना आदि से जिसका दर्शन लघु है, जो हलकी, स्वस्थ दिखायी देती है।

इस छन्द में 'लघुवीक्षा' के स्थान पर अनेक पाठभेद हैं यथा (१) लघुरीक्ष्या—लघुः ईक्ष्या इति पदच्छेदः। ईक्ष्या—दृश्या। लघु दिखायी देगी। (२) लघुरीज्या—लघुः रीज्या (भर्त्सना, घृणा) यस्याः सा—उसकी भर्त्सना, घृणा कम हो जायगी। (३) लघुरीढा—लघुः ईढा (अपमानः, तिरस्कारः) यस्याः सा—उसका अपमान और तिरस्कार कम हो जायगा।

सरलार्थ—इसने मानाधिक्य के कारण अभी मौन धारण कर लिया है, सखियों के समझाने-बुझाने से आँसू की धारा बहाती है, परन्तु एकान्त में प्रीति-विषयक आर्ति, वक्रोक्ति, प्रार्थना आदि से हलकी एवं स्वस्थ दिखायी देगी। (रागजनित पीडादि से स्वयं हस्तगत होगी) ॥ ५१६ ॥

अपनी नायिका में अनासक्त नायक से सखी कह रही है—

विषमशरविशिखभिन्ना पल्ली शरणं यमेकमभिलषति।
तस्य तव च्छायेव स्वीया जायापि भयभूमिः ॥ ५१७ ॥

पदार्थ—विषमशरविशिखभिन्ना—विषमशरस्य मदनस्य विशिखेन बाणेन भिन्ना—कामदेव के बाणों से आहत। पल्ली—गाँव। लक्षणा से गाँव की सभी कामिनियाँ। यम् एकम् शरणम्—जिसे एकमात्र शरण। अभिलषति—चाहती है। तस्य तव—उस तुम्हारी। छायेव—छाया की भाँति। स्वीया जायापि—स्वाधीन स्वनायिका भी। भयभूमिः—भयस्थान है।

सरलार्थ—कामदेव के बाण से व्यथित बस्ती की सारी कामिनियाँ जिसको एकमात्र अपना रक्षणकर्ता चाहती हैं, एतादृश तुम्हें छाया की भाँति स्वाधीन स्वनायिका से भी भय लगता है (तुम्हारा ऐसा आचरण अनुचित है) ॥५१७॥

नायिका को अपने में आसक्त करने के लिये नायक का पराक्रमी होना आवश्यक है—ऐसा, कोई स्त्री किसी पुरुष से कह रही है—

विविधायुधव्रणार्बुदविषमे वक्षःस्थले प्रियतमस्य।
श्रीरपि वीरवधूरपि गर्वोत्पुलका सुखं स्वपिति ॥ ५१८ ॥

पदार्थ—विविधायुधव्रणार्बुदविषमे—विविधायुधानां ये व्रणाः तेषाम्—अर्बुदैः मांसकीलैः विषमे कठिने—नानाप्रकारक आयुधों के घावों के ठीक हो

जाने पर तज्जन्य मांसग्रन्थियों से कठोर। (घाव भर जाने पर उस जगह खुरदुरापन बना ही रहता है जो पहिले-सा मुलायम नहीं रहता) प्रियतमस्य वक्षःस्थले—नायक के वक्षःस्थल पर। गर्वोत्पुलका—गर्वेण उत्कृष्टः पुलकः यस्याः सा—गर्व से जिसे उत्कृष्ट पुलक है। श्रीरपि वीरवधूरपि—लक्ष्मी और वीरपत्नी। सुखं स्वपिति—सुख से सोती है।

सरलार्थ—नानाप्रकारक आयुधों के घावों के भर जाने से तज्जन्य मांसग्रन्थियों से कठोर प्रियतम के वक्षःस्थल पर अत्यन्त पुलकित होकर लक्ष्मी और वीरपत्नी सुख से सोती है ॥ ५१८ ॥

अन्य नायिका का उपभोग करने के अनन्तर, आकर नायिका के पृष्ठभाग की ओर चुपचाप सोये नायक से नायिका कह रही है—

वैमुख्येऽपि विमुक्ताः शरा इवान्याययोधिनो वितनोः।
भिन्दन्ति पृष्ठपतिताः प्रिय हृदयं मम तव श्वासाः ॥ ५१९ ॥

पदार्थ—हे प्रिय! अन्याययोधिनः—अन्यायेन युध्यते इति अन्याययोधी तस्य—अन्यायपूर्वक युद्ध करने वाला। वितनोः—(१) विगता नष्टा तनुः यस्य तस्य (मदनस्य)—जिसका शरीर नष्ट हो चुका है अर्थात् कामदेव का, (२) विशेषेण तनुः सुरतातिशयेन क्षीणशक्तिकः तस्य—सुरतातिशय से अत्यन्त क्षीण। वैमुख्येऽपि—(मेरे) मुँह फेर लेने पर भी, उसकी ओर पीठ दिखा देने पर भी। विमुक्ताः—विशेषेण मुक्ताः—बलपूर्वक छोड़े गये। शराः इव—बाणों के समान। पृष्ठपतिताः—पृष्ठे पतिताः—(मेरी) पीठ पर पड़े अथवा गिरे। तव श्वासाः—तेरे श्वास। मम हृदयं—मेरे हृदय को। भिन्दन्ति—वेधते हैं।

सरलार्थ—हे प्रिय! मेरे मुँह फेर लेने पर भी—पीठ दिखाने पर भी, अन्यायपूर्वक युद्ध करने वाले अनङ्ग के, बलपूर्वक छोड़े गये बाणों के समान, सुरतातिशय से क्षीण तेरे श्वास, मेरी पीठ में लग कर हृदय को वेधते हैं (तुझ अपराधी का यहाँ शयन मुझे सुखद नहीं है) ॥ ५१९ ॥

नायक, नायिका से कह रहा है—

व्यक्तमधुना समेतः खण्डो मदिराक्षि दशनवसने ते।
यन्नवसुधैकसारं लोभिनि तत्किमपि नाद्राक्षम् ॥ ५२० ॥

पदार्थ—(यहाँ कुछ पदों में विविध पदच्छेद हैं—व्यक्तमधुना—(१) व्यक्त+मधुना। (२) व्यक्तम्+अधुना। यन्नवसुधैकसारम्—(१) यत्+न+वसुधैकसारम्। (२) यत्+नवसुधैकसारम्) मदिराक्षि—मदिरे अक्षिणी यस्याः तत्सम्बुद्धिः—मद भरे नेत्र है जिसके। ते—तव। दशनवसने—ओष्ठे—

ओष्ठ में। समेतः—लग्नः—लगा। खण्डः—शर्करा। इति—अधुना—अत्र। व्यक्तम्—प्रकट हुआ। अथवा—व्यक्तं यत् मधु माक्षिकः तेन समेतः खण्डः (अस्ति)—स्वच्छ मधु (मक्खियों वाला) समेत शर्करा (है)। हे लोभिनि! नवसुधैकसारम्—नूतन सुधा का एक सार। यत्—जो। तत् किमपि—उस अपूर्व अथवा अनिर्वचनीय को। न अद्राक्षम्—नहीं देखा—आस्वादन नहीं किया। न अद्राक्षम्—वह द्राक्षाशून्य नहीं है। अथवा—यत् न वसुधैकसारम्—जो केवल वसुधा का ही एकसार नहीं अपितु त्रिभुवनसार है। अथ च जो अपूर्व वसुधा का एकसार है, तत् न, न अद्राक्षम् अर्थात् सभी को देखा।

सरलार्थ—

(१) हे मदिराक्षि! तेरे ओष्ठ पर शर्करा लग्न है यह अत्र व्यक्त हुआ (पहिले कुछ नहीं कहा था, अब मधुर वचन बोल रही हो); किन्तु जो (चुम्बन) नूतन सुधा का सार है, उस अपूर्व एवम् अनिर्वचनीय को मैंने नहीं देखा (केवल मधुर बोलती हो, कटाक्ष करती हो, किन्तु चुम्बनादि से मुझे जीवन नहीं प्रदान करती हो)।

(२) हे मदिराक्षि! तेरे अधर पर शर्करा लगी है—यह अत्र निश्चित जाना किन्तु हे लोभिनि! जो केवल वसुधा ही का नहीं, अपितु त्रिभुवन का सार है उस विलक्षण को अभी मैंने नहीं देखा (इस समय चुम्बन से अधर माधुर्य को जान सका किन्तु त्रिभुवनसारभूत सुरत से मुझे क्यों नहीं सुखी बनाती हो?)

(३) हे मदिराक्षि! तेरे अधर पर स्वच्छ मधु (माक्षिक) समेत शर्करा है—ऐसा इस समय जान पाया। जो नूतन सुधा का सार है वह अपूर्व, द्राक्षा-शून्य नहीं, इस प्रकार तुझमें वसुधा का कोई ऐसा सार नहीं जिसे नहीं देखा (नेत्रों में मदिरा, अधर पर मधु एवं शर्करा, सुरत में सुधा और द्राक्षा आदि मधुर वस्तुयें तुझमें हैं, परन्तु लोभ-वश तू कुछ देती है? कुछ नहीं देती—यह अनुचित है)॥ ५२०॥

मदन व्यथा से बढ़कर अन्य कोई व्यथा नहीं दुःखद है—ऐसा कोई कह रहा है—

वीजयतोरन्योन्यं यूनोर्वियुतानि सकलगात्राणि।
सन्मैत्रीव श्रोणी परं निदाघेऽपि न विघटिता॥ ५२१॥

पदार्थ—अन्योन्यं—परस्परम्। वीजयतोः—पंखा झलते हुए। यूनोः—युवा च युवतिश्च इति युवानौ तयोः—युवक और युवती के (एकशेष द्वन्द्व समास)।

सकलगात्राणि—सकल अवयव। वियुतानि—परस्पर विघटित हो गये। परम्—केवल। श्रोणी—कटि। सन्मैत्री इव—सन्मैत्री की भाँति। निदाघेऽपि—ग्रीष्मकाल में भी। न विघटिता—नहीं विघटित हुई।

सरलार्थ—एक दूसरे को पंखा झलते हुए युवक और युवती के (परस्पर संश्लिष्ट) शरीर के सकल अवयव विघटित हो गये। केवल दोनों की कटि ग्रीष्म काल में भी विघटित नहीं हुई, पूर्ववत् परस्पर आश्लिष्ट बनी रही; जैसे दो सज्जनों की जुड़ी मैत्री संकटकाल में भी पूर्ववत् जुड़ी ही रहती है—विघटित नहीं होती॥

उपपति को बाहर निकाल देने का निर्देश करती दूती, नायिका से, चातुर्यपूर्ण वचनों में कह रही है—

व्यारोपं मानिन्यास्तमो दिवः कासरं कलमभूमेः।
बद्धमलिं च नलिन्याः प्रभातसंध्यापसारयति॥ ५२२॥

पदार्थ—प्रभातसन्ध्या—प्रातःकालीन सन्ध्या। मानिन्याः—मानवती-सकाशात्—मानवती के पास से। व्यारोपम्—विशिष्ट कोप को। दिवः—आकाश से। तमः—अन्धकार को। कलमभूमेः—जडहन के खेत से। कासरम्—महिष को। नलिन्याः—कमलिनी से। बद्धम् अलिम्—कोष में बन्द भौंरे को। अपसारयति—हटा रही है।

सरलार्थ—प्रातःकालीन सन्ध्या, मानवती से (तत्कृत) विशिष्ट कोप को, आकाश से अन्धकार को, जड़हन के खेत से भैंसे को तथा कमलिनी के पास से (कोश में) बद्ध भ्रमर को हटा रही है (प्रातःकाल हो गया, अतः उपपति को उसके स्थान पर गुप्त ढंग से पहुँचा दो)॥ ५२२॥

नायिका के तारुण्य का आकर्षक वर्णन कर, प्रथम प्रिया से नायक का मन हटाने के उद्देश्य से, नायिका की सखी, नायक से कह रही है—

वक्षसि विजृम्भमाणे स्तनभिन्नं त्रुटति कञ्चुकं तस्याः।
पूर्वदयितानुरागस्तव हृदि न मनागपि त्रुटति॥ ५२३॥

पदार्थ—वक्षसि विजृम्भमाणे—वक्षःस्थल के (उभरे हुए स्तनो के कारण) ऊँचा होने से। स्तनभिन्नम्—स्तनाभ्यां भिन्नम्— स्तनो से विदीर्ण। तस्याः—उसका। कञ्चुकम्—चोली, अंगिया। त्रुटति—टूट जाता है। तव हृदि—तुम्हारे हृदय में। पूर्वदयितानुरागः—पूर्वदयितायाः अनुरागः—प्रथमप्रियासम्बन्धी अनुराग। मनागपि—तनिक भी। न त्रुटति—कम नहीं होता, नष्ट नहीं होता।

सरलार्थ—(तारुण्य के पूर्ण विकास में) वक्षःस्थल के ऊँचा होने से (छोटी पड़ गयी अतएव कसी हुई) उस (मेरी सखी) की चोली स्तनो से

विदीर्ण होकर टूट रही है किन्तु तुम्हारे हृदय में पूर्वप्रिया का अनुराग तनिक भी नहीं टूट रहा है—तद्विषयक अनुराग पूर्ववत् ही बना हुआ है। (यदि अब भी मेरी सखी में तुम्हारी आसक्ति न हुई तो तुम्हारे समान जड़ कोई नहीं) ॥ ५२३ ॥

नायिका की सखी, नायक से कह रही है—

व्यक्तिमवेक्ष्य तदन्यां तस्यामेवेति विदितमधुना तु ।
हर्म्यहरिमुखमिव त्वामुभयोः साधारणं वेद्मि ॥ ५२४ ॥

पदार्थ—तदन्याम्—उस नायिका से भिन्न। व्यक्तिम्—रमणी को। अवेक्ष्य—देख कर। तस्यामेव—उसी में (तुम आसक्त हो गये) इति—ऐसा। विदितम्—मैंने जाना। अधुना तु—और अब। हर्म्यहरिमुखमिव—हर्म्यस्य राजप्रासादसम्बन्धिनः हरेः सिंहस्य मुखमिव—राजप्रासाद के द्वार पर बने सिंहमुख के समान। त्वाम्—तुमको। उभयोः—दोनों नायिकाओं के विषय में। साधारणम् वेद्मि—साधारण समझती हूँ।

सरलार्थ—तुम बड़े अस्थिरप्रकृतिक हो (कुछ समय पहले) इस मेरी सखी से भिन्न अन्य रमणी को देख कर (इसका अनादर कर) उसी में तुम्हारी प्रीति हुई—ऐसा मैंने जाना—यह बात मुझसे छिपी नहीं रह गयी, और अब समझ रही हूँ कि गृहद्वार संबन्धि सिंहमुख के समान तुम, दोनों के विषय मे साधारण ही हो—उस में भी तुम्हारी असाधारण प्रीति नहीं रह गयी है, दोनो में समबुद्धि रखते हो। (दो तो हो चुकीं, अब असाधारण प्रीति के लिये किसी तीसरी की खोज में हो) ॥ ५२४ ॥

नायिका की सखी, नायक से कह रही है—

व्यजनस्येव समीपे गतागतैस्तापहारिणो भवतः ।
अञ्चलमिव चञ्चलतां मम सख्याः प्रापितं चेतः ॥ ५२५ ॥

पदार्थ—व्यजनस्येव—पंखे के समान। तापहारिणः भवतः—सन्ताप दूर करने वाले तुम्हारे। समीपे—नायिका (मेरी सखी) के पास। गतागतैः—जाने और आने से। अञ्चलमिव—अञ्चल के समान। मम सख्याः—मेरी सखी का। चेतः— चित्त। चञ्चलतां प्रापितम्—चंचलता को प्राप्त करा दिया गया—चञ्चल बना दिया गया।

सरलार्थ—जैसे ताप हरने वाला पंखा, निरन्तर पास जाकर और आकर वस्त्रप्रान्त को चञ्चल बना देता है ठीक उसी प्रकार सन्ताप दूर करने वाले तुमने निरन्तर (सखी के) पास जाकर और आकर उसके चित्त को चञ्चल

बना दिया (तुमने ही पहिले आसक्ति उत्पन्न की और अब उदासीन बनते हो—तुम्हारा यह आचरण समीचीन नहीं है) ॥ ५२५ ॥

नायक नायिका से कह रहा है—

वितरन्ती रसमन्तर्ममार्द्रभावं तनोपि तनुगात्रि ।

अन्तःसलिला सरिदिव यन्निवससि बहिरदृश्यापि ॥ ५२६ ॥

पदार्थ—हे तनुगात्रि ! कृशाङ्गि ! अन्तः—हृदय में । रसं वितरन्ती—प्रीति का सञ्चार करती । मम—मेरे । आर्द्रभावं तनोपि—स्निग्धता को बढ़ाती हो । यत्—जो । अन्तःसलिला—अन्तः सलिलं यस्याः सा—जिसके भीतर जल हो । बहिः अदृश्यापि—बाहर से न दिखायी देती भी । निवससि—बसती हो ।

सरलार्थ—हे कृशाङ्गि ! हृदय में प्रीति का संचार करती तू मेरी स्निग्धता को बढ़ाती है; जो अन्तःसलिला नदी की भाँति बाहर अदृश्य भी, मेरे हृदय में बसती हो (तुम्हारे विषय में मेरा आन्तरिक प्रेम है यद्यपि बाहर से वह दिखायी नहीं देता) ॥ ५२६ ॥

चिरकाल तक प्रसादना करने पर भी, मानिनी द्वारा तिरस्कृत, मिथ्यासुप्त नायक को अनुतापवश ले आने लिये भेजी गयी दूती लौट कर मानिनी से कह रही है—

विहितविविधानुबन्धो मानोन्नतयावधीरितो मानी ।

लभते कुतः प्रबोधं स जागरित्वैव निद्राणः ॥ ५२७ ॥

पदार्थ—विहितः विविधः अनुबन्धः येन सः—जिसने अनेक प्रसादनोपाय किये । मानोन्नतया—मानेन उन्नतया—मान से गर्विता तू ने । अवधीरितः—तिरस्कृतः—उसका तिरस्कार किया । मानी—अभिमानशाली । जागरित्वा एव निद्राणः—जागता हुआ ही सो रहा । सः—वह । प्रबोधम्—जागरण । कुतः लभते—कैसे प्राप्त करता है ?

सरलार्थ—जिसने तुम्हारी प्रसादना के अनेक उपाय किये, परन्तु तुम मानगर्विता से तिरस्कृत हुआ, अभिमानी वह जागता हुआ ही सो रहा है, तो किसी भी प्रकार जगाया नहीं जा सकता (ऐसे नायक की अवगणना नहीं करनी चाहिये) ॥ ५२७ ॥

एक सखी दूसरी से कह रही है—

व्रीडाविमुखीं वीतस्नेहामाशङ्क्य काकुवाङ्मधुरे ।

प्रेमार्द्रसापराधां दिशति दृशं वल्लभे बाला ॥ ५२८ ॥

पदार्थ—व्रीडाविमुखीम्—व्रीडया लज्जया विरुद्धं मुखं यस्याः सा ताम्—जिसने लज्जा से मुँह फेर लिया उसको। वीतस्नेहाम्—वीतः गतः स्नेहः यस्याः ताम्—जिसका स्नेह चला गया। आशङ्क्य—आशङ्का कर। काकुवाङ्मधुरे—काकुवाग्भिः चाटुवचनैः मधुरे प्रिये—चाटुवचनों से मधुर, वल्लभे—नायक पर। प्रेमार्द्रसापराधाम्—प्रेम्णा आर्द्राम्, अपराधेन सहितां च—प्रेमार्द्र और सापराध। दृशम् दिशति—दृष्टि डालती है।

सरलार्थ—लज्जा से जिसने नायक की ओर से मुँह फेर लिया अतएव उसके विषय मे स्नेहशून्यता की आशङ्का कर चाटु वचनो से मधुर नायक पर, वह नायिका बाला प्रेमार्द्र एवं सापराध दृष्टि डालती है॥ ५२८॥

प्रतिज्ञापूर्वक विपरीत रत करती नायिका से नायक कह रहा है—

वक्षःप्रणयिनि सान्द्रश्वासे वाङ्मात्रसुभटि घनघर्मे।
सुतनु ललाटनिवेशितललाटिके तिष्ठ विजितासि॥ ५२९॥

पदार्थ—वक्षःप्रणयिनि—(स्वस्य) वक्षसि प्रणयः प्रीतिः अस्याः इति तत्सम्बुद्धिः—(सोने के लिये) अपने वक्षःस्थल में प्रीति रखने वाली। सान्द्रश्वासे—सान्द्रः श्वासः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—(श्रमवशात्) दीर्घ श्वास वाली। वाङ्मात्रसुभटि—वाङ्मात्रे सुभटि—वचनमात्र में शूर। घनघर्मे—घनः बहुतरः घर्मः प्रस्वेदः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—बहुत प्रस्वेद वाली। सुतनु—शोभना तनूः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—सुन्दरि! ललाटनिवेशितललाटिके—ललाटे निवेशिता संस्थापिता ललाटिका यया तत्सम्बुद्धिः—जिसने अपने मस्तक का तिलक मेरे (नायक के) मस्तक में निवेशित कर दी। तिष्ठ—ठहरो। विजिता असि—तुम हार चुकी हो।

सरलार्थ—(थककर सोने के लिये) अपने वक्षःस्थल के विषय में अनुराग रख रही हो; श्रम-वश तुम्हारी साँस लम्बी चल रही है (वास्तव में तुम सामर्थ्य-विहीन हो रही हो) केवल वचन से सुभट बन रही हो, पसीने से तर हो रही हो, हे शोभनगात्रि! तुमने अपने मस्तक का तिलक मेरे मस्तक में लगा दिया (थककर अपना मस्तक मेरे मस्तक पर टिका कर विश्राम प्राप्त किया) अब रुक जाओ, तुम हार चुकी हो॥ ५२९॥

राधा कृष्ण में अत्यन्त आसक्त है, ऐसा, एक सखी दूसरी से कह रही है—

विचरति परितः कृष्णे राधायां रागचपलनयनायाम्।
दशदिग्वेधविशुद्धं विशिखं विदधाति विषमेषुः॥ ५३०॥

पदार्थ—कृष्णे परितः विचरति सति—कृष्ण के, चारों ओर घूमते रहने पर। रागचपलनयनायाम्—रागेण प्रीत्या चपले चंचले नयने यस्याः तस्याम्—प्रीति से जिसके नेत्र चपल हैं। राधायाम्—राधा में। दशदिग्वेधविशुद्धम्—दशसु दिक्षु वेधे विशुद्धम्—दसो दिशाओ में लक्ष्यवेध करने वाले। विशिखम्—बाण को। विषमेषुः—विषमाः इषवः बाणाः यस्य सः (मदनः)—जिसके बाण विषम हैं। विदधाति—करोति।

सरलार्थ—चारो ओर अथवा दसो दिशाओं में श्रीकृष्ण के घूमते रहने पर, प्रीति से चंचल नेत्र वाली राधा में, कामदेव, दसो दिशाओ में लक्ष्यवेध करने वाले अपने बाण को अवस्थित कर देता है (सर्वत्र श्रीकृष्ण पर राधा के कटाक्ष पड़ते रहते हैं) ॥ ५३० ॥

नायिका के विषय में एक सखी दूसरी सखी से कह रही है—

वीक्ष्यैव वेत्ति पथिकः पीवरबहुवायसं निजावासम् ।
सौन्दर्यैकनिधेरपि दयितायाश्चरितमविचलितम् ॥ ५३१ ॥

पदार्थ—पथिकः—प्रवास से लौटा नायक। पीवरबहुवायसम्—पीवराः बहवः वायसाः यत्र तत्—जहाँ (नायक के आगमन के शकुनदर्शनार्थ दिये गये दही और भात से) अनेक स्थूल कौए हैं। निजावासम्—अपने गृह को। वीक्ष्यैव—देख कर ही। सौन्दर्यैकनिधेरपि—सौन्दर्यस्य एकनिधेः अपि—सौन्दर्य का एकमात्र स्थान, सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यशालिनी भी। दयितायाः—प्रिया का। अविचलितम्—विशुद्ध। आचरणं वेत्ति—आचरण को जान लेता है।

सरलार्थ—प्रवास से लौटा पथिक नायक, (नायक के आगमन के शकुन-दर्शनार्थ दिये गये दही भात से) स्थूल कौओं वाले निजगृह को देख कर ही (वचनादि से नहीं), सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यशालिनी भी (अतएव अवश्य चरित्र-भ्रष्ट होने योग्य) प्रिया का आचरण अक्षुण्ण है—ऐसा जान लेता है (यदि आचरण ठीक न होता तो मेरे लिये ऐसा शकुनादि का अवेक्षण क्यो करती)।

अथवा इस रीति से नायक को धोखा दिया जा सकता है अतः यथेच्छ परपुरुष से संगम करो—ऐसा, दूती नायिका से कह रही है ॥ ५३१ ॥

विपत्तिग्रस्त का उद्धार कोई ही कर सकता है, सब नहीं, ऐसा अन्योक्ति द्वारा कोई किसी से कह रहा है—

विमुखे चतुर्मुखेऽपि श्रितवति चानीशभावमीशेऽपि ।
मग्नमहीनिस्तारे हरिः परं स्तब्धरोमाभूत् ॥ ५३२ ॥

पदार्थ—चतुर्मुखे—चत्वारि मुखानि यस्य सः चतुर्मुखः तस्मिन् (विधातरि)—

जिसके चार मुख हैं। अपि—भी। विमुखे—उद्योगशून्य होने पर, सहायता करना अङ्गीकार न करने पर। ईशे—शिवे। अपि। अनीशभावम्—असमर्थ भावम्, श्रितवति सति—ईश (शिव) के अनीश (असमर्थ) भाव अपनाने पर। मग्नमहीनिस्तारे—समुद्रनिमग्न पृथ्वी का उद्धार करने के विषय में। परम्—केवल। हरिः—विष्णु। स्तब्धरोमा—स्तब्धानि रोमाणि यस्य सः (१—शूकरः, २—रोमाञ्चितः) जिसके रोम स्तब्ध (दृढ़ एवं खड़े) हैं। अभूत्—हुआ।

सरलार्थ—समुद्रनिमग्न पृथ्वी का उद्धार करने के विषय में जब विधाता ने भी उद्योग करना अङ्गीकार नहीं किया, ईश (शिव) ने भी अनीश (असमर्थ) भाव को अपना लिया, तब विष्णु ने वराह रूप धारण किया और वे (धरोद्धारोत्साहवश) रोमाञ्चित हो उठे॥ ५३२॥

सुन्दर पत्नी की सुरक्षा का विविध प्रबन्ध करने वाले पति से कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

वापीकच्छे वासः कण्टकवृतयः सजागरा भ्रमराः।
केतकविटप किमेतैर्ननु वारय मञ्जरीगन्धम्॥ ५३३॥

पदार्थ—हे केतकविटप!—केतक वृक्ष! वापीकच्छे—वाप्याः कच्छे—बावली के कछार में। वासः—बसना। कण्टकवृतयः—कण्टकरूप आवरण। सजागराः भ्रमराः—निद्राशून्य भ्रमर। एतैः किम्, न किंचिदित्यर्थः—इनसे कुछ नहीं होगा। ननु—निश्चितम्। मञ्जरीगन्धं वारय—मञ्जरी की गन्ध को रोको।

सरलार्थ—केतक वृक्ष! बावली के कछार मे बसने, कण्टकरूप आवरण तथा निद्राशून्य भ्रमरों से कोई लाभ नहीं होगा, तुम मञ्जरी की गन्ध को रोको। (जब तक तुम्हारे पास ऐसी नायिका है, तब तक चाहे जहाँ और चाहे जैसे रहोगे, अन्य नायकों की बाधा दूर नही होगी)॥ ५३३॥

नायक, नायिका से कह रहा है—

विचलसि मुग्धे विधृता यथा तथा विशसि हृदयमदये मे।
शक्तिः प्रसूनधनुषः प्रकम्पलक्ष्यं स्पृशन्तीव॥ ५३४॥

पदार्थ—हे मुग्धे—सुन्दरि! अदये—दयाशून्ये! विधृता—गृहीता (अञ्चलादौ)—अञ्चलादि में गृहीत। यथा—ज्यों-ज्यों। विचलसि—चल रही हो। तथा—त्यों-त्यों। प्रकम्पलक्ष्यम्—अत्यन्त काँपते हुए लक्ष्य को। स्पृशन्ती—स्पर्श करती। प्रसूनधनुषः—प्रसूनानि एव धनुः यस्य तस्य (मदनस्य)—जिसका

धनुष प्रसून हैं, अर्थात् मदन की। शक्तिः इव—शक्ति की भाँति, तीर की भाँति। मे हृदयं विशसि—मेरे हृदय में घुसती जा रही हो।

सरलार्थ—हे मुग्धे! दयाशून्ये! (अञ्चलादि में) गृहीत तू ज्यों-ज्यों चलती है त्यों-त्यो प्रकम्पित लक्ष्य को स्पर्श करती, कामदेव की शक्ति (अस्त्र) के समान मेरे हृदय में घुसती जा रही है (तेरे जाने पर मेरे प्राण भी चले जायँगे) ॥ ५३४ ॥

सखी नायिका से उसके विपरीतरत की प्रशंसा कर रही है—

विहितासमशरसमरो जितगाङ्गेयच्छविः कृताटोपः ।
पुरुषायिते विराजति देहस्तव सखि शिखण्डीव ॥ ५३५ ॥

पदार्थ—विहितासमशरसमरः—(१) विहितः कृतः असमशरः मदनः तत्सम्बन्धी समरः (सुरतमिति यावत्) येन सः— जिसने सुरत किया, (२) विहितः कृतः असमशरैः अनुपमबाणैः समरः संग्रामः येन सः—जिसने अनुपम बाणों से युद्ध किया। जितगाङ्गेयच्छविः—जिता गाङ्गेयस्य (१—सुवर्णस्य, २—भीष्मस्य) छविः दीप्तिः येन सः—जिसने (१) सुवर्ण की, (२) भीष्म की दीप्ति को जीत लिया। कृताटोपः—कृतः सम्पादितः आटोपः अभिमानः अथच औद्धत्यं येन सः—(१) जिसने औद्धत्य किया, (२)-जिसने अभिमान किया। हे सखि! तव देहः—तेरा शरीर। पुरुषायिते—(१) विपरीतरत में, (२) पुरुषवत् आचरण मे। शिखण्डी इव—शिखण्डी के समान। विराजति—सुशोभित होता है।

सरलार्थ—हे सखि! मदनयुद्ध (सुरत) कर, सुवर्ण की दीप्ति को जीत कर, औद्धत्यशाली तेरा यह शरीर विपरीत रत में; अनुपम शरो से सग्राम कर, भीष्म की दीप्ति को जीत कर, अभिमानशाली, पुरुषवत् आचरण में शिखण्डी के समान विशेष शोभित होता है (अतः तुझे बहुधा विपरीत रत ही करना चाहिये) ॥ ५३५ ॥

चोरी-चोरी रत करने की निन्दा करते व्यक्ति से कोई चौर्य रत की उत्कृष्टता सिद्ध कर रहा है—

वृतिविवरनिर्गतस्य प्रमदाबिम्बाधरस्य मधु पिबते ।
अवधीरितपीयूषः स्पृहयति देवाधिराजोऽपि ॥ ५३६ ॥

पदार्थ—वृतिविवरनिर्गतस्य—वृतिः आवरणम् तस्य विवरेण छिद्रमार्गेण निर्गतस्य—आवरण के छिद्र से निकला। प्रमदाबिम्बाधरस्य—प्रमदायाः प्रकृष्टमदशालिन्याः बिम्बः इव यः अधरः तस्य—प्रमदा के बिम्बतुल्य (लाल)

अधर का। मधु पिबते—मधु पीने वाले की। अवधीरितपीयूषः—अवधीरितं पीयूषम् अमृतं येन सः—जिसने अमृत का तिरस्कार कर दिया। देवाधिराजः अपि—इन्द्र भी। स्पृहयति—स्पृहा करता है।

सरलार्थ—आवरण के छिद्र से निकले, प्रमदा के बिम्बतुल्य (लाल) अधर का मधु पीने वाले की अर्थात् तद्रूपता प्राप्त करने के लिये, अमृत का तिरस्कार कर इन्द्र भी स्पृहा करता है ॥ ५३६ ॥

पुरुषविशेष में आसक्त नायिका की संगति चाहने वाले पुरुष से दूती कह रही है—

वासितमधुनि वधूनामवतंसे मौलिमण्डने यूनाम् ।
विलसति सा पुरकुसुमे मधुपीव वनप्रसूनेषु ॥ ५३७ ॥

पदार्थ—वासितमधुनि—वासितम् उत्कृष्टताशालि कृतं मधु येन तस्मिन्—जिसने मधु को उत्कृष्ट बना दिया। वधूनामवतंसे—नायिकाओं का श्रुतिभूषण-रूप। यूनां मौलिमण्डने—तरुणो का मस्तकभूषणरूप। पुरकुसुमे—पुरस्य नगरस्य कुसुमे—नगर के कुसुम में (नायक में)। सा—वह। वनप्रसूनेषु—वन-कुसुम में। मधुपी इव—भ्रमरी की भाँति। विलसति—शोभते—शोभा को प्राप्त होती है।

सरलार्थ—मधु को उत्कृष्ट बना देने वाले, (सभी कामिनियाँ उसके गुण को आदर से सुनती है अतः) नायिकाओ के कर्णभूषण, (वन्दनीय होने के कारण) तरुणो के शिरोभूषण, (सबका स्पृहणीय होने के कारण) नगर के कुसुमरूप नायक में वह; अपने सुवास से मधु को सुगन्धित बना देने वाले, (शोभाधायक होने के कारण) नायिकाओ का कर्णभूषण तथा तरुणो के शिरो-भूषणरूप वनकुसुम में भ्रमरी की भाँति शोभा को प्राप्त होती है (अतः उसकी प्राप्ति तुझे असंभव है) ॥ ५३७ ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

व्रीडाप्रसरः प्रथमं तदनु च रसभावपुष्टचेष्टेयम् ।
जवनीविनिर्गमादनु नटीव दयिता मनो हरति ॥ ५३८ ॥

पदार्थ—प्रथमम्—आदि में। व्रीडाप्रसरः—लज्जा का आधिक्य। तदनु—तदनन्तर। रसभावपुष्टचेष्टा—रसः (श्रृंगारादि), भावः (चित्त का अभिप्राय), आभ्याम् पुष्टा चेष्टा—रस और भाव से पुष्ट चेष्टा। जवनीविनिर्गमादनु—परदे से बाहर निकलने के बाद। नटी इव—नटी की भाँति। इयं दयिता—यह प्रिया। मनः हरति—मन को हरती है।

सरलार्थ—जैसे परदे से बाहर निकलने के बाद नटी पहिले लज्जा प्रदर्शित करती है, तदनन्तर सरस एवं साभिप्राय चेष्टा प्रदर्शित कर रसाविर्भाव से सामाजिकों के मन को हरती है, उसी प्रकार यह प्रिया प्रथम लज्जा करती है, तदनन्तर सरस एवं साभिप्राय विलास प्रदर्शित कर, अत्यन्त रत से नायक के मन को आनन्दित कर स्वाधीन कर लेती है ॥ ५३८ ॥

दूती नायक से कह रही है—

वाससि हरिद्रयेव त्वयि गौराङ्ग्या निवेशितो रागः ।
पिशुनेन सोऽपनीतः सहसा पतता जलेनेव ॥ ५३९ ॥

पदार्थ—वाससि—वस्त्रे—वस्त्र में। हरिद्रया इव—हल्दी के समान। गौराङ्ग्या—गौराणि अङ्गानि यस्याः तया—जिसके अङ्ग गोरे हैं उस (नायिका ने)। त्वयि—तुझमें। रागः—(१) अनुराग, (२) पीतिमा। निवेशितः—किया। सः—रागः—वह राग। सहसा—अचानक। पतता—(१) प्रविष्टेन, (२) संबन्धवता—(१) प्रविष्ट, (२) सम्बन्धवान् होकर। जलेनेव—जल के समान। पिशुनेन—सूचकेन—एक की बुराई दूसरे से कहने वाले व्यक्ति ने। अपनीतः—दूर कर दिया।

सरलार्थ—यथा हल्दी वस्त्र में पीतिमा संपादित करती है, परन्तु सहसा जल का सम्बन्ध हो जाने से वह धुल कर दूर हो जाती है; तथा उस सुन्दरी ने तुझ में अनुराग किया किन्तु सहसा पिशुन ने प्रविष्ट होकर उस अनुराग को दूर कर दिया (उसका अपराध नहीं है) ॥ ५३९ ॥

एतादृश नायिका की सङ्गति करने पर तुझे कामुकों द्वारा पीडा ही प्राप्त होगी—ऐसा, कोई किसी से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

विष्वग्विकासिसौरभरागान्धव्याधबाधनीयस्य ।
क्वचिदपि कुरङ्ग भवतो नाभीमादाय न स्थानम् ॥ ५४० ॥

पदार्थ—हे कुरङ्ग ! विष्वक् सर्वतः विकासिसौरभेण यो रागः अभिलाषः तेन अन्धाः ये व्याधाः तैः बाधनीयस्य—सब ओर प्रसरणशील सुगन्ध से रागान्ध व्याधों द्वारा पीडनीय। भवतः—तुझे। नाभीमादाय—नाभीम् कस्तूरिकाम् आदाय—कस्तूरी ग्रहण कर, अर्थात् साथ कस्तूरी रखने से। क्वचिदपि—कहीं भी। न स्थानम्—स्थान (सुरक्षित) नहीं है।

सरलार्थ—कुरङ्ग ! सब ओर प्रसरणशील सुगन्ध से (उसे पाने के लिये) रागान्ध (अतएव कर्तव्याकर्तव्यविमूढ) व्याधों द्वारा पीडनीय तुझे कस्तूरिका को साथ रखने से, कहीं सुरक्षित स्थान नहीं है (समस्त गुणों के कारण विख्यात

इस नायिका को छिपा कर नहीं रक्खा जा सकता है और इस प्रकार तुझे सर्वत्र पीडा होगी; अतः इसका सङ्ग मत कर) ॥ ५४० ॥

एक से ही उत्पन्न तथा सजातीय गुणों से युक्त होने पर भी सब में कोई न कोई भेद होता है—ऐसा, कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

वटकुटजशालशाल्मलिरसालबहुसारसिन्धुवाराणाम् ।
अस्ति भिदा मलयाचलसंभवसौरभ्यसाम्येऽपि ॥ ५४१ ॥

पदार्थ—वटकुटजशालशाल्मनिरसालबहुसारसिन्धुवाराणाम्—वटः (बरगद) कुटजः (कोरैया) शालः (शालवृक्ष) शाल्मलिः (सेमर) रसालः (आम का वृक्ष) बहुसारः (खदिर का वृक्ष) सिन्धुवारः च (सिन्दुवार) तेषाम्—बरगद, कोरैया, शाल, सेमर, आम, खदिर, सिन्दुवार इन वृक्षो का। मलयाचलसंभवसौरभ्यसाम्येऽपि—मलयाचले मलयगिरौ संभवेन उत्पत्तिस्थानेन, जन्मना वा सौरभ्यस्य सुगन्धस्य साम्येऽपि—मलयगिरि पर जन्म होने से सुगन्ध की समता होने पर भी। भिदा—भेद है।

सरलार्थ—बरगद, कोरैया, शाल, सेमर, आम, खदिर, सिन्दुवार आदि यद्यपि मलयगिरि पर उत्पन्न होने के कारण समान सुगन्ध रखते हैं तथापि सब में भेद है (चतुर लोग ही उस अन्तर को समझ सकते है) ॥ ५४१ ॥

सामान्यवनिता से कोई स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

विनिहितकपर्दकोटिं चापलदोषेण शंकरं त्यक्त्वा ।
वटमेकमनुसरन्ती जाह्नवि लुठसि प्रयागतटे ॥ ५४२ ॥

पदार्थ—जाह्नवि—गङ्गे ! जह्नुतनये ! विनिहितकपर्दकोटिम्—विनिहिता समर्पिता कपर्दस्य जटाजूटस्य कोटिः प्रान्तभागः येन तम्—जिसने जटाजूट का प्रान्तभाग समर्पित कर दिया। शंकरं त्यक्त्वा—शंकर को त्याग कर। चापलदोषेण—चाञ्चल्यदोष से। एकम् वटम्—(१) एक वटवृक्ष को, (२) कौड़ी को। अनुसरन्ती—अपेक्षा करती, चाहती। प्रयागतटे—(१) प्रयागस्य तटे—प्रयाग के तट पर, (२) प्रलुप्तः यागः यस्य सः प्रयागः पापीयान् तस्य समीपे (मध्यमपदलोपी समास)—पापी के समीप। लुठसि—लोटती हो।

सरलार्थ—हे जह्नुतनये ! जटाजूट को समर्पित करने वाले शंकर का त्याग कर अपने चपलतारूप दोष से तू एक वटवृक्ष की अपेक्षा रखती प्रयाग के तट पर लोट रही है।

(सिर पर स्थान देने वाले प्रणतकारी एवं सुखसम्पादक पुरुष का त्याग कर एक कौड़ी के लिए पापी की संगति करती है) ॥ ५४२ ॥

'सखी को तूने विरह-दुःख क्यों दिया'—ऐसा कहती हुई नायिका की सखी से नायक कह रहा है—

वेद चतुर्णां क्षणदा प्रहराणां संगमं वियोगं च ।
चरणानामिव कूर्मी संकोचमपि प्रसारमपि ॥ ५४३ ॥

पदार्थ—चतुर्णां प्रहराणाम् संगमं वियोगं च—चार प्रहर के संयोग और वियोग को। क्षणदा—क्षणदा रात्रिः सा इव नायिका, क्षणम् (उत्सवम्) ददाति अथवा द्यति (छिन्न-भिन्न करती है), उत्सव (सुख) देने वाली अथवा नष्ट करने वाली। वेद—जानती है। अथवा—चतुर्णां प्रहराणां क्षणदा—चार पहर की (समग्र) रात्रि। चरणानां सकोचम् अपि प्रसारमपि—चरणों को संकुचित करना अथवा प्रसृत करना। कूर्मी इव—जैसे कच्छपी जानती है।

सरलार्थ—चार पहर का संयोग और वियोग करना, रात्रि के समान नायिका जानती है (यदि वह प्रसन्न है तो चार पहर का रतसुख प्रदान करती है और यदि अप्रसन्न है तो चार पहर का विरह दुःख देती है)।

अथवा चार पहर के सङ्गम का सुख और चार पहर के वियोग का दुःख रात्रि ही जानती है। जैसे चरणों का संकोच और प्रसार करना कच्छपी जानती है (जैसे चरण का संकोच अथवा प्रसार करना कच्छपी के अधीन है उसी प्रकार संगम अथवा विरह नायिका के अधीन है)।

अथवा विरहिणी नायिका सखी से कह रही है—चन्द्रादि प्रबल उद्दीपन-जन्य उन्माद के कारण कल्पित नायक के आगमन और गमन से हुए मेरे सुख और दुःख को रात्रि ही (साक्षिणी होने के कारण) जानती है।

अथवा चार पहर की सारी रात मेरे सुख दुःख को जानती है (रात में क्षण भर भी शान्ति नहीं मिलती)।

अथवा सामान्य वनिता से उसकी धात्री कह रही है—कच्छपी की भाँति रात्रि चार पहर रूप पुरुषों की सङ्गति करना तदनन्तर दिन के चार पहर रूप पुरुषों को अपने से वियुक्त रखना जानती है (तू भी ऐसा ही क्यो नहीं करती, कतिपय पुरुषों को ले आ, कतिपय पुरुषों को वियुक्त कर)।

अथवा सखी नायिका को उपदेश दे रही है—जो कामिनी क्षणदा (उत्सवदा) है वह दिन के चार पहरों में केवल दर्शन दे-देकर नायक को उत्कण्ठित बनाती है और रात के चार पहरों में उन्हें रत-क्रीडा से आनन्दित करती है ॥ ५४३ ॥

नायिका की सखी, नायक से कह रही है--

वृतिविवरेण विशन्ती सुभग त्वामीक्षितुं सखी दृष्टिः ।
हरति युवहृदयपञ्जरमध्यस्था मन्मथेषुरिव ॥ ५४४ ॥

पदार्थ—हे सुभग ! वृतिविवरेण--वृतेः भित्तेः विवरेण छिद्रेण--दीवाल के छिद्र से । त्वाम् ईक्षितुम्--तुम्हें देखने के लिए । विशन्ती—प्रविष्ट होती, युवहृदयपञ्जरस्था—यूना हृदयपञ्जरे तिष्ठति इति—युवको के हृदयपञ्जर में स्थित । मन्मथेषुः—मन्मथस्य मदनस्य इषुः बाणः इव—कामदेव के बाण के समान । सखीदृष्टिः—सखी की दृष्टि । हरति—तुमको हरती है ।

सरलार्थ—हे सुभग ! दीवाल के छिद्र से तुम्हें देखने के लिये प्रविष्ट, युवको के हृदयपंजर मे स्थित कामदेव के बाण के समान मेरी सखी की दृष्टि तुमको हरती है (तुम्हें देखते समय अन्य युवक जो उसकी दृष्टि के आगे पड़े उन्हें वह स्पृहणीय है किन्तु उसे सब युवको में केवल तुम स्पृहणीय हो) ॥५४४॥

यही वास्तविकता जानता है—ऐसा कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

विपणितुलासामान्ये मा गणयैनं निरूपणे निपुण ।
धर्मघटोऽसावधरीकरोति लघुमुपरि नयति गुरुम् ॥ ५४५ ॥

पदार्थ—हे निरूपणे निपुण—स्पष्टीकरण में निपुण ! विपणितुलासामान्ये--बाजार की तराजू की कोटि में । एनम् मा गणय—इसकी गणना मत करो । असौ धर्मघटः—यह धर्मघट (प्रामाणिक तराजू) है । लघुम्—छोटे को, हलके को । अधरीकरोति—नीचे ले जाता है । गुरुम्—भारी को । उपरि नयति—ऊपर ले जाता है ।

सरलार्थ—हे निरूपणनिपुण ! इसे बाजार की तराजू के समान मत समझो । यह धर्मघट (धर्म-तराजू) है जो हलके को नीचे और भारी को ऊपर ले जाता है ॥ ५४५ ॥

सज्जनो के मन की तुलना किससे दे—ऐसा, कोई कह रहा है—

वासरगम्यमनूरोरम्बरमवनी च वामनैकपदम् ।
जलधिरपि पोतलङ्घ्यः सतां मनः केन तुलयामः ॥ ५४६ ॥

पदार्थ—अम्बरम्—आकाश । अनूरोः—न ऊरू यस्य तस्य (अरुणस्य)—ऊरु जिसके नही है, उस अरुण का । वासरगम्यम्—वासरेण गन्तुं योग्यम्—दिन भर में उल्लङ्घ्य है । अवनी च—और पृथ्वी । वामनैकपदम्—वामन का एक पद है अर्थात् एक पग में उल्लङ्घ्य है । जलधिः अपि—समुद्र भी ।

पोतलङ्घ्यः—पोत (जलयान) द्वारा लङ्घ्य है। सतां मनः—सज्जनों के मन की। केन तुलयामः—किससे तुलना करें।

सरलार्थ—(तीन वस्तुयें विशाल, विस्तृत एवं गम्भीर हैं जिनसे सज्जनों के मन की तुलना की जा सकती थी, किन्तु विचार करने पर वे सभी अयोग्य सिद्ध होती हैं) आकाश को अरुण जो विना जाँघ का है, एक ही दिन में लाँघ जाता है; पृथ्वी को वामन ने एक पग में ही नाप लिया। समुद्र को छोटा सा जलयान (नौका आदि) लाँघ जाता है (इनके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं अतः) सज्जनो के मन की तुलना किससे करें? (सज्जनो का मन निरुपम है) ॥ ५४६ ॥

दूती नायिका से कह रही है—

विततमोमपिलेखालक्ष्मोत्सङ्गस्फुटाः कुरङ्गाक्षि।
पत्त्राक्षरनिकरा इव तारा नभसि प्रकाशन्ते ॥ ५४७ ॥

पदार्थ—कुरङ्गाक्षि—कुरङ्गस्य मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः तत्सम्बुद्धिः—जिसके नेत्र मृग के नेत्रो के समान है, मृगनयनि! विततमोमषिलेखालक्ष्मोत्सङ्गस्फुटाः—विततं यत्तमः तद्रूपा या मषिः तस्याः याः रेखाः तद्रूपलक्ष्माणि उत्सङ्गे येषां तादृशाः स्फुटाः पूर्णोदिताः—विस्तृत तमोरूप स्याही की रेखा रूप चिह्न युक्त जिनका उत्सङ्ग है वे पूर्णोदित। ताराः। नभसि—आकाश मे। पत्त्राक्षरनिकराः इव—पत्र के अक्षरो की भाँति। प्रकाशन्ते—चमक रहे हैं।

सरलार्थ—हे मृगनयनि! विस्तृत तमोरूप स्याही की रेखारूप चिह्नो से युक्त उत्सग वाले पूर्णोदित तारे, आकाश में पत्राक्षरो की भाँति चमक रहे हैं (तेरे विरह से खिन्न नायक का, तेरे सूचनार्थ पत्र सा यह आकाश दिखाई देता है अतः शीघ्र गमन कर) (अथवा कामदेव का शरदृतु आदि अपने सेवको को दिया गया चन्द्रमुद्राङ्कित शासनपत्र है कि मानवती को निःशङ्क दुःख दिया जाय, अतः तू मान का त्याग कर नायक को आनन्दित कर) ॥ ५४७ ॥

बाला के अभिनव रत का वर्णन एक सखी दूसरी से कर रही है—

विविधाङ्गभङ्गिषु गुरुर्नूतनशिष्यां मनोभवाचार्यः।
वेत्रलतयेव बालां तल्पे नर्तयति रतरीत्या ॥ ५४८ ॥

पदार्थ—विविधाङ्गभङ्गिषु—अनेक अङ्ग-भङ्गियो में। गुरुः। मनोभवाचार्यः—मनोभवरूप आचार्य। नूतनशिष्यां बालाम्—बालारूप नूतन शिष्या को। वेत्रलतया इव रतरीत्या—वेत्रलता के समान रतरीति द्वारा। तल्पे—शय्या पर। नर्तयति—नचा रहा है।

सरलार्थ--विविध अङ्ग-भङ्गियों में गुरु, मनोभवरूप आचार्य, बालारूप नूतनशिष्या को, वेत्रलता के समान रतरीति के द्वारा शय्या पर नचा रहा है (आगे चलकर अत्यन्तरतिकलाप्रवीण होगी) ॥ ५४८ ॥

नायक, नायिका से कह रहा है—

विपरीतमपि रतं ते स्रोतो नद्या इवानुकूलमिदम् ।
तटतरुमिव मम हृदयं समूलमपि वेगतो हरति ॥ ५४९ ॥

पदार्थ—अनुकूलम्—(१) इच्छाविषयीभूत, (२) कूल के साथ । ते—तेरा । इदं विपरीतमपि रतम्—यह विपरीत रत भी । नद्याः स्रोतः इव—नदी के प्रवाह के समान । मम हृदयम्—मेरे हृदय को । तटतरुमिव—तट के वृक्ष के समान । वेगतः—वेगवशात् । समूलमपि—आमूल । हरति—हरता है ।

सरलार्थ--(हे सुन्दरि !) तेरा यह अनुकूल विपरीतरत भी मेरे हृदय को उसी प्रकार आमूल वेगवश हर लेता है जिस प्रकार कूल के साथ (लगा) नदी का प्रवाह वेगवश तट के वृक्ष को आमूल गिरा देता है (विपरीत रत अत्यन्त हृदयहारी होता है) ॥ ५४९ ॥

दारिद्रय महादुःखद है—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है--

वैभवभाजां दूपणमपि भूपणपक्ष एव निक्षिप्तम् ।
गुणमात्मनाऽधर्मं द्वेषं च गृणन्ति काणादाः ॥ ५५० ॥

पदार्थ--वैभवभाजाम्—(१) ऐश्वर्यशालिनाम्, (२) व्यापकत्ववताम्—ऐश्वर्यशालियों का, व्यापकतायुक्त का । दूषणमपि—दोप भी । भूषणपक्षे एव निक्षिप्तम्—गुण ही माना जाता है । काणादाः--वैशेषि कशास्त्रप्रवर्तकाः—वैशेपिकशास्त्रप्रवर्तक मुनिजन । अधर्मं द्वेषं च—अधर्म और द्वेष को । आत्मनां गुणं गृणन्ति, स्वीकुर्वन्ति—आत्मा का गुण स्वीकार करते हैं, मानते है (चौबीस गुणो में अधर्म और द्वेष की भी गणना है) ।

सरलार्थ—ऐश्वर्यशालियो का दोष भी गुण माना जाता है । वैशेषिकशास्त्र के प्रवर्तक मुनियों ने (अधर्म और द्वेष यद्यपि दूषण पक्ष में रखने योग्य है तथापि आत्मा मे रहने के कारण) अधर्म और द्वेष को, (व्यापकताशाली) आत्मा का गुण मानते है (दरिद्र के ही दोष को सब दोष मानते है अतः दारिद्रय हेय है) ॥ ५५० ॥

कोई अपने मित्र को गणिका के कटाक्षो तथा खलों से बचने का उपदेश दे रहा है—

वक्राः कपटस्निग्धा मलिनाः कर्णान्तिके प्रसज्जन्तः ।
कं वञ्चयन्ति न सखे खलाश्च गणिकाकटाक्षाश्च ॥ ५५१ ॥

पदार्थ—वक्राः—कुटिल । कपटस्निग्धाः—कपटपूर्वक स्नेह रखने वाले । मलिनाः—(१) पापी, (२) सहज श्यामल । कर्णान्तिके प्रसज्जन्तः—(१) परापकारार्थं, (२) विशाल होने के कारण, कर्णप्रान्त मे लगते हुए (१—कानो के पास मुँह लगाकर बात करते, २—कर्णप्रान्त का स्पर्श करते) । सखे ! खलाश्च गणिकाकटाक्षाश्च—खल और गणिका के कटाक्ष । कं न वञ्चयन्ति—किसे नहीं अर्थात् सब को धोखा देते हैं ।

सरलार्थ—हे सखे ! वक्र, कपटपूर्वक स्नेह रखने वाले, मलिन (१—पापी, २—सहज श्यामल), कर्णप्रान्त में लगते हुए (१—कान के पास मुँह लगाकर बात करते, २—विशाल होने के कारण कर्णप्रान्त तक फैले) खल और गणिका के कटाक्ष सभी को धोखा देते हैं (अतः इन दोनो का संसर्ग मत रक्खो) ॥ ५५१ ॥

भोजन बनाने मे व्यस्त नायिका से रतार्थी नायक कह रहा है—

विद्युज्ज्वालावलयितजलधरपिठरोदराद्विनिर्यान्ति ।
विशदौदनद्युतिमुषः प्रेयसि पयसा समं करकाः ॥ ५५२ ॥

पदार्थ—हे प्रेयसि ! विद्युज्ज्वालावलयितजलधरपिठरोदराद्—विद्युज्ज्वालाभिः वलयितं व्याप्तं यत् जलधरपिठरं मेघरूपपात्रम् तस्य उदराद् मध्याद्—विद्युत्-रूप ज्वाला से व्याप्त मेघरूप जलाधारभूत बटलोई के मध्य से । विशदौदनद्युति-मुषः—विशदौदनस्य स्वच्छौदनस्य द्युतिमुषः कान्तिहारकाः—स्वच्छ ओदन की कान्ति को हरने वाले । करकाः—ओले । पयसा समम्—(१) जलसहित, (२) दूधसहित । विनिर्यान्ति—निकल रहे है, बरस रहे है ।

सरलार्थ—हे प्रेयसि ! विद्युज्ज्वाला से व्याप्त जलधररूप, जलाधारभूत बटलोई से स्वच्छ ओदन की कान्ति हरने वाले उपल जल के साथ (दूध के साथ) बरस रहे हैं (ऐसे अवसर पर मुझे सुरतदान देना भूखे को दूधभात देने के समान पुण्यकारी होगा अतः सब कुछ छोड़ कर मेरे समीप आओ) ।

अथवा पानी बरस रहा है, ओले गिर रहे है, ऐसे समय में मै संकेत स्थल को कैसे जाऊँ—ऐसा कहती नायिका से सखी अथवा दूती कह रही है—विद्युदादि । ऐसे समय का सुरत दूध-भात के भोजन से भी मधुर है अतः संकेत-स्थल को शीघ्र जा ॥ ५५२ ॥

अत्यन्त रतसमुत्सुक नायक, नायिका से कह रहा है—

व्यजनादिभिरुपचारैः किं मरुपथिकस्य गृहिणि विहितैर्मे ।
तापस्त्वदूरुकदलीद्वयमध्ये शान्तिमयमेति ॥ ५५३ ॥

पदार्थ—हे गृहिणि ! मरुपथिकस्य मे—मुझ मरुपथिक को । विहितैः—संपादितैः, व्यजनादिभिः उपचारैः किम्—पंखे आदि से संपादित उपचारों से क्या ? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं । त्वदूरुकदलीद्वयमध्ये—तव ऊरुरूपकदली-द्वयस्य मध्ये अन्तराले—तेरे जङ्घाकाण्डरूप दोनो कदली के बीच में । अयं तापः—यह ताप । शान्तिम् एति—शान्ति को प्राप्त होता है ।

सरलार्थ—हे गृहिणि (अत्यन्त सन्तप्त) मुझ मरुपथिक को व्यजनादि से संपादित उपचारों से लाभ नहीं । मेरा यह ताप (जिसे केवल मैं अनुभव कर रहा हूँ) तेरे जङ्घाकाण्डरूप दो कदली के बीच मे शान्त होता है (अतः सखियों का साथ छोड़कर एकान्त में चल) ॥ ५५३ ॥

श्रेष्ठों द्वारा संपादित कर्म को दूषित नहीं कहना चाहिये—ऐसा, कोई किसी को सिखा रहा है—

वैगुण्येऽपि हि महता विनिर्मितं भवति कर्म शोभायै ।
दुर्वहनितम्बमन्थरमपि हरति नितम्बिनीनृत्यम् ॥ ५५४ ॥

पदार्थ—महता—श्रेष्ठ द्वारा । विनिर्मितं—संपादितं, कर्म—किया गया कर्म । वैगुण्येऽपि—दूषित होने पर भी । शोभायै भवति—शोभा के लिए होता है । दुर्वहनितम्बमन्थरमपि—दुर्वहः यो नितम्बः तेन मन्थरम् शिथिलमपि—(महान् होने के कारण) दुर्वह नितम्ब से शिथिल । नितम्बिनीनृत्यम्—नितम्बिनी का नृत्य । हरति—चित्त को हरता है ।

सरलार्थ—श्रेष्ठद्वारा सम्पादित कर्म विगुण होने पर भी शोभा के लिए होता है । (महान् होने से) दुर्वह नितम्ब के भार के कारण शिथिल भी नितम्बिनी का नृत्य चित्त को हरता है ।

(महान् का कर्म विगुण होते हुए भी शोभा देता है किन्तु क्षुद्र जो कुछ करे, वह विगुण न हो तभी उसकी प्रशंसा होगी) ॥ ५५४ ॥

वह अत्यन्त पतिव्रता है—ऐसी कहती स्त्री से दूसरी कह रही है—

वीक्ष्य सतीनां गणने रेखामेकां तया स्वनामाङ्काम् ।
सन्तु युवानो हसितुं स्वयमेवापारि नावरितुम् ॥ ५५५ ॥

पदार्थ—सतीनां गणने—सतियों की गिनती मे । स्वनामाङ्काम् एकां रेखाम्—अपने नाम की चिह्नरूप एक रेखा । वीक्ष्य—देख कर । युवानः—

उसका उपभोग करने वाले युवक । हसितुं सन्तु—हँसने को रहें । स्वयमेव—स्वयं ही । आवरितुम्—रोकने को । तया न अपारि—वह समर्थ न हुई ।

सरलार्थ—सतियों की गणना में अपने नाम की चिह्नरूप एक रेखा देख कर, उसके उपभोक्ता युवकों का हँसना दूर रहा, वह स्वयं भी अपनी हँसी को रोक नहीं सकी (लोग कितने भ्रान्त हैं, जो मुझे भी सती ही समझते हैं) ॥ ५५५ ॥

यहाँ से क्यों नहीं हट जाते, ऐसा कहती नायिका से नायक स्वयं कह रहा है—

विन्ध्याचल इव देहस्तव विविधावर्तनर्मदनितम्बः ।
स्थगयति गतिं मुनेरपि संभावितरविरथस्तम्भः ॥ ५५६ ॥

पदार्थ—विविधावर्तनर्मदनितम्बः—(१) विविधः आवर्तः चालनविशेषः यस्य स चासौ नर्मददातीति नर्मदः क्रीडाप्रदः नितम्बः यस्य सः—विविध-चालनवाला एवं क्रीडाप्रद नितम्ब है जिसका, (२) विविधाः आवर्ताः अम्भोभ्रमणानि यस्यां तादृशी नर्मदा नदी यस्मिन् तादृशः नितम्बः कटकप्रदेशः यस्य सः—विविध जल भँवर वाली नर्मदा से युक्त जिसका कटक प्रदेश है । संभावितरविरथस्तम्भः—संभावितः रविरथस्य स्तम्भः येन सः—(नितम्ब से सूर्यरथ के चक्र के पराजित हो जाने से) सूर्यरथ को रोक देना जिसने संभव कर दिया, (२) (अति उच्च होने से) सूर्यरथ की गति रुक जाना जिसने संभव कर दिया । तव देहः—तेरा शरीर । विन्ध्याचलः इव—विन्ध्याचल के समान । मुनेः अपि—(१) मननशील की भी, (२) अगस्त्य की भी । गतिं श्लथयति—गति को शिथिल कर देता है । अथवा मुनेः अपि—'वानरं चपलं ध्यायेत्' इति कामतन्त्रोक्त चिन्तन करने वाले की भी । गतिम्—सामर्थ्य को ।

सरलार्थ—विविध जलभँवर से युक्त, जिसके कटक प्रदेश में नर्मदा है, जिसने अत्युच्च होने के कारण सूर्य के रथ की गति को विच्छिन्न कर दिया, जहाँ पहुँच कर अगस्त्य मुनि की गति निरुद्ध हो गयी, ऐसे विन्ध्याचल के समान तेरा शरीर, जिसका नितम्ब विविध प्रकार से घूमता है और क्रीडाप्रद है, सूर्य के रथ के चक्र को जीत कर जिसने सूर्य के रथ की गति रोक देना संभव कर दिया—मननशील की गति को रोक देता है, तो मेरी क्या बात ।

अथवा विपरीत रत में हारा हुआ नायक, नायिका से कह रहा है—तेरा शरीर 'वानरं चपलं ध्यायेत्' इत्यादि कामतन्त्रोक चिन्तन करने वाले के भी सामर्थ्य को शिथिल कर देता है (मुझे पराजित करना तो तेरे लिये सुकर है) ॥ ५५६ ॥

पराङ्गनालम्पट तरुण से कोई स्त्री अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

वृतिभञ्जन गञ्जनसह निकाममुद्दाम दुर्नयाराम ।
परवाटीशतलम्पट दुष्टवृष स्मरसि गेहमपि ।। ५५७ ।।

पदार्थ—वृतिभञ्जन—आवरण भग्न करने वाले । गञ्जनसह—तिरस्कार सहने वाले । निकामम्—अत्यन्तम् । उद्दाम—बन्धनरहित, स्वेच्छाचारी । दुर्नयाराम—दुर्नयस्य आरामः—(बाग, बगीचा अर्थात्) दुर्नय के स्थान । परवाटीशतलम्पट—परकीय सैकड़ो उपवनों के लोभी, कामुक । दुष्टवृष—दुष्ट बैल (मूर्ख) । गेहमपि—घर को भी । स्मरसि—क्या कभी स्मरण करता है ?

सरलार्थ—हे आवरण भग्न करने वाले ! तिरस्कार सहनेवाले ! अत्यन्त बन्धन रहित, स्वेच्छाचारी, दुर्नय के घर ! परकीय सैकड़ो उपवनो के लोभी (कामुक) दुष्ट बैल ! क्या कभी तू अपने घर की भी याद करता है ? (अपनी नायिका को एकदम भुला देना तुझे उचित नहीं है) ।। ५५७ ।।

उच्चवंश मे उत्पन्न, अनेक गुणो से युक्त होने पर भी खल का विश्वास नहीं करना चाहिये—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—

वंशावलम्बनं यद्यो विस्तारो गुणस्य यावनतिः ।
तज्जालस्य खलस्य च निजाङ्कसुप्तप्रणाशाय ।। ५५८ ।।

पदार्थ—यत्—जो । वंशालम्बनम्—(१) वंशस्य अन्वयस्य अवलम्बनम् जन्यत्वम्—उच्चवंश मे जन्म लेना, (२) वंशस्य वेणोः अवलम्बनम् आश्रितत्वम्—वेणु का आश्रय लेना । गुणस्य—(१) पाण्डित्यशौर्यादेः—पाण्डित्य, शौर्य आदि का, (२) तन्तोः—तन्तु का । यः—जो । विस्तारः—(१) आधिक्य, (२) दैर्घ्य । या—जो । अवनतिः—नम्रता । तत्—यह । खलस्य जालस्य च—खल और जाल का । निजाङ्कसुप्तप्रणाशाय—निजाङ्के सुप्तः विश्वस्तः तस्य प्रणाशाय—अपने अङ्क मे सोये अर्थात् विश्वस्त का नाश करने के लिये होता है ।

सरलार्थ—दुष्ट का अच्छे कुल मे जन्म लेना, पाण्डित्य, शौर्य आदि का आधिक्य, नम्रता तथा जाल का, वेणु का आश्रय लेना, तन्तु की दीर्घता, नम्रता, यह सब विश्वस्त का विनाश करने के लिये होता है ।। ५५८ ।।

वर्षाकाल मे जाने को उद्यत नायक से नायिका की सखी कह रही है—

विन्ध्यमहीधरशिखरे मुदिरश्रेणीकृपाणसयमनिलः ।
उद्यद्विद्युज्ज्योतिः पथिकवधायैव शातयति ।। ५५९ ।।

पदार्थ—विन्ध्यमहीधरशिखरे—विन्ध्यमहीधरस्य विन्ध्याचलस्य शिखरे—

विन्ध्याचल के शिखर पर। मुदिरश्रेणीकृपाणम्—मुदिराणां मेघानां श्रेणी तद्रूप-कृपाणम् करवालम्—मेघपङ्क्तिरूप करवाल को। उद्यद्विद्युज्ज्योतिः—उद्यत् स्फुरत् विद्युद्रूपं ज्योतिः यस्य सः—विद्युत् रूप चिनगारी जिसकी स्फुरित हो रही है। अयम् अनिलः—यह वायु। पथिकवधायैव—पथिकानां वधाय एव—पथिको का वध करने के लिये ही। शातयति—तीक्ष्ण कर रहा है।

सरलार्थ—विन्ध्याचल के शिखर पर, मेघपङ्क्तिरूप करवाल को, विद्युत् रूप स्फुरणशील चिनगारी वाला यह समीरण पथिको का वध करने के लिये ही तीक्ष्ण कर रहा है (अतः अपने सदन में ही अवस्थित रहो, तुम्हें कथंचिदपि गमन करना उचित नहीं है) ॥ ५५९ ॥

परदेश से लौटा नायक, नायिका के मिलने के सौम्यतापूर्ण ढंग का वर्णन अपने सखा से कर रहा है—

व्यालम्बमानवेणीधुतधूलि प्रथममश्रुभिर्धौतम् ।
आयातस्य पदं मम गेहिन्या तदनु सलिलेन ॥ ५६० ॥

पदार्थ—व्यालम्बमानवेणीधुतधूलि—विशेषेण आलम्बमाना या वेणी तया धुता दूरीकृता धूलिः यस्य तत्—(आगे की ओर) विशेष लटकती वेणी से जिसकी धूल दूर की गयी। आयातस्य मम—परदेश से आये मेरे। पदम्—पद को। गेहिन्या—गृहिणी ने। प्रथमम्—पहिले। अश्रुभिः धौतम्—आँसुओ से धोया। तदनु—तत्पश्चात्। सलिलेन—जल से।

सरलार्थ—परदेश से घर आने पर गृहिणी ने (शिरसा प्रणाम करने से) अपनी, आगे की ओर विशेष लटकती वेणी मे मेरे चरणो की धूल पोछ कर, सर्वप्रथम उसे (चरण को) आँसू से धोया, बाद को जल से। (मुझे जो भय था कि चिरकाल प्रवास से वह मेरे पहुँचते ही कुपित होगी, उसने चरण प्रणामादि से उसे दूर कर दिया। प्रिया की यह सरलता श्लाघ्य है) ॥ ५६० ॥

विपरीत रत की समाप्ति पर, अत्यन्त थकी नायिका से, नायक कह रहा है—

वक्षःस्थलसुप्ते मम मुखमुपधातुं न मौलिमालभसे ।
पीनोत्तुङ्गस्तनभरदूरीभूतं रतश्रान्तौ ॥ ५६१ ॥

पदार्थ—रतश्रान्तौ—रतस्य श्रान्तौ—रत की समाप्ति पर अथवा रत की थकावट मे। वक्षःस्थलसुप्ते—हे वक्षःस्थल पर सोने वाली अर्थात् मेरे वक्षःस्थल पर अपना वक्षःस्थल टिका कर शयन करने वाली! मम मुखम् उपधातुम्—मेरे मुख को उपधान करने के लिये। पीनोत्तुङ्गस्तनभरदूरीभूतम्—पीनयोः उत्तुङ्गयोः स्तनयोः भरेण दूरीभूतम्—पीन और उन्नत कुच भर से दूर हो गये। मौलिम्—

(अपने) मस्तक को। न आलभसे—नम्र नहीं करती। अथवा (मेरे) मस्तक को न आलभ से स्पृशसि—न स्प्रष्टुं शक्नोषि—मेरे मस्तक का स्पर्श नहीं कर पाती है। अथवा अपने मुख को स्थापित करने के लिये, मेरे सिर को स्पर्श नहीं करती। किंतु हाथों से मेरे मस्तक को उठाकर अपना मुख उस पर रक्खो।

सरलार्थ—रत की समाप्ति पर विपरीत रत की थकान में, मेरे वक्षःस्थल पर अपना वक्षःस्थल टिका कर हे शयन करने वाली, मेरे मुख को उपधान (तकिया) बनाने के लिये पीन और उन्नत कुच भर से दूरीभूत अपने मस्तक को झुकाती नहीं, अर्थात् अपने ऐसे मस्तक को किसी तरह झुका कर मेरे मुख रूप उपधान पर रख लो। अथवा मेरे मुख को उपधान बनाने के लिये मेरे मस्तक का स्पर्श (अपने पीनोन्नत कुचों के व्यवधान के कारण) नहीं कर पाती हो। अथवा अपने मुख को स्थापित करने के लिये, तेरे पीनोन्नत कुचों से अन्तरित मेरे मस्तक का स्पर्श नहीं कर पाती हो (हाथों से मेरे मस्तक को ऊँचा कर उस पर अपना मुख रक्खो) ॥ ५६१ ॥

कोई दूती से कह रहा है—

वदनव्यापारान्तर्भावादनुरक्तमानयन्ती त्वम्।
दूति सतीनाशार्थं तस्य भुजंगस्य दंष्ट्रासि ॥ ५६२ ॥

पदार्थ—दूति! वदनव्यापारान्तर्भावात्—(१) वदनव्यापारेण वचनरचनया अन्तर्भावः परहृदयप्रवेशः तस्मात्—वचन रचना द्वारा दूसरों के हृदय में प्रवेश करने से, (२) मुख के सम्बन्ध से भीतर प्रवेश करने से। अनुरक्तम्—(१) अनुरागी को, (२) अनु पश्चात् रक्तम् रुधिरम्—बाद में रुधिर को। आनयन्ती त्वम्—(सती समुदाय को) ले आती हुई तू। सतीनाशार्थम्—सतियों का नाश करने, पातिव्रत्य भङ्ग करने के लिये। तस्य भुजङ्गस्य—(१) उस लम्पट की, (२) सर्प की। दंष्ट्रा असि—दंष्ट्रा है।

सरलार्थ—हे दूति! तू उस लम्पटरूप सर्प की दंष्ट्रा है, जैसे सर्प की दंष्ट्रा मुख के सम्बन्ध से शरीर के भीतर प्रवेश करती है और तत्पश्चात् रुधिर को लाकर सर्प के विष से संयुक्त कर मनुष्य की प्राणघातिनी बनती है उसी प्रकार तू मीठी-मीठी बातें बना कर हृदय में प्रवेश करती है, पातिव्रत्य भङ्ग कर उस लम्पट से, अनुरक्त कामिनी समुदाय को मिलाती है ॥ ५६२ ॥

इति विमलाव्याख्यासमेता वकारव्रज्या।

शकारव्रज्या

किसी विशिष्ट गुण सम्पन्न नायक की तुलना, अन्य साधारण नायकों से करती सखी से, नायिका अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

श्रीरपि भुजंगभोगे मोहनविज्ञेन शीलिता येन ।
सोऽपि हरिः पुरुषो यदि पुरुषा इतरेऽपि किं कुर्मः ॥ ५६३ ॥

पदार्थ—येन मोहनविज्ञेन—मोहनस्य सुरतस्य विज्ञेन—जिस सुरतप्रवीण ने । श्रीः अपि—लक्ष्मी को भी । भुजंगभोगे—भुजंगस्य सर्पस्य भोगे शरीरे—सर्प के शरीर रूप शय्या पर । शीलिता—भोगा । यदि । स हरिः अपि—यदि वे हरि भी । पुरुषः । इतरेऽपि—इतर लोग भी । पुरुषाः । तदा किं कुर्मः—तो हम क्या करें ।

सरलार्थ—जिन्होंने सर्प के शरीर की शय्या बना कर, लक्ष्मी का भी उपभोग किया, वे हरि भी पुरुष और इतर लोग भी पुरुष हैं तो हम क्या करें (ऐसे हरि की अन्य सामान्य पुरुषों से तुलना करना महदनुचित है) ॥ ५६३ ॥

मानिनी सामान्या वनिता से सखी कह रही है—

शङ्के या स्थैर्यमयी श्लथयति बाहू मनोभवस्यापि ।
दर्पशिलामिव भवतीं कतरस्तरुणो विचालयति ॥ ५६४ ॥

पदार्थ—या स्थैर्यमयी—स्थैर्यप्रचुरा—जो निश्चल । मनोभवस्यापि बाहू—कामदेव की भी भुजाओं को । श्लथयति—शिथिल कर देती है । दर्पशिलामिव भवतीम्—अभिमान की शिला-सी तुम को । कतरः तरुणः—कौन तरुण । विचालयति—विचालयिष्यतीत्यर्थः—विचलित कर सकेगा । इति—ऐसा । शङ्के—मैं सोचती हूँ ।

सरलार्थ—जो तुम इस प्रकार अडिग हो कि कामदेव की भी भुजाओं को शिथिल बना देती हो—वह भी विचलित नहीं कर सका अतएव अभिमान की शिला-सी (शिला पर बाण निष्फल हो जाते हैं, तुम पर भी कामदेव के बाण निष्फल हो चुके हैं) तुमको, मैं सोचती हूँ, कोई तरुण विचलित नहीं कर सकेगा । (ऐसा कोप करने पर कौन तुम्हें प्रसन्न कर पायेगा ?) ॥ ५६४ ॥

नायिका की सखी, नायक से अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

शार्दूलनखरभङ्गुर कठोरतरजातरूपरचनोऽपि ।
बालानामपि बाला सा यस्यास्त्वमपि हृदि वससि ॥ ५६५ ॥

पदार्थ—(सुवर्णयुत व्याघ्रनख, बालकों के हृदय का भूषण होता है)

शार्दूलनखरभङ्गुर—(१) शार्दूलस्य नखरः यो भङ्गुरः कुटिलः तत्सम्बुद्धिः—व्याघ्रनखकुटिल, (२) शार्दूलनखरः इव कुटिल—व्याघ्रनख के समान कुटिल। कठोरतरजातरूपरचनोऽपि—(१) कठोरतरजातरूपस्य सुवर्णस्य रचना यस्मिन् सः—जिसमें कठिनतर सुवर्ण की रचना की गयी है, (२) कठोरतरा जाता रूपस्य रचना यस्य सः—जिसके रूप की रचना कठिनतर है, सौन्दर्यशाली भी। त्वमपि—तू भी। यस्याः हृदि—जिसके हृदय में बसता है। सा—वह। बालानामपि बाला—बालकों से भी बाला, अति बालिका है।

सरलार्थ—हे व्याघ्रनखकुटिल! (व्याघ्रनख के समान आचरणशील होने से कुटिल), कठिनतर सुवर्ण से युक्त भी (कठिनतर रूप की रचनायुक्त, सौन्दर्यशाली भी) तू भी, जिसके हृदय में भूषण रूपेण बसता है (तुझमें उसकी आसक्ति होने से तू हृदय में बसता है) वह अत्यन्त बालिका (अत्यन्त मुग्धा) है। (ऐसे कुटिल में सुन्दर होने पर भी, आसक्ति रखना मूर्खता है) ॥ ५६५ ॥

नायिका की सखी, नायक से कह रही है—

श्रुत एव श्रुतिहारिणि रागोत्कर्षेण कण्ठमधिवसति।
गीत इव त्वयि मधुरे करोति नार्थग्रहं सुतनुः ॥ ५६६ ॥

पदार्थ—श्रुते एव—श्रवणसमये एव—सुनने के समय ही। श्रुतिहारिणि—(१) कर्णसुखजनके—कानों को सुख देने वाला, (२) श्रुतिभिः हारिणि—श्रुतियों से मनोहारी। संगीत मे किसी सप्तक के बाईस भागो में से एक, अथवा किसी स्वर का एक अंश 'श्रुति' कहा जाता है। स्वर का आरम्भ और अन्त इसी से होता है। रागोत्कर्षेण—(१) रागस्य प्रीतेः उत्कर्षेण—प्रीत्युत्कर्ष से, (२) श्रीरागादि के उत्कर्ष से। संगीत मे राग छः माने जाते हैं—'भैरवः कौशिकश्चैव हिन्दोलो दीपकस्तथा। श्रीरागो मेघरागश्च रागाः षडिति कीर्तिताः ॥' कण्ठमधिवसति सति—(१) कण्ठ में बसते हुए, (२) व्यक्त होते हुए। मधुरे—(१) सुन्दरे, (२) माधुर्यशालिनि—सुन्दर, माधुर्यशाली। गीते इव—गीत के समान। त्वयि—तुझमे। सुतनुः—सुन्दरी। अर्थग्रहं—(१) द्रव्यग्रह, (२) अभिप्रायग्रह। न करोति—नहीं करती है।

सरलार्थ—जैसे सुनते समय ही श्रुतियो से मनोहारी, श्रीरागादि (संगीत के छः राग) के उत्कर्ष से व्यक्त होते हुए, माधुर्यशाली गीत में (गुणों पर ही ध्यान दिया जाता है) अभिप्राय का ग्रहण नहीं किया जाता; उसी प्रकार सुनने के समय ही कर्णसुखजनक, प्रीति के उत्कर्ष से कण्ठ में बसते हुए (सखियों को भी तेरा नाम लेकर पुकार बैठती है), सुन्दर तुझमें वह सुन्दरी (गुणग्रह करती

है) द्रव्यग्रह नहीं करती है (द्रव्यादि के कारण तुझमें अनुरक्त नहीं है, किन्तु तेरे सौन्दर्यादि गुणोत्कर्ष से) ॥ ५६६ ॥

महान् का अनुकरण जब सम्यक्रूपेण किया जाता है तभी सम्यक् फल होता है—ऐसा कोई कह रहा है—

श्रीः श्रीफलेन राज्यं तृणराजेनाल्पसाम्यतो लब्धम् ।
कुचयोः सम्यक्साम्याद्गतो घटश्चक्रवर्तित्वम् ॥ ५६७ ॥

पदार्थ—कुचयोः अल्पसाम्यतः—कुच की समता अल्प अंश में करने के कारण । श्रीफलेन—बिल्वेन—बेल (बिल्वफल) ने । श्रीः—श्री प्राप्त की, 'बिल्वफल' के स्थान पर 'श्रीफल' कहा जाने लगा । तृणराजेन—ताल (ताड़) के फल ने । राज्यं लब्धम्—राज्य प्राप्त किया, वह 'ताल' के स्थान पर 'तृणराज' कहलाने लगा । सम्यक्साम्यात्—सम्यक्रूप से समता करने के कारण । घटः—घड़ा । चक्रवर्तित्वं (१—चक्रसंबन्धित्व, २—सार्वभौमत्वम्) गतः—चक्रवर्ती पद प्राप्त किया !

सरलार्थ—कुच की समता अल्प अंश में कर सकने के कारण (अल्प मात्रा में फल प्राप्त होने से) बिल्वफल ने श्री प्राप्त की (श्रीफलसंज्ञा पायी), ताड़ के फल ने राज्य प्राप्त किया (तृणराज संज्ञा पायी) तथा सम्यक् रूप से समता करने के कारण घट ने चक्रवर्ती का पद (१—चक्रसम्बन्धित्व, २—सार्वभौमत्व) प्राप्त किया ॥ ५६७ ॥

कोई नायिका, जार के साथ रत के लिये प्रयत्न करने की प्रेरणा देती, सुरत की प्रशंसा सखी से कर रही है—

श्रोणी भूमावङ्के प्रियो भयं मनसि पतिभुजे मौलिः ।
गूढश्वासो वदने सुरतमिदं चेत्तृणं त्रिदिवम् ॥ ५६८ ॥

पदार्थ—भूमौ—भूतल पर । श्रोणी—नितम्ब । मनसि—चित्त मे भय । अङ्के—उत्सङ्ग में । प्रियः—जारः । पतिभुजे—पत्युः गृहस्वामिनः भुजे—गृहस्वामी के भुज पर । मौलिः—मस्तक । गूढश्वासः वदने—मुख में गुप्त श्वास । इदम्—एतादृशम्—ऐसा । चेत्—यदि । सुरतम् (लभ्यते)—सुरत मिलता है तो । त्रिदिवम्—स्वर्गः । तृणम्—तृणतुल्यः, अगणनीयः—स्वर्ग भी तुच्छ है ।

सरलार्थ—(गृहस्वामी के साथ नायिका सोयी हुई है, उपपति के पहुँचने पर उसने धीरे से अपना सारा शरीर शय्या से नीचे भूतल पर कर दिया, केवल शिरोभाग, उपधानरूप पति के भुज पर पूर्ववत् अवस्थित रहने दिया और उपपति द्वारा सुरत कर्म सम्पादित हुआ ऐसे ही सुरत की प्रशंसा प्रस्तुत

पद्य में है) भूतल पर नितम्ब, अङ्क में प्रिय (जार पुरुष), मन में (कदाचित् पति जान जाय अथवा जग जाय ऐसा) भय, गृहस्वामी के (उपधानरूप) भुजा पर शिरोभाग; मुख में (पति सुन लेगा इस भय से) गुप्त श्वास (किसी भी प्रकार के सुरत में दोनो का श्वास तीव्र हो जाता है), इस प्रकार का सुरत यदि लभ्य हो तो स्वर्ग भी उसके आगे तुच्छ है (अतः इस प्रकार के रत की प्राप्ति का प्रयत्न करो) ॥ ५६८ ॥

नायक सखा से कह रहा है—

श्लिष्यन्निव चुम्बन्निव पश्यन्निव चोल्लिखन्निवातृप्तः ।
दधदिव हृदयस्यान्तः स्मरामि तस्या मुहुर्जघनम् ॥५६९॥

पदार्थ—श्लिष्यन्निव—आलिङ्गन करता-सा । चुम्बन्निव—चूमता सा । पश्यन्निव—देखता सा । उल्लिखन्निव—नखक्षत करता सा । हृदयस्य अन्तः—उर के भीतर रखता सा । अतृप्तः—अतृप्त मैं । तस्याः जघनम्—उसके जघन को । मुहुः—बार-बार । स्मरामि—स्मरण करता हूँ ।

सरलार्थ—आलिङ्गन करता सा, चूमता सा, देखता सा, नखक्षत करता सा, उर के भीतर रखता सा, मैं अतृप्त, इस प्रकार बार-बार उसके जघन का स्मरण करता हूँ ॥ ५६९ ॥

कुपित नायिका को नायक की सखी समझा रही है—

शिरसि चरणप्रहारं प्रदाय निःसार्यतां स ते तदपि ।
चक्राङ्कितो भुजंगः कालिय इव सुमुखि कालिन्द्याः ॥५७०॥

पदार्थ—हे सुमुखि ! शिरसि—मस्तक पर । चरणप्रहारं प्रदाय—पाद प्रहार कर । निःसार्यताम्—निकाल दिया जाय । कालिन्द्याः—यमुना का । कालियः इव—कालिय नाग के समान । तदपि—तथापि । चक्राङ्कितः—चक्रेण अङ्कितः—(१) तेरे चरण के चक्र से चिह्नित, (२) सुदर्शन चक्र से चिह्नित । सः भुजङ्गः—(१) वह जार, (२) सर्प । ते—तव—तेरा ही है ।

सरलार्थ—हे सुमुखि ! (उसके) मस्तक पर पादप्रहार कर (भले ही) उसे दूर कर दो—तुम्हारे चरण-गत चक्र से चिह्नित वह जार तथापि तुम्हारा है, जैसे यमुना से निकाला गया सुदर्शन चक्र से चिह्नित कालिय नाग यमुना का ही कहा जाता है (यमुना से हटाकर कालिय नाग को सागर में स्थान दिया गया और सुदर्शन चक्र के चिह्न से अङ्कित किया गया, जिससे गरुड़ से उसे भय न रहे) ।

अथवा सखी नायिका को उपदेश दे रही है । 'सते' यह निरवच्छिन्न पद है—कल्याण के लिये । चक्रेण—जनसंरक्षणेन अङ्कितः चिह्नितः । हे सुमुखि !

यद्यपि जनसंरक्षण से चिह्नित वह जार है तथापि सिर पर पादप्रहार कर कल्याण के लिए उसे निकाल दो (यद्यपि बहुत कुछ देता है तथापि अपकीर्ति बहुत बड़ी होती है अतः उसे निकाल देने में ही कल्याण है) ॥ ५७० ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

शोच्यैव सा कृशाङ्गी भूतिमयी भवतु गुणमयी वापि ।
स्नेहैकवश्य भवता त्यक्ता दीपेन वर्तिरिव ॥ ५७१ ॥

पदार्थ—स्नेहैकवश्य—(१) स्नेहेन प्रीत्या एकेन मुख्येन वश्य—केवल स्नेह से वश में होने वाला, गुण आदि से नहीं, (२) स्नेहेन तैलेन एकेन वश्य—केवल तैलाधीन। दीपेन वर्तिरिव—दीपक से त्यक्त बत्ती की भाँति। भवता—तुमसे। त्यक्ता—त्याग दी गयी। सा कृशाङ्गी—(१) सौन्दर्यवती, (२) पतली। भूतिमयी—(१) ऐश्वर्यवती, (२) भस्मवती। गुणमयी—(१) गुणाः सौन्दर्यादयः तत्प्रचुरा, (२) तन्तुप्रचुरा। वा—अपि। भवतु—भले ही हो। (किन्तु) शोच्या एव—शोक करने योग्य ही है।

सरलार्थ—स्नेह से केवल वश में होने वाले! तैलाधीन दीपक द्वारा त्यक्त बत्ती जैसे भूति (भस्म) मयी अथवा गुण (तन्तु) मयी भले ही हो किन्तु शोचनीय ही होती है उसी प्रकार तुमने उसे जो त्याग दिया, वह चाहे ऐश्वर्यवती अथवा गुणवती भी हो किन्तु शोच्य ही है (उसका समस्त ऐश्वर्य तथा गुणादि सब अकिंचित्कर है अतः उसके गुणादिमात्र पर ध्यान देकर उसे सुखी बनाओ)।

अथवा ऐश्वर्यगुणाधिक्य से, नायक के प्रति प्रीति न करने वाली नायिका को देखकर, उसे सच्चे मार्ग पर लाने के लिये, नायिका की सखी नायक से कह रही है—हे स्नेहैकवश्य! तुम्हारे द्वारा परित्यक्त वह ऐश्वर्यगुणयुक्ता भी शोच्य है (मेरे परित्याग कर देने पर भी गुणैश्वर्यवती होने के कारण उसे किंचिद् दुःख न होगा—ऐसा मत सोचो। स्वल्प ही समय तक परित्यक्त वह तुम्हारा अनुनय स्वयं करेगी) ॥ ५७१ ॥

नायक, सखा से कह रहा है—

शुक इव दारुशलाकापिञ्जरमनुदिवसवर्धमानो मे ।
कृन्तति दयिताहृदयं शोकः स्मरविशिखतीक्ष्णमुखः ॥ ५७२ ॥

पदार्थ—प्रतिदिवसवर्धमानः—प्रतिदिवसं वर्धते—प्रतिदिन उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ। स्मरविशिखतीक्ष्णमुखः—(१) स्मरस्य विशिखैः तीक्ष्णं मुखम् आरम्भः यस्य सः—कामदेव के बाणो से तीक्ष्ण अर्थात् दुःखद है आरम्भ जिसका, (२) स्मरविशिखीभूत किंशुक के समान तीक्ष्णमुखवाला। मे शोकः—मद्विषयक शोक। दयिताहृदयम्—दयितायाः हृदयं—प्रिया के हृदय को। कृन्तति—

छेदता है। दारुशलाकापिञ्जरम्—काठ की तीलियों वाले पिंजड़े को। शुकः इव—जैसे तोता (छेदता है)।

सरलार्थ—जैसे काठ की तीलियों वाले पिंजड़े को (उसमें बद्ध) तोता छेदता रहता है, उसी प्रकार प्रिया के हृदय को (उसमें बद्ध) प्रतिदिन उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ तथा जिसका आरम्भ, कामदेव के बाणों से दुःखद है, मद्-विषयक शोक छेदता रहता है (अतः मुझे विदेश से शीघ्र घर चलना चाहिये) ॥ ५७२ ॥

किसी गृहिणी ने विदेश से पति के लौटने का समाचार पाकर, कहीं यह तोता मेरे असत् आचरण का भण्डाफोड़ पति से न कर दे—इस शङ्का से, पति के घर पहुँचने के पहिले ही उसे मार डाला—उसके इस अकार्य की चर्चा एक स्त्री दूसरी से कर रही है—

श्रुत्वाकस्मिकमरणं शुकसूनोः सकलकौतुकैकनिधेः ।
ज्ञातो गृहिणीविनयव्यय आगत्यैव पथिकेन ॥ ५७३ ॥

पदार्थ—पथिकेन—विदेश से लौटे पति ने। शुकसूनोः—शुकः एव सूनुः तस्य—पुत्र के रूप में लालित पालित तोते का। सकलकौतुकैकनिधेः—सकल कौतुक का स्थान जो था। आकस्मिकमरणम्—विना रोगादि के ही मृत्यु। श्रुत्वा—सुन कर। गृहिणीविनयव्ययः—गृहिण्याः विनयः (आचरणम्) तस्य व्ययः नाशः—गृहिणी के आचरण का विनाश। आगत्यैव—आने के बाद ही (बिना किसी के बताये)। ज्ञातः—जान लिया।

सरलार्थ—विदेश से लौटे पति ने, सकल कौतुक के स्थान (अतएव अवश्य गृहिणी का व्यभिचार पति से बता देता), पुत्र की भाँति पाले गये (अतएव मारने के अयोग्य) तोते का (विना किसी रोग के) आकस्मिक मरण सुन कर (गृहिणी द्वारा यह मारा गया होगा) आने के बाद ही (दासी आदि के विना बताये) गृहिणी के आचरण का विनाश समझ लिया (उस मूर्ख स्त्री ने जिस रहस्य को छिपाने के लिये तोते की हत्या की, उसकी हत्या से वह रहस्य अपने आप खुल गया) ॥ ५७३ ॥

दूती, किसी नायक से मिलाने के लिये, नायिका को निर्भय बनाती कह रही है—

शीलितभुजंगभोगा क्रोडेनाभ्युद्धृतापि कृष्णेन ।
अचलैव कीर्त्यते भूः किमशक्यं नाम वसुमत्याः ॥ ५७४ ॥

पदार्थ—शीलितभुजंगभोगा—(१) भुजंगस्य सर्पस्य भोगः शरीरम् यया

सा—जिसने आधार होने के कारण सर्प के शरीर को अङ्गीकार किया, (२) शीलितः कृतः भुजंगस्य जारस्य भोगः संभोगः यया सा—जिसने जार का संभोग किया। कृष्णेन—(१) परमेश्वरेण, (२) दुष्टेन—कृष्ण द्वारा, दुष्ट द्वारा। क्रोडेन—वराहरूपेण—वराहरूप से (अङ्क से)। अभ्युद्धृता अपि—ऊपर उठायी गयी, आलिङ्गित हुई भी। भूः—(१) पृथिवी, (२) भवन्ति बहवः अपराधाः यस्याः सकाशात्—जिससे अनेक अपराध होते रहते हैं, व्यभिचारिणी। अचला एव—चाञ्चल्यरहिता ही। कीर्त्यते—कही जाती है। नाम—निश्चयेन। वसुमन्त्याः (सम्पत्तिशालिन्याः) किम् अशक्यम्—सम्पत्तिशालिनी को क्या अशक्य है।

सरलार्थ—यद्यपि भुजङ्ग के शरीर को आधाररूप में अपनाया (जार का संभोग किया), कृष्ण द्वारा वराहरूप से ऊपर उठायी गयी (दुष्ट द्वारा अङ्क में आलिङ्गित की गयी)। पृथ्वी (अनेक अपराध करनेवाली) अचला (चाञ्चल्यरहिता, पतिव्रता) ही कही जाती है। वसुमती (सम्पत्तिशालिनी) को क्या अशक्य है—वसुमती सब कुछ कर सकती है। (तू भी वसुमती—सम्पत्तिशालिनी—है, इसी प्रकार तुझे भी कोई अपकीर्ति न होगी, अतः निर्भय एवं निश्चिन्त हो परनायक की संगति कर) ॥ ५७४ ॥

पूर्वनायिका की सखी नायक से कह रही है—

श्यामा विलोचनहरी बालेयं मनसि हन्त सज्जन्ती।
लुम्पति पूर्वकलत्रं धूमलता भित्तिचित्रमिव ॥ ५७५ ॥

पदार्थ—श्यामा—(१) षोडशवार्षिकी, (२) श्यामरूपा। विलोचनहरी—(१) लोचनों को अपने में आसक्त करने वाली, (२) अश्रु उत्पन्न कर नेत्रों की दर्शनशक्ति को हर लेने वाली। मनसि सज्जन्ती—मन में स्थित। इयं बाला—यह बाला। धूमलता—धूम-परम्परा। भित्तिचित्रमिव—भित्तिस्थ चित्र को जैसे। पूर्वकलत्रं—पूर्वपत्नीम्—पूर्व पत्नी को। लुम्पति—मिटाती है, धूमिल करती है।

सरलार्थ—जैसे श्यामरूपा, अश्रु उत्पन्न कर दर्शन शक्ति को हर लेने वाली धूम परम्परा, भित्तिस्थ चित्र को मलिन बना देती है, उसे देखा नहीं जा सकता; उसी प्रकार षोडशवार्षिकी, लोचनों को अपने में आसक्त कर लेने वाली, मन में वर्तमान यह बाला, पूर्वपत्नी को उपेक्षित बना देती है।

अथवा सखी का प्रश्न है कि क्या पूर्वपत्नी को उपेक्षित बना सकती है?

अथवा काक्वा न लुम्पति इत्यर्थः—अर्थात् उपेक्षित नहीं बना सकती क्योंकि पूर्वकलत्र का स्नेह अत्यन्त दृढ़ होता है ॥ ५७५ ॥

परदेश के प्रस्थान को स्थगित कर देने वाला नायक अपने सखा से स्थगन का कारण बता रहा है—

शतशो गतिरावृत्तिः शतशः कण्ठावलम्बनं शतशः ।
शतशो यासीति वचः स्मरामि तस्याः प्रवासदिने ॥५७६॥

पदार्थ—शतशः गतिः—अनेक बार गमन । शतशः आवृत्तिः—अनेक बार आगमन । शतशः कण्ठावलम्बनम्—बार-बार गाढालिङ्गन । शतशः यामि इति वचः—अनेक बार 'जाऊँ' यह वचन । प्रवासदिने—प्रस्थान के समय । तस्याः—उसके प्रति अपने द्वारा किया हुआ यह सब । स्मरामि—स्मरण करता हूँ, अथवा प्रवास के दिन उस नायिका के अनेक गमनादि का स्मरण करता हूँ ।

सरलार्थ—(सभी क्रियाएँ नायककृत अथवा नायिकाकृत हो सकती हैं, अतः दो प्रकार से अर्थ समझना चाहिये) मेरा अनेक बार जाना, अनेक बार लौटना, (शीघ्र ही लौटूँगा, दुःख मत करो—इस प्रकार समझाते हुए) अनेक बार उसे गले लगाना, तथा (तुम्हारी आज्ञा हो तो) 'जाऊँ' इस प्रकार अनेक बार कहना; यह सब मैंने उसके प्रति, जो किया था, प्रस्थान के समय स्मरण करने लगता हूँ (अतएव विकल होकर गमन नहीं कर पाता)

(प्रस्थान दिवस की पूर्व रात्रि में, उत्कण्ठावश) उसका मेरे पास से अनेक बार जाना और अनेक बार आना, अनेक गाढालिङ्गन, (मेरे बार-बार समझाने से) 'जाती हूँ'—अनेक बार कहना, उसके ये सब, प्रवास के दिन स्मरण कर, (नायिका विरहानल से दग्ध होकर प्राण त्याग देगी—यह सोच कर) प्रस्थान स्थगित कर दिया ।

अथवा प्रवासी नायक, जब घर से चला था, उस समय की, नायिका की दशा का चिन्तन कर उक्त नायिकाकृत क्रियाओं का स्मरण करता है और अधिक दिन वहाँ नहीं ठहरना चाहता ॥ ५७६ ॥

नायककृत अनुनय से नायिका का मान बढ़ता ही गया, अतएव अभिमानी नायक भी उदासीन हो गया, अब मान शिथिल होने पर नायक को मनाने की चिन्ता में पड़ी उस नायिका से सखी कह रही है—

श्रुतपरपुष्टरवाभिः पृष्टो गोपीभिरभिमतं कृष्णः ।
शंसति वंशस्तनितैः स्तनविनिहितलोचनोऽनुमतम् ॥५७७॥

पदार्थ—श्रुतः परेण पुष्टस्य कोकिलस्य रवः याभिः ताभिः—जिन्होंने कोकिल की ध्वनि सुनी । गोपीभिः—गोपियों ने । कृष्णः अभिमतं पृष्टः—कृष्ण से उनका ईप्सित पूछा । वंशस्तनितैः—वंशस्य वेणोः स्तनितैः रवैः—वंशी के रव से ।

स्तनविनिहितलोचनः—स्तने कुचे विनिहितं लोचनं येन सः—जिसने कुच पर नेत्र स्थिर कर दिया। अनुमतम्—अपना अभिमत (आलिङ्गन रूप)। शंसति—कहता है।

सरलार्थ—(वसन्तागम में कोकिल का शब्द पहिली बार सुन कर मित्र को जो अभीष्ट हो, उससे पूछ कर दिया जाता है—यह लोक प्रथा है, तदनुसार) कोकिल की ध्वनि सुन कर गोपियों ने श्रीकृष्ण से उनका अभीष्ट पूछा और श्रीकृष्ण जी ने (वसन्त से प्रभावित) उनके स्तनों पर दृष्टि स्थिर कर वंशी की ध्वनि से (आलिङ्गन रूप) अपना अभिमत बतला दिया। (सीधी-सादी गोपियाँ भी, अनासक्त श्रीकृष्ण को भी इस प्रकार से अपने अधीन कर लेती है, तू, ऐसे वसन्तकाल में विषयरसलम्पट नायक को भी स्वाधीन क्यों नहीं बना सकती ?)

अथवा वसन्त ऋतु में 'परदेश जाना अनुचित है—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—श्रुतपरपुष्टरवाभिः—परपुष्टा (दूती) इव इति परपुष्टाः कोकिलाः। अभिमतम् (स्वस्य)—गोपियों ने अपना अभिमत। कृष्णः पृष्टः—कृष्ण से (दुःशील से) पूछा अर्थात् कृष्ण से अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रार्थना की। अनुमतम्—संमतम्।

दूती सदृश कोकिल का शब्द सुन कर (अविदग्ध) गोपियों ने अपना अभिमत (दुःशील) कृष्ण से पूछा और उन्होंने (गुप्त रीति से) वंशी की ध्वनि द्वारा कुच पर दृष्टि डाल कर अपनी संमति व्यक्त कर दी। (वसन्त में मूढ अंगनायें भी प्रमत्त होकर सत्पुरुष का विवेक छोड़कर अन्यथाचरण में संलग्न हो जाती है, तो चतुर नायिकाओं के विषय में क्या कहा जाय) ॥५७७॥

नायकसम्बन्धी प्रेमातिशय से गर्वशालिनी नायिका के प्रति, अन्योक्ति द्वारा, परनायिका की सखी कह रही है—

शंकरशिरसि निवेशितपदेति मा गर्वमुद्वहेन्दुकले।
फलमेतस्य भविष्यति तव चण्डीचरणरेणुमृजा ॥ ५७८ ॥

पदार्थ—हे इन्दुकले ! शंकरशिरसि—शंकर के सिर पर। निवेशितपदा—निवेशितं स्थापितम् पदं यया सा—जिसने चरण स्थापित किया। इति—ऐसा। गर्वम् मा उद्वह—गर्व मत कर। तव—तेरे। एतस्य—गर्वस्य—गर्व का। चण्डीचरणरेणुमृजा—चण्ड्याः चरणयोः रेणुभिः मृजा मार्जनम्—चण्डी के चरण की धूलि से मार्जनरूप। फलं भविष्यति—फल होगा।

सरलार्थ—हे इन्दुकले ! तूने शंकर के सिर पर चरण स्थापित किया है—ऐसा गर्व मत कर। तेरे गर्व का मार्जन रूप फल चण्डी की चरणधूलि से

होगा (चण्डी को मानवती देख कर चरणप्रणाम करने पर चरणरेणुमार्जन होता है; कुपित मेरी सखी तुझे चरणताडन करेगी अतः ऐसा गर्व मत कर) ॥ ५७८ ॥

इस बाधामय स्थल पर इस नायिका के साथ कैसे रहूँ—ऐसी चिन्ता में मग्न नायक को उसी स्थल पर रहने के लिए नायिका की दूती चातुर्यपूर्ण ढङ्ग से कह रही है—

शाखिशिखरे समीरणदोलायितनीडनिर्वृतं वसति ।
कर्मैकशरणमगणितभयमशिथिलकेलि खगमिथुनम् ॥५७९॥

पदार्थ—शाखिशिखरे—शाखिनः वृक्षस्य, शिखरे शिरसि—वृक्ष के शिरोभाग पर। समीरणदोलायितनीडनिर्वृतम्—समीरणेन वायुना दोलायिते चले नीडे निर्वृतं सुखितम्—वायु द्वारा चंचल घोसले में सुखी। कर्मैकशरणम्—कर्म एव एकं शरणं यस्य तत्—कर्म ही जिसका एकमात्र शरण है। अगणितभयम्—न गणितं भयं येन तत्—जिसने भय की उपेक्षा की। अशिथिलकेलि—न शिथिलः केलिः यस्य तत्—जिसकी केलि शिथिल नहीं हुई। खगमिथुनम्—खे आकाशे गच्छतीति खगः तयोः मिथुनम्—पक्षियों का जोड़ा। वसति—रहता है।

सरलार्थ—(अन्यत्र जा सकने में समर्थ भी) पक्षियो का जोड़ा, (घनतर छायायुक्त अतएव जनाकीर्ण) वृक्ष के (भयावह) शिखर पर, वायु द्वारा चंचल (अतएव पतनभययुक्त) घोसले मे, कर्म ही को एक शरण मानकर, भय की उपेक्षा कर, केलि को शिथिल न करते हुए, सुख से वसता है। (अतः तुम सुख से इसके साथ यहाँ सुरतसुख भोगते हुए रहो)।

अथवा सुरतकाल मे स्तम्भनार्थ कामशास्त्रोक्त विधि से नायिका नायक के चित्त को दूसरी ओर लगा रही है ॥ ५७९ ॥

अनेक बाधाओं के कारण संकेतस्थल पर न जा सकी नायिका, कुपित एवं कुटुम्बियों के समीप बैठे नायक से अपराधक्षमापनपूर्वक संकेतस्थल का निर्देश अन्योक्ति द्वारा कर रही है—

शुक सुरतसमरनारद हृदयरहस्यैकसार सर्वज्ञ ।
गुरुजनसमक्षमूक प्रसीद जम्बूफलं दलय ॥ ५८० ॥

पदार्थ—हे शुक (वचनरचनानिपुण)। सुरतसमरनारद—सुरत एव समरः तत्र नारद—अर्थात् सुरतरूप संग्राम के बढ़ाने वाले (सुरत में निर्दय एवं कामतन्त्राभिज्ञ)। हृदयरहस्यैकसार—(मम) हृदये यानि रहस्यानि तेषु सार, मेरे हृदय के रहस्यों में मुख्य। सर्वज्ञ—सब कुछ जानने वाले।

अथवा 'सुरतसमरनारदहृदय' यह एक पद है। सर्वदा सुरतप्रकारचिन्तन-कारिन्। रहस्य—मुख्य साररूप—(तुम्हारे अतिरिक्त मेरा दूसरा रहस्य नही)। अथवा 'सुरतसमरनारदहृदयैकसारसर्वज्ञ' इतना एक पद है—सुरत प्रकार चिन्तनकारी हृदयगत प्रधान रहस्य जो गोप्य होता है उसे तुम जानते हो अतः संकेतस्थल पर न पहुँचने का कारण जानना तुम्हें सरल है। गुरुजनसमक्षमूक—(१) गुरुजनसमक्षे मूक—गुरुजन के सामने श्लेषकाकादि से भी वात करने में असमर्थ, (२) गुरु जडः (रहस्यकारणानभिज्ञः) यो जनः (स्वीयो मदीयो वा) तत्समक्षे मूक—मेरे या तुम्हारे जन जो रहस्य नहीं जानते हैं उनके सामने मूक (क्योकि अपने व्यक्ति से भी रहस्य कहने योग्य नहीं होता)। प्रसीद—प्रसन्नता को प्राप्त करो, कृपा करो, क्रोध का परित्याग करो। जम्बूफलं दलय—(१) जम्बूफल काटो अर्थात् खाओ, (२) जम्बूफल कुचलो।

सरलार्थ—हे शुक (वचनरचनानिपुण), सुरतरूप संग्राम के बढ़ाने वाले (सुरत में निर्दय एवं कामतन्त्राभिज्ञ), मेरे हृदय के रहस्यो में मुख्य, सब कुछ जानने वाले, गुरुजन के समक्ष मूक, प्रसन्न हो जाओ, कृपा करो (मेरा अपराध क्षमा करो), जम्बूफल खाओ (संकेतस्थल पर न पहुँच पाने का मेरा पूर्व अपराध क्षमा कर अब जम्बूवृक्ष के नीचे रहना, मैं वहाँ शीघ्र ही आ रही हूँ)।

अथवा नायिका संकेतस्थलरूप जामुन के पेड़ के नीचे गयी थी, समय पर भक्ष्य न पाने से क्षुधित शुक को देखकर, गुरुजनों से मेरा अनाचरण यह कह देगा—ऐसा सोच कर डरी हुई, वहाँ से उसके लिए लाये गये जामुन का फल देती हुई उसकी प्रसादना कर रही है—हे शुक! (तुम व्यासात्मज शुकरूप हो, अतः तुम्हे क्रोध नहीं करना चाहिए)। सुरतसङ्ग्रामनारद (तुम्हे भी जितना सुरतसंग्राम प्रिय है उतना भोजन नही, यह सोचकर मै वहाँ गयी)। हृदयरहस्यैकसारसर्वज्ञ (मेरी मनोजपीड़ा जानते ही हो, उसी को दूर करने मै गयी थी, अतः क्रोध करना तुम्हे उचित नही)। सर्वज्ञ (मेरे अपराध को क्षमा करने मे समर्थ हो) अतः प्रसन्न हो कर जम्बूफल का भक्षण करो (मैंने स्वार्थसम्पादन ही नहीं किया, तुम्हारा अर्थ भी पूर्ण किया) ॥ ५८० ॥

अपने आश्रित परिवार वालो की संख्या अधिक न होने पर भी, दुःख उठाकर द्रव्यार्जन करना अनुचित है ऐसा, कोई किसी से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

शिरसा वहसि कपर्दं रुद्र रुदित्वापि रजतमर्जयसि ।
अस्याप्युदरस्यार्थं भजतस्तव वेत्ति कस्तत्त्वम् ॥ ५८१ ॥

पदार्थ—हे रुद्र ! शिरसा—सिर पर । कपर्दम्—(१) जटाजूट, (२) कौडी । वहसि—रखते हो । रुदित्वा अपि—रोदन करके भी । रजतम्—चाँदी । अर्जयसि—अर्जन करते हो । 'सोऽरोदीद्यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इत्याद्यर्थवाद से, रुद्र के रोने से रजत की उत्पत्ति हुई । 'अग्नौ वामं वसु च संदधत इति'—अग्निरोदन से रजत की उत्पत्ति हुई, अष्टमूर्ति होने से रुद्र अग्निरूप हैं अतः उक्त कथन में असंगति नहीं । अस्य उदरस्यार्धं भजतोऽपि—(एक पेट को कौन कहे) आधा पेट ही रखते हो (क्योंकि अर्धनारीश्वर होने से आधा पेट पार्वती के भाग में चला गया) ।

सरलार्थ—हे रुद्र (तुम्हे अपना पूरा पेट भी नही भरना है) आधा पेट ही तुम्हारे है तथापि (तुम इस प्रकार द्रव्यार्जन करते हो) कपर्द (१—जटाजूट, २—कौडी) सिर पर रखते हो, रोकर भी चाँदी का अर्जन करते ह (कष्ट से रोते रहते हो परन्तु अर्जन करने की आदत नहीं छोड़ते हो) ॥ ५८१ ॥

कोई किसी सामान्य वनिता से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

श्रोतव्यैव सुधेव श्वेतांशुकलेव दूरदृश्यैव ।
दुष्टभुजंगपरीते त्वं केतकि न खलु नः स्पृश्या ॥ ५८२ ॥

पदार्थ—हे केतकि ! दुष्टभुजंगपरीते—(१) दुष्टसर्पव्याप्ते, (२) दुष्टलम्पटव्याप्ते ! नः—हमारी । त्वं खलु न स्पृश्या—तू निश्चय स्पर्श करने योग्य नहीं । किन्तु । सुधा इव—सुधा के समान । श्रोतव्या एव—सुनने ही योग्य, ग्रहण करने योग्य नहीं । श्वेतांशुकला इव—श्वेताः अंशवः किरणाः यस्य सः (चन्द्रः) तस्य कला इव—जिसकी किरणें श्वेत हैं उस चन्द्र की कला के समान । दूरदृश्या एव—दूर से ही देखने योग्य हो अर्थात् नही । सर्वत्र वक्रोक्ति है ।

सरलार्थ—हे केतकि ! तू दुष्ट सर्प से व्याप्त है अतः सुधा के समान (भुजंगसंरक्षित) तुझे सुना ही जा सकता है, ग्रहण नहीं किया जा सकता; चन्द्रकला के समान दूर से ही देखी जा सकती है, हम तुझे स्पर्श भी नहीं कर सकते (वक्रोक्ति से, तुझे ग्रहण कर सकते है, निकट से देख सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं परन्तु विवशता है, तू दुष्ट भुजंग से व्याप्त है—उसके भय से हम निकट भी नहीं आ सकते (सुधा के समान तू जीवन-प्रदात्री, चन्द्रकला के समान तापापहारिणी है तथापि उस प्रबल लम्पट के भय से हमारा आगमन नहीं हो पाता) ॥ ५८२ ॥

नायक नायिका की दूती से कह रहा है—

श्रवणोपनीतगुणया समर्पयन्त्या प्रणम्य कुसुमानि ।
मदनधनुर्लतयेव त्वया वशं दूति नीतोऽस्मि ॥ ५८३ ॥

पदार्थ—हे दूति ! प्रणम्य—(१) नमस्कार करके, (२) झुककर । कुसुमानि—(१) नायिकाप्रेषित पुष्पो को, (२) कामदेव के बाणरूप पुष्पो को । समर्पयन्त्या—समर्पित करती हुई । श्रवणोपनीतगुणया—(१) श्रवणम् उपनीतः गुणः (सौन्दर्यादिः) यया तया—(१) जिसने नायिका का गुण कान तक पहुँचाया, (२) श्रवणम् उपनीतः आकृष्टः गुणः ज्या यस्याः तया—जिसकी ज्या (डोरी) कानो तक खींची गयी । त्वया—तूने । मदनधनुर्लतया इव—कामदेव की धनुर्लता के समान । वशं नीतः अस्मि—मुझे स्वाधीन बना लिया ।

सरलार्थ—(जैसे कामदेव द्वारा) कान तक खींची गयी प्रत्यंचा वाली मदनधनुर्लता, बाण रूप पुष्पो को समर्पित कर अपने अधीन बना लेती है उसी प्रकार तू ने नायिका के गुणो को मेरे कान तक पहुँचा कर, उसके भेजे पुष्पो को समर्पित कर मुझे स्वाधीन बना लिया (अतः मुझे अवश्य आना है, आऊँगा ही) ॥ ५८३ ॥

कोई, किसी से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

शाखोटकशाखोटजवैखानसकरटपूज्य रट सुचिरम् ।
नादरपदमिह गणकाः प्रमाणपुरुषो भवानेकः ॥ ५८४ ॥

पदार्थ—शाखोटकशाखोटजवैखानसकरटपूज्य—शाखोटकः वृक्षविशेषः (सिंहोर इति लोके) तस्य शाखायाम् उटजं पर्णशाला तत्सम्बन्धिनो ये मुनयः करटाः काकाः तेषु पूज्य !—सिंहोर वृक्ष की शाखारूप उटज के काकरूप मुनियो में पूज्य, काकश्रेष्ठ ! सुचिरम्—चिरकाल तक । रट—रटो । इह—यहाँ । गणकाः—दैवज्ञाः, आदरस्थानं न—दैवज्ञो का आदर नहीं । भवानेकः प्रमाणपुरुषः—शुभाशुभ निर्णय के लिए तुम्हीं प्रमाणपुरुष हो !

सरलार्थ—हे काकश्रेष्ठ ! चिरकाल तक रटते रहो । यहाँ दैवज्ञो को आदर नहीं मिलता । शुभाशुभ निर्णय में तुम्ही एक प्रमाणपुरुष हो (जहाँ तुम्हारे समान मूर्ख हैं, वहाँ हमारे समान विद्वानो को बोलने का अवकाश नहीं) ॥ ५८४ ॥

किसी नायक की दूती, नायिका से कह रही है—

शशिरेखोपमकान्तेस्तवान्यपाणिग्रहं प्रयातायाः ।
मदनासिपुत्रिकाया इवाङ्गशोभां कदर्थयति ॥ ५८५ ॥

पदार्थ—शशिरेखोपमकान्ते—शशिनः रेखा अङ्कश्रीः सा उपमा यस्याः तादृशी कान्तिः यस्याः तस्याः—चन्द्राङ्कश्री के समान जिसकी कान्ति है । अन्यपाणिग्रहं प्रयातायाः—अन्यस्य पाणिग्रहं प्रयातायाः प्राप्तायाः—अन्य की सङ्गति को प्राप्त । तव—तेरी । मदनासिपुत्रिकायाः इव—मदनस्य असिपुत्रिका छुरिका तस्यां

इव—मदन की छुरीका की-सी। अङ्गशोभाम्—अङ्गशोभा को। कदर्थयति—कदर्थयिष्यति—बुरी गति करेगा।

सरलार्थ—अन्य नायक की संगति यदि करोगी तो वह, चन्द्राङ्गश्री के समान कान्ति वाली, मदन की छुरिका-सी तेरे अङ्ग की शोभा की बुरी गति करेगा, उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा (अतः मेरे बताये हुए नायक की ही तुझे सङ्गति करनी चाहिए, अन्य की नहीं) ॥ ५८५ ॥

सद्वृत्त ही स्वामी का कार्य सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं, दूसरे नहीं,—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

शैथिल्येन भृता अपि भर्तुः कार्यं त्यजन्ति न सुवृत्ताः।
बलिनाकृष्टे बाहौ वलयाः कूजन्ति धावन्ति ॥ ५८६ ॥

पदार्थ—सुवृत्ताः—(१) शोभनं वृत्तं चरित्रं येषां ते—जिनका वृत्त (चरित्र) उत्तम है, (२) सुष्ठु वृत्ताः—अत्यन्त वर्तुल। शैथिल्येन भृताः अपि—(१) शिथिलता (मन्दता) से व्याप्त अथवा (स्वामी द्वारा) शिथिलतापूर्वक (उपेक्षापूर्वक) पोषित भी, (२) ढिलाई से धारण किये गये अर्थात् ढीले। भर्तुः कार्यं—स्वामी के कार्य को। न त्यजन्ति—नहीं छोड़ते हैं। बलिना—बलवान् द्वारा। बाहौ आकृष्टे—भुजा खींची जाने पर। वलयाः—कङ्कण। धावन्ति—दौड़ते हैं। कूजन्ति—शब्द करते हैं।

सरलार्थ—सुवृत्त (शोभन चरित्र वाले), मन्दता से व्याप्त भी, अथवा स्वामी द्वारा शिथिलतापूर्वक (उपेक्षा के साथ) भृत (पोषित) भी, स्वामी के कार्य को नहीं छोड़ते हैं। बलवान् द्वारा भुजा खींचा जाने पर सुवृत्त (सुवर्तुलाकार) शैथिल्येन भृत (ढीले) कङ्कण दौड़ पड़ते हैं और शब्द करने लगते हैं। (अचेतन कङ्कण भी ऐसा करते हैं तो चेतन प्राणियों की क्या बात !) (सामान्य कथन का विशेष द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है) ॥ ५८६ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता शकारव्रज्या।

षकारव्रज्या

नायक नायिका की प्रशंसा कर रहा है—

षट्चरणकीटजुष्टं परागघुणपूर्णमायुधं त्यक्त्वा।
त्वां मुष्टिमेयमध्यामधुना शक्तिं स्मरो वहति ॥ ५८७ ॥

पदार्थ—षट्चरणकीटजुष्टम्—षट् चरणाः यस्य सः (भ्रमरः)—जिसके

छः पैर हैं अर्थात् भ्रमर, तद्रूपैः कीटैः क्षुण्णम् युक्तम्—भ्रमर रूप कीड़ों से प्रयुक्त, अर्थात् भ्रमर रूप कीड़ों ने जिसे खा लिया है। परागघुणपूर्णम्—परागः पुष्परजः तद्रूपघुणैः काष्ठचूर्णैः पूर्णम्—पुष्परजरूप घुनों से भरा। आयुधम्—शरासन को। त्यक्त्वा—त्याग कर। स्मरः—कामदेव। अधुना—अब, इस समय। मुष्टिमेयमध्याम्—मुष्टिना मेयः मध्यः कटिप्रदेशः यस्याः ताम्—जिसका मध्यभाग (कटि प्रदेश) मुट्ठी से नापने योग्य अर्थात् मुट्ठी में आ जाने योग्य है, कृशोदरी। त्वाम्—तुमको। शक्तिम्—त्वद्रूप शक्ति (अस्त्रविशेष) को। वहति—धारण करता है; रखता है।

सरलार्थ—(मदनधनुष की मौर्वी मधुकर रूप होने से) जिसमें भ्रमर-रूप कीड़े लग चुके हैं (खाकर निर्बल बना दिया है), पुष्परजरूप घुन से (मदनधनुष पुष्परूप होने से) जो भर गया है (अतएव पूरा काम न दे सकने के कारण) उस धनुष का परित्याग कर, कामदेव अब इस समय, मुट्ठी में आ जाने वाले कटिप्रदेश वाली—तुम कृशोदरी को शक्तिरूप (अस्त्रविशेष रूप) में धारण करता है (तुमको पाकर मदन वीर अत्यन्त प्रबल हो गया) ॥ ५८७ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता पकारव्रज्या।

सकारव्रज्या

सपत्नीदुःख से दुःखित नायिका को नायकसखी समझा रही है—

सा दिवसयोग्यकृत्यव्यपदेशा केवलं गृहिणी।
द्वितिथेर्दिवसस्य परा तिथिरिव सेव्या निशि त्वमसि ॥ ५८८ ॥

पदार्थ—सा—वह। दिवसयोग्यकृत्यव्यपदेशा—दिवसस्य योग्यानि कृत्यानि कार्याणि एव व्यपदेशः मिषः यस्याः सा—दिन के योग्य कार्य ही जिसका व्याज है। केवलम् गृहिणी—केवल गृहिणी है। द्वितिथेः—द्वे तिथी यस्मिन् तस्य—दो तिथि वाले। दिवसस्य—दिन की। परा तिथिः इव—दूसरी तिथि के समान। निशि—रात में। त्वं सेव्या—तू सेव्य। असि—है।

सरलार्थ—वह नायिका दिन योग्य कार्य करने से उसकी गृहिणी है। जैसे दो तिथि वाले दिन की दूसरी तिथि रात्रि में सेव्य होती है उसी प्रकार रात में तू सेव्य है (वह केवल गृहकार्य के लिए, तू सुरत-सुख के लिए है) ॥ ५८८ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

स्तननूतननखलेखालम्बी तव घर्मबिन्दुसंदोहः ।
आभाति पट्टसूत्रे प्रविशन्निव मौक्तिकप्रसरः ॥ ५८९ ॥

पदार्थ—स्तनयोः नूतननखलेखाः तासाम् अवलम्बी—तेरे स्तनो की नूतन (अतएव लाल) नखरेखाओ पर पड़ा हुआ । तव घर्मबिन्दुसंदोहः—स्वेदबिन्दु-समूह । पट्टसूत्रे—रेशमी धागे में । मौक्तिकप्रसरः—मोतियों का प्रसार । प्रविशन् इव—प्रवेश करता सा । आभाति—शोभित हो रहा है ।

सरलार्थ—तेरे स्तनो की तात्कालिक (लाल) नखरेखाओं पर धीरे-धीरे खिसकते प्रस्वेद बिन्दु मानो रेशमी धागे में मोती दाने प्रविष्ट होते हुए, शोभित हो रहे है । (इस प्रकार नखक्षत, प्रस्वेद आदि प्रत्यक्ष रतचिह्न होते हुए भी मुझसे छिपाती है—यह छिप नहीं सकता) ॥ ५८९ ॥

सखी, सामान्य वनिता को उपदेश दे रही है—

सौभाग्यगर्वमेका करोतु यूथस्य भूषणं करिणी ।
अत्यायामवतोर्या मदान्धयोर्मध्यमधिवसति ॥ ५९० ॥

पदार्थ—यूथस्य—करिसमूह का । भूषणम् । करिणी—हस्तिनी । एका—केवल । सौभाग्यगर्वं करोतु—सौभाग्य का गर्व करे । या—जो । अत्यायामवतोः—अत्यन्तविशालयोः—अत्यन्त भारी डील-डौल वाले । मदान्धयोः—मदशाली दो गजो के । मध्यम् अधिवसति—बीच में रहती है ।

सरलार्थ—करिसमूह का भूषण केवल करिणी ही सौभाग्य का गर्व करे, जो विशालकाय, मदोन्मत्त दो गजो के बीच मे रहती है (दोनो का समाधान करती है) (इसी प्रकार तुझे भी सब नायको का समाधान करना चाहिए) ॥५९०॥

मानिनी नायिका, पति का अवमान करके, पश्चात् परितप्त, सखीपरिवृत नायक के पास आयी और अपनी लघुता छिपाने के लिए नायक से कह रही है—

स्वचरणपीडानुमितत्वन्मौलिरुजाविनीतमात्सर्या ।
अपराद्धा सुभग त्वां स्वयमहमनुनेतुमायाता ॥ ५९१ ॥

पदार्थ—स्वचरणपीडानुमितत्वन्मौलिरुजाविनीतमात्सर्या—स्वचरणस्य पीडया अनुमिता या तव मौलेः मस्तकस्य रुजा वेदना तया विनीतं विशेषेण अपहृतं मात्सर्यं यस्याः सा—(तुझ पर प्रहार करने से संजात) अपने चरण की पीडा से तेरे मस्तक की अनुमित वेदना से जिसने ईर्ष्या का परित्याग कर दिया । अप-राद्धा—स्वयम् अपराध जिसने किया । सुभग ! त्वाम् अनुनेतुम्—तुमसे प्रार्थना करने, तुम्हे मनाने । अहम् आगता—मै आ गयी ।

सरलार्थ—हे सुभग ! (तुम पर प्रहार करने से संजात) अपने चरण की पीड़ा से तुम्हारे मस्तक को कितनी पीड़ा हुई होगी—इसका अनुमान लगा कर मैं मात्सर्य त्याग कर, स्वयम् अपराधिनी, तुमसे प्रार्थना करने, तुम्हें मनाने आयी हूँ।

अथवा स्वयम् उत्कण्ठिता नायिका, सखीपरिवृत नायक के पास आयी, अनाहूत आगमन से होने वाली लघुता का परिहार करने के लिए वचनरचना-पूर्वक उपर्युक्त प्रकार से कह रही है ॥ ५९१ ॥

अनुरक्तजनों को पीडा पहुँचाने मे सेना की सफलता नहीं है, अपितु प्रबल-शत्रुओं को खदेडने मे समर्थ सेना ही वास्तव में सेना है और उस सेना का नायक ही सफल नायक है—ऐसा, कोई कह रहा है—

स्नेहमयान्पीडयतः किं चक्रेणापि तैलकारस्य।
चालयति पार्थिवानपि यः स कुलालः परं चक्री ॥ ५९२ ॥

पदार्थ—स्नेहमयान्—(१) तैलप्रचुरान्—तैलप्रचुरों को, (२) प्रीति-प्रचुरान्—अत्यन्त प्रीति रखने वालों को। पीडयतः तैलकारस्य—पेरते हुए, पीडित करते हुए तैलकार के। चक्रेण अपि—(१) यन्त्रविशेष से भी, (२) सेना से भी। किम्—क्या। ('शस्त्रभेदे च सेनायां चक्रम्' इति)। यः—जो। पार्थिवानपि—(१) पृथ्वीविकारान् घटादीनपि—पृथ्वीविकार घटादि को भी, (२) पृथिव्याः ईश्वराः पार्थिवाः तानपि, भूपतीनपि—राजाओं को भी। चालयति—(१) भ्रामयति—घुमाता है, (२) स्थानभ्रष्टान् करोति—अपने स्थान से भ्रष्ट कर देता है। सः कुलालः—वह कुम्भकार। परम्—उत्कृष्ट। चक्री—(१) चक्रवान्—यन्त्रविशेषवान्, चक्रवाला (चक्र, जिसे घुमा-घुमाकर उस पर स्थित मिट्टी के लोदे से घट आदि की रचना कुम्भकार करता है, लोक मे जिसे 'चाक' कहते हैं), (२) सेनावान्—सेनावाला है।

सरलार्थ—तैलप्रचुरों (स्निग्ध जनों) को पीडित करने वाले तैलकार के चक्र (१—यन्त्रविशेष, २—सेना) से क्या फल अर्थात् कुछ भी नहीं। जो पार्थिवों (१—घटादि पृथ्वीविकारों, २—महीपतियों) को भी चलाता (घुमाता, स्थानभ्रष्ट करता) है, वह कुम्भकार उत्कृष्ट चक्री (१—चक्रयन्त्रविशेषवान्, २—सेनावान्) है। (केवल सेनादि रखने से कुछ नहीं होता, उसकी प्रतिष्ठा तो स्निग्ध जनों की रक्षा तथा शत्रुओं के दमन में ही है) ॥ ५९२ ॥

सखी अभिमानशालिनी नायिका से कह रही है—

सरले न वेद भवती बहुभङ्गा बहुरसा बहुविवर्ता।
गतिरसतीनेत्राणां प्रेम्णां स्रोतस्वतीनां च ॥ ५९३ ॥

पदार्थ—हे सरले ! बहुभङ्गा—बहुः भङ्गः (१—वक्रता, २—विच्छेदः, ३—तरङ्गः) यस्यां सा—जिसमें (१) अत्यन्त वक्रता, (२) अत्यन्त विच्छेद, (३) अत्यन्त तरङ्ग होती है। बहुरसा—बहुः रसः (१—शृङ्गारादिः, २—हर्षः, ३—जलम्) यस्यां सा—(१) शृङ्गारादिमती (बहुविषयकप्रेमवती—'बहुपु रसः यस्याः सा' ऐसा विग्रह करने पर), (२) बहुहर्षवती, (३) बहुजलवती। बहुविवर्ता—बहुः विवर्तः (१—कपटः, २—प्रकारः, ३—जलभ्रमणम्) यस्यां सा—(१) बहुकपटवती, (२) बहुप्रकारा, (३) बहुजलभ्रमणवती (बहुत भँवर वाली)। असतीनयनानां—असती के नेत्रों की। प्रेम्णाम्—प्रेम की। स्रोतस्वतीनाम्—नदीनाम्—नदियों की। गतिः—(१) कटाक्षादि, (२) स्थिति, (३) गमन। भवती न वेद—तू नहीं जानती है।

सरलार्थ—हे सरले ! असती के नेत्रों, प्रेम तथा नदियों की गति (१—कटाक्षादि, २—स्थिति, ३—गमन) को तू नहीं जानती। इनमें क्रमशः असती के कटाक्षादि में वक्रता, बहुविषयक प्रेम अथवा शृंगारादि तथा कपट, प्रेम की स्थिति में विच्छेद, हर्ष एवं विविधता तथा नदी के गमन मे तरङ्ग, जल तथा भँवर होती है (अतः प्रेम में विच्छेद अवश्यंभावी है अतः अभिमान त्याग कर, नायक का समाधान करती हुई तू प्रेम की रक्षा कर) ॥ ५९३ ॥

नायिका सखी से कह रही है—

सखि मध्याह्नद्विगुणद्युमणिकरश्रेणिपीडिता छाया।
मज्जितुमिवालवाले परितस्तरुमूलमाश्रयति ॥ ५९४ ॥

पदार्थ—हे सखि ! मध्याह्नद्विगुणद्युमणिकरश्रेणिपीडिता—मध्याह्ने द्विगुणीभूता या द्युमणेः सूर्यस्य करश्रेणिः किरणसमूहः तया पीडिता छाया—दोपहर में दूनी हो गयी सूर्य की किरणमाला से पीडित छाया। आलवाले—आलवाल में (थाला में)। मज्जितुम् इव—मानो मग्न होने के लिए। परितः—सब ओर से। तरुमूलमाश्रयति—वृक्षमूल का आश्रय ले रही है।

सरलार्थ—हे सखि ! दोपहर में सूर्य की किरणे दूनी तीव्र हो गयी हैं, उनसे पीडित छाया मानो आल-वाल में मग्न होने के लिए वृक्षमूल का आश्रय ले रही है (ऐसे निदाघकाल में कोई घर से बाहर नहीं निकलता अतः उपवन में नायक को ले चलो, मैं भी अभी आ रही हूँ)।

अथवा सखी नायिका से कह रही है—जब सूर्य की प्रखर किरणो से दुःखी प्राण-त्याग भी करने को उद्यत, जड़ छाया भी अपना आश्रय नहीं छोड़ती है तो तुझे भी प्रिय के चरणों मे ही स्थित होना चाहिए ॥ ५९४ ॥

'मेरा प्रिय मुझ में अत्यन्त अधिक अनुराग रखता है'—ऐसा कहती तरुणी से कोई स्त्री कहती है—

सखि शृणु मम प्रियोऽयं गेहं येनैव वर्त्मनायातः ।
तन्नगरग्रामनदीः पृच्छति सममागतानन्यान् ॥ ५९५ ॥

पदार्थ—हे सखि ! शृणु—सुन । अयं मम प्रियः—यह मेरा प्रिय । गेहम्—(परदेश से) घर को । येनैव वर्त्मना आयातः—जिस मार्ग से ही आया । तन्नगरग्रामनदीः—उस मार्ग में पड़े हुए नगरों, गाँवों और नदियों को । समम् आगतान्—अपने साथ आये हुए । अन्यान्—अन्य साथियों से । पृच्छति—पूछता है ।

सरलार्थ—हे सखि ! सुन । यह मेरा प्रिय परदेश से जिस मार्ग द्वारा घर को आया, उसी मार्ग में पड़े नगरों, गाँवों और नदियों को (मेरे ही ध्यान में निमग्न होने से न जान सकने के कारण) अपने साथ आये अन्य साथियों से पूछता है (अतः न तो मेरे नायक के तुल्य तुम्हारा नायक है और न मेरे तुल्य तुम ही हो) ।

अथवा प्रिय के प्रति मान करने के लिए सलाह देने वाली सखी से नायिका कहती है—जो मुझ में इतना निमग्नचित्त है कि अपने मार्ग में स्थित कौतुकमय नगरों आदि को भी ज्ञात नहीं कर सका, उसी को मानादि कर के दुःखी करना मुझे उचित नहीं प्रतीत होता ॥ ५९५ ॥

यह सायंकाल वियोगिनी को अत्यन्त दुःखद है—ऐसा, नायिका सखी से कह रही है—

सायं रविरनलमसौ मदनशरं स च वियोगिनीचेतः ।
इदमपि तमःसमूहं सोऽपि नभो निर्भरं विशति ॥ ५९६ ॥

पदार्थ—सायम्—सायंकाल में । रविः—सूर्य । अनलं विशति—अग्नि में प्रविष्ट होता है । असौ—अनलः—अग्नि । मदनशरम्—कामदेव के बाण में । स च—और वह मदनशर । वियोगिनीचेतः—विरहिणी के चित्त में । इदमपि—और विरहिणी का चित्त । तमःसमूहम्—तमःसमुदाय में (अज्ञान-समुदाय में, अन्धकार-समुदाय में) । सोऽपि—वह तमःसमूह भी । निर्भरम्—अत्यन्त । नभः विशति—आकाश में प्रविष्ट होता है (ज्यों-ज्यों रात होगी, त्यों-त्यों मेरा चित्त शून्य होगा । अतः प्रियतम को ले आने में शीघ्रता करो) ॥ ५९६ ॥

नायिका, नायक को संकेतस्थल बता रही है—

स्मरसमरसमयपूरितकम्बुनिभो द्विगुणपीनगलनालः ।
शीर्णप्रासादोपरि जिगीषुरिव कलरवः क्वणति ॥ ५९७ ॥

पदार्थ—स्मरसमरसमयपूरितकम्बुनिभः—स्मरस्य मदनस्य समरसमये पूरितः यः कम्बुः शङ्खः तन्निभः—मदनयुद्ध के समय (मुख की फूँक से) भरा गया शङ्ख सदृश । द्विगुणपीनगलनालः—द्विगुणितं पीनं गलनालं यस्य सः—दूना पीन (मोटा) कण्ठनाल है जिसका । कलरवः—कलः मधुरः रवः कण्ठस्वरः यस्य सः (कपोतः)—जिसका कण्ठस्वर मधुर है अर्थात् कपोत । जिगीषुः इव—जेतुम् इच्छति जिगीषति इति जिगीषुः, जयेच्छुः इव—मानो जय की इच्छा कर रहा है । शीर्णप्रासादोपरि—जर्जर प्रासाद के ऊपर । क्वणति—बोल रहा है ।

सरलार्थ—मदनयुद्धसमय मे (मुख की फूँक से) भरे हुए शंख सदृश, अतएव दूने मोटे कण्ठनाल वाला कपोत, जय का इच्छुक-सा, जर्जर प्रासाद के ऊपर मधुर ध्वनि कर रहा है (वहीं आकर मिलो, क्योंकि ऊँचा होने से श्रमहारी वायु उपलब्ध रहेगा, शीर्ण होने से दूसरे उस पर चढ़ नहीं सकते, कपोत ध्वनि के रूप में उद्दीपन सामग्री भी प्रस्तुत है) ॥ ५९७ ॥

सिसक-सिसक कर रोती नायिका को सखी शिक्षा दे रही है—

स्फुरदधरमविरताश्रु ध्वनिरोधोत्कम्पकुचमिदं रुदितम् ।
जानूपनिहितहस्तन्यस्तमुखं दक्षिणप्रकृतेः ॥ ५९८ ॥

पदार्थ—स्फुरदधरम्—स्फुरन् अधरः यस्मिन् तत्—जिसमें अधर काँप रहा है । अविताश्रु—अविरतानि अविच्छिन्नानि अश्रूणि यस्मिन् तत्—जिसमे अश्रु अविच्छिन्न है । ध्वनिरोधोत्कम्पकुचम्—ध्वनेः रोधेन उत्कम्पौ कुचौ यस्मिन् तत्—ध्वनि को रोकने से जिसमें स्तन अत्यन्त कम्पन युक्त है । जानूपनिहितहस्तन्यस्तमुखम्—जानुनि उपनिहितः यः हस्तः तस्मिन् न्यस्तं मुखं यस्मिन्—जिसमें घुटने पर स्थापित हाथ पर मुख रक्खा गया है । इदं रुदितं—ऐसा रुदन । दक्षिणप्रकृतेः—सरल प्रकृति वाली का है ।

सरलार्थ—जिसमें अधर काँप रहा है, अश्रु अविच्छिन्न हैं, ध्वनि को रोकने से कुच काँप रहे हैं, घुटने पर टिके हाथ पर मुख रक्खा है, इस प्रकार रोना तो सरल प्रकृति वाली का होता है (तुझे इस प्रकार रोना शोभा नहीं देता) ।

अथवा इस प्रकार रोने से कोई जान नहीं पाता, तुझ-सी सरल प्रकृति को सिसक-सिसक कर रोना चाहिये—ऐसा सखी नायिका को सिखा रही है ॥५९८॥

कोई सामान्य वनिता, किसी दूसरी सामान्य वनिता से, चातुर्यपूर्ण वचन से कह रही है—

स्वयमुपनीतैरशनैः पुष्णन्ती नीडनिर्वृतं दयितम् ।
सहजप्रेमरसज्ञा सुभगागर्वं बकी वहतु ॥ ५९९ ॥

पदार्थ—स्वयम् उपनीतैः आहृतैः—स्वयं लाये गये। अशनैः—भक्ष्य पदार्थों से। नीडनिर्वृतम्—नीडे निर्वृतं सुखितम्—घोंसले में सुखित। दयितम्—प्रिय को। पुष्णन्ती—पोषण करती। सहजप्रेमरसज्ञा—स्वाभाविक प्रेम के रस को जानने वाली। बकी—बगुली। सुभगागर्वम्—सुभगायाः गर्वम्—सौभाग्यशालिनी का गर्व। वहतु—करे, रक्खे। अथवा 'सुभगा' भिन्नपद 'बकी' का विशेषण है।

सरलार्थ—स्वयम् अशन जुटाकर, नीड में सुख से स्थित प्रिय का पोषण करती, सहज प्रेम का रसास्वाद लेती सौभाग्यशालिनी बकी, सौभाग्यशालिनी होने का गर्व रक्खे (जो अपने द्रव्य से नायक का पोषण करती है, वही रसाभिज्ञ है और उसी को सौभाग्यवती होने का गर्व करना उचित है, अन्य को नहीं) ॥ ५९९ ॥

दुष्ट प्रभु द्वारा कोषाधिकार दिये जाने पर भी, 'यह मुझ पर बहुत विश्वास करता है'—ऐसा सोच कर उसका सेवन उचित नहीं है—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—

स्वरसेन बध्नतां करमादाने कण्टकोत्करैस्तुदताम् ।
पिशुनानां पनसानां कोषाभोगोऽप्यविश्वास्यः ॥ ६०० ॥

पदार्थ—स्वरसेन—(१) स्वेच्छया—अपनी इच्छा से, (२) स्वद्रवेण—अपने द्रव से (रस से अभिप्राय है कटहल के दूध का, जो लसदार होता है)। करं बध्नताम्—(१) कर (राजदण्ड, टैक्स, लगान आदि) बाँधता हुआ, (२) हाथ को बाँधता (पनस का रस हाथ मे लग कर उसे बाँध देता है, कोई काम नही करने देता)। आदाने—(१) करादाने—कर ग्रहण करने पर, (२) (पनसफल को) ग्रहण करने पर। कण्टकोत्करैः—(१) उत्पाती व्यक्तियो के समुदाय से अथवा कटु भाषणो से, (२) कण्टक समुदाय से (पनस के फल में काँटे बहुत होते है)। तुदताम्—पीडित करता। पिशुनानां—दुष्टो का। पनसानाम्—पनस वृक्षों का। कोषाभोगः अपि—(१) कोषस्य आभोगः सम्पर्कः—भाण्डागार का सम्पर्क, (२) कोषस्य फलस्य आभोगः परिपूर्णता—फल की परिपूर्णता भी। अविश्वास्यः—विश्वास करने योग्य नहीं।

सरलार्थ—दुष्ट प्रभुओ के द्वारा कोप (भाण्डागार) का अधिकार मिल जाने पर भी, तदधिकारी को कोपसम्पर्क का तथा पनसवृक्ष की सेवा करने वाले को उसके कोप (फल) की परिपूर्णता पर विश्वास नही करना चाहिये; क्योंकि क्रमशः एक (दुष्ट प्रभुजन) स्वेच्छा से कर बाँधते है और अधिकारी को उसे ग्रहण करने, वसूल करने पर, उत्पाती व्यक्तियो द्वारा अथवा कटुभाषणो से पीडित करते है, दूसरे (पनस के वृक्ष) अपने रस से हाथ बाँध देते हैं और फलग्रहण करने पर काँटो से पीडित करते है। (इसने हमें कोष ही समर्पित कर दिया है—यह सोचकर बुद्धिमान को दुष्टों की सेवा नही करनी चाहिये) ॥६००॥

सरल होने के कारण मानादि न करने वाली नायिका से सखी कह रही है—

सौभाग्यं दाक्षिण्यान्नेत्युपदिष्टं हरेण तरुणीनाम् ।
वामार्धमेव देव्याः स्ववपुःशिल्पे निवेशयता ॥ ६०१ ॥

पदार्थ—स्ववपुःशिल्पे—स्वशरीरस्य चित्रे—अपने शरीर के चित्र में। देव्याः—पार्वती का। वामार्धमेव—आधे बाये भाग को। निवेशयता—रखते हुए। हरेण—शिवजी ने। तरुणोनाम् दाक्षिण्यात्—तरुणी स्त्रिया की सरलता से (दायें होने से)। सौभाग्यं न—सौभाग्य नही। इति—ऐसा। उपदिष्टम्—उपदेश दिया है।

सरलार्थ—(सबके दुःख हरने वाले करुणागार भगवान् शिव को भी तरुणी स्त्रियो का दाक्षिण्य प्रीतिकारक न होने के कारण ही) अपने शरीर के चित्र में पार्वती का आधा बायाँ भाग (कौटिल्यशाली), स्थापित करते हुए शिव जी ने, (वृद्धाओं का भले ही हो) तरुणी-जन का दाक्षिण्य (१—सरलता, २—दाये होना) से सौभाग्य नही—ऐसा उपदेश किया है (इसे अन्यथा समझना अनुचित है)। (तरुणी-जन का सौभाग्य सरल होने से नही, अपितु कुटिल होने से है, अतः सरलता का परित्याग कर तुझे मानादि अवश्य करना चाहिये)।

अथवा कौटिल्यशाली नायक से नायिका की सखी कह रही है—अपने शरीर के चित्र में देवी का वामार्ध ही निविष्ट करते हुए शंकर जी ने, दाक्षिण्य से सौभाग्य नहीं—ऐसा तरुणी-जन को उपदेश दिया है (न कि पुरुषो को। कुटिलता स्त्रियों को ही उचित है, पुरुषो को नहीं) ॥ ६०१ ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

सुभग स्वभवनभित्तौ भवता संमर्द्य पीडिता सुतनुः ।
सा पीडयैव जीवति दधती वैद्येषु विद्वेषम् ॥ ६०२ ॥

पदार्थ—हे सुभग ! स्वभवनभित्तौ—अपने घर की दीवाल की आड में । भवता—तुम्हारे द्वारा । संमर्द्य—सम्यक् मर्दित होकर । पीडिता—पीडा को प्राप्त । सुतनुः—सुन्दरी । वैद्येषु विक्षेपं दधनी—वैद्यों से विक्षेप करती । सा—वह । पीडयैव—पीडा से ही । जीवति—जी रही है ।

सरलार्थ—(ऐसी नायिका का आकस्मिक सम्पर्क प्राप्त करने के कारण) सुभग ! तुम्हारे द्वारा अपने घर की दीवाल की आड़ में (अतएव निर्भय) आलिङ्गनादि से संमर्दन को प्राप्त, पीडित सुन्दरी वैद्यों से विक्षेप करती हुई, वह पीडा से ही जी रही है (तुम्हारी दी गयी पीडा ही जिसके जीवन का कारण है, उसे तुम्हारी संगति प्राप्त हो जाय तो फिर क्या कहना) ॥ ६०२ ॥

नायिका की सखी, नायक से कह रही है—

सा गुणमयी स्वभावस्वच्छा सुतनुः करग्रहायत्ता ।
भ्रमिता बहुमन्त्रविदा भवता काश्मीरमालेव ॥ ६०३ ॥

पदार्थ—गुणमयी—(१) सौन्दर्यादिगुणशालिनी, (२) सूत्रशालिनी । स्वभावस्वच्छा—(१) स्वभावेन स्वच्छा—स्वभावतः शुद्धान्तःकरण वाली, (२) स्वभावोज्ज्वला । करग्रहायत्ता—(१) करग्रहेण पाणिग्रहेण आयत्ता स्वाधीना—पाणिग्रह से स्वाधीन (पतिव्रता), (२) करेण यः ग्रहः अङ्गीकरणं तेन आयत्ता—हाथ मे ली गयी अतएव उसके अधीन । काश्मीरमाला इव—केसर पुष्प की माला के समान । सा सुतनुः—वह सुन्दरी । बहुमन्त्रविदा—(१) बहुविचारवता अत्यन्तकलाकुशलेन—बहुविचारवान् अर्थात् अत्यन्त कलाकुशल, (२) (आगमोक्त) बहुत मन्त्रो को जानने वाला । भवता—आपके द्वारा । भ्रमिता—(१) भ्रम को प्राप्त हो गयी, (२) घुमायी गयी, फेरी गयी ।

सरलार्थ—जैसे सूत्रशालिनी, स्वभावोज्ज्वल केसर की माला, आगमोक्त मन्त्र जानने वाले के हाथ में पड़कर उसके द्वारा घुमायी जाती रहती है उसी प्रकार सौन्दर्यादिगुणशालिनी, शुद्ध अन्तःकरण वाली, पाणिग्रह के कारण स्वाधीन वह सुन्दरी, अत्यन्त कलाकुशल आपके द्वारा भ्रान्त बना दी गयी है (तुम्हारी संगति से उसे विश्रान्ति नहीं) ।

अथवा सामान्य वनिता की सखी नायक से कह रही है—तुझ ऐसे कपटशाली से भ्रान्त वह तुझे अङ्गीकार किये हुए है, और तू उसे कुछ भी धन नही देता ॥ ६०३ ॥

नायक, नायिका से कह रहा है—

सव्रीडस्मितसुभगे स्पृष्टास्पृष्टेव किंचिदपयान्ती ।
अपसरसि सुन्दरि यथा यथा तथा स्पृशसि मम हृदयम् ॥६०४॥

पदार्थ—सव्रीडस्मितसुभगे—व्रीडया सहितं यत् स्मितम् तेन सुभगे—लज्जामिश्रित मुस्कान से सुन्दरि ! किंचित् स्पृष्टास्पृष्टेव—(मेरे द्वारा) कुछ स्पृष्ट हुई, कुछ नहीं। अपयान्ती—अपसरण करती । यथा यथा—ज्यों-ज्यों । अपसरसि—दूर हटती जा रही है। तथा—त्यों-त्यों । मम हृदयं स्पृशसि—मेरे हृदय को स्पर्श कर रही हो ।

'स्पृशसि' के स्थान पर 'विशसि' पाठ भी मिलता है जिससे अर्थचमत्कार अधिक बढ़ जाता है। ज्यों-ज्यों दूर हटना त्यों-त्यों हृदय में अधिक प्रविष्ट होना—यह वैचित्र्य है। हृदय भी दर्पण के समान है—दर्पण से ज्यों-ज्यों दूर होते जाइए, त्यों त्यों आप का प्रतिबिम्ब उसमें घुसता दिखायी देगा। 'स्पृष्टास्पृष्टेव' के स्थान पर 'षष्ठी सम्पूज्य' ऐसा पाठ मिलता है। किंचित् षष्ठीं सम्पूज्य—किसी प्रकार षष्ठी की पूजा कर। 'षष्ठी पूज्येव' ऐसा पाठ भी मिलता है—पूज्या षष्ठी की भाँति ज्यो ज्यो दूर हटती हो त्यो-त्यो हे सुन्दरि ! मेरे हृदय को स्पर्श करती हो। जैसे षष्ठी जिसे छू देती है वह नहीं जीवित रहता उसी प्रकार षष्ठी की पूजा कर तुमने हृदय को स्पर्श किया तो मेरा हृदय स्थिति नहीं प्राप्त कर रहा है।

सरलार्थ—(आकस्मिक मुठभेड़ हो जाने पर लोकभय के कारण) मैंने तुम्हे तनिक-सा स्पर्श किया, अतएव लज्जामिश्रित मुस्कान से सुन्दरी ! अपने को अस्पृष्ट-सी समझती हो दूर हटती हुई, ज्यो-ज्यो तुम दूर हट रही हो त्यो-त्यो मेरे हृदय को स्पर्श कर रही हो (हृदय-स्पर्श करती अपने को अस्पृष्ट समझना व्यर्थ है—अतः आलिङ्गनादि से मुझे सुखी बनाओ) है ॥ ६०४ ॥

अपने पति में ही अनुराग रखना चाहिये, अन्य पुरुष मे नहीं—ऐसा, कहती सखी से नायिका कह रही है—

सखि सुखयत्यवकाशप्राप्तः प्रेयान्यथा तथा न गृही ।
वातादवारितादपि भवति गवाक्षानिलः शीतः ॥ ६०५ ॥

पदार्थ—हे सखि ! अवकाशप्राप्तः—उचित अवसर पर आया हुआ। अथवा संकेतवश समयविशेष पर आया हुआ। अथवा—अवकाशः निर्जन-स्थानम्, तं प्राप्तः—निर्जन स्थान पर आया हुआ। प्रेयान्—प्रिय। यथा सुखयति—जितना सुख देता है। तथा गृही न—उतना पति नहीं। अवारितात् वातादपि—अबाधित, अबाध रूप से आये वायु की अपेक्षा। गवाक्षानिलः—वातायन का वायु । शीतः—संतापापनोदकः—शीतल एवं सन्तापहारी (अधिक) होता है।

सरलार्थ—हे सखि ! संकेतवश समयविशेष पर निर्जन स्थान पर समागत

प्रिय जितना सुख प्रदान करता है उतना पति नहीं। वातायन सम्बन्धी वायु, निर्बाध रूप से प्राप्त वायु से भी शीतल एवं सन्तापहारी होता है।

अथवा अपने पति में अनुरक्त नायिका को किसी परपुरुष से मिलाने के लिए दूती कह रही है—अपना पति तो घर में सदा सुलभ है, परपुरुष के न मिलने पर भी उसका उपभोग किया जा सकता है, अतः मैं उसको ले आ रही हूँ॥ ६०५॥

निरन्तर नितान्त कुपित नायिका से सखी कह रही है—

सततमरुणितमुखे सखि निगिरन्ती गरलमिव गिरां गुम्फम्।
अवगणितौषधिमन्त्रा भुजंगि रक्तं विरञ्जयसि॥ ६०६॥

पदार्थ—भुजगि—भुजंगी इव भुजंगी तत्सम्बुद्धिः—सर्पिणि! सततम्—निरन्तर। अरुणितमुखे—अरुणितं मुखं यस्याः तत्सम्बुद्धिः—मुख को लाल किये रहने वाली। सखि! गरलमिव—विष के समान। गिरां गुम्फम्—वाणियों का ढेर। निगिरन्ती—उगलती। अवगणितौषधिमन्त्रा—अवगणितः ओषधिः इव मन्त्रः यया सा—(१) जिसने औषधि के समान उपयोगी विचार की उपेक्षा कर दी, (२) औषधि एवं मन्त्र जहाँ काम नहीं देते। रक्तं विरञ्जयसि—(१) अनुरक्त को विरक्त बनाती है, (२) रुधिरवान् को रुधिररहित बनाती है।

सरलार्थ—हे भुजंगी के समान आचरण करने वाली, निरन्तर उसी की भाँति लाल मुँह (क्रोध से) बनाये, विष की भाँति कटु वचनों को मुँह से उगलती, औषधि के समान उपयोगी विचार को तिरस्कृत करती (औषधि एवं मन्त्र को भी असफल करती) सखि! तू रक्त को (१—अनुराग रखने वाले को, २—रुधिरवान् को), विरक्त (१—अनुराग रहित, २—रुधिररहित) करती है॥

(इस प्रकार कोप करके तू जब अनुरक्त को भी अनुरागशून्य बना देती है तो अनुरागहीन को सानुराग बनाना तो बहुत दूर है)॥ ६०६॥

यह दुष्टा विश्वासयोग्य नहीं है—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

स्थलकमलमुग्धवपुषा सातङ्काङ्कस्थितैकचरणेन।
आश्वासयति बिसिन्याः कूले बिसकण्ठिका शफरम्॥६०७॥

पदार्थ—बिसिन्याः कमलिन्याः, कूले समीपे—कमलिनी के समीप। बिसकण्ठिका—बकी—बगुली। सातङ्काङ्कस्थितैकचरणेन—सातङ्कं सत्रासम् अंके स्थितः एकः चरणः यस्य तेन—सातङ्क एक चरण जिसका अङ्क में स्थित है। स्थलकमलमुग्धवपुषा—स्थलकमलवत् मुग्धेन वपुषा—स्थलकमल के समान सुन्दर शरीर से। शफरम्—मत्स्य को। आश्वासयति—आश्वस्त करती है।

सरलार्थ—कमलिनी के पास बगुली सत्रास एक चरण अङ्क में छिपा कर (जिससे एक पैर पर स्थित रह कर नालसमेत कमल समझी जा सके) स्थल-कमल के समान सुन्दर शरीर से मत्स्य को विश्वास दिलाती है) मत्स्य कमल-भ्रम से समीप आयेगा और इसे मैं भोजन बना लूंगी यह सोच कर चुप-चाप स्थित रहती है) ॥ ६०७ ॥

कोई कामी दुष्प्राप नायिका को देख कर समीर को लक्ष्य कर के कह रहा है—

सनखपदमधिकगौरं नाभीमूलं निरंशुकं कृत्वा ।
अनया सेवित पवन त्वं किं कृतमलयभृगुपातः ॥ ६०८ ॥

पदार्थ—सनखपदम्—नखपदैः नखक्षतैः सह वर्तते—नखक्षतसहित । अधिकगौरम्—अत्यन्त गौर । नाभीमूलम्—नाभि के नीचे के भाग को। निरंशुकम्—निर्गतम् अंशुकं वस्त्रं यस्मात्तत्—वस्त्र जिस पर से हट गया हो—वस्त्ररहित । कृत्वा—करके । अनया—इस (नायिका) द्वारा । सेवित पवन—उपभुक्त पवन । त्वम्—तू । कृतमलयभृगुपातः—कृतः मलयस्य गिरेः भृगोः कटकात् पातः येन एतादृशः—मलयाचल के कटक प्रदेश से जिसने पात (कूदना, गिरना) किया है (मलयाचल कटक पतन नामक तप) । किम्—क्या ? (वितर्क में किम् का प्रयोग) । अथवा किम् का प्रयोग प्रश्न में—इससे बढ़ कर और क्या ? जिसके निमित्त मलयभृगुपात तूने किया ।

सरलार्थ—नखक्षतसहित, अत्यन्त गौर नाभीमूल पर से वस्त्र हटा कर इसने (नायिका ने) तुम्हारा जो उपभोग किया, मैं सोचता हूँ कि क्या तू ने मलयाचल के कटक प्रदेश से गिरने वाला तप किया है (यदि तू गिरिभृगुपात न किये होता तो कैसे यह लज्जा परित्याग कर तेरा सेवन करती । अतः तू ने अधिक तपस्या की है; तू धन्य है) ।

अथवा अब इससे बढ़ कर क्या अभिमत फल है जिसे पाने की कामना से तू ने भृगुपात किया ?

अथवा रत के पश्चात् भी अत्यन्त कामाविर्भाव के कारण रत में पुनः प्रवृत्त नायिका को देख कर सखी नायक से कह रही है ॥ ६०८ ॥

भाग्यशाली को बिना प्रयत्न के भी लक्ष्मी प्राप्त होती है—ऐसा, कोई कह रहा है—

सर्वाङ्गमर्पयन्ती लोला सुप्तं श्रमेण शय्यायाम् ।
अलसमपि भाग्यवन्तं भजते पुरुषायितेव श्रीः ॥ ६०९ ॥

पदार्थ—सर्वाङ्गम् अर्पयन्ती—सकलाङ्ग समर्पित करती। लोला—चञ्चला-नाम्नी, चञ्चला च। श्रीः—लक्ष्मीः। पुरुषायिता इव—विपरीत रत करती-सी। शय्यायाम्—शय्या पर। अलसमपि—श्रम से सुप्त भी (शय्यादिरचनामात्रोद्योगशाली भी) भाग्यवन्तम्—भाग्यशाली को। भजते—सेवित करती है।

सरलार्थ—चञ्चलानाम्नी लक्ष्मी, शय्या पर अलस पड़े हुए उद्योगरहित भाग्यशाली का पूर्णरूप से सेवन करती है। मानो चञ्चल होकर, सर्वाङ्ग समर्पित करती, शय्यादिरचनामात्रोद्योगशाली, श्रम से सुप्त उस भाग्यशाली के साथ विपरीत रत कर रही है ॥ ६०९ ॥

पथिक अपने मन में मनोरथ कर रहा है—

सुदिनं तदेव यत्र स्मारं स्मारं वियोगदुःखानि।
आलिङ्गति सा गाढं पुनः पुनर्यामिनीप्रथमे ॥ ६१० ॥

पदार्थ—तदेव—वही। सुदिनम्—समीचीन दिन (होगा)। यत्र—जिसमें। वियोगदुःखानि—विरह के दुःखों को। स्मारम् स्मारम्—बार-बार याद करके। यामिनीप्रथमे—रात्रि के प्रथम प्रहर में ही। पुनः पुनः—बार बार। सा—वह। दृढम् आलिङ्गति—आलिङ्गयिष्यतीत्यर्थः—दृढ आलिङ्गन करेगी।

सरलार्थ—वही समीचीन दिन (होगा) जिस दिन विरह के दुःखों को बार-बार याद करके, रात के प्रथम प्रहर में (सब लोगों के जागते रहने पर भी, सायंकाल के समय ही) वह (नायिका) बार-बार दृढ आलिङ्गन करेगी ॥ ६१० ॥

स्वामी के चरणों की सेवा स्वयं करनी चाहिये, दासियों आदि से नहीं—ऐसा, सखी नायिका से कहती हुई उदाहरण दे रही है—

सान्तर्भयं भुजिष्या यथा यथाचरति समधिकां सेवाम्।
साशङ्कसेर्ष्यसभया तथा तथा गेहिनी तस्य ॥ ६११ ॥

पदार्थ—भुजिष्या—(स्वाम्युच्छिष्टम् भुङ्क्ते (स्त्री) भुज्+किष्यन्—टाप्) दासी। सान्तर्भयम्—अन्तर्भय सहित। तस्य—नायक का। यथा यथा—ज्यों-ज्यों। समधिकाम् सेवाम्—अत्यन्त अधिक सेवा। आचरति—करती है। तथा-तथा—त्यों-त्यों। गेहिनी—गृहिणी। साशङ्कसेर्ष्यसभया—आशङ्कया सह, ईर्ष्यया सह, भयेन सह च वर्तमाना आशङ्का, ईर्ष्या और भय से युक्त होती रहती है ॥ ६११ ॥

सरलार्थ—दासी (स्वामिनी जान जायगी—यह सोचकर) हृदय में भय सहित, ज्यों-ज्यों गृहस्वामी की अधिक सेवा करती है त्यों-त्यों गृहिणी (आजकल यह क्यों अत्यन्त अधिक सेवा करती है—ऐसा सोचकर) आशङ्का से,

(नायक में यह प्रायेण रतिमती ज्ञात होती है—ऐसा सोचकर) ईर्ष्या से, (लोकापवाद के कारण) भय से युक्त होती है (अतएव सर्वदा स्वामी की सेवा स्वयं करनी चाहिये, दासी आदि के द्वारा नहीं) ॥ ६११ ॥

सपत्नी पर प्रेम-दृष्टि डालने से रुष्ट नायिका से, नायक सोल्लुण्ठ वचन कह रहा है—

सुन्दरि दर्शयति यथा भवद्विपक्षस्य तत्सखी कान्तिम् ।
पतति तथा मम दृष्टिस्त्वदेकदासस्य सासूया ॥ ६१२ ॥

पदार्थ—सुन्दरि ! तत्सखी—तस्याः (त्वत्सपत्न्याः) सखी—तुम्हारी सपत्नी की सखी । भवद्विपक्षस्य—तुम्हारी सपत्नी की । कान्ति—शोभा को । यथा दर्शयति—ज्यों दिखाती है, बताती है—अर्थात् दिखाया बताया । तथा—त्यों । त्वदेकदासस्य मम—तव एकः दासः तस्य—तुम्हारा केवल जो दास है उसकी अर्थात् मेरी । दृष्टिः—(उसके विषय में) दृष्टि । सासूया—सद्वेषा । पतति—पड़ती है अर्थात् पड़ी ।

सरलार्थ—सुन्दरी ! तुम्हारी सपत्नी की सखी ने, तुम्हारी सपत्नी की शोभा को ज्यों दिखाया, त्यों, तुम्हारे एक मात्र इस दास की (अर्थात् मेरी) दृष्टि (तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य की शोभा के कथन को सह न पाने के कारण) सद्वेष होकर (तुम्हारी सपत्नी पर) पड़ी (मैंने अनुरागवश उसका अवलोकन नहीं किया, किन्तु क्रोधवश; अतः तुम्हे मुझसे रुष्ट नहीं होना चाहिये) ॥ ६१२ ॥

सपत्नी से दुःखित नायिका को, नायक की सखी समझा रही है—

स्वाधीनैरधरव्रणनखाङ्कपत्त्रावलोपदिनशयनैः ।
सुभगा सुभगेत्यनया सखि निखिला मुखरिता पल्ली ॥६१३॥

पदार्थ—हे सखि ! स्वाधीनैः—स्वयं कर्तुं शक्यैः—स्वयं किये जा सकने वाले । अधरव्रणनखाङ्कपत्त्रावलोपदिनशयनैः—अधरव्रणाः दन्तक्षतानि, नखाङ्का नखक्षतानि, पत्रवल्लीनाम् अवलोपः—सौन्दर्यवृद्ध्यर्थं यानि चित्राणि, याः रेखा वा कस्तूरिकाकेसरचन्दनादिलेपैः मस्तकाद्यङ्गेषु स्त्रियः विरचयन्ति 'पत्र-वल्ल्यः' इति कथ्यन्ते तासाम् अवलोपः प्रोञ्छनम् । यद् वा पत्रम्—मुखे चन्द-नादि सुगन्धमयपदार्थाना लेपः तस्य अवलोपः दिने शयनम् च तैः—दन्तक्षत, नखक्षत तथा कस्तूरी-केसर-चन्दन आदि सुगन्धित अङ्गलेपो को मिटाना, दिन में सोना आदि कार्यों से । सुभगा—अपने को 'सुभगा' व्यक्त करने वाली ।

अनया—इसने। निखिलापि पल्ली—सारी बस्ती को। सुभगा इति—सुभगा है ऐसा। मुखरिता—मुखर बना दिया, सारी बस्ती उसे 'सुभगा' ऐसा कहने लगी।

सरलार्थ—हे सखि इसने स्वयं दन्तक्षत-नखक्षत बनाकर, सुगन्धित पदार्थों के लेप को मिटाकर, दिन मे मिथ्या स्वाप (शयन) कर, अपने को कृत्रिम रूप से सुभगा प्रदर्शित किया और सारी बस्ती उसे झूठ-मूठ सुभगा कहने लगी (अतः विश्वास करो—नायक इसमें अनुरक्त नहीं है, न उसके किये दन्तक्षतादि ही हैं, किन्तु मिथ्या ही लोक में स्वसौभाग्य प्रकट करने के लिए इसने स्वयम् इन्हें किया है, ऐसा दृढ विश्वास कर, नायक से मानादि करना तुम्हें उचित नहीं) ॥ ६१३ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

सरित इव यस्य गेहे शुष्यन्ति विशालगोत्रजा नार्यः ।
क्षारास्वेव स तृप्यति जलनिधिलहरीषु जलद इव ॥६१४॥

पदार्थ—यस्य गेहे—जिसके गृह में। सरितः इव—नदियों की भाँति। विशालगोत्रजाः—(१) विशाले गोत्रे श्रेष्ठकुले जाताः—उच्चकुल में उत्पन्न, (२) विशालेभ्यः गोत्रेभ्यः पर्वतेभ्यः जाताः—अत्यन्त महान् पर्वतों से उत्पन्न। नार्यः शुष्यन्ति—नारियाँ सूख रही हैं। सः—वह। क्षारासु एव—नीरस (स्त्रियों) में ही। जलनिधिलहरीषु—समुद्र की लहरियों में। जलदः इव—मेघ के समान। तृप्यति—तृप्त होता है।

सरलार्थ—जिसके गृह में श्रेष्ठकुलजाता नारियाँ (दुःखोद्रेकसे) सूख रही हैं, वह नीरस तथा नीचकुलजन्य अन्य अङ्गनाओं में ही तृप्ति प्राप्त करता है जैसे बादल बड़े-बड़े पर्वतो से उत्पन्न नदियो को सूखती हुई छोड़कर समुद्र की खारी लहरियो मे तृप्ति प्राप्त करता है।

अथवा पराङ्गना लम्पट नायक से नायिका का कथन है ॥ ६१४ ॥

मानिनी नायिका से नायक की दूती कह रही है—

सकलकटकैकमण्डिनि कठिनीभूताशये शिखरदन्ति ।
गिरिभुव इव तव मन्ये मनः शिला सम्भवचण्डि ॥ ६१५ ॥

पदार्थ—सकलकटकैकमण्डिनि—(१) सकलकटकस्य समस्तगृहस्य प्रदेशस्य वा एका मण्डिनी विभूषिका तत्सम्बुद्धिः—समस्त गृह अथवा प्रदेश की शोभा बढ़ाने वाली। (२) सकलकटकस्य समस्ताद्रिनितम्बस्य—समस्त पर्वत नितम्ब की शोभा बढ़ाने वाली। कठिनीभूताशये—(१) कठोर हृदय वाली। (२) जिसके मध्य में कठिनी (खटिका, खड़िया मिट्टी) है। शिखरदन्ति—(१) शिखराणि

इव पद्मरागाः, कुन्दकलिकाः इव वा दन्ताः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—पद्मराग अथवा कुन्दकली के समान जिसके दाँत हैं, (२) शिखराणि शृङ्गाणि एव दन्ताः यस्याः तत्सम्बुद्धिः—शृङ्गरूप दाँतो वाली। हे चण्डि !—कोपने ! तव। गिरिभुवः इव—पर्वतभूमि का-सा। मनः शिला—(१) मन पाषाण, (२) मनःशिला धातुविशेष (मैनसिल) समभवत्—संजातः—हो गया (ऐसा मैं सोचती हूँ) ॥

सरलार्थ—हे निखिल गृह अथवा प्रदेश की एक मात्र शोभावर्द्धिनि ! कठोरहृदये ! कोपने ! पद्मरागरूपरदे ! तू, निखिलपर्वतनितम्ब की शोभा बढ़ाने वाली, खड़िया मिट्टी से युक्त मध्यभाग वाली गिरिभूमि के समान है और तेरा पत्थर मन, गिरिभूमि की मनःशिला (धातुविशेष) के समान हो गया है—ऐसा मैं अनुमान करती हूँ (अपने नायक के प्रति ऐसी निष्ठुरता करना उचित नहीं है) ॥ ६१५ ॥

सखी कुपित नायिका से कह रही है—

सखि दुरवगाहगहनो विदधानो विप्रियं प्रियजनेऽपि ।
खल इव दुर्लक्ष्यस्तव विनतमुखस्योपरि स्थितः कोपः ६१६

पदार्थ—हे सखि ! दुरवगाहगहनः—दुरवगाहश्च गहनश्च—(१) किसी भी उपाय से निवारित न किया जा सकने वाला तथा बहुतर, (२) किसी भी तरह समझा न जा सकने वाला तथा कुटिलाशय। प्रियजनेऽपि—(१) नायक पर भी, (२) अपने ईप्सित जन पर भी। विप्रियं विदधानः—दुःख विधान करता। विनतमुखस्य उपरि—(१) विनतं यत् मुखम् तस्य परि—विनत मुख के ऊपर, (२) विनतं मुखं यस्य तस्य (साधोः)—विनतमुख वाले साधु के ऊपर। स्थितः। खलः इव—दुष्ट के समान। तव कोपः—तेरा कोप। दुर्लक्ष्यः (१) ज्ञातुमशक्यः, (२) द्रष्टुमशक्यः—जाना नहीं जा सकता, देखा नहीं जा सकता।

सरलार्थ—जिसे किसी भी तरह समझा न जा सके अथवा वश में न लाया जा सके, जो अपने ईप्सित जन का भी अप्रिय करता है, साधुजन को भी क्लेश देता है—ऐसे दुष्ट के समान, किसी भी तरह निवारित न किया जा सकने वाला, बहुतर, नायक का भी अप्रिय करने वाला, तेरे विनत मुख पर स्थित तेरा यह कोप दुर्लक्ष्य है—जाना नहीं जा सकता अथवा समझा नहीं जा सकता (ऐसा कोप करना तुम्हें उचित नहीं है) ॥ ६१६ ॥

अपने विवाह के अवसर पर लज्जित तथा विनतमुखी नायिका ऊपर क्यों नहीं देख रही है—ऐसा कहने वाले से विदितवृत्तान्त व्यक्ति कह रहा है—

स्वेदसचेलस्नाता सप्तपदी सप्त मण्डलीर्यान्ती ।
समदनदहनविकारा मनोहरा व्रीडिता नमति ॥ ६१७ ॥

पदार्थ—स्वेदसचेलस्नाता—(त्वद्दर्शनजेन) स्वेदेन सवसनस्नाता—तुम्हारे दर्शन से जन्य स्वेद से सचैल स्नान कर चुकी। सप्तपदी सप्तमण्डलीः—सप्तानां पदानां समाहारः सप्तपदी तद्रूपा सप्तमण्डलीः—सप्तपदीरूप सप्तमण्डल को। यान्ती—अतिक्रमण करती। समदनदहनविकारा—मदनरूपो यो दहनः अनलः तस्य यो विकारः तत्सहिता—मदनानल विकार से युक्त। मनोहरा—चित्तहारिणी। व्रीडिता—लज्जिता। नमति—नम्रीभवति—नम्र हो रही है।

सरलार्थ—इसने तुम्हारा चित्त हर लिया है, तुम्हारे दर्शन से उत्पन्न स्वेद से सचैल स्नात, सप्तपदीरूप सप्तमण्डल का अतिक्रमण करती मदनरूप अग्नि-दाहशालिनी (अतः अग्निपरीक्षा में दोषी सिद्ध हो चुकी) लज्जावश ऊपर नहीं देख रही है। (त्वद्विषयक लज्जा से, यदि वह ऊपर देखती है तो विवाह सम्पन्न हो जाने पर भी तुम्हें नहीं परित्यक्त करेगी)।

अथवा नायक, नायिका की सखी से कह रहा है—इसने मेरा मन हर लिया है, अग्निदिव्यादि में भी अशुद्ध सिद्ध हो चुकी है, मेरा मन लौटा नहीं रही है, मैं भी इसे क्लेश दूँगा तब तुम इसकी सहायता के लिए न दौड़ना, विवाहित होने पर भी इसे नहीं छोड़ूँगा ॥ ६१७ ॥

सज्जन भी दुष्टों के संसर्ग से अन्यथाचारी बन जाता है—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

सुरसप्रवर्तमानः संघातोऽयं समानवृत्तानाम् ।
एत्यैव भिन्नवृत्तैर्भङ्गुरितः काव्यसर्ग इव ॥ ६१८ ॥

पदार्थ—सुरसप्रवर्तमानः—समीचीनरसैः प्रकर्षेण वर्तमानः—(१) समीचीन रसों से प्रवर्तमान, (२) समीचीन रसवान्। समानवृत्तानाम्—(१) समान आचरण वालों का, (२) एक जाति के छन्दों का। अयं संघातः—यह समुदाय। काव्यसर्गः इव—काव्यसर्ग के समान। भिन्नवृत्तैः—(१) भिन्न आचरण वालों, (२) विजातीय छन्दों ने। एत्य एव—आकर ही। भङ्गुरितः—(१) कुटिल बना दिया, (२) समाप्त कर दिया।

सरलार्थ—जैसे समीचीन रसयुक्त, एक जाति के छन्दों का समुदाय रूप काव्य का सर्ग, विजातीय छन्दों के आने से ही समाप्त हो जाता है उसी प्रकार समीचीन रसों से प्रवर्तमान समान आचरण वालों का यह समुदाय, भिन्न आचरण

वालो के आ जाने से ही (बहुत काल तक रहने पर क्या होगा कहा नहीं जा सकता) कुटिल बन गया।

(काव्य के प्रत्येक सर्ग में अन्तिम छन्द पूर्व की अपेक्षा भिन्न होना चाहिये—ऐसा काव्यशास्त्र का विधान है, अतः दुष्टों की संगति नहीं करनी चाहिये) ॥ ६१८ ॥

नायक, सखा से नायिकाविषयक सुरत की प्रशंसा कर रहा है—

सर्वासामेव सखे पय इव सुरतं मनोहारि ।
तस्या एव पुनः पुनरावृत्तौ दुग्धमिव मधुरम् ॥ ६१९ ॥

पदार्थ—हे सखे ! सर्वासामेव—सब स्त्रियों का। सुरतं—सुरत। पयः इव—दूध के समान। मनोहारि—समीचीन। पुनः पुनः आवृत्तौ—(१) बार-बार दुहराने पर, (२) बार-बार औटाये जाने पर। तस्याः एव—उसी का। दुग्धमिव—दूध की तरह। मधुरम्—मधुर। अथवा पयः इव—जल के समान।

सरलार्थ—यों तो सभी कामिनियों का सुरत दूध के समान समीचीन होता है, परन्तु औटाये दूध के समान, बार-बार आवृत्ति होने पर उसी का सुरत मधुर होता है (अन्य कामिनियों का सुरत प्रथम ही मधुर होता है, उत्तरोत्तर नहीं, इसकी सुरत-विशेषता है कि वह उत्तरोत्तर मधुर होता जाता है)।

अथवा पुनः पुनः आवृत्ति में सब का सुरत जल के समान मनोहारी होता है, उसी का सुरत दूध के समान मधुर होता है (अन्य के सुरत और इसके सुरत में जल और दूध का अन्तर है) ॥ ६१९ ॥

सखा नायक से कह रहा है—

स्वप्नेऽपि यां न मुञ्चसि या तेऽनुग्राहिणी हृदिस्थापि ।
दुष्टां न बुद्धिमिव तां गूढव्यभिचारिणीं वेत्सि ॥ ६२० ॥

पदार्थ—याम्—जिसको। स्वप्नेऽपि—स्वप्न में भी। न मुञ्चसि—नहीं छोड़ते हो। या—जो। हृदिस्थापि—तुम्हारे हृदय में स्थित भी। ते—तव। अनुग्राहिणी—(१) पश्चात् (परपुरुष को) ग्रहण करने वाली, अथवा—जिसे तुम अनुग्रहकारिणी समझते हो, (२) अविद्यमानवस्तुविषयिणी। तां—दुष्टाम्—उस दुष्ट को। बुद्धिमिव—बुद्धि के समान। गूढव्यभिचारिणीम्—(१) गुप्तव्यभिचारकारिणी, (२) झटिति अज्ञेयभ्रमत्ववती। न वेत्सि—नहीं जानते हो।

सरलार्थ—(स्वप्न मे भी बुद्धि की सत्ता रहती है अतः) स्वप्न में भी न छोड़ी जा सकने वाली, हृदयस्थ होकर भी अविद्यमानवस्तुविषयिणी बुद्धि के

समान जिसे तुम स्वप्न में भी नहीं छोड़ते हो, जो हृदय में स्थित रह कर भी परपुरुष पर अनुग्रह करती है, अथवा थोड़ी देर के लिए भी तुम्हारे चले जाने पर परपुरुष की अभिलाषा करती है अथवा जिसे तुम अनुग्रहकारिणी समझते हो उस दुष्टा को गुप्तव्यभिचारिणी नही जानते हो (बुद्धिपक्ष में अज्ञेयभ्रमत्ववर्ता नही जानते हो) ॥ ६२० ॥

नायक, नायिका से कह रहा है—

सपरावृत्ति चरन्ती वात्येव तृणं मनोऽनवद्याङ्गि ।
हरसि क्षिपसि तरलयसि भ्रमयसि तोलयसि पातयसि ॥६२१॥

पदार्थ—अनवद्याङ्गि—अनवद्यानि दोषविमुक्तानि अङ्गानि यस्याः तत्सम्बुद्धिः—सुन्दरि ! सपरावृत्ति चरन्ती—(१) परावृत्तिसहितं चलन्ती—बार-बार पीछे मुड़कर देखती हुई चलती, (२) परिभ्रमणवती। मनः—मन को। वात्या—आँधी अथवा बवंडर। तृणमिव—जैसे तृण को। हरसि—अपने अधीन करती हो। क्षिपसि—तिरस्कृत करती हो, दुःखी बनाती हो। तरलयसि—चञ्चल बनाती हो। भ्रमयसि—अज्ञानशाली करती हो। तोलयसि—तोलती हो, यथास्थिति मे नहीं रहने देती। पातयसि—मूर्च्छित करती हो।

सरलार्थ—परिभ्रमणशील आँधी अथवा बवण्डर जैसे तृण को, उसी प्रकार तुम बार-बार पीछे मुड़कर देखती हुई चलती, मन को अपने अवलोकन द्वारा स्वाधीन कर लेती हो, (अनुगृहीत नहीं किया—ऐसा सोचने से) दुःखी बनाती हो, चञ्चल बनाती हो, किंकर्तव्यतामूढ बनाती, कभी धैर्यशाली, कभी अधैर्यशाली कर देती हो, (पुनरवलोकन से) मूर्च्छित करती हो (तुम्हारे कटाक्ष-रूप बाणो से मदन ने मन को जर्जर एवं निष्प्राण कर दिया) मुझ निरपराध को ऐसा दुःख देकर क्या तुम अपराध नहीं करती हो ? ॥ ६२१ ॥

गुणवती नायिका की उपेक्षा कर अन्यत्र आसक्त नायक से नायिका की सखी कह रही है—

सा बहुलक्षणभावा स्त्रीमात्रं वेति कितव तव तुल्यम् ।
कोटिर्वराटिका वा द्यूतविधेः सर्व एव पणः ॥ ६२२ ॥

पदार्थ—हे कितव—धूर्त ! बहुलक्षणभावा—बहूनि यानि अङ्गानां शुभलक्षणानि तेषां भावः सत्ता यस्यां सा—शरीर के शुभलक्षणो से युक्त। अथवा—बहुलाः ये क्षणाः उत्सवाः ते येभ्यः इति बहुलक्षणाः भावा. विलासाः यस्या सा—जिसमें बहुल उत्सवो के हेतुभूत विलास है। सा—वह। स्त्रीमात्रं वा—अथवा शुभलक्षणादिविरहित स्त्रीमात्र। तव तुल्यम्—तुम्हे बराबर है।

द्यूतविधि:—द्यूतविधि की। अथवा द्यूतं विधिः कर्तव्यार्थः यस्य सः तस्य—द्यूतसक्त का। कोटिः—करोड़। वराटिका वा—अथवा कौड़ी। सर्वं एव पणः—सभी पण है (जुआरी को करोड़ या कौड़ी दोनो दाँव पर रक्खे जाने से पण के रूप में समान ही ज्ञात होते हैं)।

सरलार्थ—हे धूर्त ! शरीर के शुभलक्षणो से युक्त, बहुल उत्सवो के हेतुभूत विलास वाली वह नायिका, अथवा (शुभलक्षणों एवं गुणो से रहित) स्त्रीमात्र, तुम्हें दोनो समान हैं। जुआरी दाँव पर स्थित एक करोड़ अथवा एक कौड़ी दोनो को पण ही समझता है (जैसे जुआरी को करोड़ समधिक है, अथवा कौड़ी न्यून है इसका ज्ञान नहीं रहता, उसी प्रकार तू विशेषज्ञानशून्य है, इसी कारण, मेरी सखी को छोडकर अन्यत्र आसक्त हो गया) ॥ ६२२ ॥

सखी नायक से कह रही है—

सा विरहदहनदूना मृत्वा मृत्वापि जीवति वराकी।
शारीव कितव भवतानुकूलिता पातिताक्षेण ॥ ६२३ ॥

पदार्थ—हे कितव—धूर्त ! पातिताक्षेण—(१) कृतकटाक्षेण—कटाक्षपात कर, (२) पासा डाल कर। भवता—तुमने। अनुकूलिता—(१) स्वाधीन बना लिया, (२) संचरणक्षमा—खेल मे चलने योग्य, खेलने योग्य बना लिया। विरहदहनदूना—विरहरूपेण दहनेन अग्निना दूना खिन्ना—विरहानलखिन्न। सा वराकी—वह वेचारी। शारी इव—चतुरङ्ग (एक प्रकार का शतरंज का खेल) की गोटी के समान। मृत्वा मृत्वा अपि—(१) मर-मर कर भी, (२) संचरणाक्षमा—खेल में प्रयुक्त न होने योग्य हो-होकर भी (खेल मे 'मरने' का अर्थ—खेल में उसका प्रयोग तब तक न हो जब तक जी न जाय। इसी प्रकार जीने का आशय—खेल में भाग लेने योग्य हो गया, अथवा उसका प्रयोग खेल में अब हो सकता है)। जीवति—(१) जीती है, (२) संचरणक्षम होती है, खेल में प्रयुक्त करने योग्य होती है।

सरलार्थ—हे कितव ! जैसे पासा डाल कर संचरणक्षम (खेल में चलाने योग्य) की गयी चतुरङ्ग की गोटी मर-मर कर (प्रयुक्त न होने योग्य हो-हो कर) भी जीती है (प्रयुक्त होने योग्य बना करती है) उसी प्रकार तू ने कटाक्षपात से अपने अधीन जिसे कर लिया, विरहानल खिन्न वह वेचारी मर-मर कर भी जी रही है (तेरे कटाक्ष मात्र से उसका जीवन है, अन्यथा मरण ही है)। (ऐसी नायिका के विषय मे तेरी उदासीनता अनुचित है अतः शीघ्र दर्शनादि से उसे अनुगृहीत कर) ॥ ६२३ ॥

नायिका सखी से निदाघ वर्णन करती हुई, प्रिय को ले आने का संकेत कर रही है—

स्पर्शादेव स्वेदं जनयति न च मे ददाति निद्रातुम् ।
प्रिय इव जघनांशुकमपि न निदाघः क्षणमपि क्षमते ॥६२४॥

पदार्थ—निदाघः—ग्रीष्मः । प्रियः इव—प्रिय के समान । स्पर्शादेव—स्पर्शमात्र से । स्वेदं जनयति—स्वेद करता है । मे—मुझे । निद्रातुम् न च ददाति—सोने नहीं देता । जघनांशुकमपि—जघनसम्बन्धि वसन भी । क्षणमपि न सहते—क्षण भर भी नहीं सह पाता ।

सरलार्थ—ग्रीष्मकाल प्रिय के समान स्पर्शमात्र से स्वेद करता है (कुछ समय पश्चात् क्या दशा करेगा—नहीं जानते), मुझे सोने नहीं देता । जघन-सम्बन्धि वस्त्र को भी क्षण भर भी नहीं सह पाता (तो अलंकरणादि, तथा घण्टिकादि की क्या बात) । (मेरा प्रिय प्रतिक्षण दृढ रत करने में समर्थ है, ऐसे निदाघ काल में प्रियतम के बिना रहा नहीं जा सकता, अतः उसे ले आने में शीघ्रता करो) ॥ ६२४ ॥

दूती नायक से कह रही है—

सा भवतो भावनया समयविरुद्धं मनोभवं बाला ।
नूतनलतेव सुन्दर दोहदशक्त्या फलं वहति ॥ ६२५ ॥

पदार्थ—हे सुन्दर ! (अथवा इसे दोहद का विशेषण भी माना जा सकता है)। नूतनलता। दोहदशक्तया—दोहद की शक्ति से। फलमिव—फल के समान। सा बाला—वह बाला। भवतः भावनया—सदा तुम्हारे चिन्तन से। समयविरुद्धम् (बाल्ये मनोभवोद्रेकवत्त्वम् विरुद्धम्) । मन्मथं वहति—कामदेव को धारण करती है । (वृक्षो लताओ आदि को जिन विशेष प्रकार की क्रियाओ आदि से शीघ्र फलने वाला, फूलने वाला बनाया जाता है, उन उपचारो को दोहद कहा जाता है) ।

सरलार्थ—हे सुन्दर जैसे नूतन लता (जिसमे अभी कुछ दिनो तक फल लगने की आशा नही) सुन्दर दोहद की शक्ति से समय के विरुद्ध असमय में ही फलयुक्त हो जाती है उसी प्रकार वह बाला (जिसमें अभी कामोद्रेक होना समयविरुद्ध है) तुम्हारा निरन्तर चिन्तन करते रहने से, समयविरुद्ध असमय मे ही कामोद्रेकशालिनी हो गयी है (तुम उसे मदनकलानभिज्ञ न समझो; तथा उससे मिलने में शीघ्रता करो) ॥ ६२५ ॥

नायिका की चेष्टाओ से उसे भ्रान्तिवश कुपित समझ कर उदासीन नायक से, नायिका की सखी कह रही है--

स्पृशति नखैर्न च विलिखति सिचयं गृह्णाति न च विमोचयति।
न च मुञ्चति न च मदयति नयति निशां सा न निद्राति ॥६२६॥

पदार्थ--सा--वह। नखैः--नखो से। स्पृशति--स्पर्श करती है। न च विलिखति--नखक्षत नहीं करती। सिचयम्--(नायककरकलित) वस्त्र को। गृह्णाति--पकड़ लेती है। न च विमोचयति--(नायक से) छुड़ाती नहीं। न च मुञ्चति--छोड़ती नहीं, जाने नहीं देती अथवा छोड़कर जाती नही। न च मदयति--मत्त नहीं करती। निशां नयति--रात बिताती है। न निद्राति--नींद नहीं आती।

सरलार्थ--वह (मदनवती होने के कारण) नखो से स्पर्श करती है किन्तु (लज्जाशील होने के कारण) नखक्षतादि नहीं करती। (नायक के कर से कलित) वस्त्र को (लज्जावश) पकड़ लेती है किन्तु (मदनवती होने के कारण (नायक से) छुड़ाती नही। (लज्जा-वश) जाती नही और (मदन-वश) नायक को जाने नहीं देती। अथवा (मदन-वश नायक को छोड़ती नहीं (केवल यही एक ही अर्थ किया जाय)। (लज्जा-वश) मदन सम्बन्धी चेष्टाओं को न करके) नायक को मत्त नहीं बनाती। (लज्जावश) रात चुप-चाप बिता देती है किन्तु (मदन-वश) रात भर सोती नही। (इस प्रकार मध्या-स्वभाव के कारण ही वह ऐसी है, कोपादियुक्त होने की शङ्का मत करो, एवं निर्भय स्वाभिलषित करो) ॥ ६२६ ॥

नायक, सखा से कह रहा है—

स्तनजघनद्वयमस्या लङ्घितमध्यः सखे मम कटाक्षः ॥
नोज्झति रोधस्वत्यास्तटद्वयं तीर्थकाक इव ॥ ६२७ ॥

पदार्थ—हे सखे! तीर्थकाकः—तीर्थ का काकपक्षी। रोधस्वत्याः—नद्याः--नदी के। तटद्वयम् इव--दोनो तटो की भाँति। लङ्घितमध्यः—लङ्घितः मध्यः (१—कटिः, २—प्रवाहः) येन सः—(१) जिसने कटि को लाँघ लिया, (२) जिसने प्रवाह को लाँघ लिया। मम कटाक्षः—मेरा कटाक्ष। अस्याः—इसके। स्तनजघनद्वयम्--दोनो स्तनो और जघन को। न उज्झति--नही छोडता।

सरलार्थ--हे सखे! जैसे तीर्थ का काक, नदी के प्रवाह को लाँघ कर, उसके दोनों तटो को नहीं छोड़ता (कभी इस तट पर, कभी उस तट पर रहा करता है) इसी प्रकार उसके कटिप्रदेश को (सूक्ष्म होने के कारण) लाँघ कर मेरा कटाक्ष उसके स्तन और जघन को नहीं छोड़ता, (कभी स्तन पर कभी

जघन पर अवस्थित रहता है, बीच मे पड़ने वाले कटि प्रदेश को लाँघ जाता ही है अतः एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने आने में कोई बाधा भी नही। और कहीं उस मध्यभाग में ही पड़ कर रह जाता तो मध्यपात से तो जीवन ही असंभव हो जाता) (अत: उसमे आसक्ति मत करो—यह उपदेश तुम्हारा, अब प्रभाव नहीं डाल सकेगा) ॥ ६२७ ॥

नायक अपनी नायिका के चातुर्य की प्रशंसा अपने सखा से कर रहा है—

सव्रीडस्मितमन्दश्वसितं मां मा स्पृशेति शंसन्त्या ।
आकोपमेत्य वातायनं पिधाय स्थितं प्रियया ॥ ६२८ ॥

पदार्थ—आकोपम्—थोडा-सा कोप को। एत्य—लाकर, प्राप्त होकर। सव्रीडस्मित मन्दश्वसितम्—लज्जा, मुस्कान तथा किंचित् श्वसित के सहित। मां मा स्पृश—मुझे स्पर्श मत करना। इति—ऐसा। शंसन्त्या—कहती हुई। प्रियया—प्रिया ने। वातायन पिधाय—खिड़की वन्द कर। स्थितम्—वह शान्त हो गयी।

सरलार्थ—(सुरतार्थ मेरे द्वारा छेडी गयी) प्रिया ने, (सखी-जन के देखने से) लज्जा (मनोनुकूल कार्य के संपादन होने की आशा से) मुस्कान और (मदनाविर्भाव से) मन्दश्वास युक्त, मुझे मत छूना—ऐसा कहती हुई (सख्यादि देख न सकें—इस उद्देश्य से) खिडकी बन्द कर ली (और इस प्रकार यथेच्छ रति की अनुमति विना कुछ कहे ही दे दी) ॥ ६२८ ॥

नायक, सखा से नायिका के सुरत की प्रशंसा कर रहा है—

सकरग्रहं सरुदितं साक्षेपं सनखमुष्टि सजिगीषम् ।
तस्याः सुरतं सुरतं प्राजापत्यक्रतुरतोऽन्यः ॥६२९॥

पदार्थ—सकरग्रहम्—करग्रहणसहितम्—निषेधार्थ नायक का हाथ जिसमें पकड़ लिया जाता है। सरुदितम्—(असह्यता प्रकट करने के लिए) रोदन सहित। साक्षेपम्—(ऐसा करना चाहिये, ऐसा क्यो करते हो—इस प्रकार) आक्षेप-सहित। सनखमुष्टि—नखमुष्टिसहितम्। सजिगीषम्—जेतुम् इच्छा जिगीषा, तया सह वर्तते तत् सजिगीषम्—जीतने की इच्छा से युक्त। तस्याः सुरतम्—उसका सुरत। सुरतम्—सुरत है। अतोऽन्यः—इससे भिन्न सुरत। प्राजापत्यक्रतुः—प्राजापत्य यज्ञ है जिसका फल पुत्र रूप मे कालान्तर मे मिलता है अथवा अन्य सुरत केवल पुत्रोत्पत्तिनिमित्त है, आनन्द एवं सुख के निमित्त नहीं।

सरलार्थ—(कोमलाङ्गी होने के कारण निषेधार्थ अथवा नायक में काम-सदीपनार्थ) जिसमें नायक का हाथ वह पकड़ लेती है, (असह्यत्व प्रकट करने

के लिए) जिसमें वह रोने तक लगती है, (ऐसा करना चाहिये, ऐसा विपरीत क्यों करते हो—इस प्रकार का) आक्षेप जिसमे करती है, (रस-निमग्न होने के कारण) जिसमें नखो को मुट्ठी बाँध कर (अब उसकी आवश्यकता नही अतः) नायिका छिपा लेती है (जिससे रस में वाधा न पड़ जाय) और जिसमे वह अपने विजय की इच्छा रखती है—उसका इस प्रकार का सुरत ही सुरत है। इससे भिन्न सुरत केवल प्राजापत्य यज्ञ हैं (जो केवल पुत्र देता है, वह भी कालान्तर में, तत्काल नही, और सुख एवम् आनन्द की तो उससे आशा ही नहीं करनी चाहिये) ॥ ६२९ ॥

दुर्जनो की निन्दा के भय से परपुरुष की ओर आकृष्ट न होती नायिका से दूती कह रही है—

सखि न खलु निर्मलानां विदधत्यभिधानमपि मुखे मलिनाः।
केनाश्रावि पिकानां कुहूं विहायेतरः शब्दः ॥ ६३० ॥

पदार्थ—हे सखि ! मलिनाः—दुर्जनाः, श्यामाः वा—(१) दुर्जन, (२) काले। निर्मलानाम्—दोषरहितानाम् सज्जनानाम्, उज्ज्वलाना वा—(१) दोषरहित अर्थात् सज्जनों का, (२) उज्ज्वलो का। अभिधानमपि—नाम भी। मुखे न विदधति—मुख पर नहीं लाते, मुख से उच्चारण नहीं करते। पिकाना—कोकिलाना—कोकिलो का। कुहूं विहाय—'कुहू' (अमावस्या का नाम) छोड़कर। इतरः शब्दः—दूसरा शब्द। केन अश्रावि—किसने सुना।

सरलार्थ—हे सखि ! दुष्ट (काले) मुख से, निर्मल दोषरहित सज्जनो (उज्वलो) का नाम भी उच्चारित नहीं करते। कोकिल का 'कुहू' (अमावस्या का नाम) शब्द को छोड़कर दूसरा शब्द किसने सुना है ? (दुर्जनो के दुर्वचन से मन मे दुःख नही करना चाहिये, अतएव भय त्याग कर स्वमनोरथ पूर्ण करो) ॥ ६३० ॥

कहीं-कहीं लघुता भी लाभदायक हो जाती है—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—

स्वल्पा इति रामबलैर्ये न्यस्ता नाशये पयोराशेः।
ते शैलाः स्थितिमन्तो हन्त लघिम्नैव बहुमानः ॥ ६३१ ॥

पदार्थ—ये—जो। रामबलैः—रामस्य रघुपतेः श्रीरामचन्द्रस्य बलैः सैन्यैः—रघुपति राम चन्द्रजी के सैन्यो द्वारा। स्वल्पाः इति—छोटे हैं, इस कारण। पयोराशेः—समुद्रस्य, आशये—अन्तः—समुद्र के भीतर। न न्यस्ताः—नहीं डाल दिये गये। ते शैलाः—वे पर्वत। स्थितिमन्तः—भुवि स्थिताः—पृथ्वी

पर स्थित रह गये। हन्त—आश्चर्य। लघिम्ना एव—लघुता से ही। बहुमानः—अत्यन्त गौरव।

सरलार्थ—आश्चर्य है! लघुता से ही अत्यन्त गौरव प्राप्त हो जाता है। जिन पर्वतों को छोटा समझ कर रामचन्द्र जी की सेना के वीरों ने समुद्र के भीतर नहीं डाला वे ही पर्वत पृथ्वी पर स्थित रहे, उन्हें महत्परिमाणस्थिति-शाली होने का गौरव प्राप्त हुआ॥ ६३१॥

नायिका की सखी, नायक से नायिका की विरहावस्था का वर्णन कर रही है—

सा श्यामा तन्वङ्गी दहता शीतोपचारतीव्रेण।
विरहेण पाण्डिमानं नीता तुहिनेन दूर्वेव॥ ६३२॥

पदार्थ—श्यामा—(१) षोडशवार्षिकी, (२) श्यामवर्णा। तन्वङ्गी—कृशाङ्गी। सा—नायिका। दहता—जलाते हुए। शीतोपचारतीव्रेण—शीतोप-चारेण तीव्रः—शीतोपचार से और तीव्र। तेन विरहेण—उस विरह से। दूर्वा—दूब। तुहिनेन इव—हिमेन इव—जैसे हिम से। पाण्डिमानं नीता—पाण्डुतां नीता—पाण्डुता को प्राप्त करा दी गयी, पीली बना दी गयी।

सरलार्थ—हिम जैसे श्यामवर्ण दुबली दूब को पीली बना देता है, उसी प्रकार उस षोडशवार्षिकी कृशाङ्गी नायिका को, शीतोपचार से और तीव्र होने वाले दाहकारक विरह ने पीली कर दिया। (तेरे विरह से खिन्न नायिका की दशा दयनीय है, उसे दर्शन देकर अनुगृहीत बना)॥ ६३२॥

पति मात्र से अनुराग रखने वाली उस नायिका को तुमसे कैसे मिला सकूँगी—इस प्रकार कहती सखी से नायक कह रहा है—

सुनिरीक्षितनिश्चलकरवल्लभधाराजलोक्षिता न तथा।
सोत्कम्पेन मया सखि दृष्टा सा माद्यति स्म यथा॥ ६३३॥

पदार्थ—हे सखि! सोत्कम्पेन—उत्कृष्टकम्पसहितेन—उत्कृष्टकम्पनयुक्त। मया—मेरे द्वारा। दृष्टा—देखी गयी। सा—वह। यथा—जैसी। माद्यतिस्म—हृष्यतिस्म, मत्ता बभूव—प्रसन्न हुई अथवा मत्त हो गयी। तथा—वैसी। सुनिरीक्षितनिश्चलकरवल्लभधाराजलोक्षिता—सुनिरीक्षिता सम्यक् विलोकिता, निश्चलौ करौ यस्य एतादृशः यः वल्लभः प्रियः तेन धाराजलसिक्ता च—भली-भाँति देखी गयी और निश्चल हाथ वाले प्रियतम के द्वारा धाराजल से सींची गयी। न माद्यति स्म—नहीं मत्त हुई थी।

सरलार्थ—नदी में जलक्रीडा के समय धाराजल से सिक्त करना तो दूर, कहीं उसका प्रियतम देख न ले इस कारण कम्पनयुक्त मेरे देखने मात्र से

वह जितनी प्रसन्न और मत्त बन गयी थी, प्रियतम द्वारा भलीभाँति देखी जाने तथा उसके निश्चल हाथों धारा जल से सिक्त की जाने पर भी उतनी प्रसन्न और मत्त नही हुई थी। (इससे सिद्ध होता है कि वह मुझ में अनुरक्त है और तुझे उसको ले आने मे कोई कठिनाई नही होगी) ॥ ६३३ ॥

दूती नायिका से कह रही है—

सखि मोघीकृतमदने पतिव्रते कस्तवादरं कुरुते ।
नाश्रौषीर्भगवानपि स कामविद्धो हरः पूज्यः ॥ ६३४ ॥

पदार्थ—हे सखि ! मोघीकृतमदने—अमोघः मोघः कृतः इति मोघीकृतः मदनः यया तत्सम्बुद्धिः—मदन को निष्फल बना देने वाली। पतिव्रते—पति-मात्रानुरागिणि !—हे पतिमात्र से अनुराग रखने वाली। तव आदरम्—तुम्हारा आदर। कः कुरुते—कौन करता है, कोई नही। भगवानपि स हरः—भगवान भी वह शिव अथवा चतुर्दशी। कामविद्धः—काम से विद्ध अथवा काम-त्रयोदशी उससे विद्ध। पूज्यः—पूज्य है। इति न अश्रौषीः—ऐसा तुमने नहीं सुना है।

सरलार्थ—हे सखि ! केवल पति से अनुराग रखने के कारण तथा मदन को निष्फल बना देने के कारण ही तेरा आदर कोई नही करता है। तू ने क्या सुना नही है ? भगवान् शंकर कामविद्ध होने से ही पूज्य है (अपनी भगवत्ता से नही) अथवा शिवचतुर्दशी कामत्रयोदशी से विद्ध होने से ही पूज्य है (शिव-सम्बन्धिनी होने से नहीं)।

(अचेतन शिवचतुर्दशी का भी कामाभिधानत्रयोदशी की विद्धता से ही पूज्य होने का विधान धर्मशास्त्र बताता है तो लोक में सचेतन की क्या बात कही जाय) ॥ ६३४ ॥

नायिका, सखी से कह रही है—

सा मयि न दासबुद्धिर्न रतिर्नापि त्रपा न विश्वासः ।
हन्त निरीक्ष्य नवोढां मन्ये वयमप्रिया जाताः ॥ ६३५ ॥

पदार्थ—हन्त—खेद है। नवोढां निरीक्ष्य—नवविवाहिता सपत्नी को देख कर। वयम् अप्रिया जाताः—हम अप्रिय हो गये। मन्ये—ऐसा मैं समझती हूँ। मयि—मेरे विषय में। सा दासबुद्धिः—पूर्ववत् दासबुद्धि नहीं, जैसा अनुग्रह मुझमें उसका पहिले था, अब नहीं है। सा रतिः—वह प्रीति। न—नहीं। नापि सा त्रपा—मन्मथविकारजा वह लज्जा भी नही। स विश्वासः—वह विश्वास। न—नही।

सरलार्थ—(नायिका सखी से कह रही है, ऐसा अवतरण मानने पर)—जबसे वह नवोढा सपत्नी का विवाह कर ले आया, बदल गया है—जैसा पहिले दास की भाँति आज्ञा पालन करता था, अब नहीं। न पहिले वाली प्रीति रह गयी, न लज्जा ही। मेरे उपस्थित रहने पर मुझे दुःख न हो इस कारण दूसरी स्त्रियो से परिहास भी नहीं करता था और अब निर्लज्जता से मेरी उपेक्षा कर व्यवहार करता है। न विश्वासः—पहिले सा विश्वासपूर्वक व्यवहार नहीं करता। अतः उसने नवोढा को देखा और हम उसके अप्रिय हो गये (आगे चलकर क्या होगा—नहीं मालूम)।

अथवा (नायक नायिका से कह रहा है, ऐसा अवतरण मानने पर)—नवोढा को देखने मात्र से हम तुम्हारे अप्रिय हो गये—ऐसा मैं समझता हूँ। क्योंकि जैसा मुझ पर पहिले अनुग्रह था अब नहीं है। पूर्ववत् प्रीति नहीं। कामजा लज्जा भी नहीं। प्रियतम मान कर दूसरों के सामने लज्जा करती थी, अब वह बुद्धि न होने से लज्जाशून्य बन गयी। वह विश्वास नहीं रह गया है ॥६३५॥

एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

सुचिरायाते गृहिणी निशि भुक्ता दिनमुखे विदग्धेयम्।
धवलनखाङ्कं निजवपुरकुङ्कुमार्द्रं न दर्शयति ॥ ६३६ ॥

पदार्थ—निशि भुक्ता—रात में जिसका उपभोग नायक ने किया। विदग्धा—चतुरा। इयं गृहिणी—यह गृहिणी। सुचिरायाते—अतिचिरकालेन आगते—चिरकाल के बाद प्रिय के आने पर। दिनमुखे—प्रातःकाल। धवल-नखाङ्कं—श्वेत नखचिह्न वाले। निजवपुः—अपना शरीर। अकुङ्कुमार्द्रं—विना कुङ्कुम से आर्द्र किये। न दर्शयति—नहीं दिखाती है।

सरलार्थ—रात में उपभुक्त चतुर इस गृहिणी ने अतिचिरकाल के बाद प्रिय के लौटने पर प्रातःकाल श्वेतनखक्षतयुक्त अपने शरीर को विना कुङ्कुम से आर्द्र किये नहीं दिखाया (कुङ्कुम से आर्द्र करके ही दिखाया। पति की अनुपस्थिति में पहिले के किये अनुचित आचरण को प्रकट न होने देने के लिए प्राचीन धवल नखक्षतो को नवीन रूप में दिखाया—मेरे शरीर में ये कुङ्कुम से आर्द्र पुराने धवल नखक्षत नहीं है अपितु नूतन लाल तुम्हारे ही किये है। अथवा रात में अन्यनायककृत ताजे लाल नखक्षतो को छिपाने के लिए पुराने उज्ज्वल नखक्षतो को भी कुंकुम से आर्द्र शरीर कर लाल बना दिया और यह कहने का अवकाश निकाल लिया कि ये सब नखक्षत परदेश जाने से पूर्व तुम्हीं ने किये थे, कुंकुम लगने से ही ये लाल दिखायी दे रहे, ताजे नहीं है)।

अथवा इस तरह से भी पति को प्रतारित किया जा सकता है, अतः

नखक्षतादि का भय त्याग कर मेरे बताये नायक को अङ्गीकृत करो—ऐसा, दूती नायिका से कह रही है) ॥ ६३६ ॥

नायिका नायक से कह रहा है—

स्तनजघनोरुप्रणयी गाढं लग्नो निवेशितस्नेहः ।
प्रिय कालपरिणतिरियं विरज्यसे यन्नखाङ्क इव ॥ ६३७ ॥

पदार्थ—हे प्रिय ! स्तनजघनोरुप्रणयी—(१) स्तनजघनोरुप्रीतिमान्, (२) (कामतन्त्र में इन स्थानो में नखक्षतदानादि का अभिधान होने से) स्तनजघनोरुप्रीतिमान् । गाढं लग्नः—(१) अत्यन्त लग्न, हठपूर्वकालिङ्गन-प्रवण, (२) अत्यन्त निखात । निवेशितस्नेहः—(१) कृतप्रीतिः, (२) दत्ततैलः । नखाङ्कः इव—नखक्षत के समान । विरज्यसे—(१) विरक्त हो रहे हो, (२) रुधिरशून्य श्वेत । इयम् कालपरिणतिः—यह काल का परिवर्तन है, अथवा चिरकाल संगति का यह फल है ।

सरलार्थ—हे प्रिय ! नखाङ्क, जिसे स्तन-जघन और ऊरु प्रदेश पर करने का कामतन्त्रीय विधान है, अत्यन्त निखात, (पीडा के उपशम के लिए) जिस पर स्नेह (तैल) दिया गया, वह समय पर शुष्क हो जाता है, उसी नखाङ्क के समान स्तन, जघन तथा ऊरु प्रदेश के प्रीतिमान्, हठपूर्वक आलिङ्गन में प्रवण, जिसमे प्रीति की गयी, ऐसे तुम भी विरक्त हो रहे हो तो यह समय का परिवर्तन है अथवा तुम्हारी चिरकाल संगति का यही फल है (ज्यों-ज्यों समय बीतता है, सज्जनो की प्रीति का उत्कर्ष होता है, और खलो की प्रीति का ह्रास) ॥ ६३७ ॥

नायिकादूती नायक से नायिका की विरहदशा का वर्णन कर रही है—

सा विच्छाया निशि निशि सुतनुर्बहुतुहिनशीतले तल्पे ।
ज्वलति त्वदीयविरहादोषधिरिव हिमवतः पृष्ठे ॥ ६३८ ॥

पदार्थ—विच्छाया—(१) विगता नष्टा छाया अङ्गकान्तिः यस्याः सा—जिसकी अङ्ग-कान्ति नष्ट हो गयी, (२) (प्रकाश शाली होने से) छाया-शून्य । त्वदीयविरहात्—तुम्हारे विरह से । सा सुतनुः—वह सुन्दरी । निशि निशि—प्रत्येक रात भर । बहुतुहिनशीतले—(१) बहो तुहिनवत् शीतले, तल्पे—हिम के समान अत्यन्त शीतल शय्या पर, (२) बहुतुहिनेन शीतले तल्पे—बहुतुहिन से शीतल तल्प रूप । हिमवतः पृष्ठे—हिमालय के पृष्ठभाग पर । ओषधिः इव—ओषधि के समान । ज्वलति—जलती रहती है ।

सरलार्थ—जिसकी अङ्गकान्ति नष्ट हो चुकी है, वह सुन्दरी, हिम के समान शीतल (किन्तु दाहक लगने वाली) कोमल (किन्तु उसे अत्यन्त कर्कश लगने वाली) शय्या पर तुम्हारे विरह से, अत्यन्त हिम के कारण शीतल हिमालय के पृष्ठ प्रदेश पर प्रत्येक रात भर, छायाशून्य ओषधि की भाँति (सन्ताप के कारण) जलती रहती है (दिन में लोकभय से उसकी वेदना संगुप्त रहती है, रात में ही हम उसकी वेदना का अनुभव करती हैं) ॥ ६३८ ॥

नायिकासखी, नायक से कह रही है—

सा नीरसे तव हृदि प्रविशति निर्याति न लभते स्थैर्यम् ।
सुन्दर सखी दिवसकरबिम्बे तुहिनांशुरेखेव ॥ ६३९ ॥

पदार्थ—हे सुन्दर ! अथवा 'सुन्दरसखी' यह एक पद है । नीरसे—(१) प्रीतिशून्ये—प्रीतिशून्य, (२) तेजोमय होने के कारण शुष्क । तव हृदि—तेरे हृदय में । सा सखी—वह मेरी सखी । प्रविशति—प्रविष्ट होती है । निर्याति—निकलती है। स्थैर्य न लभते—स्थिरता नहीं पाती । दिवसकरबिम्बे—सूर्यबिम्ब में । तुहिनांशुरेखा इव—चन्द्ररेखा के समान ।

सरलार्थ—हे सुन्दर ! प्रीतिशून्य तेरे हृदय मे वह सुन्दरी प्रविष्ट होती है, निकलती है, स्थिरता नहीं पाती है, जैसे चन्द्ररेखा शुष्क सूर्य के बिम्ब में प्रविष्ट होती है, निकलती है और स्थिर नही होती है (इस प्रकार तू ही अस्थिर-प्रकृतिक है) ॥ ६३९ ॥

कोई स्त्री किसी स्त्री के प्रति अन्योक्ति द्वारा कह रही है—

सुकुमारत्वं कान्तिर्नितान्तसरसत्वमान्तराश्च गुणाः ।
किं नाम नेन्दुलेखे शशग्रहेणैव तव कथितम् ॥ ६४० ॥

पदार्थ—हे इन्दुलेखे—चन्द्ररेखे ! सुकुमारत्वम्—सौकुमार्य । कान्तिः—शोभा । नितान्तसरसत्वम्—अत्यन्त सरसता । आभ्यन्तराश्च गुणाः—आन्तरिक गुण । तव शशग्रहेण एव—तेरे शशक को अङ्गीकार करने से ही । नाम—निश्चयेन । किं न कथितम्—क्या नहीं कह दिया गया ।

सरलार्थ—हे चन्द्ररेखे ! तुझमें सौकुमार्य, शोभा और सरसता एवम् आन्तरिक गुण है, इसे, तेरे शशक के ग्रहण ने ही बता दिया (यदि तुझमें सौकुमार्यादि गुण होते तो क्यो शशजातीय पुरुष में समासक्ति करती, अतः तुझमे गुण नहीं है, अथवा ऐसे पुरुष के सम्बन्ध से तेरा गुणादि सब कुछ व्यर्थ है) (अथवा सौकुमार्य, शोभा, सरसता आदि गुणो से युक्त तू पद्मिनी है और

पद्मिनी नायिका का शशजातीय पुरुष से सम्बन्ध रख कर कामशास्त्र के अनुसार तू ने उचित ही किया) ॥ ६४० ॥

इतर गुणों की अपेक्षा सद्वृत्त महत्तर है, ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

सौरभ्यमात्रमनसामास्तां मलयद्रुमस्य न विशेषः ।
धर्मार्थिनां तथापि स मृग्यः पूजार्थमश्वत्थः ॥ ६४१ ॥

पदार्थ—सौरभ्यमात्रमनसाम्—सौरभ्यमात्र की इच्छा वालो का । मलयद्रुमस्य न विशेषः—मलयाचल वृक्ष की कोई विशेषता नहीं । आस्ताम्—वह रहे अर्थात् उसकी आवश्यकता नहीं (क्योंकि स्वेप्सित सुगन्ध सर्वत्र रहती हैं) । धर्मार्थिनां—धर्मार्थियों का । तथापि—सौगन्ध्य रूप साधारण धर्म युक्त होने पर भी । पूजार्थम्—पूजा के लिए । सः अश्वत्थः—पूजार्ह अश्वत्थ (पीपल वृक्ष) । मृग्यः—ढूँढ़ने योग्य है ।

सरलार्थ—जो लोग केवल सुगन्ध चाहते हैं उन्हे मलयाचल वृक्ष की आवश्यकता नहीं, उसमें कोई विशेष नहीं (क्योंकि स्वाभीष्ट सुगन्ध सर्वत्र प्राप्य है) । तथापि सौगन्ध्य रूप साधारण धर्म युक्त होने पर भी धर्मार्थियों को पूजा के लिए पूजार्ह अश्वत्थ (पीपलवृक्ष) ढूँढना चाहिये अर्थात् धर्मार्थी पूजा के लिये पीपलवृक्ष में आदर रखते हैं (पाण्डित्यादि गुण सर्वत्र समान रूप से रहने पर भी सज्जन, सद्वृत्तवान् का ही आदर करते है) ॥ ६४१ ॥

एक पुरुष दूसरे से किसी परपुरुषासक्त नायिका का वृत्त बता रहा है—

संवाहयति शयानं यथोपवीजयति गृहपतिं गृहिणी ।
गृहवृतिविवरनिवेशितदृशस्तथाश्वासनं यूनः ॥ ६४२ ॥

पदार्थ—गृहिणी । शयानम् गृहपतिम्—शयन करते गृहपति को । यथा—ज्यों-ज्यों । संवाहयति—पैर दबाती है । उपवीजयति—मन्द-मन्द पंखे की हवा करती है—पंखा झलती है । गृहवृतिविवरनिवेशितदृशः—गृहस्य या वृतिः भित्तिः तस्य विवरे छिद्रे निवेशिता स्थापिता दृक् येन तस्य—घर की दीवाल के छिद्र में जिसने दृष्टि डाल रक्खी है । यूनः—युवक को । तथा—त्यों-त्यों । आश्वासनम् (भवति)—आश्वासन होता है ।

सरलार्थ—(पति को शीघ्र सुला कर, प्रिय से मिलने जाने की अभिलाषा रखती) गृहिणी शयन करते गृहपति का जितना पैर दबा रही है, मन्द-मन्द पंखा झल रही है; (छिद्र से देखूँ प्रिया को तैयार होने में क्या विलम्ब है—ऐसी अधीरता एवम् उत्कण्ठा-वश) जिसने घर की दीवाल के छिद्र में अपनी दृष्टि डाल रक्खी है, उस युवक को (ये सब उपाय मेरे पास आने के लिए ही किये जा रहे हैं—यह जान कर) उतना ही आश्वासन मिलता है ॥ ६४२ ॥

सामान्य वनिता से अनादृत पुरुष के प्रति सखी अनादर का कारण बताती हुई कह रही है—

सत्यं स्वल्पगुणेषु स्तब्धा सदृशे पुनर्भुजंगे सा ।
अर्पितकोटिः प्रणमति सुन्दर हरचापयष्टिरिव ॥ ६४३ ॥

पदार्थ—हे सुन्दर ! स्वल्पगुणेषु—स्वल्पाः गुणाः येषु तेषु—(१) जिनमें स्वल्प गुण हैं, (२) छोटी प्रत्यंचा में । सा—वह । स्तब्धा—नम्र नहीं होती । सत्यम्—यह सच है । सदृशे पुनः भुजङ्गे—(१) अपने गुणों से समान कामुक (वेश्यागामी) में, (२) (महत्तर होने से) सदृश सर्प में । अर्पितकोटिः—अर्पिता कोटिः (१—कोटिसंख्याकधनम् , २—अग्रभागः) यया सा—(१) जिसने करोड़ का धन दिया, (२) जिसने अपना अग्रभाग दे दिया । हरचापयष्टिः इव—शिव की चापयष्टि के समान । प्रणमति—(१) नमस्करोति—नमस्कार करती है, (२) नम्रीभवति—झुकती है ।

सरलार्थ—हे सुन्दर ! जैसे शंकर की चापयष्टि, छोटी प्रत्यंचा होने पर नहीं झुकती, अपने ही परिमाण का (मौर्वीरूप) सर्प में स्वयम् अग्रभाग अर्पित कर झुक जाती है; उसी प्रकार वह स्वल्पगुणवाले पुरुषों में नम्र नहीं होती, अपने गुणो के समान गुणो से युक्त कामुक मे करोड़ का धन भी देकर उसके सामने प्रणत होती है (सामान्य वनिता होने के नाते केवल द्रव्यमात्र की इच्छा से ही नहीं, अपितु गुणों से युक्त नायक की ही संगति करती है, तू ऐसा नही है)।।६४३॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

सर्वंसहां महीमिव विधाय तां बाष्पवारिभिः पूर्णाम् ।
भवनान्तरमयमधुना संक्रान्तस्ते गुरुः प्रेमा ॥ ६४४ ॥

पदार्थ—सर्वंसहाम्—(१) तेरे सकल अपराधों को सहने वाली, (२) तन्नाम्नी । वाष्पवारिभिः पूर्णाम्—(१) अश्रुजल से पूर्ण, (२) जलपूर्ण । महीमिव—पृथ्वी सा । तां विधाय—उसको बना कर । ते अयम्—तेरा यह । गुरुः—(१) श्रेष्ठः, (२) बृहस्पतिः । अधुना—अब । भवनान्तरम्—अन्यं भवनम्—(१) अन्य नायिका के पास, (२) अन्य राशि में । संक्रान्तः—चला गया, गमन कर गया ।

सरलार्थ—जैसे सर्वंसहा पृथ्वी को जल-पूर्ण बना कर बृहस्पति अन्य राशि पर गमन कर जाता है, उसी प्रकार तेरे सकल अपराधो को सहने वाली उस (बेचारी) को अश्रुजलपूर्ण कर, तेरा यह श्रेष्ठ प्रेम अब अन्य नायिका मे प्रविष्ट हो गया (तेरे सकल अपराधों को सहने वाली, रोती और अत्यन्त सरल उस नायिका को त्याग कर अन्यत्र आसक्ति करता है, अतः तेरे समान कोई दुष्ट नही)।

(वृहस्पति के चलने पर अतिवृष्टि होती है—ऐसा ज्योतिषशास्त्र का मत है) ॥ ६४४ ॥

ईप्सित किन्तु अतिरक्षिता नायिका के सङ्ग के लिए चिन्तित नायक से, उसका सखा कह रहा है—

संभवति न खलु रक्षा सरसानां प्रकृतिचपलचरितानाम् ।
अनुभवति हरशिरस्यपि भुजंगपरिशीलनं गङ्गा ॥ ६४५ ॥

पदार्थ—सरसानाम्—(१) शृङ्गाररसवती स्त्रियों की, (२) जलवती की । प्रकृतिचपलचरितानाम्—प्रकृत्या स्वभावेन चपलं चरितम् (१—आचरणम्, २—गतिः गमनं वा) यासां तासाम्—(१) जिनका चरित स्वभावतः चञ्चल है, (२) जिनका गमन चंचल है, उनकी । खलु—निश्चयेन । रक्षा न संभवति—रक्षा संभव नहीं । हरशिरस्यपि—शिव के शिर पर भी । गङ्गा । भुजङ्गपरिशीलनम्—भुजङ्गस्य (१—सर्पस्य, २—कामुकस्य) परिशीलनम्—(१) सनातनसंसर्गम्, (२) संभोगम्—(१) सर्प का सनातन संसर्ग, (२) कामुक का संभोग । अनुभवति—अनुभव करती है ।

सरलार्थ—शृङ्गाररसवती एवं स्वभावतः चपल आचरण वाली स्त्रियो की सुरक्षा निश्चित संभव नहीं । भगवान् शिव के (अन्य की क्या बात) सिर पर भी (परमपवित्र नहो दूसरो को पवित्र करने वाली भी) गङ्गा भुजङ्ग (कामुक) के सनातन संसर्ग (संभोग) के सुख का अनुभव करती है (अतः तुझे उसके संग प्राप्ति की चिन्ता नहीं करनी चाहिये) ॥ ६४५ ॥

समधिक नायिकाओं के वल्लभ को चाहने वाली किसी नायिका से कोई स्त्री कह रही है—

सुलभेषु कमलकेसरकेतकमाकन्दकुन्दकुसुमेषु ।
वाञ्छति मनोरथान्धा मधुपी स्मरधनुषि गुणीभावम् ॥ ६४६ ॥

पदार्थ—कमलकेसरकेतकमाकन्दकुन्दकुसुमेषु—कमल, केसर, केतक, आम्र, कुन्द, कुसुम । सुलभेषु—सरलता से प्राप्त हो सकने पर भी । मनोरथान्धा—मनोरथ से ज्ञानशून्य । मधुपी—भ्रमरी । स्मरधनुषि—मदन धनुष में । गुणीभावम्—(१) मौर्वीभावम्, (२) अप्रधानभावम्—(१) मौर्वी होना, (२) अप्रधान बनना । वाञ्छति—चाहती है ।

सरलार्थ—कमल, केसर, केतक, आम्र, कुन्द आदि के कुसुम सुलभ है तथापि मनोरथ से विवेकशून्य भ्रमरी मदन के धनुष में मौर्वी (अप्रधान) बनने की वाञ्छा कर रही है । (कामदेव के जगद् विजय में मदन धनुष रूप साधन के समान, उस लावण्यपुरुषार्थातिशयशाली अतएव अनेक कामिनी-

वल्लभ में, सुलभ समीचीन पुरुषों को छोड़कर, आसक्ति करने पर गुणातिशय-शालिनी कामिनियों में इसको गौणस्थान ही प्राप्त होगा) ॥ ६४६ ॥

एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

सा लज्जिता सपत्नी कुपिता भीतः प्रियः सखी सुखिता ।
बालायाः पीडायां निदानिते जागरे वैद्यैः ॥ ६४७ ॥

पदार्थ—वैद्यैः—वैद्यों द्वारा । बालायाः पीडायाम्—बाला की पीड़ा में । जागरे निदानिते—जागरण ही कारण है, ऐसा कहे जाने पर । सा लज्जिता—वह लज्जित हुई । सपत्नी कुपिता—सपत्नी कुपित हुई । भीतः प्रियः—प्रिय भयाकुल हुआ । सखी—बाला की सखी । सुखिता—सुखित हुई ।

सरलार्थ—(बाला के अस्वस्थ होने का समाचार जान कर चिकित्सार्थ पति द्वारा बुलाये गये) वैद्यों ने जब, बाला की पीड़ा का मूल कारण रात्रि-जागरण है, ऐसा निश्चय करके बताया तो (सुरतादि क्रीड़ा का दूसरों को ज्ञान हो जाने से) वह (बाला) लजा गयी; (प्रियतम इसमें इतना कैसे आसक्त हो गया—ऐसा सोचकर) सपत्नी कुपित हो उठी; (मेरे किये गये अपराध को गृहिणी ने जान लिया—यह सोचकर) प्रिय भीत हो गया, (बाला की) सखी (अपनी सखी के सौभाग्य के कारण) सुखी हो गयी ॥ ६४७ ॥

विदेश से आये प्रिय से मान करने वाली नायिका को सखी उपदेश दे रही है—

सुचिरागतस्य संवाहनच्छलेनाङ्गमङ्गमालिङ्ग्य ।
पुष्यति च मानचर्चां गृहिणी सफलयति चोत्कलिकाम् ॥ ६४८ ॥

पदार्थ—गृहिणी । सुचिरागतस्य—अत्यन्त चिरकाल के बाद प्रवास से लौटे प्रिय का । संवाहनच्छलेन—मलने दबाने आदि के बहाने । अङ्गम् अङ्गम्—एक-एक अङ्ग को । आलिंग्य—आलिङ्गन कर । मानचर्चां च—और अवधि के दिन तक न आने से उत्पन्न मान की चर्चा को । पुष्यति—आगे बढ़ाती है, न आने के कारण पर विवाद करती, बताये कारण का खण्डन और अपने दिये गये कारण का समर्थन कर वार्तालाप के आनन्द को बढ़ाती । उत्कलिकाम् च—और अपनी उत्कण्ठा को । सफलयति—सफल बनाती है ।

सरलार्थ—अत्यन्त चिरकाल के बाद प्रवास से लौटे प्रिय के एक-एक अङ्ग को (मार्गजन्य श्रान्ति को दूर करने के लिए) मलने—दबाने के बहाने आलिङ्गित कर, अवधि के दिन पर न आने से उत्पन्न मान की चर्चा को—पतिद्वारा न आने के बताये कारण का खण्डन और अपने दिये गये कारण का

समर्थन कर वार्तालाप को आगे बढ़ाती (वार्तालाप जन्य आनन्द का अनुभव करती) है और अपनी उत्कण्ठा को सफल बनाती है। (यदि तू भी ऐसा नहीं करती तो तेरा गृहिणीत्व ही नहीं रहता, अतः नायक की सेवा करती हुई मानादि कर) ॥ ६४८ ॥

नायिका की दूती नायक से कह रही है—

सा सर्वथैव रक्ता रागं गुञ्जेव न तु मुखे वहति ।
वचनपटोस्तव रागः केवलमास्ये शुकस्येव ॥ ६४९ ॥

पदार्थ—सा—वह (मेरी सखी)। सर्वथैव रक्ता—(१) तुझ में सब प्रकार से ही अनुरक्त है, (२) सर्वतः रक्तरूपवती। रागम्—(१) प्रीति को, (२) लौहित्य को। गुञ्जा इव—घुँघची की भाँति। मुखे न वहति—मुख पर नहीं धारण करती है। वचनपटोः—(१) वचनकुशल, (२) शब्दोच्चारण निपुण। तव—तेरा। शुकस्य इव—तोते का-सा। आस्ये—मुख पर। केवलम्। रागः—(१) प्रीति, (२) लौहित्यम्।

सरलार्थ—वह मेरी सखी तुझमें सर्व प्रकार से अनुरक्त है, केवल मुख पर नहीं अनुराग रखती—मुख से अनुराग प्रकट नहीं करती, जैसे गुञ्जा (घुँमची) सर्वतः रक्त होती है, मुख उसका लाल नहीं रहता—उससे लाली प्रकट नहीं होती, और वचनकुशल तू केवल मुख पर राग प्रकट करता है—मुख से अनुराग प्रकट करता है, जैसे शब्दोच्चारण में निपुण तोता केवल मुख पर ही लाली रखता है। (वह पूर्ण रूप से तुझ में अनुरक्त है परन्तु केवल मुख से अनुराग प्रकट नहीं करती, वैसी सरल कोई दूसरी नहीं है, और तू केवल मुख से प्रीति प्रकट करता है अतः शठ है, मैं कैसे तेरी बात पर विश्वास करूँ) ॥ ६४९ ॥

कोई किसी स्त्री को सिखा रही है—

सायं कान्तभुजान्तरपतिता रतिनीतसकलरजनीका ।
उषसि ददती प्रदीपं सखीभिरुपहस्यते बाला ॥ ६५० ॥

पदार्थ—सायम्—सन्ध्या के समय ही। कान्तभुजान्तरपतिता—कान्तस्य भुजयोः अन्तरे मध्ये पतिता—पति की भुजाओं के मध्य में पड़ी। रतिनीतसकलरजनीका—रत्या नीता सकला रजनी यया सा—रति से जिसने सारी रात बिता दी। उषसि—प्रातः। प्रदीपं ददती—दीप देती—अर्थात् दीपक में तैलादि डालकर जलाने के लिए उद्यत। सा बाला—वह बाला। सखीभिः उपहस्यते—सखियों द्वारा हँसी जाती है।

सरलार्थ—सन्ध्या के समय ही पति की भुजाओं के मध्य मे पड़ गयी (अत एव उसका अपराध नहीं) रति से सारी रात उसने बितायी। (अभी

सायंकाल हुआ है—ऐसा समझ कर) प्रातः दीपक में तैलादि डाल उसे जलाने जा रही थी कि सखियों ने उस बाला का उपहास किया। (अतः रात्रि के प्रथम प्रहर में ही समस्त गृहकार्य सम्पादित करने के पश्चात पति के सदन मे प्रवेश किया करो) ॥ ६५० ॥

नायक दूती से कह रहा है—

सा तीक्ष्णमानदहना महतः स्नेहस्य दुर्लभः पाकः ।
त्वां दर्वीमिव दूति प्रयासयन्नस्मि विश्वस्तः ॥ ६५१ ॥

पदार्थ—हे दूति ! तीक्ष्णमानदहना—तीक्ष्णः मान एव दहनः यस्याः सा—तीक्ष्ण मानरूप अग्नि वाली। महतः स्नेहस्य—(१) बहुल स्नेह का, (२) तैल का। पाकः—परिपाक। दुर्लभः—दुर्लभ होता है। दर्वीम् इव—करछुल की भाँति। त्वाम्—तुझको। प्रयासयन्—गमनागमन का कष्ट देता हुआ। विश्वस्तः—विश्वास को प्राप्त। अस्मि—हूँ।

सरलार्थ—हे दूति ! वह तीक्ष्ण मानरूप अग्नि वाली है। उसके महान् स्नेह का परिपाक दुर्लभ है। (तीक्ष्णाग्नि में बहुतर स्नेह का परिपाक भी दर्वी-चालन के विना दुर्लभ होता है) अतः दर्वी की भाँति तुझे जाने-आने का कष्ट देता हुआ मैं विश्वस्त हूँ। (उस अत्यन्तमानशालिनी का स्नेह तेरे परिश्रम से ही प्राप्त हो सकेगा—ऐसा मुझे विश्वास है) ॥ ६५१ ॥

अनेक तरुण जिसमे आसक्ति रखते है—ऐसी तरुणी से अन्योक्ति द्वारा कोई स्त्री कह रही है—

स्नेहक्षतिर्जिगीषा समरः प्राणव्ययावधिः करिणाम् ।
न वितनुते कमनर्थं दन्तिनि तव यौवनोद्भेदः ॥ ६५२ ॥

पदार्थ—हे दन्तिनि !—करिणि ! तव यौवनोद्भेदः—तेरा तारुण्योद्गम ! स्नेहक्षतिः—पारस्परिक प्रीति का विनाश। जिगीषा—एक दूसरे को जीतने की इच्छा। प्राणव्ययावधिः समरः—प्राणो के नाशतक जारी रहने वाला युद्ध। करिणां—गजो का। कम् अनर्थम्—कौन अनर्थ। न वितनुते—नहीं करता है।

सरलार्थ—हे दन्तिनि ! तेरा तारुण्योद्गम, (गजो में तेरी प्राप्ति की स्पर्धा उत्पन्न कर) गजो की पारस्परिक प्रीति का विनाश, एक दूसरे को जीतने की इच्छा, प्राणनाशतक चलने वाला संग्राम आदि कौन अनर्थ हाथियो का नहीं करता।) तेरे निमित्त तरुणो का पारस्परिक स्नेहनाशादि होता है, अतः तू अत्यन्त सौभाग्यशालिनी है) ॥ ६५२ ॥

एक स्त्री दूसरी से कह रही है—

सदनादपैति दयितो हसति सखी विशति धरणिमिव बाला।
ज्वलति सपत्नी कीरे जल्पति मुग्धे प्रसीदेति ॥ ६५३ ॥

पदार्थ—हे मुग्धे! प्रसीद—मुग्धे प्रसन्न हो। इति—ऐसा। कीरे जल्पति—तोते के उच्चारण करने पर। दयितः—प्रिय। गृहादपैति—घर से निकल जाता है। सखी हसति—सखी हँसती है। बाला। धरणिमिव विशति—मानों पृथ्वी में धँस रही है। सपत्नी ज्वलति—सपत्नी जलने लगती है।

सरलार्थ—(प्रिय के उच्चरित शब्दों का अनुकरण करके) तोते ने कहा कि हे मुग्धे प्रसीद! बस, (गृहिणी के क्रोध के भय से) प्रिय बाहर घर से निकल गया, (प्रसन्नता से) सखी हँसने लगी; (लज्जा के कारण) बाला मानो धरती में गड़ गयी और सपत्नी (द्वेष से) जलने लगी ॥ ६५३ ॥

नायक हिमको सम्बोधित करते हुये कह रहा है—

संकुचिताङ्गीं द्विगुणांशुकां मनोमात्रविस्फुरन्मदनाम्।
दयितां भजामि मुग्धामिव तुहिन तव प्रसादेन ॥ ६५४ ॥

पदार्थ—हे तुहिन!—हिम! तव प्रसादेन—तेरी कृपा से। संकुचिताङ्गीम्—संकुचितानि अङ्गानि यस्याः ताम्— जिसके अङ्ग संकुचित हो गये। द्विगुणांशुकाम्—द्विगुणम् अंशुकम् यस्याः ताम्—जिसका वस्त्र द्विगुण हो गया। मनोमात्रविस्फुरन्मदनाम्—मनोमात्रे विस्फुरन् मदनः यस्याः ताम्—जिसके चित्तमात्र में मदन विस्फुरित हो रहा है। दयिताम्—प्रिया को। मुग्धामिव—मुग्धा की भाँति। भजामि—सेवन करता हूँ।

सरलार्थ—हे हिम! तेरी कृपा से मुग्धा की भाँति संकुचित वाली, दूने वस्त्र वाली, चित्तमात्र में जिसके मदन विस्फुरित हो रहा है, ऐसी प्रिया का सेवन मैं करता हूँ (दयिता को नवोढा के समान अङ्गसंकोचादिमती बनाकर तूने मेरा महान् उपकार किया है) ॥ ६५४ ॥

दूती नायिका से कह रही है—

सखि लग्नैव वसन्ती सदाशये महति रसमये तस्य।
वाडवशिखेव सिन्धोर्न मनागप्यार्द्रतां भजसि ॥ ६५५ ॥

पदार्थ—हे सखि! महति—(१) प्रशस्त, (२) गभीर। रसमये—(१) प्रीतिप्रचुर, (२) जलप्रचुर। आशये—(१) अन्तःकरण में, (२) भीतर। सिन्धोः—समुद्र की। वाडवशिखा इव—वाडवानल की लपट की भाँति। सदा लग्ना एव—निरन्तर लगी ही। वसन्ती—रहती हुई। मनागपि—तनिक

भी। आर्द्रताम्—(१) स्निग्धता को, (२) सजलता को। न भजसि—नहीं प्राप्त होती है।

सरलार्थ—हे सखि! सिन्धु के जलमय प्रशस्त अन्तःप्रदेश में सदा लगी ही रहती वडवानल की लपट की भाँति, उसके प्रीतिमय प्रशस्त अन्तःकरण में सदा लगी ही रहती तू तनिक भी आर्द्रता (१—स्निग्धता, २—सजलता) को नहीं प्राप्त होती। (वह तुझ में अत्यन्त आसक्त है और तू रूखी ही बनी रहती है—यह उचित नहीं है) ॥ ६५५ ॥

नायिका, दूती से कह रही है—

सखि मिहिरोद्गमनादिप्रमोदमपिधाय सोऽयमवसाने।
वन्ध्योऽवधिवासर इव तुषारदिवसः कदर्थयति ॥ ६५६ ॥

पदार्थ—हे सखि! मिहिरोद्गमनादिप्रमोदम्—सूर्योद्गमनादि सुख को। अपिधाय—आच्छन्न कर। वन्ध्यः—निष्फल। अवधिवासरः इव—अवधिदिवस की भाँति। सः अयं तुषारदिवसः—वह यह हिमदिवस। अवसाने—समाप्ति पर। कदर्थयति—दुःख देता है।

सरलार्थ—जैसे अवधि के दिन प्रातः प्रियागमन की आशा से आनन्द और सायं प्रिय के न आने पर प्रातःकालीन सुख नष्ट होकर दुःख होता है, उसी प्रकार हिम दिवस प्रातः सूर्य किरणो से संजात सुख को दूर कर सायं-काल के समय अत्यन्त शीतदुःख देता है (यह जाड़े की लम्बी रात अकेली मैं कैसे बिता सकूँगी, अतः अन्य नायक की सङ्गति करा)।

अथवा हिमदिवस के समान, अवधिदिवस समाप्ति पर दुःख देता है। (अब तक तो प्राणो को रोक रक्खे थी, अब प्रिय का अनागम निश्चित है अतः इन्हे कैसे रोक रक्खूँगी; जिस प्रकार से इनकी रक्षा हो सके, वही उपाय कर) ॥ ६५६ ॥

किसी तरुण और तरुणी की पारस्परिक आसक्ति की प्रशंसा, एक स्त्री दूसरी से कर रही है—

सुरभवने तरुणाभ्यां परस्पराकृष्टदृष्टिहृदयाभ्याम्।
देवार्चनार्थमुद्यतमन्योन्यस्यार्पितं कुसुमम् ॥ ६५७ ॥

पदार्थ—परस्पराकृष्टदृष्टिहृदयाभ्याम्—परस्परम् आकृष्टे दृष्टिहृदये ययोः ताभ्याम्—जिनकी दृष्टि और हृदय परस्पर आकृष्ट है। तरुणाभ्याम्—तरुणश्च तरुणी च ताभ्याम्—तरुण और तरुणी ने। सुरभवने—देवालय में। देवार्चनार्थम्—देवपूजन के लिए। उद्यतम्—प्रस्तुत। कुसुमम्—पुष्प को। अन्योन्यस्य अर्पितम्—एक दूसरे को अर्पित कर दिया।

सरलार्थ—जिनकी दृष्टि और चित्त एक दूसरे की ओर आकृष्ट हो चुके हैं, ऐसे तरुण और तरुणी ने देवालय में (धर्माधर्मविवेकशून्य होकर अथवा मनुष्यों की भीड़ की उपेक्षा कर), देवपूजन के निमित्त प्रस्तुत अपना-अपना पुष्प, एक दूसरे को (परलोक बिगड़ने का भय छोड़कर) दे दिया ॥ ६५७ ॥

संकेत-समय हो गया—ऐसा, सखी नायिका से कह रही है—

सायं कुशेशयान्तर्मधुपानां निर्यतां नादः ।
मित्रव्यसनविषण्णैः कमलैराक्रन्द इव मुक्तः ॥ ६५८ ॥

पदार्थ—सायम्—सायंकाल के समय । निर्यताम्—निकलते हुए । मधुपानाम्—भ्रमरों का । कुशेशयान्तर्नादः—कुशे जले शेते इति कुशेशयम् कमलम्, तेषामन्तः—कमलों के भीतर का शब्द । मित्रव्यसनविषण्णैः—मित्रस्य सूर्यस्य व्यसनेन अस्तंगामित्वेन विषण्णैः दुःखितैः—सूर्य के अस्तंगमन रूप दुःख से दुःखित । कमलैः—कमलों ने । आक्रन्दः इव मुक्तः—मानो विलाप किया ।

सरलार्थ—सायंकाल के समय निकलते हुये भ्रमरों का, कमलों के भीतर, शब्द मानो सूर्य के अस्तगमन रूप दुःख से दुःखित कमलों द्वारा किया गया विलाप है । (नायक संकेतोत्सव से मित्रों के साथ मधु पीकर कामबाधारूप व्यसन को प्राप्त हुआ है, ऐसा मित्र के दुःख से दुःखित उसके मित्रों ने ही कहा है, संकेत काल पर ही शीघ्र वहाँ पहुँच जा) ॥ ६५८ ॥

नायक, अपनी नायिका की सरलता की प्रशंसा अपने सखा से कर रहा है—

सुमहति मन्युनिमित्ते मयैव विहितेऽपि वेपमानोरुः ।
न सखीनामपि रुदती ममैव वक्षःस्थले पतिता ॥ ६५९ ॥

पदार्थ—मया एव—मेरे द्वारा ही । सुमहति—बहुत बड़ा । मन्युनिमित्ते—क्रोध का कारण । विहितेऽपि—किये जाने पर भी । वेपमानोरुः—वेपमानौ कम्पमानौ ऊरू यस्याः सा—जिसके जङ्घ प्रदेश काँप रहे हैं । रुदती—रोती हुई । मम एव—मेरे ही । वक्षःस्थले—वक्षःस्थल पर । पतिता—पड़ गयी अर्थात् सो गयी । सखीनामपि न—सखियों के भी (वक्षःस्थल पर) नहीं ।

सरलार्थ—मैंने ही उसके क्रोध का महान् कारण उत्पन्न किया था, तथापि वह कम्पमान जङ्घ प्रदेश वाली, रोती हुई, सखियों के भी वक्षःस्थल पर नहीं, मेरे ही वक्षःस्थल पर पड़कर सो गयी ॥ ६५९ ॥

नायिका के समीप वर्तमान नायक से सखी कह रही है—

सुभग व्यजनविचालनशिथिलभुजाभूदियं वयस्यापि ।
उद्वर्तनं न सख्याः समाप्यते किंचिदपगच्छ ॥ ६६० ॥

पदार्थ—हे सुभग ! इयं वयस्यापि—यह सखी भी। व्यजनविचालन-शिथिलभुजा—व्यजनस्य विशेषेण चालनेन शिथिले भुजे यस्याः—पङ्खा तीव्र चलाने से जिसकी भुजायें शिथिल हो गयीं। अभूत्—हो गयी। सख्याः—सखी का। उद्वर्तनम्—उबटन। न समाप्यते—सूख नहीं रहा है अतएव समाप्त नहीं हो रहा है। किंचित्—थोड़ी देर के लिए। अपगच्छ—यहाँ से चले जाओ।

सरलार्थ—हे सुभग ! (यहाँ तुम्हारे वर्तमान रहने से सखी (नायिका) को सात्त्विकभावरूप जो स्वेदातिशय हो रहा है उसके कारण (हमारी दूसरी) यह सखी तीव्रगति से पङ्खा झलते झलते थक गयी (परन्तु स्वेद सूखने का नाम नहीं लेता) और सखी (नायिका का) उबटन सूख नहीं पा रहा है, इससे समाप्त नहीं हो रहा है, अतः (कृपा करके) थोड़ी देर के लिए अथवा यहाँ से कुछ दूर (क्योंकि अधिक देर के लिए अथवा अधिक दूर चले जाने पर सखी को दुःख होगा) चले जाओ (जिससे इसका उबटन-कार्य समाप्त हो सके) ॥ ६६० ॥

नायिका की सखी नायक से कह रही है—

सव्रीडा नखरदनार्पणेषु कुपिता प्रगाढमचिरोढा ।
बहुयाच्ञाचरणग्रहसाध्या रोषेण जातेयम् ॥ ६६१ ॥

पदार्थ—सव्रीडा—सलज्जा। प्रगाढम्—अत्यन्त गहराई के साथ। नख-रदनार्पणेषु—नखानां रदानाम् अर्पणेषु क्षतेषु—नखक्षत और दन्तक्षत किये जाने पर। कुपिता—कुपित। इयं—यह। अचिरोढा—नवोढा। रोषेण—(तेरे) रोष से। बहुयाच्ञाचरणग्रहसाध्या—बहुभ्याम् याच्ञाचरणग्रहाभ्याम् साध्या—बार-बार प्रार्थना एवं चरण-प्रणिपात से अनुकूल होने वाली। जाता—हो गयी।

सरलार्थ—सलज्ज, अत्यन्त गहराई से नखक्षत और दन्तक्षत किये जाने पर कुपित यह नवोढा तेरे रोष से (अब तो) बार-बार चाटुवचन और चरण-प्रणिपात से ही अनुकूल हो सकेगी (दन्तक्षतादि को न सहने से कुपित नवोढा पर तेरा क्रोध करना अनुचित है, अब तो चाटुवचनादि से इसका कोप दूर कर, क्योंकि तेरा ही अपराध है, इसका प्रायश्चित्त भी तू ही कर) ॥ ६६१ ॥

दुष्टों की सङ्गति उचित नहीं—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—

सुगृहीतमलिनपक्षा लघवः परभेदिनः परं तीक्ष्णाः ।
पुरुषा अपि विशिखा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय ॥ ६६२ ॥

पदार्थ—सुगृहीतमलिनपक्षाः—(१) सम्यक् गृहीतः अङ्गीकृतः मलिनानां दुष्टानां पक्षः यैः ते—जिन्होंने दुष्टों का पक्ष (संगति) ग्रहण किया है, (२)

सुगृहीताः संनिविष्टाः मलिनपक्षाश्च श्यामपक्षवन्तः—गहरे घुसे, श्याम पङ्खवाले। लघवः—(१) नीच-जन, (२) अल्प परिमाण वाले, छोटे-से। परभेदिनः—परान् अन्यजनान् भिन्दन्ति इति परभेदिनः—(१) परस्पर भेद उत्पन्न कर कलह-प्रवर्तक, (२) इतर जनों को भेदने वाले। तीक्ष्णाः—(१) क्रूर कर्म करने वाले, (२) चोखे। पुरुषाः अपि—पुरुष भी। विशिखा अपि—बाण भी। गुणच्युताः—(१) साधुत्वादिगुणहीन, (२) ज्या (धनुष की डोरी) से छोड़े गये। कस्य न भयाय—किसके भय के लिए नहीं अर्थात् सबको भयप्रद होते है।

सरलार्थ—दुष्टो की सङ्गति अपनाने वाले (अतएव उपदेश योग्य नहीं), नीच, दूसरो में भेद उत्पन्न कर कलह-प्रवर्तक और साधुतादिगुणहीन क्रूर पुरुष और गहरे चुभे अतएव सरलता से निकालने योग्य नहीं तथा श्याम पक्ष (पङ्खवाले) छोटे आकार के, दूसरों को भेदने वाले अत्यन्त तीखे, धनुष की डोरी से मुक्त बाण किसके भय के लिए नहीं होते अर्थात् सबको भयप्रद होते हैं (अतः ऐसे पुरुष की सङ्गति करना उचित नहीं) ॥ ६६२ ॥

दुष्ट का अच्छा कर्म भी कुफलजनक होता है—ऐसा कोई कह रहा है—

स्वकपोलेन प्रकटीकृतं प्रमत्तत्वकारणं किमपि ।
द्विरदस्य दुर्जनस्य च मदं चकारैव दानमपि ॥ ६६३ ॥

पदार्थ—स्वकपोलेन—स्वस्य कपोलेन—(१) अपने गण्डस्थल द्वारा, (२) अपने मुख द्वारा। प्रकटीकृतम्—प्रकट किया गया। किमपि—अपूर्व। प्रमत्तत्व-कारणम्—प्रकृष्ट मदशील होने का कारण। द्विरदस्य—द्वौ रदौ दन्तौ यस्य तस्य द्विरदस्य (दन्तिनः)—जिसके दो दाँत हो अर्थात् गज का। दुर्जनस्य च—दुष्ट का। दानमपि—(१) मद जो हाथियो के गण्डस्थल से बहता है, (२) दान देना। मदमेव चकार—मद ही किया।

सरलार्थ—हाथी के गण्डस्थल से प्रकट किया गया अपूर्व मदशीलता का कारण मदजल तथा दुर्जन के मुख से प्रकट किया गया (मैंने इतना दान किया), मदशालिता का अपूर्व कारण रूप धनदान क्रमशः गज के और दुर्जन के मद ही पैदा करते है (इस प्रकार खलों की सङ्गति अनुचित है) ॥ ६६३ ॥

पति मूर्ख है तो पत्नी भी मूर्ख ही होगी—ऐसा मानते हुए उपपति से दूती कह रही है—

सत्यं पतिरविदग्धः सा तु स्वधियैव निधुवने निपुणा ।
मात्तिकमाधाय गुरुं धनुरधिगतमेकलव्येन ॥ ६६४ ॥

पदार्थ—पतिः—गृहस्वामी। अविदग्धः—अचतुर। सत्यम्—यह सच है। सा तु—किन्तु वह। स्वधिया एव—अपनी बुद्धि से ही। निधुवने—सुरत में। निपुणा—चतुर है। मार्तिकम्—मृत्तिका से निर्मित। गुरुम्—गुरु को। आधाय—गुरु के स्थान पर संस्थापित कर। एकलव्येन—एकलव्य निषाद ने। धनुरधिगतम्—धनुर्विद्या का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था।

सरलार्थ—उसका पति चतुर नहीं है—यह सच है, परन्तु वह सुरत में निपुण है। मिट्टी का गुरु स्थापित कर एकलव्य ने धनुर्विद्या का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था, (अतएव उसमें अनैपुण्य की शङ्का मत करो) ॥ ६६४॥

नायक की दूती नायिका से कह रही है—

सौभाग्यमानवान्स त्वयावधीर्यापमानमानीतः ।
स्वं विरहपाण्डिमानं भस्मस्नानोपमं तनुते ॥ ६६५ ॥

पदार्थ—सौभाग्यमानवान्—सौन्दर्य तथा अभिमान वाला। सः—वह। त्वया—तेरे द्वारा। अवधीर्य—तिरस्कार कर। अपमानम् आनीतः—अपमान को प्राप्त किया गया। भस्मस्नानोपमम्—भस्मस्नान के समान। स्वम्—अपने। विरहपाण्डिमानम्—विरह के पाण्डुत्व को। तनुते—करता है।

सरलार्थ—जैसे कोई अभिमानी अपमानित होकर सर्वाङ्ग में भस्म लगा कर सब कुछ छोड़-छाड़ कर दुःखवश उदासीन बैठा रहता है, उसी प्रकार सौन्दर्यशाली अभिमानी वह तुझसे तिरस्कृत एवम् अपमानित होकर तेरे विरहजन्य पाण्डुत्व रूप भस्म का स्नान करता है (अतः प्रसन्न होकर उसे अपना लो) ॥ ६६५॥

एक स्त्री दूसरी से किसी असती के वृत्त की चर्चा कर रही है—

सखि मम करञ्जतैलं बहुसंदेशं प्रहेष्यसीत्युदिता ।
श्वशुरगृहगमनमिलितं बाष्पजलं संवृणोत्यसती ॥ ६६६ ॥

पदार्थ—हे सखि! बहुसन्देशम्—बहूनां सदेशः यत्र तत्—बहुतों ने जिसके विषय में (औषधि के काम में आने के कारण) मुझसे प्रार्थना की है। करञ्जतैलम्—करञ्जस्य तैलम्—करञ्ज (एक झाड़विशेष जिसकी पत्ती फल आदि दवा के काम आते है) का तेल। मम प्रहेष्यसि—मुझे भेजना। इति उदिता—उक्ता—ऐसा कही गयी। असती। श्वशुरगृहगमनमिलितं—ससुर के घर जाने के अवसर पर उत्पन्न। बाष्पजलम्—अश्रुजल को। संवृणोति—रोक देती है।

सरलार्थ—हे सखि! अधिकतर रोगियो ने जिसके विषय में मुझसे प्रार्थना की है, करञ्ज (कञ्जा) का तेल मुझे भेज देना (निगूढार्थ—वहाँ भी मै करञ्ज-वृक्ष का संकेत बताकर तुम्हारे लिए कामुक को भेजूँगी, करञ्जवृक्ष का आधिक्य

होने से गुप्त रूप से यथेच्छ सुरत का अवसर मिलेगा—अतः तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये) इस प्रकार कही गयी असती ने ससुर सदन जाने के अवसर से उत्पन्न आँसुओं को रोक लिया। (वे आँसू मातृवियोगजन्य नहीं थे, वास्तव में यहाँ के कामुक के वियोगदुःख से जन्य थे, उसका समाधान हो जाने से आँसू तभी रुक गये) ॥ ६६६ ॥

ऐसे प्रगाढ अन्धकार में मैं अकेली कैसे आ सकूँगी—ऐसा कहती नायिका से दूती कहती है—

संदर्शयन्ति सुन्दरि कुलटानां तमसि विततमषिकल्पे ।
मौलिमणिदीपकलिका वर्तिनिभा भोगिनोऽध्वानम् ॥६६७॥

पदार्थ—हे सुन्दरि ! विततमषिकल्पे—विस्तृत मषी के तुल्य । तमसि—अन्धकार में । मौलिमणिदीपकलिकाः—मौलेः मणयः एव दीपकलिकाः येषां ते—मस्तक की मणियाँ ही जिनका दीपकसम्बन्धी फूल (चिराग का गुल) है । वर्तिनिभाः—बत्ती के समान । भोगिनः—(१) सर्पाः, (२) कामुकाश्च । कुलटानाम्—अभिसारिकाओं को । अध्वानम्—मार्ग । प्रदर्शयन्ति—प्रदर्शित करते हैं ।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! विस्तृत स्याही के तुल्य घने अन्धकार में मस्तक की मणियाँ ही जिनका दीपक सम्बन्धी फूल है, बाती के समान ऐसे सर्प और कामुक-जन अभिसारिकाओं का मार्ग प्रदर्शन करते हैं। (सर्पों की फणा-स्थित मणियों से विततप्रकाश द्वारा ही तुझे मार्ग का ज्ञान हो जायगा अथवा नायक ही मस्तकस्थ मणि के प्रकाश से मार्ग दिखाता हुआ तुम्हें संकेत तक ले जायगा) ॥ ६६७ ॥

दुष्ट के उत्कर्ष से दूसरों को क्लेश ही होता है—ऐसा, कोई किसी से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

सर्वं वनं तृणाल्या पिहितं पीताः सितांशुरवितारा: ।
प्रध्वस्ताः पन्थानो मलिनेनोद्गम्य मेघेन ॥ ६६८ ॥

पदार्थ—मलिनेन मेघेन—मलिन मेघ ने । उद्गम्य—निकलकर । सर्वं वनम्—सारे वन को । तृणाल्या—तृणपंक्ति से । पिहितम्—आच्छादित कर दिया । सितांशुरवितारा:—चन्द्र-सूर्य और तारा-गण । पीताः—ढक गये । पन्थानः—मार्ग । प्रध्वस्ताः—नष्ट हो गये ।

सरलार्थ—मलिन मेघ ने आविर्भूत होकर सारे वन को तृणों से आच्छादित कर दिया, चन्द्र, सूर्य और तारा-गण को ढक लिया, मार्गों को नष्ट कर दिया। (दुष्ट पुरुषों के उदय से विश्रान्तिदायक, सौम्य, निखिलकर्मप्रवर्तक,

सद्बुद्धिदायक तथा रक्षक पुरुषों का अपकार ही होता है अतः इनके उदय की अभिलाषा कभी नहीं करनी चाहिये) ॥ ६६८ ॥

मन्त्र का प्रकाशन त्वरा-वश करने से सिद्धि में बाधा पड़ती है—ऐसा, कोई कह रहा है—

सम्यगनिष्पन्नः सन्योऽर्थस्त्वरया स्वयं स्फुटीक्रियते ।
स व्यङ्ग एव भवति प्रथमो विनतातनूज इव ॥ ६६९ ॥

पदार्थ—सन्—समीचीन भी । सम्यक्—सम्पूर्ण । अनिष्पन्नः—असंजात । यः अर्थः—जो करणीय कर्म । स्वयम्—कर्म करने वाला, तत्फलाधिकारी । त्वरया—त्वरावश, समय से पहिले ही । स्फुटीक्रियते—प्रकट कर देता है । सः—वह करणीय गुप्त कर्म । प्रथमः—आद्य । विनतातनूजः—विनतायाः तनूजः पुत्रः इव—विनता के प्रथम पुत्र अरुण के समान । व्यङ्गः—विगतम् अङ्गम् यस्य सः—(१) अपूर्ण, अधूरा, (२) अङ्गरहित, पङ्गु, लुञ्ज । भवति—होता है ।

सरलार्थ—जो करणीय कर्म समीचीन भी हो तथापि सम्यक् निष्पन्न होने के पूर्व यदि उस करणीय कर्म का कर्ता, तत्फलाधिकारी स्वयं त्वरावश प्रकट कर देता है तो वह कार्य विनता के प्रथम पुत्र अरुण की भाँति अधूरा ही रह जाता है । (विनता ने समय से पहिले ही अण्डा फोड़ दिया था, जिससे अरुण बिना पैर के उत्पन्न हुए) ॥ ६६९ ॥

कोई किसी से कह रहा है—

सज्जन एव हि विद्या शोभायै भवति दुर्जने मोघा ।
न विदूरदर्शनतया कैश्चिदुपादीयते गृध्रः ॥ ६७० ॥

पदार्थ—सज्जने—समीचीन जन में । एव—ही । विद्या । शोभायै—शोभा के लिए । भवति—होती है । दुर्जने—दुष्ट में । मोघा—निष्फला । विदूरदर्शनतया—अत्यन्त दूरदर्शी होने के कारण (अग्रसोची होने के कारण) । गृध्रः—गिद्ध । कैश्चित्—किन्हीं के द्वारा । न उपादीयते—आद्रियते, प्रशस्यते—बखाना नहीं जाता (गिद्ध की दृष्टि बहुत दूर तक जाती है) ।

सरलार्थ—समीचीन जन में ही विद्या की शोभा होती है, वह फलदायिनी होती है, दुर्जन में निष्फल होती है । अत्यन्त दूरदर्शिता (१—अग्रसोची होना, दूर तक देखना) के कारण गिद्ध का बखान कोई नहीं करता (विद्यावान् होकर भी तुम्हें दुर्जनता नहीं करनी चाहिये) ।

अथवा 'एव' का अन्वय 'शोभायै' से करने पर—विद्या सज्जन में शोभाप्रद ही होती है, धनप्रद नहीं, दुर्जन में निष्फल अर्थात् शोभाप्रद भी नहीं होती।

अथवा 'एव' का अन्वय 'विद्या' से करने पर—सज्जन में विद्या ही फलप्रद होती है, अविद्या नहीं। दुर्जन में विद्या ही निष्फल होती है, अविद्या नहीं ॥ ६७० ॥

अपने सन्नायक में ही रुचि उचित है, ऐसा कहती सखी से नायिका कह रही है—

सुभगं वदति जनस्तं निजपतिरिति नैष रोचते मह्यम् ।
पीयूषेऽपि हि भेषजभावोपनते भवत्यरुचिः ॥ ६७१ ॥

पदार्थ—जनः—लोक। तम्—उसे। सुभगम्—सुन्दर, सौभाग्यशाली। वदति—कहता है। मह्यम्—मुझे। निजपतिः इति—अपना पति है इस कारण। एषः—पति। न रोचते—नहीं रुचता है। भेषजभावोपनते—ओषधिभाव को प्राप्त। पीयूषेऽपि—अमृत में भी। हि—निश्चयेन। अरुचिः भवति—रुचि नहीं होती।

सरलार्थ—लोग उसे सुभग कहते हैं किन्तु मुझे, अपना पति है—इस कारण, यह पति रुचता नहीं। ओषधिभाव को प्राप्त अमृत में भी निश्चित अरुचि होती है (अपना पति होना ही सारा दोष है) ॥ ६७१ ॥

तेरे कटाक्ष से आक्षिप्त वह क्षण भर भी धैर्य को नहीं प्राप्त होता—ऐसा, नायकदूती, नायिका से कह रही है—

सौधगवाक्षगतापि हि दृष्टिस्तं स्थितिकृतप्रयत्नमपि ।
हिमगिरिशिखरस्खलिता गङ्गेवैरावतं हरति ॥ ६७२ ॥

पदार्थ—सौधगवाक्षगतापि—सौधस्य प्रासादस्य गवाक्षे गता अवस्थिता अपि—प्रासाद के झरोखे में अवस्थित भी। दृष्टिः—तेरी दृष्टि। अथवा प्रासादस्य गवाक्षात् गता पतिता अपि—प्रासाद के झरोखे से (नायक पर) पड़ी भी दृष्टि। स्थितिकृतप्रयत्नमपि—स्थितौ (धैर्यस्य) कृतः प्रयत्नः येन तमपि—धैर्य की स्थिति के विषय में जिसने प्रयत्न किया भी। तम्—उसे। हिमगिरिशिखरस्खलिता—हिमगिरेः हिमालयस्य शिखरात् स्खलिता पतिता—हिमालय के शिखर से गिरी। गङ्गा। ऐरावतम् इव—जैसे ऐरावत (हाथी) को। हि—निश्चयेन। हरति—(१—दूर बहा ले जाती है, २—आकृष्ट करती है, चञ्चल बना देती है)।

सरलार्थ—प्रासाद के झरोखे से (नायक पर) पड़ी तेरी दृष्टि, धैर्यस्थिति-प्रयत्नशाली उस नायक को भी, ऐरावत (गज को) गङ्गा के समान, स्थिति-

विहीन (मुग्ध) बना देती है। (ऐसे नायक को अपनी सङ्गति से अनुगृहीत कर) ॥ ६७२ ॥

नायक के गृहिणीमान् होने के कारण प्रीति करने मे हिचकती नायिका से नायक कह रहा है—

सहधर्मचारिणी मम परिच्छदः सुतनु नेह संदेहः ।
न तु सुखयति तुहिनदिनच्छत्रच्छायेव सज्जन्ती ॥ ६७३ ॥

पदार्थ—सुतनु ! सुन्दरि ! मम—मेरी। सहधर्मचारिणी—गृहिणी। परिच्छदः—कुटुम्बक (भोजन-वस्त्रादि से पोष्य) है। इह न सन्देहः—इसमें सन्देह नही। तु—किन्तु। सज्जन्ती—सेवातत्परा। तुहिनदिनच्छत्रच्छाया इव—तुहिनदिनस्य शीतदिवसस्य छत्रच्छाया इव—जाड़े के दिन में छत्रछाया की भाँति। न सुखयति—सुख नही देती।

सरलार्थ—हे सुन्दरि ! मेरी गृहिणी कुटुम्बक है (वह भोजन-वस्त्रादि से मेरी पोष्या है) इसमे सन्देह नहीं; किन्तु सेवापर वह, जाड़े के दिन की छत्रच्छाया की भाँति सुख नहीं देती (वह केवल कुटुम्बिनी है, रतिसुखदा नही, अतः उसमे मेरी प्रीति नहीं है, तू शङ्का त्याग कर मुझमें निश्चल प्रीति कर ॥ ६७३ ॥

महान् किन्तु दुष्टसम्पर्क के कारण सबसे परित्यक्त व्यक्ति से कोई अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

सकलगुणैकनिकेतन दानववासेन धरणिरुहराज ।
जातोऽसि भूतले त्वं सतामनादेयफलकुसुमः ॥ ६७४ ॥

पदार्थ—हे सकलगुणैकनिकेतन—सकलगुणो के एकस्थान। धरणिरुहराज—वृक्षराज। दानववासेन—दानव का वासस्थान होने से। सताम्—समीचीन जनो का। अनादेयफलकुसुमः—न आदेयानि फलकुसुमानि यस्य सः—जिसका फल एवं पुष्प ग्राह्य नहीं। त्वम्—तू। भूतले—भूतल पर। जातः असि—ऐसे हो गये हो।

सरलार्थ—हे सकल गुणो के एक स्थान वृक्षराज ! तुझ पर दानव का वास होने से इस भूतल पर तू ही एक ऐसा वृक्ष है कि समीचीन जन तेरा फल और पुष्प अग्राह्य मानते है।

(दुष्ट की संगति से सजातीय महत्ताशाली लोगो मे तेरी प्रतिष्ठा नहीं रह गयी है; अतः दुष्ट का सम्पर्क त्याग कर अपना पूर्वगौरव प्राप्त कर ले) ॥६७४॥

नायक नायिका से कह रहा है—

सुन्दरि ताटङ्कमयं चक्रमिवोद्वहति तावके कर्णे ।
निपतति निकामतीक्ष्णः कटाक्षबाणोऽर्जुनप्रणयी ॥ ६७५ ॥

पदार्थ—हे सुन्दरि ! तावके कर्णे—(१) तेरा कान । ताटङ्कमयम् चक्रमिव उद्वहति सति—ताटङ्कस्वरूप जब चक्र धारण करता है, (२) कर्ण (कुन्तीपुत्र) ताटङ्क के समान चक्र को जब पृथ्वी से ऊपर निकाल रहा था । अर्जुनप्रणयी—(१) अर्जुनस्य प्रणयी कृष्णः अर्थात् काला अथवा आकर्षक, (२) पाण्डुसुत अर्जुन प्रेरित । कटाक्षबाणः—(१) कटाक्षरूप बाण, (२) कटाक्षसदृश बाण । निकामतीक्ष्णः—अत्यन्त तीक्ष्ण । निपतति—गिरता है ।

सरलार्थ—तेरे कान के, ताटङ्कस्वरूप चक्र धारण करने पर, काला कटाक्ष रूप बाण अत्यन्त तीक्ष्ण गिरता है अथवा पड़ता है। जैसे कर्ण के, पृथ्वी में धँसे चक्र को ऊपर उठाते समय, अर्जुन का प्रेरित बाण अत्यन्त तीक्ष्ण गिरता था ॥६७५॥

मेरे सन्मित्र का भाग्य बुरा है अतः दुरवस्थ है—ऐसी चिन्ता से व्याकुल किसी पुरुष से दूसरा व्यक्ति कह रहा है—

स्वाधीनैव फलर्द्धिर्जनोपजीव्यत्वमुच्छ्र्यच्छाया ।
सत्पुंसो मरुभूरुह इव जीवनमात्रमाशास्यम् ॥ ६७६ ॥

पदार्थ—मरुभूरुहः इव—मरुभुवि रोहति इति मरुभूरुट् तस्य इव—मरुभूमि के वृक्ष के समान । सत्पुंसः—समीचीन पुरुष की। फलर्द्धिः—फलम् (१) द्रव्यादि, (२) फल; तस्य ऋद्धिः समृद्धिः—(१) द्रव्यादि की समृद्धि, (२) फल की समृद्धि । स्वाधीना एव—अपने अधीन है । जनोपजीव्यत्वम्—(१) अन्नादि देकर, (२) फलादि देकर लोगों का उपजीव्य (सेव्य) बनना (स्वाधीन है) । उच्छ्र्यच्छाया—(१) इतरजनों का दुःख निवारण करना, (२) सघन छाया (स्वाधीन है) । जीवनमात्रम्—(१) केवल आयु, (२) केवल जल । आशास्यम्—अभिलाषा करने योग्य है ।

सरलार्थ—जैसे मरुस्थल के वृक्ष की फल-समृद्धि, फल प्रदान कर दूसरों का सेव्य बनना, सघन छाया—ये सब उस वृक्ष के अधीन हैं, केवल उसके लिए जल (जिस पर उसका जीवन निर्भर है) की कामना करनी चाहिये; उसी प्रकार सत्पुरुष के द्रव्यादि की समृद्धि, अन्नादि देकर दूसरों का सेव्य बनना, दूसरों का दुःख निवारण करना आदि स्वाधीन है, उसके लिए केवल जीवन की अभिलाषा करनी चाहिये (यदि जीवन रहता है तो सब कुछ हो ही जाता है, अतः उस आयुष्मान् की कोई चिन्ता मत करो) ॥ ६७६ ॥

तेरा पति सम्पत्ति-सम्पन्न हो गया—इसके लिये तुझे बधाई है, ऐसा कहती सखी से नायिका कह रही है—

सन्तापमोहकम्पान् सम्पादयितुं निहन्तुमपि जन्तून् ।
सखि दुर्जनस्य भूतिः प्रसरति दूरं ज्वरस्येव ॥६७७॥

पदार्थ—हे सखि ! ज्वरस्य भूतिः इव—ज्वरोत्पत्ति के समान । दुर्जनस्य भूतिः—दुर्जन का ऐश्वर्य । सन्तापमोहकम्पान्—सन्तापश्च मोहश्च कम्पश्च तान्—सन्ताप, मोह और कम्प को । सम्पादयितुम्—करने के लिए । जन्तून् निहन्तुमपि—प्राणियों की हत्या करने के लिए भी । दूरं प्रसरति—अधिकतर होती है ।

सरलार्थ—हे सखि ! जैसे ज्वर की उत्पत्ति सन्ताप, मूर्च्छा, कम्पन आदि को बढ़ाती है और प्राण भी ले लेती है, उसी प्रकार दुर्जन का ऐश्वर्य (मरती आदि लाकर) दुःख, (चिन्तातिशय से) मूर्च्छा, (समधिक क्रोध से) कम्प तथा (दण्ड देने से) प्राण त्याग भी करता है (इस ऐश्वर्य से मुझे सुखलेश भी नहीं) ॥ ६७७ ॥

विद्याभ्यसन ही करो, धन में मन मत लगाओ—ऐसा कोई किसी से कह रहा है—

सुखयतितरां न रक्षति परिचयलेशं गणाङ्गनेव श्रीः ।
कुलकामिनीव नोज्झति वाग्देवी जन्मजन्मापि ॥ ६७८ ॥

पदार्थ—श्रीः—लक्ष्मी । गणाङ्गना इव—वेश्या के समान । सुखयतितराम्—अत्यन्त सुख देती है । परिचयलेशं न रक्षति—तनिक भी परिचय नहीं रखती । वाग्देवी—सरस्वती । कुलकामिनीव—कुलकान्ता के समान । जन्मजन्मापि—जन्म-जन्म में भी । न उज्झति—नहीं छोड़ती है ।

सरलार्थ—लक्ष्मी वेश्या के समान अत्यन्त सुख देती है किन्तु तनिक भी परिचय नहीं रखती है और सरस्वती कुलकान्ता के समान जन्म-जन्म में भी नहीं छोड़ती (अतः विद्याभ्यास ही करो) ॥ ६७८ ॥

प्रवास से लौटे पति की दशा एक सखी दूसरी से कह रही है—

स्वसदननिकटे नलिनीमभिनवजातच्छदां निरीक्ष्यैव ।
हा गृहिणीति प्रलपंश्चिरागतः सखि पतिः पतितः ॥६७९॥

पदार्थ—स्वसदननिकटे—अपने सदन के निकट । अभिनवजातच्छदाम्—अभिनवानि नूतनानि जातानि छदानि पत्राणि यस्याम् ताम्—जिसमें नूतन पत्ते आ गये हैं । नलिनीम्—कमलिनीम्—कमलिनी को । निरीक्ष्य एव—देख कर ही । हा गृहिणि । इति प्रलपन्—ऐसा प्रलाप करता । चिरागतः—बहुत काल के बाद लौटा हुआ । पतिः । हे सखि । पतितः—मूर्च्छित हो गया ।

सरलार्थ—हे सखि ! अपने सदन के निकट (सरोवर में) कमलिनी को नूतनपत्रशालिनी देखकर (विरह को न सह पानेवाली प्रिया ने उपचारार्थ इसके पुराने पत्तों को तोड़ लिया था और अब वह जीवित नहीं रही अत: ये नवीन पत्ते तोड़ने से रह गये—ऐसा सोचकर) ही, (बिना किसी से पूछे) हा गृहिणि ! ऐसा प्रलाप करता पति मूर्च्छित हो गया ॥ ६७९ ॥

तेरा प्रियतम सब सपत्नियों में समबुद्धि है—ऐसा कहती सखी से नायिका कहती है—

सखि चतुराननभावाद्वैमुख्यं क्वापि नैव दर्शयति ।
अयमेकहृदय एव द्रुहिण इव प्रियतमस्तदपि ॥ ६८० ॥

पदार्थ—हे सखि ! प्रियतम:—मेरा प्रियतम ! द्रुहिणः इव—विधाता के समान। चतुराननभावात्—(१) चातुर्यवान् होने के कारण, (२) चारोमुखवाला होने के कारण, क्वापि—किसी में भी। वैमुख्यम्—(१) विरसता, (२)—मुखाभाववत्ता। नैव दर्शयति—नहीं दिखाता है। तदपि—तो भी। एकहृदयः एव—(१) एकस्याम् मय्येव हृदयं यस्यासौ—जिसका हृदय एक मुझ मे ही है, (२) एकं हृदयं यस्य सः—जिसके हृदय एक ही है। अयम्—यह है।

सरलार्थ—हे सखि ! मेरा प्रियतम विधाता के समान (१—चातुर्यवान् होने के कारण, २—चार मुखवाला होने के कारण) किसी में भी अथवा कहीं भी विमुखता (१—विरसता, २—मुखाभाववत्ता) नही दिखाता है, तो भी यह एक-हृदय ही (१—जिसका हृदय मुझमे ही है, २—एक हृदय जिसके है) है। (ब्रह्मा के चार मुख होते हुए भी हृदय एक ही है, मेरा प्रियतम सब में सरसता चातुर्यवश प्रकट करता है परन्तु हृदय एक मुझमें ही है) ॥ ६८० ॥

सौन्दर्यादिगुणयुक्त तेरा प्रिय पराङ्गनालम्पट क्यों नही है—ऐसा कहती सखी से नायिका कह रही है—

सत्यं मधुरो नियतं वक्रो नूनं कलाधरो दयितः ।
स तु वेद न द्वितीयामकलङ्कः प्रतिपदिन्दुरिव ॥६८१॥

पदार्थ—सः—वह। मधुरः—सुन्दर, मधुरभाषी। सत्यम्—यह सत्य है। वक्रः—(१) वक्रोक्तिनिपुण, (२) कुटिल। नियतम्—यह निश्चित है। कलाधरः—(१) कामकलाभिज्ञ ,(२) चन्द्रमण्डल की एक कला से युक्त। नूनम्—निश्चित। दयितः—प्रिय। अकलङ्कः—(१) अपवादशून्य, (२) कलङ्करहित। प्रतिपदिन्दुरिव—प्रतिपच्चन्द्र के समान। द्वितीयाम्—(१) अपर तरुणी को, (२) द्वितीयाभिधा तिथि को। न वेद—नहीं जानता है।

सरलार्थ—यह सुन्दर, [illegible] है—[illegible] निश्चित है किन्तु प्रिय [illegible], द्वितीय [illegible] की [illegible] सुन्दर, नख, [illegible] प्रतिबिम्ब [illegible] ॥६८१॥

सज्जन अपने पक्ष का निर्वाह [illegible] उपायों से करता है, [illegible]—ऐसा, कोई किसी से कह रहा है—

स्वस्थानादपि विचलति मज्जति जलधौ च नीचमपि भजते।
निजपक्षरक्षणमनाः सुजनो मैनाकशैल इव ॥६८२॥

पदार्थ—निजपक्षरक्षणमनाः—निजपक्षस्य रक्षणे [illegible] यस्य मनः यस्य सः—अपने दल अनुयायी के रक्षण में जिसका चित्त है। सुजनः—सज्जन। मैनाकशैलः इव—मैनाक पर्वत की भांति। स्वस्थानादपि विचलति—अपने स्थान से भी विचलित हो जाता है, दूसरे के घर जाता है। जलधौ च—और समुद्र में। निमज्जति—डूबता है, समुद्रतट भी जाता है। नीचमपि भजते—क्षुद्र की भी आराधना करता है।

सरलार्थ—अपने दल अनुयायी के रक्षण में जिसका चित्त रहता है ऐसा सज्जन (अनुयायी की रक्षा के लिए) दूसरे के भी घर जाता है, समुद्र तट भी जाता है, क्षुद्र की भी आराधना करता है, जैसे मैनाक पर्वत अपने पक्ष (पंख) की रक्षा के लिए अपने स्थान से भी विचलित हुआ, समुद्र में मग्न हुआ, नीचदेश का अवलम्ब लिया। (सुजन जिसे अनुयायी कर लेते हैं, अनेक अनुचित उपायों से भी उसका निर्वाह करते हैं अतः सुजनों की ही संगति करनी चाहिये) ॥ ६८२ ॥

मानिनी नायिका से सखी कह रही है—

संवृणु बाष्पजलं सखि दृशमुपरञ्जयाञ्जनेन चलयैनाम् ।
दयितः पश्यतु पल्लवपङ्कजयोर्युगपदेव रुचम् ॥ ६८३ ॥

पदार्थ—हे सखि ! बाष्पजलम्—आँसू। संवृणु—रोको। अञ्जनेन—अञ्जन से। एनाम् दृशम्—इस नेत्र को। उपरञ्जय—रंग कर। चलय—चञ्चल बनाओ। दयितः—प्रिय। पल्लवपङ्कजयोः—किसलय और नीलकमल की। रुचम्—शोभा। युगपदेव—एक ही समय में, एक साथ। पश्यतु—देखे।

सरलार्थ—हे सखि ! आँसू रोक लो। अञ्जन से नेत्रों को रंगकर चञ्चल बनाओ। रोदन से रक्त और कज्जल से श्याम होने से किसलय और नील कमल की शोभा, प्रिय एक ही समय में एक साथ देखे ॥ ६८३ ॥

नायिका की दशा का वर्णन, उसकी सखी नायक से कर रही है—

सा पाण्डुदुर्बलाङ्गी नयसि त्वं यत्र याति तत्रैव ।
कठिनीव कैतवविदो हस्तग्रहमात्रसाध्या ते ॥६८४॥

पदार्थ—सा—वह । पाण्डुदुर्बलाङ्गी—पाण्डूनि दुर्बलानि अङ्गानि यस्याः सा—जिसके पीले और दुर्बल अङ्ग है । त्वम्—तू । यत्र नयसि तत्रैव याति—जहाँ ले जायगा वहीं जायगी । कठिनी इव—खड़ियामिट्टी की भाँति । ते कैतवविदः—तुझ छलिया के । हस्तग्रहमात्रसाध्या—करग्रह के अधीन है, चाटुवचनादि की कोई आवश्यकता नहीं ।

सरलार्थ—वह (तेरे विरह से) पीले एवं दुर्बल अङ्गो वाली, खड़िया मिट्टी की भाँति तुझ छलिया के केवल करग्रह के अधीन है, (चाटुवचनादि अपेक्षित नही है) तू उसे जहाँ ले जायगा वही जायगी । (तू स्वयं कैतवविद् है अतः तू जिस बहाने से जाकर उसका सम्मान कर, उसे जानता ही है) खड़िया मिट्टी भी पाण्डुर वर्ण एवं सूक्ष्म होती है और लेखक हाथ में पकड़कर जैसा चलाता है वैसी चलती है ॥ ६८४ ॥

किसी तरुण की दूती, किसी वृद्ध की तरुणी पत्नी से कह रही है—

सखि विश्वगञ्जनीया लक्ष्मीरिव कमलमुखि कदर्यस्य ।
त्वं प्रवयसोऽस्य रक्षावीक्षणमात्रोपयोग्यासि ॥ ६८५ ॥

पदार्थ—हे सखि ! कदर्यस्य—कृपण की । विश्वगञ्जनीया—विश्वस्य गञ्जनीया, निन्दनीया । लक्ष्मीः इव—संसार द्वारा धिक्कृतियोग्य लक्ष्मी के समान । कमलमुखि !—कमलवदने । त्वम् अस्य प्रवयसः—तू इस तरुण के । रक्षावीक्षणमात्रोपयोग्या असि—रक्षण और वीक्षण (निरीक्षण) मात्र योग्य है ।

सरलार्थ—हे सखि, जैसे कृपण की लक्ष्मी को संसार धिक्कारता रहता है (उसके उपभोग को लालायित रहता है) उसका रक्षण और निरीक्षण प्रकृष्ट तरुण मात्र के योग्य होता है, ठीक उसी प्रकार हे कमलमुखि ! (इस जरठ के उपयोग्य तू नहीं है) तेरा रक्षण और निरीक्षण मेरे बताये प्रकृष्ट तरुण के योग्य है (तू उसी को अपना बना ले) ॥ ६८५ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता सकारव्रज्या ।

हकारव्रज्या

नायक सखा से कह रहा है—

हृदयज्ञया गवाक्षे विसदृक्षं किमपि कूजितं सख्या ।
यत्कलहभिन्नतल्पा भयकपटादेति मां सुतनुः ॥ ६८६ ॥

पदार्थ—हृदयज्ञया—हृदयम् अभिप्रायम् जानातीति हृदयज्ञा तया—नायिका का अभिप्राय जानने वाली। सख्या—सखी ने। गवाक्षे—झरोखे में। निर्दय—जैसा मैं बोलकर स्वयं नहीं बता पाता हूँ। विसदृशम्—धोखा देने वाला, अयोग्य। कूजितम्—अटपटा शब्द (खाँसना) किया। यत्—जिससे। भयात्—भय के कारण। सुतनुः—सुन्दरी। भयच्छलात्—भय के बहाने से। माम् एति—मेरे पास आ गयी।

सरलार्थ—नायिका का अभिप्राय जानने वाली सखी ने (नायक के अनन्तर नायिका के उत्कट मनोभाव को जान कर) झरोखे पर बैठी सखी ने विलक्षण कूजित झरोखे के पास मुँह लगा कर किया कि जिससे वह विदग्धता वाली सुन्दरी भय के बहाने से मेरे निकट आ गयी। (अभिप्राय विस्मर्त नहीं होता) ॥ ६८६ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

हरति हृदयं शलाकालिखितोऽञ्जनतन्तुरेष सखि मुग्धे।
लोचनबाणमुचा भ्रूधनुषा किण इवोल्लिखितः ॥ ६८७ ॥

पदार्थ—हे सखि ! मुग्धे—सुन्दरि ! शलाकालिखितः—शलाकया लिखितः—शलाका से किया गया। एषः—यह। अञ्जनतन्तुः—काजल की सूक्ष्म रेखा। लोचनबाणमुचा—नेत्ररूप बाण को छोड़ने वाले। भ्रूधनुषा—भौं रूप धनुष के द्वारा। उल्लिखितः किणः इव—उत्कीर्ण घट्टा (निशान जो किसी वस्तु की रगड़ लगते लगते पड़ जाता है) के समान। हृदयम्—नायक का हृदय। हरति—हरता है।

सरलार्थ—हे सखि ! मुग्धे ! शलाका से लिखित यह अञ्जनतन्तु (सूक्ष्म रेखा) नेत्ररूप बाण को छोड़ने वाले भ्रूधनुष से उल्लिखित किण-सा, नायक के मन को हरता है ॥ ६८७ ॥

क्रोध से अपमानित नायक से नायिका कह रही है—

हससि चरणप्रहारे तल्पादपसारितो भुवि स्वपिषि।
नापराधेऽपि कृते प्रिय मम हृदयात्त्वं विनिःसरसि ॥६८८॥

पदार्थ—चरणप्रहारे—चरणताड़न किये जाने पर। हससि—हँसते हो। तल्पात्—शय्या से। अपसारितः—दूर हटा दिया गया। भुवि—भूतल पर। स्वपिषि—सोते हो। अपराधे कृते अपि—अयोग्य किये जाने पर भी। हे प्रिय ! मम हृदयात्—मेरे हृदय से। त्वम्—तू। न विनिःसरसि—नहीं निकलता।

सरलार्थ--(त्वदीयानुचिताचरणजन्य क्रोध से) मेरे द्वारा चरणप्रहार किये जाने पर (दुःखी न होकर) हँसते हो, शय्या से हटा दिये गये तो भूमि पर सो जाते हो। इस प्रकार मेरे द्वारा क्रोध से चरणप्रहारादि रूप अनुचित अवमानना किये जाने पर भी तुम (अपने ऐसे सहनशीलता रूप गुण के कारण) मेरे हृदय से नहीं निकलते हो (तुम्हारे इस गुण के कारण तुम पर मेरा अनुराग पूर्ववत् ही बना रहता है, अतः मेरे अपराध पर ध्यान न देकर मुझ पर अनुग्रह करो)।

अथवा तुम्हारे द्वारा सपत्नीसंसर्ग रूप अनुचिताचरण किये जाने पर भी (तुम्हारे इस सहनशीलता रूप गुण के कारण मेरा क्रोध स्थित नहीं रह पाता) तुम हृदय से नहीं निकलते हो (मैं तुमपर प्रसन्न ही हूँ) ॥ ६८८ ॥

सखी, नायक से नायिका को आसक्तिविशेष का वर्णन कर रही है—

हसति सपत्नी श्वश्रू रोदिति वदनं च पिदधते सख्यः ।
स्वप्नायितेन तस्यां सुभग त्वन्नाम जल्पन्त्याम् ॥ ६८९ ॥

पदार्थ—हे सुभग ! स्वप्नायितेन—सपना देखने से। तस्यां त्वन्नाम जल्पन्त्याम्—तेरा नाम उस नायिका के लेते समय। सपत्नी हसति—सपत्नी हँसती है। श्वश्रूः रोदिति—सास रोती है। सख्यः—सखियाँ। वदनम्—नायिका के मुख को। पिदधते—ढक देती है।

सरलार्थ—सुभग ! स्वप्न में भी नायिका तेरा नाम लेती है (जिसे सुन कर) सपत्नी (अच्छा हुआ, अब प्रिय इसका असतीत्व जान लेने पर इस पर प्रीति न करेगा—ऐसा सोच कर) हँसती है; सास (दूसरे लोग यदि यह बात सुन पायेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा—ऐसा सोच कर) रोती है और सखियाँ (पुनः नाम लेने से दूसरों को सम्यक् ज्ञान न हो—ऐसा सोच कर) उसके मुख को ढक देती हैं (ऐसी तुझ में आसक्त उस नायिका पर अनुग्रह करना तेरा कर्त्तव्य है) ॥ ६८९ ॥

नायक, सखा से कह रहा है—

हृदयं मम प्रतिक्षणविहितावृत्तिः सखे प्रियाशोकः ।
प्रबलो विदारयिष्यति जलकलशं नीरलेखेव ॥ ६९० ॥

पदार्थ—हे सखे ! प्रबलः—महत्तर। प्रतिक्षणविहितावृत्तिः—प्रतिक्षणम् विहिता कृता आवृत्तिः येन सः—प्रतिक्षण प्रत्यावर्त्तन जिसने किया। प्रियाशोकः—प्रियायाः शोकः—प्रियासम्बन्धी शोक। मम हृदयम्—मेरे हृदय को। जलकलशम्—जलकलश को। नीरलेखा इव—तरङ्गपंक्ति के समान। विदारयिष्यति—विदीर्ण करेगा।

सरलार्थ—हे सखे ! (मैं विदेश जाने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ) जैसे तरङ्गपंक्ति प्रतिक्षण दूर हट-हट कर पुनः लौट लौट कर प्रबल हो, (जल के लिए डाले गये) कलश को फोड़ डालती है उसी प्रकार प्रबल एवं बार-बार जायमान, (मेरे प्रस्थान का उद्योग करने पर) प्रिया का दुःख मेरे हृदय को विदीर्ण कर देगा ॥ ६९० ॥

नायिका, सखी से कह रही है—

हन्त विरहः समन्ताज्ज्वलयति दुर्वारतीव्रसंवेगः ।
अरुणस्तपनशिलामिव पुनर्न मां भस्मतां नयति ॥ ६९१ ॥

पदार्थ—दुर्वारतीव्रसंवेगः—दुःखेन वारयितुं शक्यः तीव्रः दुःसहः आवेगः आधिक्यम् यस्य सः—दुर्वार और तीव्र जिसका आवेग है । विरहः । समन्तात्—सर्वत्र सकलाङ्ग को । ज्वलयति—जलाता है । हन्त—खेद है । पुनः—किन्तु । अरुणः—सूर्य । तपनशिलामिव—सूर्यकान्त मणि को जैसे । भस्मता न नयति—भस्म नहीं कर देता ।

सरलार्थ—दुर्वार एवं तीव्र आवेगशाली विरह, सूर्यकान्तमणि को सूर्य की भाँति, सर्वत्र मेरे सकलाङ्ग को जलाता है किन्तु खेद है, भस्म नही कर डालता (ऐसे विरह के जीवन से मरण ही अच्छा था) ॥ ६९१ ॥

कोई, किसी नायिका से अन्योक्ति द्वारा कह रहा है—

हृत्वा तटिनि तरङ्गैर्भ्रमितश्चक्रेषु नाशये निहितः ।
फलदलवल्कलरहितस्त्वयान्तरिक्षे तरुस्त्यक्तः ॥ ६९२ ॥

पदार्थ—हे तटिनि ! नदि । तरङ्गैः हृत्वा—तरङ्गो से हर कर । चक्रेषु—जल भँवरो में, भ्रमितः—घुमाया, भरमाया । आशये—मध्य में । न निहितः—स्थापित नही किया । फलदलवल्कलरहितः—फलो, पत्तो एवं वल्कल से रहित । तरुः—वृक्ष । त्वया—तू ने । अन्तरिक्षे त्यक्तः—अधर मे छोड़ दिया ।

सरलार्थ—हे तटिनि ! तरङ्गो से हर कर, जल भँवरो में डाल कर खूब घुमाया-भरमाया, मध्य मे स्थापित नहीं किया । तू ने फलो, पत्तो एवं वल्कलों से रहित कर इस वृक्ष को अधर मे छोड़ दिया ॥ ६९२ ॥

सखी नायिका से कह रही है—

हृतकाञ्चिवल्लिबन्धोत्तरजघनादपरभोगभुक्तायाः ।
उल्लसति रोमराजिः स्तनशंभोर्गरललेखेव ॥ ६९३ ॥

पदार्थ—अपरभोगभुक्तायाः—न विद्यते परः यस्मात्—जिससे बढ़ कर नहीं हो सकता अर्थात् अत्यन्त उत्कट, अपरः यः भोगः तत्र भुक्तायाः—

अत्युत्कट सुरत में उपभुक्त तेरी। हृतकाञ्चिवल्लिबन्धोत्तरजघनात्—हृतेन त्रुटितेन काञ्चिवल्लिबन्धेन उत्तरः उच्छूनः यो जघनः तस्मात्—टूटे काञ्चीबन्धन से रिक्त जघन के कारण। रोमराजिः—रोमावली। स्तनशम्भोः—स्तन रूप शिव की। गरललेखा इव—विषलेखा-सी। उल्लसति—सुशोभित हो रही है।

सरलार्थ—अत्युत्कट सुरत में उपभुक्त तेरा काञ्चीबन्धन हट जाने से उच्चतर जघन के कारण रोमराजि, स्तन रूप शिव की विष-लेखा-सी सुशोभित हो रही है ॥ ६९३ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता हकारव्रज्या।

क्षकारव्रज्या

प्रीति न करने वाले नायक में तू विनीत क्यों रहती है—ऐसा कहती सखी से नायिका कह रही है—

क्षीरस्य तु दयितत्वं यतोऽपि शान्तोपचारमासाद्य।
शैलोऽङ्गान्यानमयति प्रेम्णः शेषो ज्वरस्येव ॥ ६९४ ॥

पदार्थ—क्षीरस्य तु दयितत्वम्—क्षीर का भी प्रीतिविषयत्व। यतः—जिससे। शान्तोपचारम्—शान्तः उपचारः यस्य तम्—जिसका उपचार समाप्त हो चुका है अर्थात् नीरोग को। आसाद्य—प्राप्तकर। क्षीर की प्रियता नीरोग व्यक्ति को पाने से है अर्थात् नीरोग को क्षीर प्रिय लगता है, रोगग्रस्त को नहीं। शैलः—(१) शीलस्य अयम्, शील सम्बन्धी, (२) शिलानामयम् शैलः—अत्यन्त गुरुता-सम्पादक। ज्वरस्य इव—ज्वर के-से। प्रेम्णः शेषः—प्रीतिशेष। अङ्गानि—मेरे अङ्गों को। आनमयति—झुका देता है।

सरलार्थ—क्षीर सब को स्पृहणीय होता है, रोगग्रस्त को नहीं (मैं, अन्याङ्ग-नारूप रोगग्रस्त उसे प्रिय एवं स्पृहणीय नहीं हूँ, इसमें न उसका कोई अपराध है और न मेरी कोई हानि ही है)।

यथा पर्वततुल्य ज्वरशेष अङ्गों को बलपूर्वक झुका देता है तथा शील-सम्बन्धी प्रीतिशेष मुझे विनीत बना देता है (यद्यपि वैसी प्रीति न होने के कारण मैं अविनीतता करना चाहती हूँ तथापि शीलप्रीतिशेष मुझे बलात् विनीत कर देता है, अतः मेरा अपराध नहीं है)।

अथवा नायिका की सखी नायक से कह रही है—हे शान्त! क्योंकि क्षीर भी उपचार (औटाना, शर्करादिसम्पर्क) से प्रीतिविषय हो जाता है (क्षीर स्वयं मधुर है तथापि उक्त उपचार से स्पृहणीय बन जाता है, उसी प्रकार पराङ्गनालम्पटत्वादि दोषरहित तुम बार-बार आगमन-

चाटुवचनरचनादि से अत्यन्त स्पृहणाय हो जाओगे)। प्रेम का पर्वत ज्वर के शेष के समान अङ्गों को झुका देता है। (यदि तुम उसके विषय में गम्भीर प्रेम रखते हो तो वही तुमको बलात् प्रणामादिशाली बना देगा, ज्वरशेष बलात् अङ्ग झुकाने के अनिच्छुक का भी अङ्ग झुका देता है) ॥ ६९४ ॥

नायिका, नायक से कह रही है—

क्षान्तमपसारितो यच्चरणावुपधाय सुप्त एवासि ।
उद्घाटयसि किमूरू निःश्वासैः पुलकयन्नुष्णैः ॥ ६९५ ॥

पदार्थ—अपसारितः—दूर किया गया। चरणौ उपधाय—चरणों का उपधान बनाकर। सुप्तः एव असि—सोया ही है। तत् क्षान्तम्—उस अपराध को क्षमा कर दिया गया। उष्णैः निःश्वासैः—उष्ण निःश्वासों से। पुलकयन्—पुलकित करता। ऊरू—जाँघो को। किम्—क्यों। उद्घाटयसि—वस्त्र हटाकर नंगी कर रहा है।

सरलार्थ—तुझे यहाँ से हटा दिया गया था किन्तु चरणों का उपधान बनाकर सोये ही हो, यही मेरी तेरे प्रति क्षमा है कि यहाँ से भी नहीं निकाला गया। (किन्तु तू ऐसा धृष्ट है) सन्तापजनित श्वासो से पुलकित करता तू जाँघो को क्यो उघाड़ रहा है (इसे मैं सहन नहीं कर सकती)।

अथवा हटा दिया गया था तथापि तू चरणो पर सिर रखकर सोया ही रहा, अतः तेरो इस विनम्रता पर तेरा अनुचित क्षमा कर दिया गया। दुःख से उष्णश्वास से जाँघो को पुलकित करता क्यो उघाड़ रहा है (दुःखज श्वास का परित्याग कर शीघ्र आलिङ्गन-चुम्बनादि कर) ॥ ६९५ ॥

कोई किसी से कह रहा है—

क्षुद्रोद्भवस्य कटुतां प्रकटयतो यच्छतश्च मदमुच्चैः ।
मधुनो लघुपुरुषस्य च गरिमा लघिमा च भेदाय ॥६९६॥

पदार्थ—क्षुद्रोद्भवस्य—क्षुद्रा मधुमक्षिका, क्षुद्रः नीचः, तदुद्भवस्य—(१) मधुमक्षिका से जन्य, (२) नीचजन्य का। कटुतां प्रकटयतः—(१) रूक्षता, (२) कटुभाषिता प्रकट करता। उच्चैः—उत्कट। मदम्—(१) उन्माद, (२) गर्व। यच्छतः च—करता हुआ। मधुनः—(मधुमक्खी का) मधु का। लघुपुरुषस्य च—और लघु पुरुष का। गरिमा—गौरव। लघिमा—लाघव, तुच्छता। भेदाय—भेद के लिए होता है।

सरलार्थ—मधुमक्षिका से उत्पन्न, रूक्षता प्रकट करता, उत्कट उन्माद करता माक्षिक) मधु तथा नीच से उत्पन्न, कटुभाषिता प्रकट करता, गर्व करता

अधम पुरुष इनकी गुरुता और तुच्छता भेद के लिए होती है (अधम संगति नही करनी चाहिए) ॥ ६९६ ॥

इति विभाव्याख्यासमेता क्षकारव्रज्या ।

कवि अपनी कृति को गुणाढ्यादि महाकवियो की कृति के समकक्ष बताता हुआ कह रहा है—

पूर्वैर्विभिन्नवृत्तां गुणाढ्यभवभूतिबाणरघुकारैः ।
वाग्देवीं भजतो मम सन्तः पश्यन्तु को दोषः ॥६९७॥

पदार्थ—गुणाढ्यभवभूतिबाणरघुकारैः—गुणाढ्यश्च भवभूतिश्च बाणश्च रघुकारः (कालिदासः) च तैः—गुणाढ्य, भवभूति, बाण तथा कालिदास । पूर्वैः—पूर्व कवियो द्वारा । विभिन्नवृत्ताम्—विभिन्नानि नानाविधानि वृत्तानि (१) छन्दांसि यस्याम् (२) चरितानि यस्याः ताम्—(१) नानाविध छन्दो वाली (२) नानाविध चरितो वाली (स्वैरिणी) । वाग्देवीम्—सरस्वती को । भजतः—सेवित करते । मम—मेरा । कः दोषः—क्या दोष । सन्तः पश्यन्तु—सज्जन देखें ।

सरलार्थ—गुणाढ्य, भवभूति, बाण, कालिदास ऐसे पूर्व के कवियो द्वारा विभिन्न वृत्तो (१—छन्दो, २—चरितो) वाली (बना दी गयी) वाणी देवी की सेवा करते मेरा कौन दोष है, इसे सज्जन देखें ॥६९७॥

स्वग्रन्थ समीचीन होने के कारण सबको हर्षप्रद है—ऐसा कवि कह रहा है—

सत्पात्रोपनयोचितसत्प्रतिबिम्बाभिनववस्तु ।
कस्य न जनयति हर्षं सत्काव्यं मधुरवचनं च ॥६९८॥

पदार्थ—सत्पात्रोपनयोचितसत्प्रतिबिम्बाभिनववस्तु—(१) सत्पात्रे सहृदये यः उपनयः प्रापणम् तत्र उचितम् सत्सु प्रतिबिम्बः सम्यक् बोधः यस्य एतादृक् अभिनवं वस्तुरूपम्—सहृदयों को प्राप्त कराने योग्य तथा समीचीन जन को जिसका सम्यक् बोध होता है, ऐसा अभिनव वस्तु रूप ।

(२) सत् पात्र (सम्पुटादि) में रखने योग्य तथा सुन्दर प्रतिबिम्बशाली अभिनव वस्तु । अथवा अभिनववस्तु—काव्य का वर्ण्यविषय, वचन का वाच्य विषय ! सत्पात्रे प्रापणे उचितम्, सत्सु प्रतिबिम्बः यस्य एतादृक् च अभिनवं वस्तु (१—वर्ण्यविषयं २—वाच्यविषयं) यस्य तत्—जिसका वर्ण्य अथवा वाच्य विषय सत्पात्रो को प्राप्त कराने योग्य तथा सम्यक् बोधगम्य है ।

सत्काव्यम्—सत्काव्य। मधुरवचनम् च—और मधुर वचन। कस्य न—किसे नही अर्थात् सबको ! हर्ष जनयति—हर्षजनक होता है।

सरलार्थ—जिसका वर्ण्य विषय अथवा वाच्य विपय सत्पात्रो (सहृदयों) को प्राप्त कराने योग्य तथा समीचीन जनो को बोधगम्य होता है (क्योकि सत्काव्य का श्रवण और पठन, तथा मधुर वचन का कथन और श्रवण, सहृदयो का ही अधिकृत विषय है) अतः सत् पात्र (सम्पुटादि) में रखने योग्य तथा सुन्दर प्रतिबिम्बशाली अभिनववस्तुसदृश सत्काव्य और मधुर वचन किसे नही हर्ष उत्पन्न करते अर्थात् सबको हर्ष उत्पन्न करते है ॥ ६९८ ॥

कवि अपनी सप्तशती की प्रशंसा करता है—

एका ध्वनिद्वितीया त्रिभुवनसारा स्फुटोक्तिचातुर्या ।
पञ्चेषुषट्पदहिता भूषा श्रवणस्य सप्तशती ॥ ६९९ ॥

पदार्थ—एका—मुख्या। ध्वनिद्वितीया—ध्वनिः व्यंजना द्वितीया सहायभूता यस्याः सा—व्यंजना जिसकी सहायिका है। त्रिभुवनसारा—त्रयाणाम् भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं तस्मिन् सारम् रसः यस्याः—त्रिभुवन में रसवती। अथवा त्रिभुवनं सारं यया सा—जिससे त्रिभुवन रसवान् है (अन्यथा निःसार)। स्फुटोक्तिचातुर्या—स्फुटम् उक्तिचातुर्यम् यस्यां सा—जिसमें उक्तिचातुर्य (कथनवैचित्र्य) स्फुट (सुव्यक्त) है। अथवा स्फुटम् उक्तिचातुर्यं यया—जिससे उक्तिचातुर्य व्यक्त है। पञ्चेषुषट्पदहिता—पञ्चेषुः मदनः तद्रूपो यः षट्पदः भ्रमरः तस्य हिता—मदनरूप भ्रमर की हितकारिणो। श्रवणस्य—(सज्जनो के) श्रवण की। भूषा—भूषणरूपा। सप्तशती (आस्ताम्)—सप्तशती हो।

सप्तशती में नायिकात्वारोपण कवि मङ्गलाचरणव्रज्या में कर चुका है। उस दृष्टि से—

एकाध्वनिद्वितीया—ए (अव्यय पद है) ए—हर्म्योदरे, कस्य सुखस्य, अध्वनि मार्गे द्वितीया—गृहान्तर्वर्तिसुखमार्ग मे सहायिका (इसके बिना घरेलू सुख नही)। त्रिभुवनसारा—त्रिभुवन मे साररूप। अथवा 'द्वितीयात्रि' द्वितीया + अत्रि, इस प्रकार सन्धि करने से अत्रिभुवनसारा—अत्रेः सकाशाद् भवतिअत्रिभुचान्द्रं ज्योतिः तस्य वनं, तस्य साररूपा—चान्द्रज्योतिसमूह की साररूपा, चन्द्रसार से निर्मित। अथवा जिससे (जिसके सानिध्य में), त्रिभुवन सार रूप ही होता है।

स्फुटोक्तिचातुर्या—स्फुटम् उक्तिचातुर्यं यस्याः सा—जिसकी उक्ति का चातुर्य व्यक्त है।

अथवा स्फुटा सप्रसादा उक्तिः यस्य एतादृशे नायके चातुर्यं यस्याः सा—प्रसन्नार्थकोक्तिशाली नायक में चातुर्यशालिनी।

अथवा (सारास्फुट में सारा + अस्फुट, ऐसी सन्धि करने पर) अस्फुटोक्तौ वक्रोक्तौ चातुर्यं यस्याः सा—वक्रोक्तिकुशला।

पञ्चेषुषट्पदहिता—पञ्चेषोः मदनस्य षड्भिः संध्याद्युपायैः पदाय वृद्धिरूपाय हिता।

अथवा पञ्चेषोः षट्पदरूपा—ज्यारूपा। अत एव हिता।

अथवा—एकाध्वनिद्वितीया—एकस्य मुख्यस्य अद्वितीयस्य वा ब्रह्मस्वरूप-रसस्य अध्वनि मार्गे द्वितीया सहायिका ब्रह्मविद्या—अद्वितीय अथवा मुख्य ब्रह्मस्वरूप रस के मार्ग में सहायिका ब्रह्मविद्या। त्रिभुवनसारा—जिससे त्रिभुवन ब्रह्मभावनारूपसार है।

स्फुटोक्तिचातुर्या—स्फुटम् उक्तौ चातुर्यं सामर्थ्यं यस्याः सा—(वाणी से भी अगोचर ब्रह्म का प्रतिपादन करने से) ब्रह्म के विषय में स्पष्ट कथन में सामर्थ्य-शालिनी। अथवा प्रकट रूप में प्रतिपादन करने में सामर्थ्यशालिनी। पञ्चेषु-षट्पदहिता—पञ्चप्रपञ्चस्य सृष्टेरित्यर्थः वाणरूपाः ये षट् कामक्रोधादयः तेषाम् पदम् स्थानम् अज्ञानम् तस्मिन् हिता उपयोगिनी—(उसकी विनाशिका होने के कारण) संसार के (दुःखद होने के कारण) वाणरूप क्रोधादि षड्रिपु के स्थान अज्ञान में (विनाशार्थ) उपयोगिनी।

अथवा पद् + अहिता; ऐसा विच्छेद करके—संसार के वाणरूप काम-क्रोधादि षड्रिपु के (पदाम् चरणानाम् अहिता विनाशिका) चरणों को नष्ट करने वाली—उन्हें व्यर्थ बना देने वाली।

श्रवणस्य भूषा—(श्रुतिजन्य ज्ञान को सुनना ही समीचीन है) अतएव सज्जनों के श्रवण की भूषणरूपा।

सरलार्थ—मेरी यह आर्यासप्तशती (१—काव्यग्रन्थरूपा, २—नायिका-रूपा, ३—ब्रह्मविद्यारूपा) सज्जनो का कर्णभूषण बने (१—सज्जन सुनें, २—इसके गुणों के श्रवण की सदा इच्छा करे, ३—इसका सदा परिशीलन करें) (१) जो व्यञ्जना से युक्त (उत्तम काव्यमयी) है, जो त्रिभुवन में रसवती, जिससे त्रिभुवन सरस (जिसके बिना नीरस) है, जिसमें उक्तिचातुर्य व्यक्त (निःसन्दिग्ध) है और जो मदनरूप भ्रमर की (कर्तव्यपालन मे सहायता पहुँचाने के कारण) हितकारिणी है।

(२) जो गृहान्तवर्ति सुखसाधन में सहायता करती है (जिसके बिना घरेलू सुख नसीब नहीं होता), जो (अन्योपायों से असाध्य ताप की शामिका

होने के कारण) मानों चन्द्रसार से निर्मित है, जो (बहुविध यागादि तपस्यादि से प्राप्त स्वर्गीय भोगों में भी मुख्य होने के कारण) त्रिभुवन में सार है, जिसके सांनिध्य में यह असार त्रिभुवन साररूप हो जाता है, जिसका उक्ति-चातुर्य (प्रत्येक बात में) व्यक्त है, जो प्रसन्नार्थक वचनशाली नायक को अपने वचनकौशल से चमत्कृत कर देती है, जो वक्रोक्ति में पाण्डित्य रखती है, जो (काम को भी विजयी बनाकर वृद्धिशाली विख्यात करने के कारण) सन्धिविग्रहादि षट् उपायों से मदन के वृद्धिरूप पद को प्राप्त करने में सहायिका होती है, जो (मदनधनुष को भी सार्थक बनाने के कारण) मदन की षट्पद (भ्रमर) रूप साक्षात् प्रत्यञ्चा बनकर हितसाधिका होती है।

(२) जो अद्वितीय अथवा मुख्य ब्रह्मस्वरूप रस के मार्ग में सहायिका ब्रह्मविद्या है जिससे त्रिभुवन ब्रह्मभावनारूपसार हो जाता है, जो ब्रह्म के विषय में स्पष्ट अथवा प्रकट प्रतिपादन करने का सामर्थ्य रखती है, इस प्रपंच के (दुःखद होने के कारण) बाणरूप कामक्रोधादि षट्रिपु को जो (अपने ज्ञान द्वारा) निष्फल एवं व्यर्थ बना देती है ॥ ६९९ ॥

इस ग्रन्थ के अवलोकन में लोगों की प्रवृत्ति हो सके, एतदर्थ कवि सप्तशती के गौरव तथा विशिष्टता का वर्णन कर रहा है—

कविसमरसिंहनादः स्वरानुवादः सुधैकसंवादः ।
विद्वद्विनोदकन्दः संदर्भोऽयं मया सृष्टः ॥ ७०० ॥

पदार्थ—कविसमरसिंहनादः—कविसमरे कविसंग्रामे सिंहनादः—कवियों के संग्राम में सिंहनाद। स्वरानुवादः—स्वराः षड्जादयः अनुवादः यस्य सः—षड्जादि स्वर जिसके अनुवाद है। सुधैकसंवादः—सुधायाः एकः संवादः साजात्यं यस्य सः—जिसकी सुधा की ही सजातीयता है अर्थात् सुधा के समान मधुर। अथवा जिसका संवाद (एक बार सम्यक् उच्चारण) सुधा के समान है। विद्वद्विनोदकन्दः—विदुषां विनोदस्य कन्दः—विद्वानों का विनोद कन्द अर्थात् आनन्दप्रद। अयं संदर्भः—यह काव्य। मया सृष्टः—मैं ने रचा।

सरलार्थ—मैं (गोवर्धनाचार्य) ने यह आर्यासप्तशती नामक काव्यग्रन्थ रचा है जो कवियों के संग्राम में सिंहनाद है (इसे सुनकर अन्य कवियों का दर्प भाग जाता है), षड्जादि स्वर जिसका अनुवाद है (इसमें षड्जादि की अपेक्षा अधिक माधुर्य है) जो सुधा के समान है अथवा जिसका एक बार सम्यक् उच्चारण सुधा के समान सुखावह है, जो विद्वानों को विनोद देता है ॥७००॥

इस ग्रन्थ में बहुत समझ-बूझ के ही कोई दोष निकाले—ऐसा, कवि समवधान कर रहा है—

उदयनबलभद्राभ्यां सप्तशती शिष्यसोदराभ्यां मे ।
द्यौरिव रविचन्द्राभ्यां प्रकाशिता निर्मलीकृत्य ।। ७०१ ।।

पदार्थ—शिष्यसोदराभ्याम्—शिष्य, जो सगे भाई हैं। उदयनबलभद्राभ्याम्—उदयन और बलभद्र ने। रविचन्द्राभ्याम्—सूर्य और चन्द्र द्वारा। द्यौः इव—आकाश की भाँति। मे सप्तशती—मेरी सप्तशती। निर्मलकृत्य—निर्मल कर (संशोधित कर)। प्रकाशिता—(१) शिष्य प्रशिष्य द्वारा विस्तारित की, (२) प्रकाशविषय बनाया।

सरलार्थ—मेरे शिष्य और परस्पर सहोदर उदयन और बलभद्र ने, सूर्य-चन्द्र द्वारा आकाश की भाँति; निर्मल करके यह सप्तशती प्रकाशित की ॥ ७०१ ॥

आर्यासप्तशती का हरिचरणों में कवि द्वारा समर्पण—

हरिचरणाञ्जलिममलं कविवरहर्षाय बुद्धिमान्सततम् ।
अकृतार्यासप्तशतीमेतां गोवर्धनाचार्यः ।। ७०२ ।।

पदार्थ—बुद्धिमान्—मतिमान्। गोवर्धनाचार्यः। सततम्—निरन्तर। कविवरहर्षाय—कविश्रेष्ठों के हर्ष के लिए। अमलम्—स्वच्छ। हरिचरणाञ्जलिम्—हरिचरणयोः अञ्जलिम् पुष्पाञ्जलिम्—हरिचरणों को पुष्पाञ्जलि। एताम् आर्यासप्तशतीम्—इस आर्यासप्तशती को। अकृत—किया।

सरलार्थ—मतिमान् गोवर्धनाचार्य ने निरन्तर उत्तम कवियों के हर्ष के लिए हरिचरणों की पुष्पाञ्जलि रूप इस आर्या सप्तशती की रचना की ॥ ७०२ ॥

इति श्रीरामनाथत्रिपाठिशास्त्रितनुजनूरमाकान्तत्रिपाठिकृत-
विभाव्याख्यासमेता आर्यासप्तशती
समाप्ता।